ज्यूं मछली बिन नीर

अनुक्रम

1. अपने-अपने कारागृह...2
2. जगत सत्य, ब्रह्म सत्य...23
3. अंतर्यात्रा पर निकलो...45
4. ध्यान पर ही ध्यान दो...66
5. सत्य की कसौटी...84
6. जीवन जीने का नाम है...105
7. श्रद्धा और सत्य का मिथुन...129
8. प्रतिरोध न करें...153
9. संन्यासः ध्यान की कसम..177 10...ध्यान विधि है मूर्च्छा को तोड़ने की 200

ज्यूं मछली बिन नीर
पहला प्रवचन

अपने-अपने कारागृह

पहला प्रश्नः ओशो, संत रज्जब ने क्या हम सोए लोगों को देख कर ही कहा हैः ज्यूं मछली बिन नीर। समझाने की अनुकंपा करें।

नरेन्द्र बोधिसत्व! और किसको देख कर कहेंगे? सोए लोगों की जमात ही है। तरह-तरह की नींदें हैं। अलग-अलग ढंग हैं सोए होने के। कोई धन की शराब पीकर सोया है, कोई पद की शराब पीकर सोया है। लेकिन सारी मनुष्यता सोई हुई है।
जिन्हें तुम धार्मिक कहते हो वे भी धार्मिक नहीं हैं, क्योंकि बिना जागे कोई धार्मिक नहीं हो सकता है। हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं--लेकिन धार्मिक मनुष्य का कोई पता नहीं चलता। धार्मिक मनुष्य हो तो हिंदू नहीं हो सकता है, मुसलमान नहीं हो सकता है। ये सब सोए होने के ढंग हैं। कोई मस्जिद में सोया है, कोई मंदिर में सोया है।
मैं एक बड़े प्यारे आदमी को जानता था। सरल थे, अदभुत रूप से सरल थे! और आग्नेय भी थे, अग्नि की तरह दग्ध कर दें। नाम था उनका--महात्मा भगवानदीन। वे जब भी बोलते थे तो बीच-बीच में रुक जाते। कहते, बायां हाथ ऊपर करो। अब दायां हाथ ऊपर करो। अब दोनों हाथ ऊपर करो। फिर कहते, दोनों हाथ नीचे कर लो। मैंने उनसे पूछा कि यह बीच-बीच में रुक कर लोगों से कवायद क्यों करवानी? तो वे कहते, यह तो मुझे पक्का हो जाए कि लोग जागे सुन रहे हैं कि सोए हैं! और मैंने देखा कि यह सच था। जब वे कहते बाएं हाथ ऊपर करो, तो कुछ तो करते ही नहीं, कुछ दाएं कर देते।
अधिकतर लोग तो सोए ही हुए हैं--यूं भी, आंखें खोले हुए भी सोए हैं। नींद का अर्थ है कि तुम्हें इस बात का पता नहीं कि तुम कौन हो। काश, तुम्हें पता हो जाए कि तुम कौन हो, तो फिर जीवन में आनंद है, फिर जीवन में एक सुवास है! क्योंकि फिर जीवन का फूल खिलता है, जीवन का सूर्य निकलता है, उत्क्रमण की यात्रा शुरू होती है।
अथर्ववेद का यह वचन प्यारा हैः उत्क्रामातः पुरुष मावपत्थाः माच्छित्थाः अस्माल्लोकावग्ने सूर्यस्य संदृशः।
"हे पुरुष, उत्क्रमण करो! उठो, ऊंचे उठो! इहलोक में ही रहते हुए सूर्य
के सदृश्य तेजस्वी बनो।"
पुरुष कहते हैं, वह जो तुम्हारे भीतर बसा है। शरीर तो बस्ती है। शरीर
के भीतर जो बसा है वह तुम हो। वह कौन है जो भीतर बसा है? उसका ही पता नहीं, तो और तुम्हारे जागरण का क्या अर्थ हो सकता है? अपनी ही सूझ न हो, अपना ही हाथ न सूझे, उसको हम अंधा कहेंगे। और अपनी ही आत्मा भी न सूझती हो, उसको तो महाअंधा कहना होगा। और जब तक यह अंधापन है, कैसे उत्क्रमण हो? कैसे तुम ऊंचे उठो? मूर्च्छा गर्त है, खड्ड है। जागरण पंख लगा देता है। सारा आकाश तुम्हारा है, बस दो पंख चाहिए। सारे आकाश का विस्तार तुम्हारा है। चांद-तारे तुम्हारे हैं। और तुम्हें यह जागरण की कला आ जाए तो सीढ़ी मिल गई-- मंदिर की सीढ़ियां मिल गईं। अब चढ़े चलो।
और यह सूत्र इसलिए भी प्यारा है कि यह मेरे संन्यास की परिभाषा है--"इहलोक में ही रहते हुए सूर्य सदृश्य तेजस्वी बनो।" छोड़ो मत, भागो मत। संसार में रहते हुए ही, इहलोक में ही रहते हुए ही तुम्हारा सूर्य प्रकट हो सकता है। लेकिन सोए हुए लोग हिमालय चले जाएं, गुफाओं में बैठ जाएं, कुछ भेद न पड़ेगा। तुम्हारी नींद तो तुम अपने साथ ले जाओगे। तुम्हारी मूर्च्छा तो तुम्हारी छाया की तरह तुम्हारा अनुगमन करेगी। तुम फिर चाहे त्यागी बन जाओ, तपस्वी बन जाओ, शीर्षासन करो, सिर के बल खड़े रहो, एक टांग पर खड़े रहो, भूखे मरो, जो तुम्हें करना हो करो--नींद नहीं टूटेगी। ये कुछ नींद के टूटने के रास्ते नहीं हैं। हां, यह हो सकता है कि तुम धार्मिक ढंग के सपने देखने लगो। यह हो सकता है कि तुम्हारे सांसारिक सपने तो हट जाएं, उनकी जगह मोक्ष और स्वर्ग के सपने आ जाएं। मगर भेद कुछ भी न होगा।

कल ढब्बू जी कह रहे थे, ओशो, मैं पूजा करके उठा तो देखा मेरी छोटी भतीजी कुछ देर बाद उसी आसन पर बैठ, आंख बंद कर, हाथ जोड़ कर हिल-हिल कर गा रही--दो बेचारे, बिना सहारे, फिरते मारे-मारे।
ढब्बू जी कहने लगे मुझसे, मुझे बड़ी हंसी आ गई, और मैंने पूछाः नीनू, यह क्या है! वह बोलीः अभी चुप रहिए, मैं पूजा कर रही हूं चाचा जी।
ढब्बू जी ने कहाः पूजा! अरे यह फिल्मी गाना है या पूजा? इस पर वह झट से बोलीः "पूजा में आप और दादी भी तो ओम जय जगदीश हरे, पिक्चर का गाना गाते हैं।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि क्या गाना गा रहे हो? भजन हो कि फिल्मी गीत हो, तुम्हारी नींद में सब बराबर है। तुम स्वप्न स्वर्ग का भी देखो तो कोई भेद नहीं पड़ता। तुम्हारे स्वप्न में देवता प्रकट हों तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। जाग कर पाओगे, सब सपने झूठे थे।
कुछ लोग संसार के सपनों में खोए हैं, कुछ लोग त्याग के सपनों में खोए हैं। और इन त्यागियों को तुम महात्मा कहते रहे हो। इनकी नींद तुम्हारे ही जैसी है, जरा भी फर्क नहीं, जरा भी भेद नहीं। सपने भी तुम्हारे ही जैसे हैं, क्योंकि सपना सपना है; किस चीज का देखते हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। कोई सपने में साधु है, कोई सपने में चोर है। जाग कर तो दोनों सपने खो जाएंगे। जाग कर तो पता चलेगा कि मैं सिर्फ द्रष्टा हूं--न चोर हूं, न साधु हूं। मैं तो केवल साक्षी हूं।
नरेन्द्र बोधिसत्व, रज्जब का यह वचन... और रज्जब का ही क्यों, जो भी जागे उन सारे अदभुत लोगों के वचन सोए हुए लोगों से ही कहे गए हैं। जागे हुए से तो कहने का कोई उपाय नहीं, कहने की कोई जरूरत भी नहीं। जिसे खुद ही दिखाई पड़ रहा हो, उसे क्या कहना है? इसलिए दो जागे हुए व्यक्ति मिल जाएं तो कहने को कुछ भी नहीं है, मौन बैठेंगे। शून्य में दोनों बैठेंगे। आह्लादित होंगे एक-दूसरे को देख कर। आनंदित होंगे। लेकिन बोलने को क्या बचेगा? बुद्ध ने कहा हैः तीन तरह के जोड़ हो सकते हैं। दो बुद्धपुरुषों का मिलना हो, यह एक जोड़--बोलना बिल्कुल नहीं होगा। दो बुद्धुओं का जोड़ हो; बहुत बकवास होगी, सुनना बिल्कुल नहीं होगा। दो बुद्धपुरुष मिलें, बोलेंगे कुछ भी नहीं, समझेंगे बहुत।
मेरे पिता मुझे पत्र लिखते थे। नियम से पत्र लिखते थे। उनके पत्र में
यह बात हमेशा होती थी--"लिखा थोड़ा, समझना ज्यादा।"
मैंने उनसे कहाः इसको थोड़ा और आगे बढ़ाओ--"लिखा कुछ भी नहीं, समझ लेना सब।" ऐसे भी कुछ लिखते नहीं थे। लिखने को कुछ होता भी नहीं था। तो खाली कार्ड ही भेज दिए--लिखा कुछ भी नहीं, समझना सब। इसको भी लिखने की जरूरत नहीं, खाली कार्ड आएगा तो मैं समझ ही लूंगा कि लिखा कुछ भी नहीं, समझना ही समझना है।
कहते हैं एकनाथ ने पत्र लिखा निवृत्तिनाथ को। खाली कागज भेज दिया। लिखो भी क्या! एकनाथ भी जागे हुए हैं, निवृत्तिनाथ भी जागे हुए हैं; लिखना क्या है, कहना क्या है! दोनों देख रहे, दोनों पहचान रहे, दोनों जी रहे। खाली कागज आया। पत्रवाहक लेकर आया, कासिद आया। निवृत्तिनाथ ने पहले पत्र पढ़ा। नीचे से ऊपर तक पढ़ा। फिर पास में ही उनकी बहन मुक्ताबाई बैठी थी, उसे दिया कि अब तू पढ़। फिर मुक्ताबाई ने भी पढ़ा। वह भी जाग्रत महिलाओं में एक थी। मुक्ताबाई ने पढ़ कर कहाः "खूब लिखा है! जी भर कर लिखा है! और एकनाथ ऐसे ही कोरे हैं जैसा यह कागज। सब लिखावट खो गई है, शून्य बचा है।"
और जहां शून्य बचता है वहीं शास्त्र का जन्म होता है। शून्य से ही उठते हैं शास्त्र।
दो बुद्धपुरुष मिलें तो शून्य का ही आदान-प्रदान होता है। सुनोगे तुम कुछ भी नहीं। बात कह दी जाएगी, कही बिल्कुल न जाएगी। शब्द आड़े न आएंगे, हृदय से हृदय जुड़ जाएगा। दोनों डोलेंगे मस्ती में। नाच सकते हैं हाथ में हाथ लेकर। मदमस्त हो सकते हैं। मगर बोलने को क्या है?
महावीर और बुद्ध एक ही धर्मशाला में ठहरे, मगर मिले भी नहीं। क्या था कहने को, क्या था मिलने को! सोचता हूं मैं तो ख्याल आता है, निवृत्तिनाथ ने

भी नाहक कासिद को तकलीफ दी। काहे को भेजा कोरा कागज, इसकी भी कोई जरूरत न थी।
बुद्ध और महावीर मिले ही नहीं, एक ही धर्मशाला में ठहरे। आधे हिस्से में बुद्ध का डेरा, आधे में महावीर का डेरा। एक ही गांव, एक ही धर्मशाला। मिले नहीं। क्या जरूरत! कहने को कुछ है नहीं। मिलने की कुछ बात नहीं। मगर दो बुद्धू मिल जाएं, तो बकवास बहुत। सुनता कोई नहीं। एक-दूसरे से कहे ही चले जाते हैं। फुर्सत किसे सुनने की! सिर में इतना कचरा भरा है, उसे उलीचने में लगे हैं। अवसर चूकते नहीं। मिल गया कोई तो इसकी खोपड़ी में उलीच दो। अपना बोझ हलका करो।
लोग कहते हैं न--आ गए, तुमसे बात कर ली, बोझ बड़ा हलका हो गया, सो तो बड़ी कृपा हुई कि बोझ हलका हो गया, मगर इस बेचारे पर क्या बीती? इसका बोझ बढ़ा दिया।
एक महिला एक डाक्टर के पास गई। घंटे भर तक डाक्टर की खोपड़ी खाई, न मालूम कहां-कहां की बीमारियां, बचपन से लेकर अब तक का सारा इतिहास कहा। फिर जाते वक्त बोली कि आप भी अदभुत चिकित्सक हैं, सिर में मेरे बहुत दर्द था जब आई थी, अब दर्द बिल्कुल चला गया है।
डाक्टर ने कहाः निश्चित चला गया होगा, क्योंकि मेरी खोपड़ी में भनभना रहा है। तेरा तो गया, मुझे मिल गया। गया कहीं नहीं है। घंटे भर तूने सिर खाया तो मेरा सिर दुख रहा है अब। तू तो हलकी हो गई। बिना दवा के चिकित्सा हो गई।
न तो दो मूढ़ों के बीच बात होती है, न दो जाग्रत पुरुषों के बीच बात होती है। जाग्रत पुरुष बोलते नहीं, मूढ़ पुरुष सुनते नहीं। फिर तीसरा एक संयोग है कि जाग्रत और सोए के बीच। बस वहीं बात हो सकती है। जाग्रत कहता है कि सुनो। सोया हुआ सुने, न सुने, मगर जाग्रत को कहना ही होगा। उसकी करुणा। रज्जब ने ही नहीं, जो भी जागे उन्होंने संबोधन ही किया है सोए हुए लोगों को। सोए हुए को जगाना है। रज्जब का यह वचन बड़ा प्यारा है। पूरा वचन समझने जैसा है--
खिन-खिन दुखिया दगधिए, विरह विथा तन पीर।
धड़ी पलक में बिनसिए, ज्यूं मछली बिन नीर।।
खिन-खिन दुखिया दगधिए! लोग दग्ध हो रहे हैं दुख में। क्षण-क्षण दुख ही दुख। प्रतिपल दुख ही दुख। और तो कुछ जाना ही नहीं।
क्या है तुम्हारा जीवन? जरा पन्ने पलटो। अपनी कथा को देखो। व्यथा ही व्यथा है। कथा तो है ही नहीं, व्यथा ही व्यथा है। हर पन्ने पर दुख के दाग हैं। हर पन्ने पर पीड़ा की लिखावट है। हर पन्ने पर आंसू टपके हैं। खिन-खिन दुखिया दग्धिए! जैसे कोई आग में जलता हो! और तुम पूछते हो कि नरक है या नहीं? नरक में जीते हो और पूछते हो कि नरक है या नहीं! मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे पूछते हैं कि नरक है या नहीं? मैं उनसे कहता हूं, "पागल! और तुम सोचते हो कि तुम हो कहां! नरक में ही हो। कहीं और कोई नरक नहीं है।" ये सोच रहे हैं कहीं और भी कोई नरक होगा। नरक भी यहीं है, स्वर्ग भी यहीं है। नरक जीवन की शैली है, स्वर्ग भी जीवन की शैली है। यह कोई भौगोलिक स्थान नहीं है।
मैंने सुना, जब पहला रूसी अंतरिक्ष यात्री चांद का परिभ्रमण करके लौटा तो ख्रुश्चेव ने उससे पूछा--एकांत में स्वभावतः, बिल्कुल अकेले में-- कहा कि दरवाजा भी बंद कर दे। पूछा कि एक बात बता, चांद का चक्कर लगा कर आया, ईश्वर दिखाई पड़ा?
उसने मजाक किया। उसने कहाः हां, ईश्वर है। ख्रुश्चेव ने कहाः मुझे पहले ही संदेह था कि होगा। मगर कसम खा कि किसी और को न बताना।
जो संग्रहालय मास्को में बनाया गया है, चांद से लाई गई मिट्टी, पत्थरों का जहां संग्रह है, अंतरिक्ष के संबंध में जो अब तक खोज हुई है, चित्र लिए गए हैं, उनका संग्रह है--उसके द्वार पर लिखा हुआ है कि हमारे अंतरिक्ष यात्री चांद पर पहुंच गए और उन्होंने एक बात सुनिश्चित रूप से पाई कि वहां कोई ईश्वर नहीं है। फिर यह अंतरिक्ष यात्री जगह-जगह निमंत्रित हुआ। यह वेटिकन भी गया, जहां ईसाइयों के कैथोलिक संप्रदाय के

प्रधान, पोप का निवास है। पोप ने भी उसे बुलाया। दरवाजा लगवा लिया, वैसे ही जैसे ख्रुश्चेव ने लगवाया था। और पूछा कि एक बात बताओ, बिल्कुल एकांत, कानोंकान किसी को खबर न हो--ईश्वर दिखाई पड़ा?
उसे मजाक सूझी। एक मजाक ख्रुश्चेव से की थी, यहां भी वह चूका नहीं। उसने कहा कि ईश्वर है ही नहीं, कोई ईश्वर दिखाई नहीं पड़ा।
पोप ने कहाः मुझे पहले से ही संदेह था। मगर अब तुम इतनी कृपा करना, यह बात किसी से कहना मत।
यहां नास्तिकों को भी संदेह है--हो न हो, ईश्वर हो! यहां आस्तिकों को
भी संदेह है कि हो न हो, ईश्वर न हो! सब कल्पना-जाल में खोए हुए हैं। किसी का कोई अनुभव नहीं है।
लोग पूछते हैं, नरक है? जैसे कि नरक कोई भौगोलिक चीज है! या स्वर्ग कोई भौगोलिक चीज है! लोग पूछते हैं, ईश्वर कहां है? जैसे कि ईश्वर कोई व्यक्ति है और किसी सीमा में आबद्ध होगा! स्वर्ग और नरक जीवन की शैलियां हैं। नरक का अर्थ है--जिसे अपने ईश्वर होने का बोध नहीं, उसके जीवन की शैली नरक होगी। खिन-खिन दुखिया दगधिए! वह जलेगा आग में। और जिसे पता है कि मैं ईश्वर हूं, मेरे भीतर ईश्वर है--उसके जीवन की शैली में स्वर्ग होगा। उसके आस-पास मुरली बजेगी। उसके आस-पास अप्सराएं नाचेंगी। उसके आस-पास फूल खिलेंगे। उसके आस-पास गीतों की झड़ी लगेगी। जिसे अपने भीतर के ईश्वर का पता है, उसके जीवन में स्वर्ग होगा। और जिसे अपने भीतर के ईश्वर का पता नहीं, उसका जीवन नरक होगा।
नरक और स्वर्ग कहीं और नहीं हैं। यहीं रज्जब जैसे व्यक्ति स्वर्ग में जीते हैं और तुम यहीं नरक में जीते हो। तुम्हारा चुनाव।
खिन-खिन दुखिया दगधिए!
क्षण-क्षण जल रहे हो, मगर जलने की तुम्हारी आदत हो गई है। अब तो तुम जानते ही नहीं कि जीवन का कोई और ढंग भी हो सकता है। तुम तो मान कर ही बैठ गए कि बस यही जीवन की एक व्यवस्था है, यही एक जीवन का रंग है, यही एक रूप है। जीवन इतने पर समाप्त नहीं है।

सितारों के आगे जहां और भी हैं
इश्क के अभी इम्तिहां और भी हैं

जो तुमने जाना है वह तो कुछ भी नहीं है। सितारों के आगे जहां और भी हैं! अभी और बहुत जानने को शेष है। अभी जाना ही कुछ नहीं। अभी तो जानने का पहला कदम भी नहीं उठाया।
अज्ञान में तो दग्ध होओगे ही। अज्ञान ही अग्नि है। नरक में तुमने जिन कड़ाहों की बात सुनी है कि कड़ाहे जल रहे हैं और आदमी कड़ाहों में भूने जा रहे हैं, इस भ्रांति में मत पड़े रहना कि ये कड़ाहे वस्तुतः कहीं हैं। यह तुम कैसे जीते हो, इस पर निर्भर है। तुमने अपने चारों तरफ कड़ाही बना ली है, इसमें भूने जा रहे हो। तुम जरा गौर से अपने जीवन को तो देखो!
मगर हम इतने होशियार हैं कि हमने नरक को भी बहुत दूर पाताल में रख दिया है। इस तरह यह भ्रांति बनी रहती है कि हम कोई नरक में नहीं हैं। थोड़ा दान-पुण्य कर लेंगे, गंगा में स्नान कर आएंगे, काबा की यात्रा करके हाजी हो जाएंगे, थोड़ा गरीबों को, भिखमंगों को, ब्राह्मणों को दान दे देंगे--बस स्वर्ग अपना है। एक पिंजड़ा पोल खुलवा देंगे, गौ-रक्षा करवा देंगे, विधवा आश्रम बनवा देंगे, कि अनाथ बच्चों के लिए अनाथालय खुलवा देंगे। करोड़ों रुपये कमाओगे और दस-पांच हजार लगा कर एक हनुमान जी की मड़िया बनवा दोगे। और सोचते हो स्वर्ग निश्चित!
तुमने स्वर्ग को भी दूर रख दिया है, वह भी होशियारी है। वह भी यहां स्वर्ग से बचने का उपाय है। और तुमने नरक को दूर रख दिया है, ताकि तुम्हें यह दिखाई न पड़े कि तुम जहां हो वह नरक है।
मैं चाहता हूं, तुम दोनों को पास ले आओ। नरक भी तुम्हारे वातावरण का नाम है और स्वर्ग भी। और फिर बात तुम्हारे हाथ में है। फिर बाजी तुम्हारे हाथ में है। फिर चाहो तो नरक में जीओ, कोई तुम्हें रोकता नहीं। अगर

तुम्हें नरक में ही रस आता हो... कुछ नरक के ही कीड़े होते हैं, करोगे भी क्या! गुबरीले होते हैं, गोबर के कीड़े होते हैं। उनको गोबर में ही सुख है। तो उनको तुम नाहक गोबर से निकाल कर स्वच्छ भूमि पर मत रख देना, नहीं तो वे मर जाएंगे। उनको तो गोबर में ही रस है।
तुम अगर नरक में ही जीना चाहते हो तो भी जान कर जीओ कि यही मेरा सुख है। कड़ाहों में जब तक मैं भूना न जाऊं, मुझे मजा न आएगा। फिर तुम्हारी मर्जी। तुम स्वतंत्र हो।
मनुष्य की गरिमा यही है कि वह स्वतंत्र है। चुनाव अपने हाथ है। लेकिन जान कर चुनना। और मैं यह समझता हूं कि जान कर कोई भी नरक नहीं चुन सकता है। गुबरीला भी जान ले कि यह गोबर है, तो गोबर नहीं चुन सकता है, चाहे गऊमाता का ही गोबर क्यों न हो! गुबरीले भी इतने बुद्धू नहीं होते जितने गौ-भक्त होते हैं। गुबरीला भी छोड़ भागेगा अगर उसको पता चल जाए यह गोबर है। बेचारे को पता नहीं तो जीता है। सोचता है यही जीवन की शैली है। बापदादों से चली आई है, परंपरा से चली आई है, सदियों से चली आई है। इसी में सदा रहे हैं। इसी में पैदा हुए हैं। यही दुनिया है।
गुबरीले को क्षमा किया जा सकता है। मगर तुम्हारी गौ-भक्ति क्षमा नहीं
की जा सकती। तुम आदमी हो। तुम मनुष्य हो।
मनुष्य का अर्थ होता हैः जिसके पास मनन की क्षमता है। आदमी शब्द उतना अच्छा नहीं। आदमी तो आदम से बनता है। आदम का अर्थ होता हैः मिट्टी; मिट्टी से बनाया परमात्मा ने आदमी को। मिट्टी का पुतला बनाया, फिर उसमें श्वास फूंक दी। तो एक अर्थ में सच है। शरीर के बाबत सच है। आदमी शब्द में शरीर की सूचना है कि तुम शरीर हो। मनुष्य शब्द में तुम्हारे मनन की क्षमता की घोषणा है कि तुम्हारे पास बोध है।
मनुष्य हो, थोड़ा विचार करो, थोड़ा सजग होकर अपने चारों तरफ देखो--तुमने
यह क्या जिंदगी बना रखी है? जिसमें खिन-खिन दुखिया दगधिए! जिसमें कि दग्ध हो रहे हो! और अपने हाथों से ईंधन डालते हो, अपने ही हाथों से कड़ाही बनाते हो, अपने ही हाथों से कड़ाही में तेल उंड़ेलते हो। और यह भी नहीं देखते कि तेल के कितने भाव बढ़ गए! ईंधन भी पाना मुश्किल हो गया, मगर कष्ट देने के लिए तुम सब तरह का ईंधन जुटा लेते हो। लाख-लाख उपाय करके ईंधन जुटाते हो, तेल जुटाते हो, कड़ाहे लाते हो। फिर उसी में गिरते हो।
मैंने सुना है कि रोम में एक बहुत धनी लोहार था। उसकी प्रतिष्ठा थी कि उसके द्वारा बनाई गई हथकड़ियों को कभी कोई तोड़ नहीं सका। कोई कैदी भाग नहीं सका उसकी हथकड़ियों और बेड़ियों को तोड़ कर। सारे यूरोप में उसकी ख्याति थी। वह अपनी हर हथकड़ी और बेड़ी पर दस्तखत करता था। उसके दस्तखत जिस हथकड़ी और बेड़ी पर होते, उस पर भरोसा किया जा सकता था। वह कोई भारतीय ढंग की चीजें नहीं बनाता था।
इधर मैंने सुना है कि हिमालय की चढ़ाई के लिए एक भारतीय यात्री-दल गया था, पर्वतारोही आरोहण कर रहे थे। एक आदमी उस आरोहण में बड़ा डर रहा था। कप्तान ने उससे पूछा कि तू इतना भयभीत क्यों हो रहा है? उसने कहाः मैं राज की बात कह दूं। मुझे पहाड़-वहाड़ का डर नहीं है। मैं डरता हूं इस रस्सी से जिस पर चढ़ना है, क्योंकि यह मेरे ही कारखाने में बनी है जहां मैं काम करता हूं। और मैं जानता हूं मेरे कारखाने में बनने वाली रस्सियां की हालत। यह कब टूट जाए, इसका कुछ भरोसा नहीं है। मैं पहाड़ चढ़ने से नहीं डर रहा हूं, इस रस्सी को देख कर डर रहा हूं। यह रस्सी दगा देगी। यह स्वदेशी है! ठीक भारत में बनी है। और मेरे ही कारखाने में बनी है। और किसी के कारखाने में बनी होती तो भी मुझे पता नहीं होता। मैं अपने कारखाने को जानता, कारखाने की रस्सियों को जानता।
उस लोहार की बड़ी ख्याति थी। फिर रोम पर हमला हुआ और रोम के सभी धनी लोग पकड़ लिए गए। दुश्मन ने रोम को जीत लिया। वह लोहार भी पकड़ा गया, क्योंकि वह काफी धनी था। उन सबके हाथों में हथकड़ियां डाल दीं। उन सबको दुश्मन ले चला। सौ प्रतिष्ठित नागरिक जो रोम के थे, उनको जंगल में ले जाकर जंगली जानवरों का भोजन बनवा दिया। फिंकवा दिया जंगल में। निन्यानबे तो रो रहे थे, चिल्ला रहे थे, मगर वह लोहार निश्चिंत था। पूछा किसी ने राह में उससे कि तुम बड़े

निश्चिंत मालूम हो रहे हो! उसने कहाः कोई फिकर न करो, तुम भी निश्चिंत रहो। मैं जानता हूं कि हर हथकड़ी तोड़ी जा सकती है। जिंदगी भर मैंने हथकड़ियां बनाई हैं। इसलिए फिकर मत करो। पहले मैं अपनी तोड़ लूंगा, फिर तुम्हारी तोड़ दूंगा। एक दफा इनको फेंक कर चले जाने दो, ये निश्चिंत हो जाएं कि हम फेंक आए जंगल में हथकड़ियां-बेड़ियां डाल, अब तो भाग नहीं सकते ये, अब तो इनको जंगली जानवर खाएंगे ही खाएंगे। तुम जरा इनको चला जाने दो। घबड़ाओ मत, रोने की कोई जरूरत नहीं। मैं हूं।
वे भी आश्वस्त हुए। जंगल में छोड़ कर जब दुश्मन चले गए तो उन्होंने उस लोहार से कहाः भई, अब कुछ करो। वह लोहार तो रोने लगा। उन्होंने कहाः अरे! अब तक तुम कहते थे कि मैं करके दिखा दूंगा, अब रोते क्यों हो?
उसने कहा कि रो इसलिए रहा हूं कि मैंने हथकड़ी पर गौर किया, यह तो मेरी
ही बनाई हथकड़ी है, यह टूट नहीं सकती। इस पर मेरे दस्तखत हैं। यह किसी और की बनाई होती तो जरूर तोड़ लेता। यह मेरी ही बनाई गई है। और मैं जानता हूं कि मेरी बनाई गई चीज को तोड़ने का कोई उपाय नहीं। जो टूट जाए, ऐसी मैं चीज नहीं बनाता। आज पता चला कि अपनी ही हथकड़ियों में एक दिन मर जाना होगा। कभी सोचा न था कि खुद ही ढालता हूं और अपनी मौत ढाल रहा हूं।
मैंने जब यह कहानी पढ़ी तो मुझे लगा यह तो सबकी कहानी है, यह तो हर आदमी
की कहानी है। तुम्हारे हाथों में जो हथकड़ियां हैं, पैरों में जो बेड़ियां हैं, वे किसने ढाली हैं? वे तुमने ढाली हैं। जरा गौर से देखो, तुम उन पर अपने हस्ताक्षर पाओगे। यह नरक तुम्हारा बनाया हुआ है।
लेकिन इतना मैं तुमसे कह सकता हूं कि वह लोहार तोड़ सका या नहीं तोड़ सका, ये हथकड़ियां ऐसी हैं जो तुमने बनाई हैं, निश्चिंत तुम इन्हें तोड़ सकते हो। मैंने तोड़ी हैं। अपनी ही बनाई थीं। तो मैं जानता हूं कि तुम भी तोड़ सकते हो। तुम्हारी बनाई हैं। बनाने वाले से बनाई गई चीज बड़ी कभी नहीं होती। कितनी ही मजबूत हो, जिसने इसे बनाया है, वह इसे बिगाड़ भी सकता है, मिटा भी सकता है। यह हस्ताक्षर तुम पोंछ भी दे सकते हो। और ये हथकड़ियां लोहे की नहीं हैं, सिर्फ कल्पना की हैं, विचारों की हैं, इच्छाओं की हैं, वासनाओं की हैं। और तब स्वर्ग भी फूट पड़ सकता है--झरना जैसे फूट पड़े! खिन-खिन दुखिया दगधिए, विरह विथा तन पीर।
तुमने जाना ही नहीं कुछ और। व्यथा जानी है। और क्या है व्यथा जीवन की? क्या है व्यथा का मूल आधार? कि हम अपने ही भीतर के परमात्मा से टूट गए हैं, अपने से ही छूट गए हैं। जैसे जड़ें उखड़ जाएं किसी वृक्ष की, ऐसे हम भूमि से उखड़ गए हैं। सूख रहे हैं, कुम्हला रहे हैं। फूलते नहीं, फलते नहीं। पत्ते झरे जा रहे हैं। और फिर भी यह फिकर नहीं करते कि गौर कर लें, हमारी जड़ें कहीं उखड़ तो नहीं गईं भूमि से? मगर तुम तो और उखाड़ने में लगे हो।
अहंकार और क्या है? अहंकार इस बात की घोषणा है कि मैं अलग हूं, मैं भिन्न हूं, मैं इस पूरे अस्तित्व से भिन्न हूं। अलग-थलग खड़े होने की चेष्टा है अहंकार। अहंकार का अर्थ है अपनी जड़ों को तोड़ लेना अस्तित्व से और निर-अहंकार का अर्थ है अपनी जड़ों को फिर जोड़ लेना अस्तित्व से। अहंकार नरक पैदा करता है और निर-अहंकारिता में स्वर्ग की सुगंध आ जाती है। निर-अहंकारिता से गीत बहते हैं स्वर्ग के और अहंकार से सिर्फ दुर्गंध निकलती है--लाशों की सड़ी दुर्गंध! अहंकार इस जगत में सबसे बड़ा असत्य है।
मगर बड़े मजेदार लोग हैं! वे जगत को माया कहते हैं। और "मैं हूं," इसको जकड़ कर पकड़ते हैं। सारा जगत माया है, यह मानने को तैयार हैं वे, लेकिन मैं? मैं सत्य हूं! जब कहते हैं वे ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या--तो साथ में वे यह भी कहते हैं--अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! मैं सत्य हूं और सारा जगत असत्य है!
बात उलटी है। मैं असत्य है और सब सत्य है। मैं से बड़ी कोई झूठ नहीं। फिर मैं से और झूठें पैदा होती हैं, जैसे मृत्यु। जिसके पास मैं का भाव है उसको मृत्यु का भय सताएगा, क्योंकि मैं को तो मरना ही होगा। यह मैं-भाव जी नहीं सकता। यह झूठ है, यह तो गिरेगा ही, टूटेगा ही। यह तो कितनी बार गिरता है और तुम फिर इसे उठा-उठा कर खड़ा कर लेते हो। बैसाखियां दिए जाते हो इसको, नई नई बैसाखियां खरीदे जाते हो। इसको नये-नये सहारे लगाए चले जाते हो।

इससे भारी मोह है तुम्हारा। यह सब तरह से तुम्हारे जीवन में व्यथा लाता है।
विरह विथा! विरह किससे हो गया है? अपने से ही विरह हो गया है। अपने स्वभाव से विरह हो गया है। अपने स्वरूप से टूट गए हो।
ध्यान रहे, वह जो तुम्हारे भीतर सत्य है वहां कोई मैं भाव नहीं है। वह
तो मैं से बिल्कुल शून्य है। इसलिए मैं बुद्ध से ज्यादा राजी हूं, बजाय उपनिषदों के। उपनिषदों की भाषा खतरनाक है, धोखे में डाल सकती है। अहं ब्रह्मास्मि--यह हर अहंकारी को पसंद आएगा। मैं ब्रह्म हूं--कौन नहीं चाहेगा! दिल बाग-बाग हो जाता है--अहा, मैं ब्रह्म हूं! यही तो हम चाहते हैं। यही तो हमारी आकांक्षा है।
बुद्ध से हम बहुत नाराज हुए। आज तक हम बुद्ध का क्षमा नहीं कर पाए। कसूर क्या था इस आदमी का? इस आदमी का कसूर था कि इसने तुम्हारे अहंकार पर जितनी चोट की, दुनिया में किसी आदमी ने कभी नहीं की थी। बुद्ध ने कहाः "अनत्ता, अनात्मा।" बुद्ध ने कहाः कोई आत्मा नहीं तुम्हारे भीतर। क्योंकि आत्मा शब्द के पीछे मैं बच जाता है। आत्मा यानी मैं। आत्मा सुंदर कवच बन जाती है मैं को बचाने की। बुद्ध ने कहाः कोई आत्मा नहीं है, ताकि मैं की बिल्कुल ही संभावना न रह जाए। क्योंकि बुद्ध जानते हैं कि जो है वह तो है। आत्मा शब्द के कारण अहंकार बच जाएगा, इसकी आड़ में अहंकार बच जाएगा। और जब हम किन्हीं गलत शब्दों को धार्मिक रंग दे देते हैं तो फिर बचने की बहुत सुविधा हो जाती है। और हम हर चीज को धार्मिक रंग देने में कुशल हो गए हैं। जैसे जहर की गोली भी किसी को खिलानी हो तो हम उस पर शक्कर की एक पर्त चढ़ा देते हैं, चासनी चढ़ा देते हैं। शक्कर के स्वाद में आदमी जहर को गटक जाता है। ऐसे ही हमने हर जहर को धर्म की चासनी चढ़ा दी है। अहंकार तो जहर है, लेकिन उसको आत्मा कहो--बस प्यारा हो गया, मीठा हो गया, स्वादिष्ट हो गया! अब गटक जाओ मजे से। अब तुम्हें कोई अड़चन न आएगी, कोई रुकावट भी न आएगी, कोई यह भी न कह सकेगा कि यह तुम क्या कर रहे हो। इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि तुम्हारे तथाकथित महात्मा और संत जितने अहंकारी होते हैं उतना कोई और नहीं। राजनेताओं को भी मात दे देते हैं, सम्राटों को भी मात दे देते हैं। तुम्हारे तथाकथित ब्राह्मण, पंडित जितने अहंकारी होते हैं उतना कोई और नहीं।
यह देश तो अच्छी तरह परिचित है। पांच हजार साल हो गए, इस देश पर ब्राह्मण अपने अहंकार के कारण छाती पर चढ़ा हुआ है। और ब्राह्मण ने शास्त्र रचे हैं, उसके अहंकार से निकले शास्त्र हैं। मनुस्मृति जैसा शास्त्र लिखा है, जिसको हर होली पर जलाया जाना चाहिए। रावण को जला कर क्या करोगे? रावण तो कभी का मर चुका, अब क्यों जला रहे हो? क्या खाक जला रहे हो! पुतला बनाओ और जलाओ! अपना ही पुतला बनाते हो और जलाते हो, नाहक मेहनत कर रहे हो! अब रावण को जलाना बंद करो। रावण की जगह मनुस्मृति जलाओ, क्योंकि मनुस्मृति ब्राह्मण के अहंकार की उदघोषणा है, हिंदू के अहंकार की उदघोषणा है। हिंदू की सारी मूढ़ता मनुस्मृति पर आधारित है।
मनुस्मृति कहती है कि ब्राह्मण सर्वोच्च है। ब्राह्मण मुख से पैदा हुआ। क्षत्रिय बाहुओं से पैदा हुए। वैश्य जंघाओं से पैदा हुए। शूद्र पैरों से पैदा हुए। इसलिए शूद्रों की वही गति है जो जूतियों की। इससे ज्यादा उनकी कोई हैसियत नहीं है। और वैश्य भी कुछ बहुत ऊंचा नहीं, क्योंकि नाभि के नीचे का जो शरीर है वह निम्न है। इसलिए वैश्य शूद्र से जरा ही ऊंचा है, ख्याल रखना। इस भ्रांति में मत पड़ना कि वैश्य कुछ बहुत ऊंचा है। मनुस्मृति के हिसाब से।
मनुस्मृति की उदघोषणा के अनुसार वैश्य भी बस शूद्र से इंच भर ही बड़ा है, जंघाओं से पैदा होता है। शरीर को भी बांट दिया हिस्सों में। जो अविभाज्य है उसको भी विभाजित कर दिया। जो-जो अंग कमर के नीचे हैं वे निम्न हैं और जो कमर के ऊपर हैं वे उच्च। क्षत्रिय बाहुओं से पैदा हुए। वे जरा ऊंचे हैं वैश्यों से। मगर ब्राह्मण मुख से पैदा हुए--ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए। वैश्य चाहे तो शूद्र की लड़की से विवाह कर सकता है, शूद्र नहीं कर सकता। क्षत्रिय चाहे तो वैश्य और शूद्र की लड़की से विवाह कर सकता है,

लेकिन वैश्य क्षत्रिय की लड़की से विवाह नहीं कर सकता। और ब्राह्मण चाहे तो किसी की लड़की से विवाह करे, ब्राह्मण की लड़की से कोई विवाह नहीं कर सकता। सौ शूद्र भी मार डालो तो कोई पाप नहीं और अगर एक ब्राह्मण को भी मार डालो तो जन्मों-जन्मों तक नरकों में सड़ोगे। ब्राह्मण ही लिखेंगे शास्त्र तो स्वभावतः अपने अहंकार की प्रतिष्ठा करेंगे, अपने अहंकार को बचाएंगे। और बुद्ध ने कहा कि ब्राह्मण कोई जन्म से नहीं होता, न कहीं कोई ब्रह्मा है जिसके मुंह से ब्राह्मण पैदा हुए। यह सब ब्राह्मणों की ईजाद, ये सब पंडित-पुरोहितों की चालबाजियां, ये बेईमानियां, ये शोषण के ढंग। शूद्र को वेद सुनने का भी अधिकार नहीं। एक शूद्र के कान में राम तक ने सीसा पिघलवा कर डलवा दिया, क्योंकि यह खबर दी गई उनको कि उस शूद्र ने किसी ब्राह्मण के द्वारा वेद पढ़ा जा रहा था उसको छिप कर सुन लिया है। और राम को तुम मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हो, संकोच भी नहीं, शर्म भी नहीं! तो फिर अब जो शूद्र जलाए जाते हैं गांवों में, वह सब धार्मिक कृत्य है! राम तक कर सकते हैं, तो साधारण-जनों का क्या कहना!
स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं। स्त्रियों को कोई मनुष्य होने का हक नहीं। स्त्रियां वस्तुएं जैसी हैं। स्त्री को तो पति के साथ मर जाना चाहिए, सती हो जाना चाहिए। यही उसका एक मात्र उपयोग है--पति के लिए जीए, पति के लिए मरे। पुरुषों ने शास्त्र लिखे तो पुरुषों ने अपने अहंकार की रक्षा कर ली। स्त्री के अहंकार को बचाने वाला तो कोई शास्त्र है नहीं। महात्माओं ने शास्त्र लिखे तो अपने अहंकार की व्यवस्था कर ली उन्होंने कि महात्माओं की सेवा करो, इसमें पुण्य है। महात्माओं के पैर दबाओ, इसमें पुण्य है। इससे स्वर्ग मिलेगा।
बुद्ध ने इस सबकी जड़ काट दी। कहाः ब्राह्मण होता है कोई ब्रह्म को जानने से। और ब्रह्म है तुम्हारा स्वभाव। मैं-भाव नहीं--स्वभाव। और स्वभाव का पता तब चलता है जब मैं बिल्कुल मिट जाता है। आत्मा को भी मत अपने पकड़ कर रखना, नहीं तो उतने में भी अहंकार बच रहेगा। बुद्ध को हम क्षमा नहीं कर पाए, क्योंकि बुद्ध ने बाहर के ईश्वर को भी इनकार कर दिया और भीतर की आत्मा को भी इनकार कर दिया। अहंकार को कहीं भी बचने की कोई जगह न दी, कोई शरण न दी। अहंकार को जिस तरह से बुद्ध ने काटा, पृथ्वी पर किसी व्यक्ति ने कभी नहीं काटा था। इसलिए बुद्ध की जो अनुकंपा है वह बेजोड़ है, उसका कोई जवाब नहीं। बुद्ध बस अपने उदाहरण स्वयं हैं।
लेकिन हमने उखाड़ फेंका बुद्ध को इस देश से। यह धार्मिक देश है! धार्मिक नहीं है, अहंकारी है। इसलिए उखाड़ फेंका बुद्ध को, क्योंकि बुद्ध ने हमारे अहंकार पर एक ऐसी चोटें कीं कि हम कैसे बरदाश्त करते। हमने बदला लिया।
अहंकार का अर्थ हैः मैं अलग हूं अस्तित्व से। अस्तित्व तो माया है, मैं सत्य हूं! ये वृक्ष, ये पशु-पक्षी, ये आकाश, ये चांद-तारे--ये सब माया हैं, मैं सत्य हूं। और मजा यह है कि ये सब सत्य हैं और यह मैं माया है। लेकिन मैं को माया कहने में हमारे प्राण छटपटाते हैं। हालांकि इस मैं के कारण ही हम दुख झेल रहे हैं। हमारी मूढ़ता बड़ी सघन है! हम यह भी नहीं देखते कि हमारे दुख का कारण क्या है।
तुमने कभी ख्याल किया कि "मैं" ने कितना दुख दिया है तुम्हें! मैं-भाव
ने सिवाय घावों के और क्या दिया है, उसकी भेंट और क्या है? मैं एक घाव है, जो जरा सा छू दो तो दुखता है। जब तुम्हारा कोई अपमान कर देता है तो कौन सी चीज दुखती है तुम्हारे भीतर? क्या कोई तुम्हारा अपमान करता है इसलिए पीड़ा होती है? इससे क्या पीड़ा होगी? उसने अपनी जबान खराब की, तुम्हारा क्या बिगड़ा? उसकी मौज, उसकी जबान है। जैसा चलाए चलाए। उलटी चलाए, सीधी चलाए-- उसकी जबान है। भजन गाए, गाली बके--उसकी जबान है, तुम्हारा क्या बनता-बिगड़ता है? तुमसे क्या लेना-देना है? अगर अहंकार न हो तो तुम्हें दया आएगी उस पर। मगर अगर अहंकार है तो छिद जाएगी तलवार की तरह गाली, बदला लेने को आतुर हो जाओगे। उसको जड़-मूल से नष्ट करने के लिए आबद्ध हो जाओगे। अहंकार दुखता है। अहंकार की ही आकांक्षा है कि धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो। अहंकार दौड़ाता है। और धन, पद, प्रतिष्ठा की दौड़ में सिवाय दुख के और कुछ भी हाथ

लगता नहीं। इस जगत में किसको सफलता मिली है। असफलता ही असफलता है। लेकिन असफल होता है अहंकार। हम देखते नहीं, हम गौर नहीं करते कि कौन असफल हो रहा है। हम जगत को गाली देने लगते हैं कि इस संसार का ढंग ही गलत है, यह संसार में असफलता ही असफलता है। असफलता तुम्हारे अहंकार के कारण है, मैं तो कोई असफलता नहीं देखता। मैं तो इस जगत में आनंद ही आनंद देखता हूं। मैं तो यहां चारों तरफ उत्सव देखता हूं। मैं तो एक पल भी अनुभव नहीं करता कि कहीं कोई असफलता है, कि कहीं कोई विषाद है, कि कहीं कोई संताप है।
लेकिन अहंकार है तो फिर सब विषाद ही विषाद है। जो आदमी तुम्हें रोज नमस्कार करता था, आज बिना नमस्कार किए निकल जाए, बस, गाली भी नहीं दी उसने, सिर्फ बिना नमस्कार किए निकल गया--और तुम्हारा चित्त उद्विग्न हो उठा! जरा गौर करो, कौन तुम्हारे जीवन में दुख पैदा कर रहा है? लेकिन तुम बड़े होशियार हो। उसको तो नहीं देखते जो दुख पैदा कर रहा है, और-और तरकीबें खोजते हो। और तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हारी तरकीबों में समर्थन देते हैं। वे कहते हैं, पिछले जन्म में कोई पाप किया होगा, उसके कारण दुख झेल रहे हो। बंद करो यह बकवास! पिछले जन्म में तुमने जो किया होगा, पिछले जन्म में भोग लिया होगा, अब क्या भोगना है? जगत में सब चीजें नगद हैं, इतनी उधार थोड़े ही। आग में हाथ अभी डालोगे, अगले जन्म में जलोगे? अरे अभी जल जाओगे। पिछले जन्म में कुछ किया होगा, पिछले जन्म में निपट-सुलझ गया होगा। हर जन्म में हिसाब-किताब हो जाता है, वहीं हो जाता है। निपटारा तत्क्षण हो जाता है। जगत में उधारी थोड़े ही चलती है।
एक भिखमंगा भीख मांग रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन के सामने उसने अपना पात्र बढ़ा दिया बीच बाजार में। दे तो मुश्किल, न दे तो मुश्किल। दे तो मुश्किल, क्योंकि देना चाहता नहीं, फिर पीछे पछतावा होगा कि लूट लिया उस दुष्ट ने बीच बाजार में भिक्षापात्र फैला कर! लेकिन न दे तो मुश्किल, कि लोग क्या कहेंगे, क्या कंजूस! भिखारी भी हिसाब रखते हैं कि कहां भिक्षापात्र... । ऐसी जगह भिक्षा मांगने खड़े हो जाते हैं जहां चार आदमियों में बदनामी हो जाए अगर पैसे न दो। लोग कहने लगे कि अरे क्या महा कंजूस! तुमसे दो पैसे न दिए गए! तो अपनी इज्जत भी बचानी है। तुम देखते हो, अहंकार कैसी दिक्कत में डाल देता है! इज्जत भी बचानी है--मतलब अहंकार भी बचाना है, बाजार में साख भी रखनी है। और धन का मोह भी है, क्योंकि धन है तो अहंकार है। जेब गरम है तो अहंकार में कुछ वजन होता है। जेब खाली है तो क्या खाक वजन होगा! कौन पूछता है जिसके पास धन नहीं है उसे! तो धन को भी बचाना है, प्रतिष्ठा भी बचानी है। तरकीब निकालनी पड़ती है फिर।
मुल्ला ने कहा कि भई आज तो मैं कुछ लिए नहीं हूं, जेब खाली है, कल लेकर आऊंगा, तब दे दूंगा। तो उस भिखारी ने कहाः जो भी कुछ हो दे दो भैया, क्योंकि इसी तरह उधारी करते-करते बहुत उधारी हो गई। जो देखो वही कल देता है, फिर कल पता ही नहीं चलता। ऐसी करोड़ों की उधारी हो गई है मेरी, अब और उधार नहीं कर सकता। क्या मेरा धंधा बिल्कुल डुबाना है?
इस जगत में उधारी नहीं चलती। यहां सब नगद मामला है। धर्म भी नगद है, उधार नहीं। यहां तुम प्रेम दोगे, अभी प्रेम बरसेगा। और यहां तुम पीड़ा दोगे, अभी पीड़ा आएगी। अभी दीया बुझाओगे, अभी अंधेरा हो जाएगा। और अभी दीया जलाओगे, अभी उजाला हो जाएगा, कि अगले जन्म में? इतनी देर?
लेकिन लोग होशियार हैं। उन्होंने कहावतें खोज रखी हैं। कहते हैंः देर है, अंधेर नहीं। मगर देर ही तो अंधेर है। और क्या अंधेर होगा? देर भी नहीं है--मैं तुमसे कहता हूं--अंधेर भी नहीं है। सब नगद है। मगर अहंकार को नहीं देखना है तो कहीं भी टालना है। पिछले जन्म में किए थे कोई कर्म, उनका दुख भोग रहे हैं; या भाग्य में लिखा है, किस्मत में लिखा है, हम करें भी तो क्या कर सकते हैं? न तुम्हारे भाग्य में कुछ लिखा है। किसी के भाग्य में कुछ नहीं लिखा है। कोई परमात्मा एक-एक की खोपड़ी में लिख कर नहीं भेजता, जैसा तुम सोचते हो कि विधाता बैठा है और विधि लिखता जाता है, हरेक की खोपड़ी में लिख देता है यह-यह होगा। कोई विधाता नहीं--तुम विधाता हो! कोरा कागज तुम्हारे हाथ में देता है। कोरा चैक, फिर तुम जो चाहो लिख लेना। तुम्हारे

ऊपर सब निर्भर है। यह सब तुम्हारी लिखावट है जो तुम भोग रहे हो। कोई किस्मत नहीं। कोई किस्मत नहीं है! कोई भाग्य नहीं है।
मगर लोग तरकीबें ईजाद कर लेते हैं। हर चीज में ईजाद कर लेते हैं।
मैंने सुना है कि स्वामी मटकानाथ ब्रह्मचारी को सात का अंक हमेशा शुभ सिद्ध हुआ था। वे सातवें महीने अर्थात जुलाई की सात तारीख को सन उन्नीस सौ सात में पैदा हुए थे। और अपने बाप की सातवीं संतान थे। सात साल की उम्र में ही उनके नाम सात लाख की लाटरी खुली थी, जिससे बड़े होकर उन्होंने सात मंजिल ऊंची इमारत बनवाई। यद्यपि मैट्रिक की परीक्षा में सातवीं दफे उत्तीर्ण हुए, किन्तु जिंदगी में सात बार ब्रह्मचर्य का व्रत लेने के कारण उनका नाम तीनों लोकों की चारों दिशाओं में प्रख्यात हो उठा। सन उन्नीस सौ सतत्तर की बात है, एक बड़ी अंतर्राष्ट्रीय घोड़ों की रेस में अपने भाग्य को आजमाना चाहा। अपनी सारी धन-संपत्ति बेच कर उन्होंने सात नंबर के घोड़े पर लगा दी और जैसा कि अंक-विज्ञान के अनुसार अपेक्षित था, वैसा चमत्कार घटित हुआ। जानते हैं क्या हुआ! वह घोड़ा सातवें नंबर पर आया।
क्या-क्या लोग हिसाब लगा रहे हैं। अरे हाथ में लकीरों के सिवाय कुछ भी नहीं। मगर लकीरों को पढ़वा रहे हैं! और जब तुम मूढ़ता करोगे तो कोई न कोई तुम्हारा शोषण करने वाला मिल जाएगा, कोई न कोई तुम्हारा भाग्य बताने वाला मिल जाएगा। हस्तरेखा विज्ञानी बैठे हुए हैं। जन्म-कुंडली बना रहे हैं लोग। और जन्म-कुंडलियां मिला-मिला कर ये शादियां की जा रही हैं। और शादियों की गति देखते हो? फिर भी तुम्हें अक्ल नहीं आती! इतनी जन्म-कुंडली मिलाते हो और किसी की कुंडली मिलती हुई मालूम होती नहीं।
तुमने कभी पति-पत्नी देखे जो कलह न कर रहे हों, जो झगड़ न रहे हों, जो एक-दूसरे की जान के पीछे न पड़े हों? मैंने तो नहीं देखे। मैं तो न मालूम कितने परिवारों से परिचित हूं और लाखों लोगों से संबंधित हुआ हूं और लाखों लोगों ने अपनी व्यथा मुझसे कही है--स्त्रियों ने, पुरुषों ने। सबकी पीड़ा वही है। पति पत्नी के पीछे पड़ा है, पत्नी पति के पीछे पड़ी है। और बड़े-बड़े ज्योतिषियों से जन्म-कुंडली मिलवाई थी। और मजा यह है कि जिस ज्योतिषी से तुमने जन्म-कुंडली मिलवाई, जरा उसकी घर की हालत भी तो देख लेते। अपनी मिला न पाया और तुम्हारी मिला दी!
एक चीज को तुम नहीं देखना चाहते हो, उसके लिए तुमने कितना धुआं पैदा
कर लिया है। एक चीज सीधी-सादी, कि अहंकार तुम्हारे सारे दुख की जड़ है। अहंकार तुम्हें तोड़े हुए है परमात्मा से, स्वभाव से, अस्तित्व से। और तुम दुख पा रहे हो। मगर ऐसी मूढ़ता है, ऐसी बेहोशी है कि कोई हिसाब नहीं।
सरदार बिचित्तर सिंह जिस होटल की तीसरी मंजिल में ठहरे थे उस होटल में आग लग गई। जब आग लगी उस समय सरदार जी स्नान कर रहे थे। बाथरूम से निकल कर सीधे बालकनी की ओर भागे--एकमात्र कच्छा पहने हुए। नीचे की मंजिलों में आग काफी फैल चुकी थी, अतः सीढ़ियों से नीचे उतरना संभव नहीं था। फायरब्रिगेड वालों ने नीचे एक स्प्रिंग वाला मोटा स्पंज का गद्दा बिछा दिया था और वे चिल्ला रहे थे कि ऐ सरदार जी, गद्दे के ऊपर कूद जाओ। बिचित्तर सिंह कूद गए, मगर चमत्कार कि स्पंज और स्प्रिगों ने उन्हें ऐसा उछाला कि वे जाकर फिर तीसरी मंजिल की बालकनी पर जा बैठे। दुबारा फिर कूदे, फिर वैसा ही हुआ। तीसरी बार कूदने पर जब वे पुनः तीसरी मंजिल पर पहुंच गए तो उन्हें एक तरकीब सूझी। बाथरूम में जाकर वे जल्दी से दाढ़ी में लगाने वाली और मूंछों पर ताव देने वाली गोंद उठा लाए और अपने कच्छे पर लगाने लगे, ताकि गद्दे से वे जाकर चिपक जाएं। उनकी इस बुद्धिमानी को देख नीचे खड़े लोग और फायरब्रिगेड वाले बहुत खुश हुए और तालियां बजाने लगे। बिचित्तर सिंह ने जोर से "बोले सो निहाल सत श्री अकाल" कह कर फिर छलांग लगा दी। अगले क्षण का दृश्य देखने लायक था--जब कच्छा तो गद्दे में चिपका छूट गया और नंग-धड़ंग सरदार जी उछल कर वापस तीसरी मंजिल पर खड़े हो गए।
मूढ़ता ऐसी है कि तुम उपाय भी खोजोगे तो तुम ही खोजोगे न! लोग अहंकार से छूटने के उपाय भी खोजते हैं, विनम्र होने की चेष्टा करते हैं। मगर वही मूढ़ता। अहंकार विनम्रता के पीछे से आकर खड़ा हो जाता है। कच्छा तो चिपका रह जाता है, सरदार जी नंग-धड़ंग खड़े हैं फिर वापस तीसरी मंजिल पर! वे लाख बोलें

"बोले से निहाल सत श्री अकाल" मगर कौन बोल रहा है इस पर निर्भर करता है। उनके हाल तो बेहाल ही रहेंगे, निहाल-विहाल नहीं होने वाले। कोई सत श्री अकाल बोलने से निहाल हुआ है? अरे निहाल कोई होता है बुद्धिमानी से। बोले सो निहाल--ऐसे कहीं कोई निहाल होता है? इतना आसान मामला है?
लोग विनम्रता लाद लेते हैं अपने ऊपर और भीतर वही अहंकार नंग-धड़ंग खड़ा हुआ है। कच्छा भी नहीं! तुम देखो विनम्र आदमियों को, जो कहते फिरते हैं कि मैं तो आपके पैर की धूल हूं।
मैं जबलपुर में पहली दफा जब गया, तो मेरे पड़ोस में एक सज्जन रहते थे-- हरिदादा। उनको पड़ोस के लोग हरिदादा कहते थे, क्योंकि उनको रहीम के दोहे बड़े याद थे और हर चीज में वे दोहा जड़ देते रहीम का। सो उनकी ख्याति एक धार्मिक आदमी की तरह थी। और हरेक को उपदेश देते थे। जब मैं पहुंचा तो स्वभावतः उन्होंने मुझे भी उपदेश देने की कोशिश की। और उनको माना जाता था वे बड़े विनम्र हैं। और वे विनम्रता की बड़ी बातें करते थे। लेकिन उन्हें मेरे जैसा आदमी पहले मिला नहीं होगा। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं तो आपके पैर की धूल हूं। मैंने कहाः वह तो मुझे दिखाई ही पड़ रहा है। आप बिल्कुल पैर की धूल हैं! आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं।
वे एकदम नाराज हो गए कि आप क्या बात कहते हैं!
मैंने कहाः मैं तो वही कह रहा हूं जो आपने कहा। मैंने तो एक शब्द भी नहीं जोड़ा। आपने ही कहा, आपने ही शुरू किया। मैंने तो सिर्फ स्वीकृति दी कि आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। मैं देख ही रहा हूं, आपका चेहरा बिल्कुल धूल है! आपकी समझ बिल्कुल साफ है, आपने ठीक पहचाना।

वे तो ऐसे नाराज हुए कि फिर दुबारा मुझसे बात न करें। रास्ते में मिल जाएं, मैं जयराम जी करूं तो जवाब न दें। मैं भी यूं छोड़ देने वाला नहीं था। मुंह फेर कर निकलना चाहें तो मैं उनके चारों तरफ लगाऊं कि नमस्कार, कि आप उस दिन बिल्कुल ठीक कह रहे थे, आप बिल्कुल पैर की धूल हैं!
अहंकार क्या-क्या भाषाएं सीख लेता है! वे भूल गए सब चौपाइयां। सब चौपाइयां चौपाए होकर भाग खड़ी हुईं। फिर रहीम-वहीम के दोहे उन्हें याद न रहे। नहीं तो वे बड़े दोहे दोहराते थे। और मोहल्ले के लोग भी कहने लगे कि मामला क्या है। मुझसे पूछने लगे।
एक डाक्टर दत्ता सामने ही रहते थे, वे मुझसे पूछने लगे कि आपने कर क्या दिया? जब से आप आए हो, हरिदादा बचे-बचे फिरते हैं। और आपका तो नाम लेते से ही एकदम गरम हो जाते हैं, हमने इनको कभी गरम नहीं देखा।
मैंने कहाः वे गरम इसलिए हो जाते हैं कि मैंने उनकी बात मान ली, आप लोगों ने मानी नहीं। वे कहते थे हम आपके पैर की धूल हैं, आप कहते थे कि नहीं-नहीं, अरे हरिदादा ऐसा कहीं हो सकता है! आप तो सिरताज हैं! आप तो बड़े धार्मिक साधु पुरुष हैं! वे इसलिए तो बेचारे कहते थे कि आप कहो साधु पुरुष हैं। और मैंने उनकी मान ली, इससे मुझसे नाराज हैं। इससे मेरी जयराम जी का भी उत्तर नहीं देते। मगर मैं भी कुछ छोड़ देने वाला नहीं हूं। मैं दस-पांच दफा दिन में मिल ही जाता हूं उनको। नहीं अगर मिल पाते तो दरवाजे पर दस्तक देता हूं कि हरिदादा जयराम जी! वे मुझे देख कर ही एकदम गरमा जाते हैं। और गरमाने का कुल कारण इतना है कि मैंने वही स्वीकार कर लिया जो वे कहते हैं। पांच-सात साल उनके पड़ोस में रहा, उनका सारा संतत्व खराब हो गया। क्योंकि जो-जो बातें वे कह रहे थे, सब उधार थीं, सब बासी थीं। उनमें कहीं कोई अर्थ न था। मगर इस तरह के तुम्हें हर गांव, हर देहात में, हर नगर में लोग मिलेंगे--जिन्होंने अपने अहंकार पर एक पतली सी झीनी चादर विनम्रता की ओढ़ा दी है। तुम जरा चादर खींच कर देखो; कुछ बहुत मोटी भी नहीं है, बिल्कुल यूं समझो कि ढाका की मलमल है। उसके भीतर से अहंकार बिल्कुल साफ झलक रहा है। अहंकार यह नया आभूषण बना लेता है। अहंकार की चालें बड़ी गहरी हैं। अहंकार बहुत सूक्ष्म है।
और अहंकार ही सारी विरह-विथा है। इसी से तुम्हारे तन-मन में पीड़ा है।
इस मूल कारण को समझो।
घड़ी पलक में बिनसिए!

यह एक क्षण में मर जाएगा। तुम इसे सहारा न दो, यह अभी मर जाएगा। और तुम सहारा भी देते रहो तो मौत आएगी, तब इसे गिरा देना।
घड़ी पलक में बिनसिए, ज्यूं मछली बिन नीर।
जैसे मछली मर जाती है बिना नीर के, पानी से मछली को खींच कर कोई डाल दे
तट पर तो मरने लगी--ऐसे ही तुमने खुद ही अपने को खींच लिया है परमात्मा से, स्वभाव से, धर्म से। अब तुम तड़प रहे हो, तड़पे जा रहे हो और तड़फने के लिए न मालूम क्या-क्या तुम बहाने खोज रहे हो, तर्क खोज रहे हो! मगर सीधी सी बात नहीं देखते कि नदी के बाहर पड़ गए हो! खुद ही मछली उछल कर बाहर आ गई है, कोई मछुए ने भी नहीं खींचा है तुम्हें। यह तुम्हारी ही करतूत है कि तुम्हीं उछल कर तट की रेत पर पड़ गए हो। अब जल-भुन रहे हो। धूप घनी होती जा रही है, तेज होती जा रही है, आग बरस रही है। और तुम तड़पे जा रहे हो, भुने जा रहे हो। मगर तुम बहाने खोज रहे हो, मूल कारण नहीं देखते कि वापस कूद जाओ नदी में, फिर से कूद जाओ नदी में। जब नदी से कूद कर तट पर आ गए तो तट से कूद कर नदी में भी जा सकते हो। जब निर-अहंकार से अहंकार में आ गए तो अहंकार से फिर निर-अहंकार में जा सकते हो। सिर्फ समझ चाहिए, प्रज्ञा चाहिए, बोध चाहिए, जागृति चाहिए, होश चाहिए। उस होश की प्रक्रिया को ही मैं ध्यान कहता हूं। ध्यान तुम्हारे अहंकार को गला देता है; बता देता है कि झूठ है अहंकार।
और जिस दिन तुमने जाना कि अहंकार झूठ है, जिस दिन तुमने जाना मैं नहीं हूं-- उसी दिन परमात्मा है और उसी दिन आनंद के द्वार खुल जाते हैं। अनंत द्वार! वर्षा हो जाती है फूलों की--अमृत के फूलों की! नहा जाते हो तुम--एक नई रोशनी में। उस जीवन का नाम स्वर्ग है।
"मैं" के आस-पास जो अंधेरा घेर लेता है, वह नरक। "मैं नहीं हूं," इसके आस-पास जो आभा उभर आती है, वही स्वर्ग।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपने कहा है कि बारह वर्ष बाद जब बुद्ध घर लौटे तो उन्हें लगा कि उन्होंने जो पाया उसे वे अपने प्रियजनों को पहले बांटें। आखिर हम सब आपके संन्यासी भी यही तो चाहते हैं कि आपके पास रह कर हमें
जो भी मिला है वह उन्हें भी मिले जो कि हमारे अब तक साथी रहे हैं।
लेकिन ओशो, ये प्रियजन ही उसे लेने में इतने क्यों सकुचाते हैं, भयभीत होते हैं, क्रोधित होते हैं?

अजित सरस्वती! वही अहंकार बाधा बनता है--खासकर प्रियजनों को और भी, क्योंकि तुम्हें उन्होंने एक अवस्था में जाना है--दुख की अवस्था में। तुम्हारे उनसे जो संबंध हुए थे, वे तब हुए थे जब तुम्हारे भीतर भी दुख था, उनके भीतर भी दुख था। तब उन संबंधों में एक तालमेल था। एक सा विषाद था। एक ही तरह की अवस्था थी। फिर तुम्हारे जीवन में क्रांति हो गई। इस क्रांति को वे कैसे स्वीकार करें कि तुम उनसे आगे निकल गए? इससे उनके अहंकार को चोट पड़ती है। वे कैसे मानें कि तुम जान गए और हम न जान पाए! वे कैसे स्वीकार करें कि तुमने इतना बोध उपलब्ध किया और हम बुद्धू के बुद्धू रहे! नहीं, उनका अहंकार कहता है जरूर तुम धोखे में हो! अहंकार का यही तो गणित है कि मानता नहीं कि मैं धोखे में हूं। हमेशा टालता है धोखे को किसी और पर। अजित सरस्वती, तुम अपने प्रियजनों को बांटने जाओगे तो सबसे ज्यादा अड़चन खड़ी होगी, सबसे ज्यादा मुश्किल खड़ी होगी। वे स्वीकार नहीं कर सकेंगे यह बात कि तुम, अरे हम तुम्हें भलीभांति जानते हैं! अब तुम्हारी पत्नी तुम्हें भलीभांति जानती है। तुम्हारे सारे अज्ञान से परिचित है--अज्ञान में ही तो तुमने उसे पत्नी बनाया था। तुम्हारे काम को, तुम्हारी वासना को, तुम्हारे मोह को, तुम्हारे लोभ को, सबको जानती है। आज कैसे एकदम स्वीकार कर ले कि तुम उस सबके पार हो गए, तुम पहुंच गए शिखर पर ज्योति के! तुम्हें खींच कर वापस गड्ढे में गिरा कर बताएगी। यह उसके अहंकार को चुनौती है। वह तुम्हें इस तरह से परेशान करेगी और तुम क्रुद्ध हो जाओ तो वह प्रसन्न होगी कि लो देखो, तुम तो कहते थे पार हो गए! अब क्या हुआ? कहां पार हुए? यह क्रोध तो वहीं के वहीं है। वह सब तरह की चेष्टाएं करेगी यह सिद्ध करने की कि तुममें कुछ बदला नहीं है, तुम धोखे में पड़े हो, तुम भ्रांति में आ गए हो। वह

मुझे गालियां देगी, तुम्हें गालियां देगी, तुम्हारे ध्यान का विरोध करेगी। क्यों? क्योंकि उसके अहंकार पर भारी चोट पड़ रही है। तुम शराब पीने लगते तो कुछ बुराई न थी। तुम ध्यान करने लगे तो बुराई हो गई। तुम जुआ खेलने लगते तो कुछ बुरा न था, क्योंकि जुआ खेलने में और शराब पीने में तो पत्नी को एक लाभ था। उसका अहंकार तुमसे ऊपर हो जाता। वह हमेशा तुम्हारी गर्दन दबा सकती थी।
मुल्ला नसरुद्दीन डाक्टर के पास गया, लंगड़ाता हुआ अंदर प्रविष्ट हुआ। डाक्टर ने पूछाः क्या हो गया?
उसने कहा कि पैर में बहुत तकलीफ है। डाक्टर ने पैर देखा और बोले कि मामला क्या है, कब से तकलीफ है? यह तो फ्रैक्चर का मामला मालूम होता है। कब से तकलीफ है?
मुल्ला ने कहाः कोई तीन महीने हो गए।
तो उसने कहाः हद हो गई! तो तुम तीन महीने क्या करते रहे? और पड़ोस में
ही तुम रहते हो और तीन महीने तुम्हें हो गए, तुम आए क्यों नहीं?
मुल्ला ने कहाः मैं भी क्या करूं? मैं कुछ भी कहूं, मेरी पत्नी फौरन कहती है कि सिगरेट पीना बंद करो। सिर में दर्द, सिगरेट पीना बंद करो! नींद नहीं आती, सिगरेट पीना बंद करो! मैं कुछ भी कहूं, बस वह मेरे सिगरेट पर टूट पड़ती है। सो उसके डर से मैं चुप ही रहा कि मैंने अगर कहा कि पैर में दर्द है, तो वह कहेगी सिगरेट पीना बंद करो। बस उसे बहाना कोई भी चाहिए--सिगरेट पीना बंद करो! सिगरेट की वजह से मैं उसके कब्जे में हूं। सो मैं चुप ही रहा, मगर अब बरदाश्त के बाहर हो गया। दर्द बहुत है। अभी भी उसको बिना बताए आया हूं और आप भी कृपा करके उसको बताना मत कि मेरे पैर में दर्द है, नहीं तो मेरे सिगरेट पर झंझट हो जाएगी खड़ी। मैंने तो अपने दुख-दर्द की बात ही कहना बंद कर दी, क्योंकि कुछ भी मैं कहूं बस वह तत्काल सिगरेट पर आ जाती है। अगर तुम सिगरेट पीओ, जुआ खेलो, शराब पीओ, तो पत्नी को इतनी पीड़ा नहीं होती। दिखाएगी बहुत कि पीड़ा हो रही है, मगर वह सब दिखावा है, भीतर-भीतर खुश होगी, प्रसन्न होगी। अब तुम उसके और भी कब्जे में हो गए। अब तुम्हारी गर्दन कभी भी दबा सकती है। हर बहाने तुम्हारी गर्दन दबाएगी। अब तुम घर में घुसोगे तो भीगी बिल्ली की तरह घुसोगे, हमेशा पूंछ दबाए हुए रहोगे। क्योंकि तुम कुछ बोले तो उसने कहा कि फिर दिखता है तुम पीकर आ गए। तुम डरे- डरे घुसोगे, क्योंकि तुमने कुछ भी कहा कि उसने कहा कि फिर... कुछ गड़बड़ है, तुम जुआ तो खेल कर नहीं आ रहे? तुम इतने घबड़ाए रहोगे... । और इसमें ही तो मजा है उसके अहंकार को।
और जो पत्नी के साथ सच है, वही पति के साथ सच है, वही पिता के साथ सच है, वही भाई-बहनों के साथ सच है। जिनसे तुम्हारे निकट के संबंध हैं... वही मित्रों के साथ सच है। तुम्हें दयनीय अवस्था में पाकर उन सबको सुख होता है कि हम तुमसे ऊपर, तुम हमसे नीचे। सहानुभूति का मजा बड़ा रुग्ण मजा है, रोग से भरा है। सहानुभूति दिखाने में सब लोग उत्सुकता लेते हैं। तुम्हारे घर में आग लग जाए, फिर देखो, दुश्मन तक आ जाते हैं सहानुभूति दिखाने। मित्रों की तो छोड़ो, दुश्मन भी मौका नहीं छोड़ते। दुश्मन, जो तुमसे बोलते ही न थे, वे भी आ जाते हैं कि भई बुरा हुआ। यह क्या हो गया? लेकिन तुम एक मकान बनाओ और दुश्मन तो जलते हैं, दोस्त तक जलते हैं। तुम्हारे सुंदर मकान को देख कर दोस्तों की छाती पर भी सांप लोट जाते हैं। क्या अड़चन आ गई? मकान जलता है तो दुश्मन भी सहानुभूति प्रकट करते हैं; मकान बनता है तो दोस्त तक बच कर निकलते हैं, कि कहीं मकान की बात न आ जाए! वे नहीं बना पाए और तुमने बना लिया! यह... छोटी-छोटी चीजों में यह हो रहा है, तो ध्यान तो बड़ी चीज है, संन्यास तो बड़ी चीज है। तुमने जीवन की ऐसी संपदा पा ली है, जो पीछे रह गए, निश्चित ही उनको कष्ट होगा।
जीसस ने कहा हैः किसी पैगंबर को उसके अपने गांव में प्रतिष्ठा नहीं मिलती। और जीसस ने अनुभव से कहा है। जीसस सिर्फ एक बार अपने गांव गए, प्रबुद्ध होने के बाद, एक ही बार। और गांव के लोगों ने जो व्यवहार किया, वे चकित हो गए। वे तो गए थे गांव के लोगों को समझाने, बांटने कि जो मैंने जाना है दे आऊं। लेकिन गांव के लोग तो नाराज बैठे थे कि यह छोकरा! उम्र उनकी कुल

तीस ही वर्ष थी और गांव में बड़े-बुजुर्ग थे। यह कल तक गांव में लकड़ियां काटता रहा, बढ़ई का बेटा, ब्राह्मण तक का नहीं, बढ़ई का, किसी रबाई का होता, किसी धर्मगुरु का होता तो भी समझ लेते, यह बढ़ई का बेटा, आरा चलाता रहा, कुल्हाड़ी चलाता रहा, जंगल से लकड़ी ढोता रहा, इसका बाप अभी भी बढ़ई है, अभी भी गधे पर लकड़ियां ढोकर लाता है--और यह ज्ञानी हो गया! ज्ञानी ही नहीं, परमज्ञानी हो गया! गांव बरदाश्त करेगा इसको? असंभव।
जीसस जब अपने गांव गए तो गांव के लागों ने कहा कि तो तुम ज्ञानी हो गए?
तो चलो हमारे मंदिर में, सिनागॉग में--यहूदियों का मंदिर--और हमें कुछ उपदेश दो। यह रही पुरानी बाइबिल। तो उन्होंने ओल्ड टेस्टामेंट रख दी जीसस के सामने कि दो। जीसस ने उसे खोला, जहां पन्ना खुला गया वहीं से बोलना शुरू कर दिया, क्योंकि बोलना तो जीसस को वही है जो बोलना है। पन्ना कहां खुलता है, इससे क्या फर्क पड़ता है? और तुम तो मुझे जानते हो, पन्ना कहां खुलता है इससे क्या फर्क पड़ता है? इजेकियल का एक वचन है--जिस पर पन्ना खुल गया, संयोगवशात--कि मैं कहता हूं कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर है। जीसस ने कहाः इजेकियल कहते हैं कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर है और मैं भी कहता हूं कि स्वर्ग का राज्य तुम्हारे भीतर है। इजेकियल ठीक कहते हैं। मैं गवाह हूं। बस गांव के लोग नाराज हो गए। उन्होंने कहाः तू छोकरा और गवाह! मतलब यह कि तू भी उतना जानता है जितना कि पैगंबर इजेकियल जानते हैं? गांव के लोगों ने तो उनको मार डालने की कोशिश की, उनको खदेड़ कर गांव के बाहर निकाल दिया। पहाड़ी पर ले जाकर उनको पटक देना चाहते थे। जीसस बामुश्किल बच पाए। तभी उन्होंने लौट कर अपने शिष्यों को कहा कि पैगंबर का अपने ही गांव में कोई सम्मान नहीं होता। बहुत मुश्किल है उसके गांव के लोग ही उसको समझ लें।
तुम यूं देखो न, बुद्ध भारत से उखड़ गए और चीन और कोरिया और जापान और बर्मा और लंका, सारे एशिया में फैल गए, सिर्फ भारत से उखड़ गए। तुम मुझे देखो न, यहां कितने भारतीय दिखाई पड़ते हैं? सारी दुनिया यहां आ रही है। ऐसा कोई देश नहीं बचा है जहां से लोग आकर संन्यस्त नहीं हुए हैं। लेकिन कितने भारतीय? उनकी संख्या न्यून होती जा रही है। दाल में नमक के बराबर होती जा रही है। उन्हें दाल के बराबर होना चाहिए था, होती जा रही है दाल में नमक के बराबर। कारण क्या है? कारण साफ है। उनका दुर्भाग्य कि मैं भारतीय हूं। उनको उससे अड़चन है, उससे उनको कठिनाई है। उससे उनको बेचैनी है।
फिर भारतीयों में भी तुम देखो, तो तुम्हें जैनों की संख्या और भी कम मिलेगी। क्योंकि उनका दुर्भाग्य और भी ज्यादा, क्योंकि मैं जैन घर में पैदा हुआ। इसलिए जैन मेरे बहुत खिलाफ। अभी कच्छ जाने के संबंध में जिन बीस संस्थाओं ने विरोध किया है, इनमें अठारह जैन संस्थाएं हैं। कल ही मैंने फेहरिस्त देखी। गुजरात की विधानसभा में प्रश्न उठा तो पूरी फेहरिस्त छापी उन्होंने कि किन्होंने मेरा विरोध किया है। तो मैंने देखा कि कौन हैं विरोध करने वाले? तो बीस में से अठारह जैन हैं। हजारों गैर-जैनों ने समर्थन किया है। सिर्फ मांडवी से सोलह सौ लोगों ने दस्तखत करके भेजे हैं, मगर उनमें जैन नहीं है। जैन मुनि ने तो विरोध किया है। तो जैन और भी कम दिखाई पड़ेंगे। उनका और भी दुर्भाग्य है कि मैं जैन घर में पैदा हो गया। फिर दिगंबर तो मुश्किल से ही दिखाई पड़ेंगे। श्वेतांबर कुछ जैन यहां दिखाई पड़ सकते हैं, श्वेतांबर होंगे वे। दिगंबर तो शायद ही कभी यहां कोई दिखाई पड़ता है, शायद ही, भूल-चूक से। क्योंकि मैं जिस घर में पैदा हुआ, उनके दुर्भाग्य से वह घर दिगंबर था। फिर दिगंबरों में भी एक पंथ है--तारणपंथ। मैं उस परिवार में पैदा हुआ जो दिगंबरों का तारणपंथी परिवार है। तो तारणपंथी तो यहां एक नहीं दिखाई पड़ेगा--मेरे सिवाय और कोई नहीं। मैं ही तारण-तरण का एकमात्र नामलेवा। वे तो यहां कदम ही नहीं मारेंगे, पर नहीं मारेंगे। उनकी दुश्मनी तो भारी है।
यह तुम मजा देखते हो। मगर इसका गणित साफ है।
अजित सरस्वती, स्वाभाविक है कि तुम आनंदित होओ तो बांटना चाहो।
तुम्हारे भीतर अमृत भर जाए तो यह बिल्कुल स्वाभाविक आकांक्षा है कि जिनके

साथ हम जीए, जिस घर में हम पैदा हुए, उन मां को, उन पिता को, उन भाई को, बहन को, उस पत्नी को जिसे हम कभी अज्ञान में अपने साथ बांध ले आए थे--बांटे। क्योंकि इससे बड़ी संपदा और क्या हो सकती है कि हम उन्हें भी संन्यास के रंग में रंग दें! मगर उनकी तरफ से ही सर्वाधिक विरोध होगा।
अब मैं यहां छह साल से हूं। अजित सरस्वती मेरे निकटतम संन्यासियों में से एक हैं। उन थोड़े से संन्यासियों में से, जिनके लिए मैं बिल्कुल आश्वासित हूं कि इस जन्म में वे मुक्त हो जाएंगे, उन थोड़े से संन्यासियों में से एक हैं। लेकिन उनकी पत्नी एक बार भी यहां सुनने नहीं आई। एक बार भी! क्या हो गया? छह साल में एकाध बार तो आ जाती, सिर्फ देखने आ जाती कि यहां क्या हो रहा है। अजित सरस्वती रोज यहां मौजूद हैं, नियम से यहां मौजूद हैं, शायद ही कभी चूके हों। जब बाहर हों पूना के तो चूके हों एकाध दो दिन, बात अलग, अन्यथा इन छह वर्षों में जो लोग नियमित रूप से यहां हैं, वे यहां हैं। घर रोज नियमित ध्यान कर रहे हैं। घर पर भी सुन रहे हैं। किताबें सारी घर पर हैं। रोज यहां आते हैं। लेकिन पत्नी को इतना भी नहीं लगा कि एक बार आकर यहां देख तो जाए, क्या हो रहा है यहां! पति के जीवन में क्रांति हो गई है। वही बाधा बन रही है।
पत्नी की तरफ से समझो तो यूं हो गई हालत कि जैसे जिसको वह जानती थी, अजित को, वे तो चल बसे। पत्नी तो विधवा हो गई। और ये जो अजित सरस्वती हैं, मेरे संन्यासी, ये तो आदमी ही और हैं। इनको उसका क्या लेना-देना? इनसे उसकी क्या पहचान? ये तो अजनबी हैं। यह तो सिर्फ उसी देह में घटना घटी है, इसलिए चला जा रहा है मामला साथ, नहीं तो वह निकाल बाहर करेगी। तुम यहां कैसे घुसे हो? तुम हो कौन? चेहरा मिलता-जुलता है, इसलिए बरदाश्त कर रही है, नहीं तो बाकी तो सब बदल गया है। कुछ भी नहीं बचा पुराना। तो वह तो मुझ पर भी नाराज होगी, उसका पति मैंने छीन लिया। उसकी अड़चन यह कि उसके अहंकार को भारी व्याघात पहुंचा है। तुम उसे समझाओगे, सुनेगी नहीं, समझेगी नहीं। कौन पत्नी पति से समझने को राजी है या कौन पति पत्नी से समझने को राजी है! बहुत मुश्किल। बहुत, लाखों में कभी एक बार यह घटना घटती है। नहीं तो नहीं।
अब ये फली भाई बैठे हुए हैं सामने, इनकी जिंदगी बदल गई है। लेकिन पत्नी! पत्नी को कुछ लेना-देना नहीं। पत्नी को कोई प्रयोजन नहीं। असल में जितनी फली भाई की जिंदगी बदलती गई उतनी ही पत्नी और अपने को सम्हाल कर दूर हटती गई है। नाता ही जैसे टूट गया। अब बस बात की बात रह गई है। सांप तो निकल चुका, बस लकीर पड़ी रह गई है रास्ते पर, और कुछ भी नहीं। अब जब मैं कच्छ जाऊंगा तो फली भाई तो कच्छ जाएंगे, अजित सरस्वती भी कच्छ जाएंगे, पत्नियां यहीं रह जाने वाली हैं। वे तो जा ही चुके हैं।
लेकिन अड़चन भारी है। तुम्हारी भी अड़चन है कि तुम बिना समझाए नहीं रह सकते और उनकी भी अड़चन है कि वे समझ नहीं सकते। परिवार के प्रियजन नहीं समझ सकते। यह उनके अहंकार के विपरीत है। और यह तुम्हारे आनंद का स्वभाव होगा कि तुम बांटोगे। तो कोशिश करो। बांटो। जितना बन सके, कोशिश करो। मगर बहुत आशा रखना मत, ताकि कभी निराशा न हो। बहुत अपेक्षा मत रखना, क्योंकि उपेक्षा होगी। श्रम कर लेना, अपना कर्तव्य निभा लेना, मगर यह मत सोचना कि सफलता मिलेगी। असफलता की ज्यादा संभावना है। निन्यानबे प्रतिशत संभावना असफलता की है, एक प्रतिशत संभावना सफलता की है। यह मान कर कोशिश करना। तुम पूछते होः "ये प्रियजन ही उसे लेने में इतने क्यों सकुचाते हैं?" आदमी देने में ही कंजूस नहीं होता, लेने में भी कंजूस होता है। सच तो
यह है कि लेने में और भी ज्यादा कंजूस होता है, क्योंकि देने में तो अहंकार की तृप्ति हो सकती है। लेने में अहंकार को चोट पहुंचती है। मैं और लूं-- असंभव! मैं और भिक्षापात्र फैलाऊं--असंभव! मैं और किसी और की बात स्वीकार करूं! और जितना निकट हो व्यक्ति उतना ही मुश्किल है, कि इसकी बात स्वीकार करूं! इसको तो मैं भलीभांति जानती हूं। मेरा बेटा, मेरा पति, मेरी पत्नी, मेरा भाई, मेरे पिता--इसको तो मैं भलीभांति जानता हूं। इससे, और मुझे लेना है!
अब संत महाराज ने कितनी कोशिश की अपने पिता को कि किसी तरह डूब जाएं! लेकिन वे भाग खड़े हुए। वे इतनी तेजी से भागे... उसका भी कारण है। तेजी से

भागने का कारण कि उनको भी डर लगा कि कहीं डूब ही न जाऊं। उन्हें भी लगने लगा भीतर-भीतर कि डूब सकता हूं, यह मैं कहां आ गया! यहां की हवा और है, फिजां और है। यहां जो लोग कुतूहलवश आ जाते हैं, कभी-कभी वे भी डूब जाते हैं। आए तो वे थे संत को ही मिलने, क्योंकि वर्षों हो गए संत मिलने गए नहीं। मगर भीतर कहीं कुतूहल भी रहा होगा कि बात क्या है! संत को क्या हो गया है? किसने यह जादू कर दिया है! और वह जादू उन पर भी शुरू हो गया था। यहां मैं उनको देखता था, उनकी आंखों से आंसू गिरते थे। अब यह बड़ी अजीब सी बात हुई। आंख से उनके आंसू गिरते थे जब मैं बोलता था। और संत से उन्होंने कहा कि मुझे जरा पास बैठने दो, ताकि मैं ठीक से देख भी सकूं। और संत ने कहा भी कि अमृतसर में तो मैं दुखी ही रहता हूं, यहां आकर पहली दफे मुझे शांति अनुभव हुई है। लेकिन फिर भी भाग गए। और इतनी तेजी से भागे कि जब संत होटल में पहुंचा तो वे सामान बांध कर टैक्सी में ही सवार हो रहे थे। संत ने कहा भी कि इतनी जल्दी क्या है! आए तो थे और दो-चार दिन ज्यादा दिन रुकने, भागने की इतनी जल्दी क्या है? कम से कम चाय-नाश्ता तो कर लो। पर वे चाय-नाश्ता करने को भी राजी नहीं थे। वे तो एकदम स्टेशन गए। यहां से महाबलेश्वर जाने वाले थे। चार-छह दिन यहां रुक कर फिर महाबलेश्वर जाने वाले थे। फिर महाबलेश्वर भी नहीं गए, क्योंकि महाबलेश्वर से फिर लौटेंगे तो फिर पूना पड़ेगा, बीच में पूना फिर पड़ेगा, कि कहीं फिर अटकाव न आ जाए! ऐसे घबड़ा कर भागे। घबड़ाहट इसलिए पैदा हो गई कि उनकी बेटी तो संन्यास लेने को राजी हो गई, उससे घबड़ा गए, कि अभी बेटी तैयार हुई, कहीं पत्नी तैयार हो जाए, कहीं मैं खुद तैयार हो जाऊं! कहीं भीतर उनके भी सुगबुगाहट होने लगी थी, कहीं मैं तैयार हो जाऊं!
तो बाप का अहंकार। और बेटे "संत" के कारण अड़चन पड़ी, कि बेटा डूब गया, मैं तो बेटे को निकालने आया था और मैं खुद डूबने लगा। इसके पहले कि बात बिगड़ जाए, भाग खड़े होना चाहिए।
मगर मैं कहता हूं कि भाग भला गए हों वे, मैं उनका पीछा करूंगा। अमृतसर में भी उन्हें याद आएगी पूना की--और ज्यादा याद आएगी। अब पूना के स्वाद से थोड़े परिचित होकर गए हैं।
घर के लोगों की अपनी अड़चन, तुम्हारी अपनी अड़चन। लेकिन मेरा सुझाव यह
है कि पहले अपनी तलवार औरों पर चलाओ, उसमें आसानी होगी। फिर जब तलवार पर खूब धार आ जाए तब अपनों पर चलाना। वही मैंने किया। मैंने अपने घर के लोगों को बदलने की कोई कोशिश ही नहीं की। पहले मैं सारी दुनिया को बदलने में लगा रहा। मुझसे कहते भी थे लोग कि आपके पिता आते हैं, मां आती हैं, आप उनको संन्यास के लिए नहीं कहते? मैंने कहाः मैं कहूंगा नहीं, क्योंकि उससे ही बाधा हो जाएगी। मैं रुकूंगा। जल्दी क्या है? जरा उनको देखने दो, इतने लोग बदल रहे हैं। यह हवा घनी होने दो। आते हैं, यही बहुत। यह हवा घनी होती गई। यह बात उनको साफ दिखाई देने पड़ने लगी कि इतने लोग बदल रहे हैं, इतने लोगों के जीवन में क्रांति घट रही है, तो हम क्यों वंचित रह जाएं? जब उन्हें यह समझ में आ गया कि हम क्यों वंचित रह जाएं, तो अपने से... । मैंने कभी कहा नहीं। न अपनी मां को कहा, न अपने पिता को कहा, न अपने भाइयों को कहा। लेकिन मेरे पिता, मेरी मां, मेरे भाई... सिर्फ एक भाई अभी संन्यासी नहीं है। उसकी पत्नी संन्यासी हो गई है। उसने इस बार कहा था कि मैं भी संन्यास ले लूं? लेकिन जिस ढंग से उसने कहा, मैंने कहा, रुक। मैं भी ले लूं... कोई प्रफुल्लता न थी। यूं था कि अब पत्नी ने ले लिया, सारा परिवार संन्यासी हो गया, अकेला मैं बचा। लोग पूछते होंगे उससे कि क्या बात है, तुमने क्यों नहीं लिया? सारा परिवार संन्यासी हो गया, तुम अकेले कैसे बच रहे? तो मुझसे पूछा कि मैं भी ले लूं? इसमें प्रश्नवाचक चिह्न था। मैं कहूं तो ले। मैंने इतना भी नहीं कहा। मैंने कहा कि रुक। मैं मुश्किल से ही किसी को कहता हूं रुक। कोई भी मुझसे पूछे कि ले लूं तो मैं कहता हूं इसी वक्त! मगर भाई है छोटा, तो मैंने कहा, रुक, अभी कोई जल्दी नहीं। तब तक रुका रहूंगा मैं जब तक वह प्रश्न-चिह्न समाप्त न हो जाए। मुझसे क्या पूछना है कि ले लूं? मांगना चाहिए कि दें संन्यास, देना ही होगा। तो फिर देने का मजा है।

पहले तलवार पर धार औरों पर रखो। और ज्यादा आसानी से बदले जा सकेंगे, अजित। क्योंकि उनसे तुम्हारे कोई पुराने नाते नहीं हैं, उन्होंने तुम्हारा कोई पुराना रूप नहीं देखा है। इसलिए उनको कोई अड़चन नहीं है। वे तुम्हारे नये रूप से ही परिचित होंगे, सीधा-सादा परिचय होगा। जिनसे तुम्हारे पुराने रूप का संबंध है, उनकी उलझन है। उन्होंने तुम्हारा पुराना रूप भी जाना है--क्रोधित, लोभी, मोही, सब देखा उन्होंने। अब उसमें कैसे मानें कि अचानक ध्यान का फूल खिल गया? उन्होंने कीचड़ देखी, कमल में भरोसा नहीं आता। लेकिन अपरिचित लोग कमल को देखेंगे, कीचड़ उन्होंने देखी नहीं। और एक बार कमल पर भरोसा आ जाए तो क्रांति शुरू हो जाती है।
पहले धार औरों पर रखो। और जब तलवार में बहुत धार आ जाएगी तो अपने भी कटेंगे। मगर थोड़ा रुको। जल्दी न करना। और मैं जानता हूं तुम्हारी तकनीक कि जल्दी करने का मन होता कि समय जा रहा है, व्यर्थ जा रहा है। और जिनको हम प्रेम किए हैं, स्वाभाविक है कि हम उनको अपने जीवन की जो संपदा है, उसमें भागीदार बना लें, साझीदार बना लें।
लेकिन एक बात और ख्याल रखो, लाख हम जिनको अपना कहते हैं वे भी क्या खाक अपने हैं! अपना क्या है? कोई सात फेरे लगा लेने से अपना हो जाता है। धोखा हो जाता है अपने होने का। पति हो गए, पत्नी हो गए। बच्चा पैदा हो गया। कोई अपना हो जाता है? सांयोगिक है। न तुम्हें उसके पैदा होने के पहले पता था कि कौन पैदा होने वाला है, न उसको पता था कि किनके घर मैं पैदा हो रहा हूं। किसी को कुछ पता नहीं, सब अंधेरे में हो रहा है। दुर्घटना ही समझो। और अपना हो गया! कैसे अपना हो जाएगा? कौन अपना है यहां?
प्रीतम ने यह गीत लिखा--

कहने को सभी अपने हैं, मगर सहरा में हमारा कोई नहीं
ओंठों पे हंसी के गुल हैं बहुत, खुशबू का बहारां कोई नहीं
बाहर तो बड़ी रौनक है यहां, सामान बहुत सुख-सुविधा के
अंदर तो मगर सुनसान है सब, अपना-सा बेचारा कोई नहीं
रिश्तों की बड़ी इस दुनिया में, हमदर्द यहां दिखते हैं सभी
जब गौर किया मालूम हुआ, सचमुच का सहारा कोई नहीं
दामन ही नहीं हम थामें जिसे, बस्ती ही नहीं टिकने को यहां
बेकार भरम में खोए रहे, आनंद का दुवारा कोई नहीं
सब रस्ते हैं भटकाने के लिए, अटकाने के बंदोबस्त हैं सब
यहां प्यार की बातें होतीं बहुत, पर प्यार का मारा कोई नहीं

कौन है अपना? बस बातें हैं। फिर जिनको तुम बदलने चलते हो, उनके साथ बहुत परोक्ष व्यवहार करना होता है, प्रत्यक्ष नहीं, सीधा-सीधा नहीं। किसी को सीधा-सीधा बदलने का मतलब है उसका अपमान। बहुत कलात्मक होना चाहिए। इतने आहिस्ता होनी चाहिए बदलाहट की बात कि दूसरे को पता न चले कि कब तुमने उसके पिंजड़े का द्वार खोल दिया। खटका भी हो गया तो तोता जो पिंजड़े में बंद रहने का आदी हो गया है, सींकचों को पकड़ लेगा। तोते को फुसलाना होता है। सदगुरु की कुल कोशिश होती है फुसलाने की, बहलाने की--बड़े आहिस्ता- आहिस्ता, जैसे छोटे बच्चे को मनाना होता है। सब छोटे ही बच्चे हैं। सीधे- सीधे इनसे अगर कहो तो ये भाग ही खड़े होंगे। इन्हें बहुत आहिस्ता से, इनकी भाषा में, इनके रंग-ढंग को समझ कर व्यवस्था बनानी होती है।

बहुत बार यूं खुद को खुद पर ही विश्वास नहीं होता है,
कुछ होता है भीतर-भीतर पर अहसास नहीं होता है!

इनको पता भी न चलने लगे, भीतर-भीतर कुछ होने भी लगे। होता है, जरूर होता है। पति बदलेगा, घर में इतनी बड़ी क्रांति हो जाएगी, दीया जलेगा, तो पत्नी को रोशनी दिखाई नहीं पड़ेगी? बेटा बदलेगा तो मां के प्राणों में कुछ कंपन नहीं होगा? होगा, जरूर होगा, मगर मुश्किल है बहुत।

बहुत बार यूं खुद को खुद पर ही विश्वास नहीं होता है, कुछ होता है भीतर-भीतर पर अहसास नहीं होता है।
सागर-सी गहरी आंखों में आसमान सा उतरे कोई,
पर ऐसी घटनाओं का कोई इतिहास नहीं होता है।
रास आ गया जिस तोते को सोने के पिंजरे का जीवन,
उन पांखों के लिए कभी कोई आकाश नहीं होता है।
तन से तन छू जाए कोई, आंखों ही आंखों में झांके,
इतना पास-पास दिखता जो फिर भी पास नहीं होता है।
परदों के ऊपर हैं परदे, बाहर बंद पड़े दरवाजे,
दस्तक देती सदा रोशनी पर आभास नहीं होता है।

दस्तक तो तुम दे रहे हो, मगर आभास होना चाहिए भीतर जो सोया है उसे। पिंजड़े में जो बंद होने का आदी हो गया है, उसे पिंजड़ा ही सब कुछ है, वही उसका आकाश है।
धीरे-धीरे समझाना, आहिस्ता-आहिस्ता समझाना। बहुत प्रेम से, बहुत प्रीति से। निवेदनपूर्वक। कहीं भी जोर-जबरदस्ती न हो जाए। कहीं जल्दी न हो जाए।
और फिर मैं कहूंगाः पहले औरों पर साधो, फिर अपनों पर। होगा। अगर तुम्हारी आकांक्षा है तो जरूर उनके जीवन में भी कुछ होगा। होना ही चाहिए, होना सुनश्चित है।

आज इतना ही।

ज्यूं मछली बिन नीर
दूसरा प्रवचन

जगत सत्य, ब्रह्म सत्य

पहला प्रश्नः ओशो, आदिगुरु शंकराचार्य के "जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य" सूत्र का खंडन करते हुए आपने कहा कि जगत भी सत्य है और ब्रह्म भी सत्य है। लेकिन सत्य की परिभाषा है--वह, जो कि नश्वर नहीं है। इसलिए जगत जो कि नश्वर है, सत्य कैसे होगा? मिथ्या ही होगा। ब्रह्म अनश्वर है, इसलिए सत्य है। आपसे अनुरोध है कि सत्य की परिभाषा करते हुए इस पहलू पर प्रकाश डालें।

पंडित ब्रह्मप्रकाश! बड़े भाग्य कि आप भी इस मयकदे में पधारे! ऐसे तो मयकदे में आना अच्छी बात नहीं है और आ ही गए हैं तो बिना पीए जाना अच्छी बात नहीं है। जाम हाजिर है। जी भर कर पीकर लौटें।
पूछते हैं आप कि "सत्य की क्या परिभाषा है?"
सत्य की कोई परिभाषा नहीं है, न हो सकती है। परिभाषित होते ही सत्य असत्य हो जाता है। सत्य तो अनिर्वचनीय है। कैसे उसकी परिभाषा होगी? कैसे उसकी व्याख्या होगी? सत्य तो शब्दों में आता नहीं, छूट-छूट जाता है। सत्य तो शब्दातीत है, मनातीत है। सत्य अनुभव है--और ऐसा अनुभव, जो कि मन के अतिक्रमण पर ही उपलब्ध होता है--निर्विचार में, शून्य में, समाधि में। परिभाषा तो मन करेगा और मन को सत्य का कभी अनुभव नहीं होता। अनुभव होता है मनातीत अवस्था में। अनुभव किसी और को होता है, परिभाषा कोई और करेगा। बात तो गलत हो ही जाएगी। जिसने देखा वह बोलेगा नहीं और जिसने नहीं देखा वह बोलेगा। आंख वाला देखेगा और अंधा परिभाषा करेगा! यह भी मान लो कि अंधा आंख वाले के साथ था जब सूरज ऊगा। देखा आंख वाले ने। माना कि अंधा साथ था आंख वाले के, तो भी परिभाषा तो अंधा नहीं कर सकता है। जिसने देखा नहीं वह कैसे परिभाषा करे? और जिसने देखा है वह तो अवाक हो जाता है। अनुभव इतना विराट है कि व्यक्ति तो उसमें लीन हो जाता है। जैसे बूंद सागर में गिर जाए, क्या खाक बूंद परिभाषा करेगी सागर की! बूंद तो बचती ही नहीं, कौन करे परिभाषा, किसकी करे परिभाषा!
लेकिन जो शास्त्रों में जीते हैं, जो शब्दों में जीते हैं, वे सत्य को
भी शब्दों में ही घसीट लाते हैं। उनके लिए सत्य भी एक शब्द है। और जैसे ही सत्य शब्द बना, वैसे ही असत्य हो जाता है।
लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन है कि सत्य को बोला नहीं कि असत्य हुआ नहीं। इसलिए मत पूछो परिभाषा। इंगित कर सकता हूं कि कैसे सत्य का अनुभव हो, परिभाषा नहीं कर सकता हूं। शंकराचार्य परिभाषा करते हैं, इससे ही जाहिर होता है कि कहीं उलझाव पांडित्य का है। न तो "अग्नि" शब्द में अग्नि है, न "प्रेम" शब्द में प्रेम है, और न "सत्य" शब्द में सत्य है। लेकिन हम सब शब्दों में पलते हैं और शब्दों में बड़े होते हैं। शब्दों की ही शिक्षा है। शब्दों का ही जाल है। हम भूल ही जाते हैं कि जीवन का शब्दों से कुछ लेना- देना नहीं। और शब्दों के साथ एक बड़ी अड़चन है कि शब्द हमेशा बांटते हैं, काटते हैं, तोड़ते हैं। उनकी भी मजबूरी है, शब्दों की सीमा होती है, अनुभव असीम होते हैं। शब्द बेचारा करे भी क्या! उसकी अपनी असमर्थता है। विवश है। वह तो तोड़ेगा, खंडित करेगा, विश्लेषण करेगा।
जैसे रात और दिन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, अंधेरा और प्रकाश एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लेकिन शब्द में तो दो हो जाएंगे।
विज्ञान से पूछो। विज्ञान क्या कहता है अंधकार के संबंध में? कहता है
कि अंधकार कम प्रकाश का नाम है और प्रकाश कम अंधकार का नाम है। दोनों में भेद कुछ भी नहीं। सघनता का या विरलता का, पर गुणात्मक कोई भेद नहीं। सर्द और गर्म अलग-अलग शब्द हैं। स्वभावतः ठंडी चाय और गर्म चाय में भेद है। लेकिन यथार्थ में सर्दी और गर्मी एक ही थर्मामीटर से नाप लिए जाते हैं। तो उनमें भेद गुणात्मक नहीं है, मात्रात्मक है, परिमाणात्मक है।

इसे यूं समझो तो आसान हो जाएगा। एक हाथ को बर्फ की शिला पर रख लो और एक हाथ को अंगीठी पर तपाओ। दोनों हाथ तुम्हारे हैं। एक गर्म हो जाएगा, एक बिल्कुल ठंडा हो जाएगा। फिर दोनों हाथों को, बाल्टी भरी है पानी की, उसमें डाल दो। और अब मैं तुमसे पूछता हूं कि पानी गर्म है कि ठंडा? तुम बहुत मुश्किल में पड़ोगे; क्योंकि एक हाथ एक बात कहेगा, दूसरा हाथ दूसरी बात कहेगा। जो हाथ ठंडा हो गया है बर्फ पर रखने के कारण, वह तो कहेगा पानी गर्म है। और जो हाथ गर्म हो गया है अंगीठी पर तापने के कारण, वह कहेगा पानी ठंडा है। तुलना की बात हो गई। फिर पानी ठंडा है कि गर्म, अब तुम जो भी कहोगे गलत होगा। ठंडा कहो तो एक हाथ इनकार करेगा और गर्म कहो तो दूसरा हाथ इनकार करेगा। या तो पानी दोनों हैं या पानी दोनों नहीं है। किस हाथ की मानोगे-- बाएं की कि दाएं की? वामपंथी होओगे कि दक्षिणपंथी? और दोनों हाथ तुम्हारे हैं। और दोनों की जानकारी तुम्हें मिल रही है। किसकी जानकारी सत्य है, किसकी सूचना सत्य है? दोनों ही सत्य सूचना दे रहे हैं एक अर्थों में। दोनों अपना-अपना अनुभव कह रहे हैं।
शब्द के साथ यह मुसीबत है कि शब्द जीवन को दो खंडों में तोड़ लेता है। शब्द द्वैतवादी है और अनुभव अद्वैतवादी है। मैं शंकराचार्य को अद्वैतवादी नहीं मानता हूं। शंकराचार्य लाख उपाय करें अद्वैतवादी अपने को घोषित करने का, द्वैतवादी हैं। मैं अद्वैतवादी हूं। इसलिए कहता हूं शंकराचार्य को द्वैतवादी कि वे माया और ब्रह्म को तोड़ते हैं। एक को कहते हैं सत्य, एक को कहते हैं असत्य। मैं अद्वैतवादी हूं। मैं तोड़ता ही नहीं हूं। मैं कहता हूं, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--एक प्रकट, एक अप्रकट; एक व्यक्त, एक अव्यक्त। और जो व्यक्त है वह भी अव्यक्त का ही अंश है। और जो अव्यक्त है वह भी व्यक्त से जुड़ा है, संयुक्त है, क्षण भर को पृथक नहीं, कण भर को पृथक नहीं।
शंकराचार्य माया को कहते हैं मिथ्या। माना कि जगत क्षणभंगुर है, लेकिन क्षणभंगुर का अर्थ समझ लेना। क्षणभंगुर का इतना ही अर्थ होता है कि परिवर्तनशील है। तुमने जगत में कोई चीज मिटते देखी? कहते तो हो नश्वर, सुन लिया होगा शब्द, मगर तुमने जगत में किसी चीज को मिटते देखा? मिटा सकते हो कोई चीज? रेत का एक कण तुम्हें दे देता हूं, मिटा सकते हो इसे? कहते तो हो नश्वर, मिटा कर दिखा दो। विज्ञान हार गया है। विज्ञान कहता है इस जगत में कोई चीज न तो मिटाई जा सकती है और न कोई चीज बढ़ाई जा सकती है। एक रेत का कण भी तुम मिटा नहीं सकते। हां, यह कर सकते हो कि पीस डालो, मगर एक कण बहुत कणों में बदल जाएगा। है तो अभी भी, रूप बदल गया, सत्ता तो नहीं गई। जला दो, राख कर डालो, फिर भी रूप बदला, सत्ता तो नहीं गई। अस्तित्व तो अब भी है। जाओ सागर में फेंक दो, खो गया सागर में, तरंगें दूर-दूर तक कणों को ले जाएंगी, अब कहीं दिखाई नहीं पड़ता; मगर कहीं भी ले जाएं तरंगें, है अभी भी। दिखाई भी न पड़े तो भी है अभी भी।
पानी गर्म होकर वाष्पीभूत हो जाता है, अब दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन क्या तुम सोचते हो मिट गया? फिर वर्षा में वर्षा कैसे होती है? जो मिट गया था वह फिर प्रकट कैसे होता है? मिटा नहीं था, केवल अदृश्य हो गया था। आंख की देखने की क्षमता के पार हो गया था। आंख की बड़ी छोटी सी सीमा है। आंख के देखने की सीमा बहुत छोटी है। नीचे भी बहुत है देखने को, उस सीमा के पार भी बहुत है देखने को। भाप तुम्हारी आंख नहीं देख पाती, मगर फिर ठंडक ले आओ, बर्फ के कण बरसा दो, भाप फिर दिखाई पड़ने लगेगी, फिर पानी होकर बरस उठेगी। मिटा नहीं सकते तुम।

"नश्वर" कहते हो--उधार। शास्त्र में पढ़ लिया कि जगत नश्वर है। कभी सोचा नहीं, कभी विचारा नहीं कि इस जगत में किसी चीज को मिटते देखा है, कि यूं ही कह दिया नश्वर है? सुनी-सुनाई बात दोहरा दी, पिटी-पिटाई बात दोहरा दी कि जगत नश्वर है। जगत सदा से है, कभी मिटा नहीं और सदा रहेगा। नश्वर का केवल इतना ही अर्थ हुआ कि रूप बदलते हैं, लेकिन रूप बदलने से सत्ता तो नहीं जाती, अस्तित्व तो नहीं जाता। जवान बूढ़ा हो गया, सत्ता तो बनी है। बच्चा जवान हो गया, सत्ता तो बनी है। और अब तो विज्ञान ने उपाय खोज लिया--स्त्री

पुरुष हो जाए, पुरुष स्त्री हो जाए। सत्ता तो बनी है। जब तुम मर जाते हो तब भी कुछ मरता नहीं। मृत्यु होती ही नहीं, रूप बदल जाता है। एक घर से दूसरे घर में चले गए, इससे कुछ मिटना तो नहीं हो गया। एक गांव में न बसे, दूसरे गांव में बस गए। एक देह में न बसे, दूसरी देह में बस गए। और आवारा भी हो जाओ, किसी घर में न बसो, झाड़ों के नीचे ही टिकने लगो, आज इस सराय में कल उस सराय में, आज इस होटल में कल उस होटल में--तो भी क्या फर्क पड़ता है? तुम हो!
इस जगत में कुछ भी कभी नहीं मिटा है और न कभी मिटेगा। नश्वर कैसे कहते हो? सिर्फ रूपांतरण को, परिवर्तन को? लेकिन परिवर्तन के भीतर भी अनुस्यूत, अपरिवर्तित मौजूद है। जैसे कि माला के मोतियों में भीतर अनुस्यूत धागा है। धागा दिखाई नहीं पड़ता, मगर वही धागा माला को सम्हाले हुए है। माला के गुरिए अलग-अलग मालूम पड़ते हैं, मगर भीतर कोई जोड़ने वाला सूत्र भी है।
इस जगत में सारी चीजें बदलती हैं, मगर इस जगत की गहराई में छिपा हुआ सबको जोड़ने वाला कोई सूत्र भी है, उसको ही मैं ब्रह्म कहता हूं, उसको ही मैं सत्य कहता हूं।
परिवर्तन और शाश्वतता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। शाश्वतता है माला में धागे की भांति और परिर्वतनशीलता है माला के मनकों की भांति। दोनों में कुछ दुश्मनी नहीं है। और दोनों ही सत्य हैं। मगर शब्द की अड़चन है। तुमने अगर शब्द में व्याख्या कर ली कि सत्य वह है जो कभी परिवर्तित नहीं होता, जो अनश्वर है--तो स्वभावतः तुम्हारी परिभाषा के कारण, जो नश्वर है, जो परिवर्तित होता है वह मिथ्या हो गया--तुम्हारी परिभाषा के कारण, सिर्फ तुम्हारी परिभाषा के कारण! मगर तुम्हारी परिभाषा का मूल्य क्या है? अस्तित्व को क्या पड़ी तुम्हारी परिभाषा की?
तुम गुलाब को गुलाब कहो कि कोई और नाम दे दो... दुनिया में हजारों भाषाएं हैं, तो गुलाब के हजारों नाम हैं। तुम्हारे नामों से गुलाब को कोई चिंता है? तुम सुंदर कहो कि कुरूप कहो, गुलाब को कोई फर्क पड़ता है? फैशनें बदल जाती हैं। रोज बदलती हैं फैशनें। आज से सौ साल पहले कोई कल्पना कर सकता था कि कैक्टस को तुम अपने घर में बैठकखाने में रखोगे, कि कैक्टस कभी सुंदर हो जाएगा? सौ साल पहले कोई सोच सकता था? अभी भी गांव के आदमी को तुम कहोगे कि कैक्टस सुंदर है, तो वह तुम्हारी तरफ आंख फाड़ कर देखेगा कि क्या बक रहे हो, होश-हवास की बातें करो! वह तो कैक्टस को लगाता है अपने खेत की बाड़ी में कि कोई जानवर न घुस जाए, कि कोई चोर न घुस जाए। वह तो घर में कैक्टस को रख भी नहीं सकता। वह कहेगा, मैं कोई पागल हूं?
गुलाब सुंदर होता था; लेकिन अब गुलाब सुंदर है ऐसा कहना थोड़ा पुराणपंथी बात हो जाती है। पुरानी हो गई फैशन। अब जो बिल्कुल सुसंस्कृत लोग हैं, जो आधुनिक लोग हैं, वे अपने घर में कैक्टस रखते हैं। सारी दुनिया की भाषाओं में, नई कविता कैक्टस के गीत गाती है। नये चित्रकार कैक्टस के चित्र बनाते हैं। गुलाब दकियानूसी हो गया। अब कौन पूछता है गुलाब को! गुलाब अब आभिजात्य का प्रतीक हो गया और कैक्टस--दरिद्रनारायण, सर्वहारा! और यह तो साम्यवाद का युग है, समाजवाद का युग है। समाजवाद में और गुलाब की प्रशंसा--शर्म नहीं आती, संकोच नहीं होता? गए राजा-महाराजा, गए गुलाब और कमल भी, अब तो कैक्टस की पूजा होगी। अब तो कांटे सुंदर हैं। सर्वहारा बेचारा कांटा, जिसकी कभी कोई प्रशंसा किसी ने नहीं की, कोई कालिदास, कोई भवभूति, कोई शेक्सपियर, कोई मिलटन चिंता ही नहीं किया। सब राज-परिवारों की प्रशंसा करते रहे। सब दरबारी थे। सब जी-हुजूर थे। किसी ने इस सम्राट की प्रशंसा की, किसी ने उस सम्राट की। गुलाब के दिन लद गए, कैक्टस का वक्त आ गया। मगर न कैक्टस को पड़ी है कुछ, न गुलाब को पड़ी है कुछ। गुलाब गुलाब है, कैक्टस कैक्टस है। तुम चाहे प्रशंसा करो, चाहे निंदा करो। तुम्हारी व्याख्याओं से कुछ फर्क नहीं पड़ता है।
तुमने व्याख्या कर ली कि सत्य वह, जो शाश्वत है। तुम सत्य को जानते हो? बिना जाने व्याख्या कर ली! फिर व्याख्या में जकड़ गए। अब उस व्याख्या के कारण जगत को माया कहना पड़ता है। ऐसे ही शंकराचार्य व्याख्या में उलझ गए।
जब ब्रह्म को शाश्वत कह दिया, अपरिवर्तनीय कह दिया, अनश्वर कह दिया तो।

परिभाषा में मजबूरी खड़ी कर दी--जगत को मिथ्या कहो, झूठ कहो, स्वप्नवत कहो, लेकिन यह परिभाषा की मजबूरी है। अस्तित्व की इसमें कोई बात नहीं उठी।
बुद्ध ने परिभाषा ऐसी नहीं की। बुद्ध ने कहाः जगत परिवर्तनशील है।
यूनान में बहुत बड़े रहस्यवादी चिंतक, मनीषी हेराक्लाइटस ने कहाः जगत सतत परिवर्तन है। जैसे नदी बह रही है, जैसे गंगा बह रही है। हेराक्लाइटस ने कहाः तुम एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते, इतनी तेजी से धार बह रही है। मगर यही सत्य है।
चूंकि हेराक्लाइटस और बुद्ध ने परिवर्तन को ही सत्य माना, इसलिए दोनों के लिए ईश्वर असत्य हो गया, ब्रह्म असत्य हो गया। यह व्याख्या की बात है, तुम किसको सत्य मान लेते हो। हेराक्लाइटस और गौतम बुद्ध कहते हैं कि जो जगत दिखाई पड़ रहा है, यह तो परिवर्तनशील है। और यही हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है कि सारा जगत एक प्रवाह है। यह जो प्रवाहमान है, यही सत्य है। तो जिस शाश्वत ब्रह्म की तुम चर्चा कर रहे हो, वह असत्य हो गया--परिभाषा के कारण। और परिभाषा कौन तय करेगा? तुम्हारे हाथ में है।
रज्जब कहते हैंः ज्यूं था त्यूं ठहराया! जैसा था वैसा ही ठहरा दिया, अर्थात शाश्वत में प्रवेश कर लिया, जहां कोई परिवर्तन नहीं। यह रज्ज्ब की परिभाषा हुई। बुद्ध कहते हैंः चरैवेति, चरैवेति! चले चलो, चले चलो! ठहरना मत, क्योंकि ठहरे कि झूठ हुए। गति सत्य है, गत्यात्मकता सत्य है। अगति असत्य है।
और विज्ञान भी बुद्ध से राजी है। इसलिए पश्चिम में जहां विज्ञान का प्रभाव बढ़ा है, वहां शंकराचार्य का कोई प्रभाव नहीं बढ़ रहा है, वहां बुद्ध का प्रभाव बढ़ रहा है। क्योंकि विज्ञान का अनुभव है कि जगत परिवर्तनशील है। और गौतम बुद्ध ने सबसे पहले जगत की परिर्वतनशीलता को अंगीकार किया-- इतनी गहराई से अंगीकार किया कि बुद्ध ने कहाः हमें संज्ञाएं मिटा देनी चाहिए भाषा से, क्योंकि संज्ञाएं भ्रांति देती हैं। हमें सिर्फ क्रियाएं बचानी चाहिए।
जैसे तुम कहते हो नदी है। नहीं कहना चाहिए, क्योंकि नदी एक क्षण को भी
है की अवस्था में नहीं होती। नदी हमेशा बहाव है, ठहराव नहीं; प्रवाह है, थिरता नहीं; गति है, स्थति नहीं। तो कहो कि नदी हो रही है। मत कहो कि है। है कहने में झूठ है। तुम कहते हो वृक्ष है। जब तुम कह रहे हो वृक्ष है, तब भी वृक्ष में नये पत्ते निकल रहे हैं, पुराने पत्ते गिर रहे हैं, नई जड़ें आ रही हैं, वृक्ष उठ रहा है ऊपर, फूल खिल रहा है, फल पक रहा है--और तुम कहते हो है! है में तो ऐसा लगता है ठहरा है।
बुद्ध कहते हैंः वृक्ष हो रहा है। क्रिया है, संज्ञा नहीं। तुम भी हो रहे हो। बच्चा जवान हो रहा है। जवान बूढ़ा हो रहा है। बूढ़ा जीवन के द्वार से मृत्यु के द्वार में प्रवेश कर रहा है। प्रतिपल चीजें बदल रही हैं। चूंकि बुद्ध ने सत्य की यही परिभाषा की है--प्रवाह सत्य है--तो फिर जो भी प्रवाह में नहीं है वह असत्य है। इसके लिए बुद्ध ने ईश्वर को नहीं माना, ब्रह्म को नहीं माना।
हेराक्लतु ने भी ब्रह्म को नहीं माना, ईश्वर को नहीं माना। अस्तित्व
की गतिमयता को माना है।
लेकिन मैं मानता हूं कि दोनों ने अधूरी बात कही। शंकराचार्य ने शाश्वतता की बात कही, बुद्ध ने गत्यात्मकता की बात कही। मेरा अनुभव है कि दोनों आधी बात कह रहे हैं। और जब तुम आधी बात कहोगे तब अड़चन होगी। शेष आधे को इनकार करना पड़ेगा। अगर जगत को कहो कि गर्म है, तो ठंडा माया है, झूठ है-- कहना ही पड़ेगा। और अगर कहो जगत ठंडा है, तो गर्मी झूठ है, माया है। पसीना भी बहे तो भी मानना पड़ेगा कि झूठ है। पसीना भी झूठ है। अनुभव में भी आए गर्मी तो भी नकारना पड़ेगा।
मैं जीवन को उसकी समग्रता में अंगीकार करता हूं। मुझे विरोधाभास में जरा भी अड़चन नहीं है, क्योंकि मैं मानता हूं--सत्य विरोधाभासी ही है। सत्य अनिवार्य रूप से विरोधाभासी है।

तुमने पूछा, पंडित ब्रह्मप्रकाश, कि "आदिगुरु शंकराचार्य के "जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य" सूत्र का खंडन करते हुए आपने कहा कि जगत भी सत्य है और ब्रह्म भी सत्य है।"
अगर जगत असत्य है तो क्या आदि और क्या अंत? अगर जगत असत्य है तो शंकराचार्य कभी हुए ही नहीं। जब जगत ही असत्य है तो इस जगत में कैसे पैदा होओगे? जब जगत ही असत्य है तो शास्त्र कैसे लिखोगे? शास्त्र के होने के लिए भी जगत का सत्य होना जरूरी है। शंकराचार्य कागज को स्याही से रंगते रहे--स्याही भी असत्य, कागज भी असत्य, शंकराचार्य भी असत्य! और किनके लिए लिख रहे हो? जो असत्य है, उनके लिए? जो मिथ्या हैं, उनके लिए? पागल हो? यह तो पागलों जैसी बात हुई कि एक पागल आदमी किसी से बात कर रहा है, जो है ही नहीं। तुम पागल को पागल क्यों कहते हो? इसलिए कि जो नहीं है उसको वह मानता है। वह किसी से बात कर रहा है, गुफ्तगू कर रहा है।
एक पागल पागलखाने की दीवाल से कोई दो घंटे से कान लगाए बैठा था। सुपरिन्टेंडेंट कई बार वहां से आया-गया और वह कान ही लगाए बैठा था। सुपरिन्टेंडेंट की भी उत्सुकता जगी कि क्या सुन रहा है! उसने पूछा कि भाई क्या सुन रहे हो? उसने कहा कि शांत, चुप! सुपरिन्टेंडेंट की जिज्ञासा और घनी हो गई। उसने भी कान लगाया दीवाल से। कोई पंद्रह मिनट सुनने के बाद, कुछ सुनाई पड़े न, उसने पूछा पागल को कि मुझे तो कुछ सुनाई नहीं पड़ता। पागल ने कहा कि दो घंटे मुझे भी हो गए, मुझे भी कुछ सुनाई नहीं पड़ता। आप तो पंद्रह ही मिनट में कहने लगे, अरे मुझे दो घंटे हो गए, कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है। इसको तुम पागल कहोगे। क्यों पागल कह रहे हो, क्योंकि उसे सुन रहा है
जो है ही नहीं। पागल उससे बातें करता है जो है ही नहीं।
शंकराचार्य बिल्कुल पागल होने चाहिए। अगर जगत असत्य है, मिथ्या है, किसको समझाते? किसका खंडन, किसका मंडन? शास्त्र किसके लिए लिखते हो, शास्त्र कैसे लिखते हो? तुम भी नहीं हो।
शंकराचार्य कहते हैंः मेरा तेरा सब झूठ। और कथा तुमसे मैं कहूं, जिसमें पता चलता है कि मेरा-तेरा झूठ नहीं। शंकराचार्य ने मंडन मिश्र से विवाद किया, महत्वपूर्ण विवाद हुआ। छह महीने विवाद चला। मंडन मिश्र उस समय के बड़े ख्यातिलब्ध पंडित थे। लेकिन शंकराचार्य की तर्क-प्रक्रिया जरूर मंडन मिश्र से श्रेष्ठ थी। प्रखर था तर्क शंकराचार्य का। मगर तर्क से कुछ होता नहीं। हरा दिया मंडन मिश्र को। अध्यक्षता कर रही थी मंडन मिश्र की पत्नी--भारती। क्योंकि कोई व्यक्ति चाहिए था जो निर्णय दे सके और सिवाय भारती के कोई ऐसा व्यक्ति उपलब्ध न था जो शंकराचार्य और मंडन मिश्र के विवाद की अध्यक्षता करे। भारती ने अध्यक्षता की और उसने घोषणा भी की। बड़ी ईमानदार स्त्री रही होगी। उसने कहा कि शंकराचार्य जीत गए, मंडन मिश्र हार गए। अपने पति को घोषित कर दिया कि हार गया।
लेकिन शंकराचार्य किसको हरा रहे हैं, जो नहीं है? कौन जीत रहा है, जो नहीं है? और भारती ने तब उन्हें मुश्किल में डाल दिया। और उसने कहाः लेकिन एक बात याद रखें। आप तो शास्त्रों के जानकार हैं, शास्त्र कहते हैं कि पत्नी अर्धांग होती है। तो अभी आपने आधे मंडन मिश्र को जीता है, अभी मैं शेष हूं। अभी जीत अधूरी है। अब मुझे जीतें। जब तक मुझे न जीतेंगे, यह जीत पूरी नहीं है। डंका मत बजाते फिरना कि मैंने जीत लिया। मंडन मिश्र हार गए, अभी आधे मंडन मिश्र हारे, आधे मौजूद हैं।
शंकराचार्य को भी बात तो माननी पड़ी, कि बात तो शास्त्र की थी। स्त्री अर्धांगिनी है। सोचा न था कभी कि ऐसी झंझट आएगी। एक नई झंझट आ गई छह महीने के बाद। स्त्रियां जो झंझट न खड़ी कर दें... । शंकराचार्य अविवाहित थे। किसी तरह स्त्री से बचे थे, यहां उलझ गए। खुद की स्त्री नहीं थी, दूसरे की स्त्री ने झंझट पैदा कर दी। झंझटों का मामला ऐसा है कि अपनी स्त्री न हो तो किसी और की स्त्री पैदा कर दे। और जवाब न सूझा क्योंकि बात तो शास्त्र की थी। इनकार करते भी तो कैसे करते? झुक कर स्वीकार कर लिया कि ठीक है विवाद करूंगा।
और फिर तुम जानते हो कि स्त्री के तो सोचने के ढंग अलग होते हैं, विचारने के ढंग अलग होते हैं। उसने ब्रह्म वगैरह की चर्चा नहीं की। उसने

तो वात्स्यायन के काम-सूत्र की चर्चा की। ब्रह्मसूत्र की नहीं, बादरायण के ब्रह्मसूत्र की नहीं--वात्स्यायन के काम-सूत्र की। शंकराचार्य को झंझट में डाल दिया, और भी झंझट में डाल दिया, क्योंकि वे ब्रह्मचारी। अभी उम्र भी उनकी कोई ज्यादा नहीं थी--कोई तीस साल। स्त्री को तो जाना नहीं, पहचाना नहीं। मेरे संन्यासी होते तो कोई अड़चन न थी। पुराने ढब के संन्यासी थे, काम-सूत्र पर क्या कहें! निवेदन किया कि मुझे छह महीने की छुट्टी दी जाए, ताकि मैं काम-सूत्र का अध्ययन करूं, कामवासना के संबंध में कुछ विचार करूं, तब विवाद चले आगे। भारती ने कहा कि ठीक है, छह महीने बाद आ जाएं।
तब कहानी कहती है कि शंकराचार्य ने अपनी देह छोड़ी, शिष्यों के पास अपनी देह रखवा दी एक गुफा में और शिष्यों से कहाः मेरी देह की फिकर करना, क्योंकि छह महीने बाद मैं वापस लौटूंगा। और एक राजा मरा तो उस मृत राजा की देह में प्रवेश कर लिया, ताकि कामवासना का अनुभव किया जा सके। शंकराचार्य के मानने वाले इस बात को बड़े गौरव से उल्लेख करते हैं, क्योंकि यह बड़े चमत्कार की बात है--अपनी देह छोड़ना, दूसरे की देह में प्रवेश करना--परकाया प्रवेश! मगर मैं पूछता हूं, यह मेरे-तेरे का भेद कैसा? काया तो काया है। काया तो माया है! इसमें मेरा और तेरा क्या? अगर कामवासना का अनुभव करना था तो अपनी ही काया से क्यों न कर लिया? इसमें किसी दूसरे की काया में प्रवेश करके किया, यह बात तो बड़ी बेईमानी की मालूम पड़ती है। इसमें दोहरी बेईमानी हो गई। एक तो राजा की पत्नी को धोखा दिया, क्योंकि राजा की पत्नी समझी कि राजा पुनरुज्जीवित हो उठा है। वह तो अपना पति मान कर ही संभोग करती रही राजा से। एक तो दूसरे की पत्नी को धोखा दिया! यह व्यभिचार है, बलात्कार है। और मजा यह है कि यह धोखा किसलिए दिया! यह धोखा इसलिए दिया कि मेरी काया तो ब्रह्मचारी की काया है! काया का भी जैसे कोई ब्रह्मचर्य होता है! ब्रह्मचर्य तो आत्मा का होता है।
यह जो लोग कहते हैं कि सारा संसार माया है, काया माया है, यह सब मिट्टी है--ये भी जानते नहीं की मिट्टी है। मिट्टी-मिट्टी में भी भेद। अपनी मिट्टी, उसकी मिट्टी! उसकी मिट्टी खराब करो, ठीक, अपनी मिट्टी बचाओ! मिट्टी पर भी ऐसा आग्रह, ऐसी आसक्ति! अपनी मिट्टी तो रख गए शिष्यों के पास कि छह महीने तक रक्षा करना, कोई कीड़े-मकोड़े न लग जाएं, शरीर सड़ न जाए, इसकी फिकर करना, हिफाजत करना। अपनी मिट्टी को तो बचा कर रख गए और दूसरे की मिट्टी में प्रवेश कर गए! मिट्टी मिट्टी में भी अपना और तेरे का भेद है! फिर यह सब माया और ब्रह्म की बातें बकवास हैं। फिर यह जगत कैसा मिथ्या है? यह जगत तो बहुत सत्य मालूम होता है; इसमें मिट्टी भी सत्य मालूम होती है। यह किस बात की सूचना हुई?
और मजा यह है कि शंकराचार्य के मानने वाले मानते हैं कि उनका ब्रह्मचर्य खंडित नहीं हुआ। अपनी ही देह से भोगते स्त्री को तो खंडित होता ब्रह्मचर्य; दूसरे की देह से स्त्री को भोगा तो खंडित नहीं हुआ! तो ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ--कुछ देह की बात है, आत्मा का इससे कुछ संबंध नहीं। फिर इसको ब्रह्मचर्य क्यों कहते हो? ब्रह्मचर्य शब्द में ही ब्रह्म समाया हुआ है। ब्रह्मचर्य का अर्थ भी शंकराचार्य को पता नहीं मालूम होता। ब्रह्मचर्य का अर्थ होता हैः ब्रह्म जैसा आचरण, ब्रह्म जैसी चर्या। यह तो बड़े अज्ञान की चर्या हुई। यह चमत्कार न हुआ। इसकी कोई ठीक से व्याख्या नहीं किया हजारों वर्षों में, मैं ठीक से व्याख्या कर रहा हूं। यह चमत्कार न हुआ, यह मूढ़ता हुई।
सच तो यह है यह कहानी गढ़ी होगी। यह सिर्फ ब्रह्मचर्य को बचाने के लिए, बढ़ाने के लिए, ब्रह्मचर्य के लिए आवरण खड़ा करने के लिए कहानी गढ़ी होगी। भोग तो किया होगा उसी देह से। भोग करने वाला तो वही है। और अगर कोई यह कहे कि वह तो साक्षीभाव से भोग किए, तो अपनी ही देह में कर लेते साक्षीभाव से। इसमें दूसरे की देह में जाने की क्या जरूरत थी? और दूसरे की स्त्री को धोखा देने की क्या जरूरत थी? कम से कम ईमानदारी तो होनी ही चाहिए। धर्म का इतना तो बुनियादी आधार होना चाहिए।
और एक घटना है कि शंकराचार्य सुबह-सुबह स्नान करके काशी के घाट पर प्रभु स्मरण करते हुए ब्रह्ममुहूर्त में सीढ़ियां चढ़ रहे थे और एक शूद्र

ने उन्हें छू लिया। शूद्र को छूते ही वे नाराज हो गए। और कहा कि अंधे, मूढ़! तुझे शर्म नहीं आती? शूद्र होकर ब्राह्मण को छू लिया!
जगत माया है, शूद्र सत्य है! मत कहो कि जगत माया है, ब्रह्म सत्य। कहो--"जगत माया, शूद्र सत्य!" कहां का ब्रह्म; कैसा ब्रह्म? शूद्र सत्य है! और शंकराचार्य ने कहाः मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा। तूने अपवित्र कर दिया। मिट्टी मिट्टी को छू गई--एक मिट्टी शूद्र की, एक मिट्टी ब्राह्मण की! मिट्टी भी ब्राह्मण और शूद्र होती है? शंकराचार्य से तो लगता है कि शूद्र ही ज्यादा समझदार था। शूद्र ने कहाः प्रार्थना करता हूं महात्मन, मेरे प्रश्नों के उत्तर दें। पहला तो यह कि मेरी देह ने आपकी देह को छुआ, क्या देह भी शूद्र और ब्राह्मण होती है? मैं भी नहाया हुआ हूं, आप भी नहाए हुए हैं। मैं गैर-नहाया हुआ नहीं हूं, मैं भी नहा कर गंगा से आ रहा हूं। गंगा ब्राह्मण को ही पवित्र करती है, शूद्र को नहीं? और आप ही नहीं ईश्वर का स्मरण कर रहे हैं, मैं भी स्मरण कर रहा हूं, तो ईश्वर का स्मरण आपको ही शुद्ध करता है मुझे नहीं? तो यह भेद-भाव ईश्वर की दुनिया में भी जारी है? गंगा भी पक्षपाती है? तो मैंने आपको छू दिया तो क्या बिगड़ गया? अगर आपको मैंने छू दिया, मैं अपवित्र नहीं हुआ तो आप कैसे अपवित्र हो गए? और अगर आप कहते हों कि यह सवाल देह का नहीं है आत्मा का है तो मैंने एक तो आपकी आत्मा छुई नहीं। आत्मा छुई जा सकती नहीं। अगर ठीक से समझो तो आत्मा ही एकमात्र अछूत है। छुई जा सकती ही नहीं इसलिए अछूत। अछूत का मतलब छूने योग्य नहीं है ऐसा नहीं; छूने के पार है, ऐसा। स्पर्श नहीं किया जा सकता। फिर भी अगर आप कहते हो कि आत्मा छू लेने से अपवित्र हो गई तो मैं यह पूछता हूं कि क्या आत्मा भी अपवित्र हो सकती है? आत्मा तो स्वाभावतः पवित्र है, स्वरूपतः पवित्र है। वह तो ब्रह्म ही है, स्वयं ब्रह्म है। और जगत माया और ब्रह्म सत्य की बातें... !
और शंकराचार्य ने जितना ब्राह्मणवाद इस देश में फैलाया उतना किसी और व्यक्ति ने नहीं फैलाया। और शंकराचार्य की चिंतना का, विचारणा का कुल परिणाम इतना हुआ कि शंकराचार्य एक जमात छोड़ गए हैं अहंकारियों की। जगत मिथ्या सो फिर अहंकार ही सत्य रह जाता है और कुछ बचता नहीं। अब यह अहंकार है कि यह मेरी देह है। जहां मेरे का भाव है वहां अहंकार है। यह अहंकार है कि मैं ब्राह्मण और तू शूद्र और तूने छूकर मुझे अपवित्र कर दिया। क्या खाक ब्राह्मण रहे होंगे! अगर ब्राह्मण थे तो तुम्हें छूने से शूद्र भी होता तो ब्राह्मण हो जाना चाहिए था। यह क्या बात हुई कि शूद्र ब्राह्मण को छुए तो ब्राह्मण अपवित्र हो जाए! होना तो यह चाहिए कि शूद्र पवित्र हो जाए। यह क्या ब्राह्मण की नपुंसकता हुई! यह तो शूद्र ज्यादा बलवान सिद्ध हुआ। लेकिन हमारे बड़े मजे हैं। हम तोतों की तरह दोहराए जाते हैं।
पंडित ब्रह्मप्रकाश, तुम पूछ रहे हो कि "सत्य की परिभाषा है--वह, जो कि नश्वर भी नहीं है।"
यह परिभाषा तुम्हें कहां मिली, कैसे मिली? सत्य को जाना है? मैं कहता हूं, मैंने जाना है और ऐसा पाया है कि सत्य नश्वर भी है, अनश्वर भी। सत्य संसार भी है, ब्रह्म भी। सत्य देह भी है, आत्मा भी। सत्य के ये दो पहलू हैं, इनमें कुछ विरोधाभास नहीं। इनमें बड़ा तालमेल है। इनमें बड़ा गहन ऐक्य है, अद्वैत है। इनके बीच संगीतपूर्ण लयबद्धता है।
तुम ही देखो, तुम्हारी देह में और तुम्हारी आत्मा में कैसी लयबद्धता है। देह प्रफुल्लित हो तो आत्मा प्रफुल्लित होती है। आत्मा प्रफुल्लित हो तो देह प्रफुल्लित होती है। बड़ी लयबद्धता है। जैसी तुम्हारी देह और आत्मा में लयबद्धता है, ऐसे ही ब्रह्म में और उसकी देह--इस विराट संसार में--लयबद्धता है। मनुष्य छोटा सा रूप है इस पूरे जगत का। इस जगत की पूरी कथा उसमें लिखी है। एक मनुष्य को हम पूरा समझ लें तो हमने सारा अस्तित्व समझ लिया। मनुष्य प्रतीक है।
तुम्हारे भीतर आत्मा और शरीर में कैसा तारतम्य बंधा हुआ है, कैसा नृत्य चल रहा है! ठीक ऐसा ही नृत्य ब्रह्म में और उसकी अभिव्यक्ति में चल रहा है।

और शंकराचार्य बहुत अड़चन में पड़े। अड़चन में प.ड़ेंगे ही, क्योंकि व्याख्या अड़चन में डालने वाली है। उनसे बार-बार पूछा गया है, जिसका वे जवाब नहीं दे सके और हजार साल में कोई शंकराचार्य को मानने वाला जवाब नहीं दे सका। जवाब है नहीं, कोई देगा भी कैसे? उनसे पूछा गया--अगर ब्रह्म सत्य है और माया असत्य है, तो यह माया आई कैसे, आई क्यों, कहां से आई? क्योंकि सबका स्रोत तो ब्रह्म है। फिर माया का स्रोत भी ब्रह्म ही होगा। नहीं तो आएगी कहां से? ब्रह्म के अतिरिक्त तो कुछ भी नहीं है। ब्रह्म ही तो सर्वव्यापी है। वही तो एकमात्र अस्तित्व है।
ब्रह्म अस्तित्व का पर्यायवाची है। "ब्रह्म" शब्द प्यारा है। ब्रह्म
का अर्थ होता हैः जो विस्तीर्ण है, फैला हुआ है; जो लोक-लोकांतर में व्याप्त है; जिसने सारे आकाश को आच्छादित किया हुआ है। ऐसी इंच भर जगह नहीं है जहां ब्रह्म न हो। तो फिर माया कहां से आई?
तो फिर शंकराचार्य को लीपापोती करनी पड़ती है। वह लीपापोती बिल्कुल व्यर्थ है, उससे किसी को धोखा पैदा नहीं होता। हां, जिनको धोखा ही खाना है उनकी बात और। यह सीधा सवाल है, इसका जवाब नहीं हो सकता। आएगी तो ब्रह्म से आएगी। और तब अड़चन खड़ी हो जाएगी। दो ही बात हो सकती हैं। या तो ब्रह्म के अतिरिक्त कहीं से आई, तो फिर हमें अस्तित्व का एक स्रोत और भी मानना होगा ब्रह्म के अलावा भी। तब जगत में दो ब्रह्म हो जाएंगे, दो सत्य हो जाएंगे, और अड़चन फिर बढ़ती चली जाएगी। फिर दोनों में कौन बड़ा सत्य है? फिर दोनों में कौन शक्तिशाली है? फिर एक बात तो तय हो जाएगी कि ब्रह्म फिर सर्वशक्तिमान नहीं है, और भी कोई है जो कुछ कम शक्तिशाली नहीं मालूम होता। सच तो यह है कि ज्यादा शक्तिशाली मालूम होता है; क्योंकि संसार अधिक लोगों को प्रभावित करता है, ब्रह्म तो शायद ही कभी किसी को प्रभावित कर पाता है-- कभी करोड़ों में एकाध। अधिकतम लोग तो संसार से ही प्रभावित हैं, संसार में ही जी रहे हैं। तो वह जो दूसरा ब्रह्म है, वह ज्यादा शक्तिशाली मालूम होता है। उसकी विजय बड़ी मालूम होती है। उसने अधिक लोगों को जीता हुआ है। यह तुम्हारे तथाकथित ब्रह्म, यह तो कभी एकाध वोट इनको मिल जाए कहीं तो मिल जाए। इनकी हैसियत क्या है?
और दूसरा स्रोत मान लिया तो अड़चन और खड़ी हो जाने वाली है। फिर सवाल यह
है कि हम किस ब्रह्म को खोजें? जिससे माया पैदा हुई उसको खोजें, कि जो माया के विपरीत है उसको खोजें? किसको खोजने से मुक्ति होगी? और फिर दोनों में संघर्ष होगा, कौन जीतने वाला है? कैसे निर्णय होगा? जो जीते उसी के साथ होना चाहिए। और जीतता तो दिखता है नंबर दो का ब्रह्म; नंबर एक का तो ब्रह्म जीतता नहीं दिखता, हारता दिखता है, रोज-रोज हार होती चली जाती है। तो यह तो माना नहीं जा सकता कि एक और स्रोत है। तब फिर एक ही उपाय बचता है कि ब्रह्म से ही माया पैदा हुई। तब एक अड़चन खड़ी होती है कि सत्य से मिथ्या कैसे पैदा हो सकता है? सत्य के वृक्ष में मिथ्या फूल लगें! सत्य की हों शाखाएं, सत्य की हों जड़ें और फूल लगें झूठ के--असंभव! सत्य से जो पैदा होगा वह भी सत्य होगा।
शंकराचार्य इस परिभाषा में उलझ कर बहुत झंझट में पड़ गए। उनकी काफी पिटाई हुई है एक हजार साल में। होना निश्चित थी। जिम्मेवार वे खुद हैं। मैं तो मानता हूं कि यह जगत ब्रह्म से ही विस्तीर्ण होता है, उसकी ही अभिव्यक्ति है, उसका ही आह्लाद है, उसका ही उत्सव है। ये सब रंग उसके हैं, ये सब फूल उसके हैं। ये सब व्यक्तित्व उसके हैं। ये सब रूप उसके हैं, ये सब नाम उसके हैं। वही है पहाड़ों में, वही नदियों में, वही झरनों में, वही मनुष्यों में, वही पशुओं में, वही पक्षियों में। इस सारे वैविध्य के भीतर वही है। इसलिए मैं इस वैविध्य को असत्य नहीं कह सकता, क्योंकि इसको असत्य कहूं तो फिर दो बातें करनी पड़ेंगी--या तो ब्रह्म को भी असत्य कहो, क्योंकि असत्य से ही असत्य पैदा हो सकता है; या फिर दोनों को सत्य कहो।
दोनों को असत्य कहने वाले लोग भी पैदा हुए, जैसे नागार्जुन। नागार्जुन ने कहा, दोनों असत्य, क्योंकि संसार असत्य है। और उसका तर्क कहीं शंकराचार्य से ज्यादा श्रेष्ठकर है। शंकराचार्य उसके सामने कहीं टिकते नहीं। नागार्जुन ने कहा कि अगर जगत असत्य है तो ब्रह्म भी असत्य।

जहां से नागार्जुन ने पकड़ा वहीं से मैंने शंकर को पकड़ा है, लेकिन नागार्जुन शंकर के ही तर्क को आगे बढ़ाता है। वह कहता है कि अगर जगत असत्य है तो ब्रह्म भी असत्य, क्योंकि जब फूल असत्य है तो हम वृक्ष को कैसे सत्य मानें? उसका भी तर्क वही है जो मेरा है, हालांकि वह दूसरे आयाम में गया। उस आयाम में मैं जाने को राजी नहीं हूं, क्योंकि उसमें वह उलझन में पड़ा। नागार्जुन से पूछा गयाः जब सभी असत्य है, तो तुम किसको समझा रहे हो? किसको लिख रहे हो? जगत भी असत्य, तुम भी असत्य। कम से कम शंकराचार्य खुद तो सत्य थे। जगत असत्य हो, कम से कम आत्मा तो सत्य थी।
नागार्जुन ने कहा कि जब सारा जगत असत्य है, दृश्य असत्य है, तो द्रष्टा कैसे सत्य हो सकता है? वह शंकराचार्य की जो तर्कसरणी है, नागार्जुन उस तर्कसरणी पर शंकराचार्य से बहुत आगे चला जाता है। वह उसी तर्क को पूरा खींचता है। शंकराचार्य बेईमान मालूम होते हैं, बीच में ही रुक जाते हैं। लेकिन नागार्जुन इस अर्थों में ईमानदार हैं। झंझटें बहुत आती हैं उस पर, मगर वह तर्क को पूरा ले जाता है, जहां तक ले जाया जा सकता है। वह कहता हैः असत्य से ही असत्य पैदा हो सकता है। और जब दृश्य ही असत्य है तो द्रष्टा कैसे सत्य होगा? द्रष्टा भी असत्य। सब असत्य।
मगर उसकी अड़चन खड़ी होती है कि जब सब असत्य है तो तुम किसको समझा रहे? सांप है ही नहीं और तुम लाठी मार रहे! और लाठी मारने वाला भी नहीं है और लाठी भी नहीं है।
मैंने भी तर्क को वहीं से पकड़ा है, लेकिन मैं दूसरे आयाम में ले जा रहा हूं। मैं कह रहा हूं कि जगत भी सत्य है और ब्रह्म भी सत्य है। और मैं जब यह कह रहा हूं तो यह मेरी कोई तार्किक निष्पत्ति मात्र नहीं है। यह मेरा अनुभव है। मैं अपनी देह को उतना ही सत्य मानता हूं जितनी अपनी आत्मा को। और इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं--संसार को छोड़ना मत। लोग मेरी बात समझें या न समझें, क्योंकि लोगों के पास पिटी-पिटाई धारणाएं हैं, लेकिन मैं जो कह रहा हूं उसके लिए बुनियादी आधार है। मैं यह कह रहा हूं कि संसार को मत छोड़ना क्योंकि संसार परमात्मा का ही रूप है, उसका ही गीत है। गायक छिपा है, गीत सुनाई पड़ा है। जैसे दूर कोयलिया बोले! कोयल दिखाई भी न पड़े, लेकिन गीत, उसकी गूंज तुम तक आ जाए, तो तुम मान लोगे कि कोयल है, क्योंकि गीत है। यह कोयल की कुहू-कुहू पर्याप्त है, प्रमाण है कि कोयल भी होगी। नहीं दिखाई पड़ती, कहीं छिपी है दूर अमराई में, मगर कुहू-कुहू की पुकार तुम्हारे प्राणों को गदगद कर जाती है, तो कोयल होगी।
संसार परमात्मा की कुहू-कुहू है। परमात्मा छिपा है किसी गहरी अमराई में, अप्रकट है, तुम्हारे भीतर भी छिपा है, मेरे भीतर भी छिपा है। पत्थर में भी वही सोया हुआ है, बुद्धों में भी वही जागा है। जो पत्थरों में सोया है, वही बुद्धों में जागा है। हमने अच्छा किया कि बुद्ध की हमने मूर्तियां बनाईं वे पत्थर की बनाईं। उससे संकेत दिया हमने जगत को कि पत्थर में भी वही है, जो बुद्ध में है। हमने भेद तोड़ा। हमने कहाः देखो, हम मूर्ति बुद्ध की पत्थर में बनाते हैं।
सबसे पहले मूर्तियां जगत में बुद्ध की बनीं। इसलिए उर्दू में तो "बुत" शब्द मूर्ति का पर्यायवाची हो गया। बुत बुद्ध का ही बिगड़ा हुआ रूप है। बुत-परस्ती का अर्थ हैः बुद्ध-परस्ती। बुद्ध की ही पहली प्रतिमाएं दुनिया में दिखाई पड़ीं। और हमने प्रतिमाएं बनाईं पत्थर की। इशारा यह था कि जो पत्थर में सोया है वही बुद्ध में जागा है। एक ही है। वही सोता है, वही जागता है। वही भटकता है, वही घर लौट आता है। उसका ही सब खेल है, उसकी ही सारी लीला है।
संसार से भागना मत। संसार को गंभीरता से भी मत लेना, त्यागना भी मत। पलायन कायरता है।
अपने संन्यासी को में कहता हूंः जीओ, जी भर कर जीओ! पीओ, जी भर कर पीओ!
और प्रतिपल साक्षी भी बने रहो। दृश्य भी सत्य है, द्रष्टा भी सत्य है।
लेकिन तुम दोनों को जानो। तुम दोनों में अपने अनुभव को विस्तीर्ण करो-- दृश्य में भी और द्रष्टा में भी। तब तुम्हारे जीवन में सत्य अपनी समग्रता से उतरेगा।

अब तक का जो संन्यास था वह अधूरा था, अपंग था। अब तक का जो संसारी था वह
भी अधूरा था और अपंग था। मेरा संन्यासी न तो पुराने ढंग का संन्यासी है, न पुराने ढंग का संसारी है। मेरे संन्यास में संसार और संन्यास ने अपना द्वंद्व छोड़ दिया, अपना द्वैत छोड़ दिया; वे अद्वैत को उपलब्ध हो गए हैं। मेरा संन्यासी ध्यानपूर्वक संसार में जीएगा, साक्षीभाव से संसार में जीएगा। ब्रह्म में रहेगा और संसार से भागेगा नहीं। क्योंकि दोनों सत्य हैं और एक ही सत्य के दो पहलू हैं।
सुन लो पंडित ब्रह्मप्रकाश, कबीर क्या कहते हैं--

चुवत अमीरस, भरत ताल जहं, शब्द उठै असमानी हो,
सरिता उमड़ि सिंधु को सोखै, नहिं कछु जाए बखानी हो।
चांद सुरज तारागन नहिं वहं, नहिं वहं रैन बिहानी हो।
बाजे बजैं सितार बांसुरी, रंरंकार मृदुबानी हो।
कोटि झिलमिलै जहं तहं झलकै, बिनु जल बरसत पानी हो।
दस अवतार एक रत राजैं, अस्तुति सहज सेआनी हो।
कहै कबीर भेद की बातैं, बिरला कोई पहचानी हो।

भेद की बात कोई बिरला पहचान पाता है। और क्या भेद की बात? नहिं कछु जाए बखानी हो! बात ऐसी है कि कहो तो कही नहीं जा सकती, मगर अनुभव की जा सकती है।
चुवत अमीरस! वहां जहां अनुभव होता है, वहां अमृत झरता है। सत्य एक स्वाद है अमृत का। चुवत अमीरस, भरत ताल जहं! और कुछ छोटी-मोटी बूंदा-बांदी नहीं होती, ताल भर जाते हैं भीतर, सरोवर उमड़ आते हैं भीतर! मानसरोवर निर्मित हो जाता है भीतर।
चुवत अमीरस, भरत ताल जहं, शब्द उठै असमानी हो।
और भीतर शास्त्र का जन्म होता है, उपनिषद पैदा होते हैं, कुरान जगते हैं, बाइबिल बोलती है। शब्द उठै असमानी हो! मगर वह शब्द हमारा नहीं होता-- आकाश का होता है, विराट का होता है। हमारा तर्क बहुत पीछे छूट जाता है। हम खुद ही बहुत पीछे छूट जाते हैं। वह जो ध्वनि उठती है, वह जो शब्द उठता है, हमसे बड़ा। हम उसमें सिर्फ एक झंकार हो जाते हैं।
सरिता उमड़ि सिंधु को सोखै! और मामला ऐसा है सत्य का, ऐसा बेबूझ पहेली जैसा, इसलिए मैं कहता हूं विरोधाभासी। सरिता उमड़ि सिंधु को सोखै, ... जैसे सरिता उमड़े और सागर को पी जाए, भरोसा न आए। यह बात ही भरोसे की नहीं कि सरिता उमड़े और सागर को पी जाए। मगर ऐसा ही अनुभव है। तुम्हारे भीतर इतना विराट समा जाता है कि भरोसा नहीं आता, जैसे बूंद में सागर समा जाए!
सरिता उमड़ि सिंधु को सोखै! एक-एक जाग्रत पुरुष ब्रह्म को पूरा का पूरा
पी गया है, कुछ छोड़ा नहीं। बड़ी हैरानी की बात है। हम इतने छोटे हैं और विराट को पी जाते हैं! मगर यह घटना घटती है। और घटती है, तभी समझ में आती है। लाख कोई समझाए, समझ के पार रह जाएगी। मैं कितना ही तुमसे कहूं कि जगत भी सत्य, ब्रह्म भी सत्य; मगर जब तक यह तुम्हारा अनुभव न हो तब तक बात तुम्हें जमेगी नहीं। तुम्हारे पुराने पक्षपात घेरे रहेंगे।
सरिता उमड़ि सिंधु को सोखै, नहीं कछु जाए बखानी हो।
अब क्या कहें, किससे कहें? छोटी सी सरिता ने सागर को पी लिया है। कहें
तो कौन मानेगा? लाख सिर पटकें, कोई राजी न होगा।
चांद सुरज तारागन नहीं वहं, नहीं वहं रैन बिहानी हो।
बाजे बजै सितार बांसुरी, ...
बड़ा आह्लादपूर्ण है वह अनुभव। संगीत है, नृत्य है, महोत्सव है।
बाजे बजैं सितार बांसुरी, रंरंकार मृदुबानी हो।
कोटि झिलमिलै जहं तहं झलकै! जैसे करोड़ों दीये जल गए हों! सब तरफ झिलमिल-झिलमिल हो जाती है। तुम्हारे भीतर का दीया क्या जलता है, सबके भीतर के दीये तुम्हें दिखाई पड़ने लगते हैं। उनको नहीं दिखाई नहीं पड़ रहे उनके भी भीतर के दीये, तुम्हें दिखाई पड़ने लगते हैं। बुद्ध ने कहा हैः जब मैं ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो मैंने जाना कि सारा जगत मेरे साथ ज्ञान को उपलब्ध

हो गया है। मैंने क्या बुद्धत्व पाया, सारे जगत ने मेरे साथ बुद्धत्व पा लिया!
कोटि झिलमिलै जहं तहं झलकै, बिनु जल बरसत पानी हो।
और बड़ी मुश्किल है। कोई मेघ दिखाई पड़ते नहीं, कोई जल दिखाई पड़ता नहीं--
और यूं वर्षा हो जाती है, यूं बरसता है, ऐसा घनघोर बरसता है, ऐसा उमड़-घुमड़ कर बरसता है! न कहीं बादल दिखाई पड़ते, न कहीं कोई जल दिखाई पड़ता और वर्षा होती है। और भिगा जाती है, भिगो जाती है, गीला कर जाती, आर्द्र कर जाती है, रस से भर जाती है। चुवत अमीरस, भरत ताल जहं!
दस अवतार एक रत राजैं! और परमात्मा के जितने रूप प्रकट हुए हैं, सब एक साथ प्रकट हो जाते हैं। सभी अवतार जैसे एक साथ सामने खड़े हो जाते हैं। कृष्ण की बांसुरी बजती है, बुद्ध की समाधि जगती है, महावीर का कैवल्य--सब एक साथ!
दस अवतार एक रत राजैं, अस्तुति सहज सेआनी हो।
अब किस-किस की प्रार्थना करो, किस-किस की स्तुति करो? अवाक रह जाता है अनुभव करने वाला। वाणी खो जाती है। गूंगा हो जाता है। बोल नहीं उठता। कहैं कबीर भेद की बातैं, बिरला कोई पहचानी हो।
पंडित ब्रह्मप्रकाश, अगर जानना हो तो ध्यान में उतरो, परिभाषा न पूछो। समाधि में उतरो, तर्कशास्त्र में मत पड़ो। ऐसे मुझे कुछ अड़चन नहीं है। तर्क मेरे लिए खेल है। तर्क ही करने में किसी को रस आता हो तो मुझे कुछ बेचैनी नहीं। मैं तर्क भी कर सकता हूं। मगर तर्क मेरे लिए खेल है, इससे ज्यादा नहीं। उसका कोई मूल्य नहीं है। जैसे ताश के पत्ते कोई खेले। अगर तुम्हें अच्छा लगे तो मैं ताश के पत्ते भी खेलने को राजी हूं। तुम्हारी मर्जी। मगर उससे कुछ हल नहीं होगा। वे सब राजा-रानी ताश के पत्तों पर जो हैं, बस ताश के पत्तों पर हैं, न कोई राजा है, न कोई रानी है। जैसे शतरंज के मोहरे कोई वजीर है, कोई हाथी है, कोई राजा है, कोई कोई भी नहीं वहां। ऐसा ही तर्क का जाल है--शतरंज का खेल है।
मगर मैं उन लोगों में से नहीं हूं कि जिन्हें तर्क करने में कोई अड़चन होती हो। मैं तर्क को उसकी आखिरी सीमा तक खींच सकता हूं। मैं तर्क को खूब धार दे सकता हूं। मगर इतना तुम्हें याद दिलाऊं कि तर्क से कुछ हल न होगा। हल तो होगा समाधि से। समाधान तो होगा समाधि से। परिभाषा न पूछो। अब यहां आ गए हो, यह मयकदा है, पीओ! भूले-चूके आ गए, बड़ी कृपा की! पंडितजन इस तरफ आते नहीं और आ जाते हैं तो मुश्किल में पड़ जाते हैं। अगर तुम उतार कर रख सको अपना पांडित्य, तो यह शराब तुम्हारे लिए भी निमंत्रण है।
फिर दोहरा दूं। एक तो ऐसी जगह आना ठीक नहीं और आ गए तो बिना पीए जाना ठीक नहीं।
योग प्रीतम का यह गीत कुछ इशारे दे सकता है। योग प्रीतम मेरे संन्यासी हैं, और जो मैं कहता हूं उसे गीतों में बांध देते हैं।

कुछ ऐसी हमारी किस्मत हो, पीता भी रहूं और प्यास भी हो
मस्ती में बहकता दिल भी रहे और होश भरा उल्लास भी हो

मिट जाएं मेरी हस्ती के निशां, मौजूद भी लेकिन पूरा रहूं
मैं उसका नजारा देखा करूं, संसार भी हो, संन्यास भी हो

जीवन का सफर यों बीते अगर, कुछ धूप भी हो, कुछ छांव भी हो
मिलता भी रहे चलने का मजा, मंजिल का सदा अहसास भी हो

पर्दे में छुपा हो लाख मगर, जलवा भी दिखाई देता रहे
इस आंख-मिचौनी खेल में वो, कुछ दूर भी हो, कुछ पास भी हो

कुछ इश्के-खुदा में चुप भी रहूं, कुछ इश्के-बुतां में बात भी हो धरती भी बसी आंखों में रहे, प्यारा ये खुला आकाश भी हो

हो चुप्पी मगर कुछ गाती हुई, संगीत हो मौन में डूबा हुआ रोदन भी चले कुछ मुस्काता, कुछ अश्रु बहाता हास भी हो

सन्नाटा कभी तूफान सा हो, चुपचाप सी गुजरे आंधी कभी मझधार भी हो साहिल की तरह, पतवार भी हो, विश्वास भी हो

मुमकिन हो अगर यह दुनिया में, जीने का मजा कुछ और ही हो
मौला भी रहे, बंदा भी रहे, गीता भी झरे और व्यास भी हो

कुछ ऐसी हमारी किस्मत हो, पीता भी रहूं और प्यास भी हो
मस्ती में बहकता दिल भी रहे और होश भरा उल्लास भी हो

मिट जाएं मेरी हस्ती के निशां, मौजूद भी लेकिन पूरा रहूं
मैं उसका नजारा देखा करूं, संन्यास भी हो, संसार भी हो

में चुनाव करने को नहीं कहता। मैं पूरा-पूरा जीने को कहता हूं। समग्र रूप से जीना ही धर्म है। अधूरा जीना ही अधर्म है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, संन्यास के बिना भगवत्ता को पाना असंभव है या संन्यास सिर्फ सत्य का द्वार है? कृपया समझाएं।

हर्ष कुमार! क्या खाक समझाऊं? और समझाऊं भी तो क्या तुम समझोगे? तुम्हारा प्रश्न ही ऐसी नासमझी का है। क्या तुम सोचते हो भगवत्ता और सत्य दो चीजें हैं? जरा अपने प्रश्न पर पुनः विचार करो।
पूछते होः "संन्यास के बिना भगवत्ता को पाना असंभव है या संन्यास सिर्फ सत्य का द्वार है?"
सत्य का द्वार कहो या भगवत्ता कहो, एक ही बात है। सत्य और भगवत्ता एक
ही है। तुम्हारी नजर में ऐसा लग रहा है कि भगवत्ता कोई बहुत और बात है, बहुत ऊंची--और संन्यास तो केवल सत्य का द्वार है! सत्य के बाद भी कुछ बच रहता है? सत्य में भगवत्ता समा गई। और तुम ऐसे पूछ रहे हो कि सिर्फ द्वार ही हो तो फिर बिना संन्यास के चल जाएगा। मगर बिना द्वार के प्रवेश कैसे करोगे?
पूछते होः "या सिर्फ द्वार ही है?"
तो तुम्हारा क्या दीवाल से घुसने का इरादा है? नाम से तो तुम सरदार नहीं मालूम होते--हर्ष कुमार! मगर हो सकता है पंजाब में रहते हो और संग साथ का असर पड़ गया हो।
मैंने सुना है, चंड़ीगढ़ विश्वविद्यालय में भाषा प्रतियोगिता हो रही थी। प्रतियोगिता का विषय था कि ऐसी कौन सी भाषा है जो कम शब्दों में अधिक बात प्रकट करती हो? उदाहरण के लिए एक वाक्य चुना गया--क्या मैं अंदर आ सकता हूं? प्रतियोगिता में हिंदी, अंग्रेजी, मराठी और पंजाबी और गुजराती अध्यापकों ने भाग लिया। अंग्रेजी वाले ने कहा सबसे पहलेः मे आई कम इन सर? हिंदी वाला बोलाः श्रीमान, में अंदर आऊं?
मराठी बोलाः मी आत येऊ का?
गुजराती बोलाः हूं अंदर आवी शकुं छूं?
सबसे बाद में वाह गुरु जी का खालसा करते हुए सरदार बिचित्तरसिंह उठे
और हाथ ऊपर उठा कर, कृपाण निकाल कर दरवाजे को धक्का देकर बोलेः वड़ां? वड़ां अर्थात घुसूं? और कृपाण हाथ में देख कर स्वाभावतः... जो निरीक्षक बैठे थे उठ कर खड़े हो गए कि आइए-आइए! अरे विराजिए-विराजिए! ऐसे सरदार बिचित्तरसिंह जीत गए। पूछा उन्होंने--घुसूं? मगर हाथ में कृपाण!
तुम तो बिचित्तरसिंह से भी आगे निकले जा रहे हो, तुम क्या दीवाल से घुसने का इरादा रखते हो? दरवाजे से ही जाना होगा। और दरवाजा मिल गया तो सब मिल गया, बचा क्या? और दरवाजा खुल गया तो सब खुल गया, बचा क्या?

संन्यास द्वार है--सत्य का कहो या भगवत्ता का। संन्यास का अर्थ क्या है? इतना ही कि तुम जीवन को समाधि के रंग में रंग लो। वसंत आ जाए। ये गैरिक वस्त्र वसंत का रंग है। यह वसंत के फूलों का रंग है। यह बहार का रंग है। तुम्हारी जिंदगी खिजां है, इसमें बाहर चाहिए, इसमें वसंत चाहिए, मधुमास चाहिए।
संन्यास का अर्थ कुछ त्यागना नहीं है, छोड़ना नहीं है, भागना नहीं है-- जागना है। और जाग कर भोगना है। अभी सोए-सोए भोगा, अब जाग कर भोगो--बस इतना ही फर्क है। शेष सब वैसा ही रहेगा, कुछ बदलेगा नहीं। बाहर जैसा है वैसा ही चलेगा; शायद और भी सुंदर चले, क्योंकि नींद में तो कुछ भूल-चूक होती ही रहती है, जाग कर भूल-चूक भी असंभव हो जाएगी। और जो होशपूर्वक जीता है, उसके आनंद का अंत नहीं है।
संन्यास तो जीवन की कला है, लेकिन संन्यास के नाम पर बहुत कुछ गलत चला है। उससे भय व्याप्त हो गया है। उससे घबड़ाहट पैदा हो जाती है। संन्यास शब्द से ही घबड़ाहट पैदा हो जाती है। क्योंकि संन्यास के नाम पर बहुत अनाचार हुआ, अत्याचार हुआ। संन्यास के नाम पर कितनी स्त्रियां अपने पतियों के रहते विधवा हो गईं, कितने बच्चे अपने बापों के रहते हुए अनाथ हो गया। इसका कोई हिसाब लगाए, तो शायद तुम्हें पता चले कि अतीत में संन्यास की जो धारणा थी, उसके कारण मनुष्य-जाति को जितना दुख झेलना पड़ा है उतना किसी के कारण नहीं झेलना पड़ा। चंगीज खान और तैमूरलंग और नादिरशाह, सब पीछे हट जाएंगे। मार लिए होंगे इन्होंने कुछ हजार लोग, मगर संन्यास ने जितने लोगों के जीवन को मारा है... और मार ही डालो किसी को तो कृपा है, अधमरा करके छोड़ दो तो और मुश्किल। और संन्यास ने यही किया। जो भाग गए वे अधमरे और जिनको छोड़ गए उनको अधमरा कर गए। जब पति भाग जाता है तो खुद भी अधमरा हो जाता है और पत्नी को अधमरा कर जाता है, बच्चों को अधमरा कर जाता है। कितनी पत्नियों को भीख मांगना पड़ी, कितने बच्चों को भीख मांगनी पड़ी। कितनी पत्नियां वेश्याएं हो गई होंगी तुम्हारे संन्यासियों के कारण और कितनी पत्नियों को कितना नहीं दुख उठाना पड़ा होगा! और कितने बच्चे खिल भी न पाए होंगे और कुम्हला गए होंगे! अगर हम पांच हजार साल में तुम्हारे तथाकथित संन्यासियों का सारा हिसाब-किताब लगा पाएं तो शायद लगे कि इससे बड़ी कोई महामारी पृथ्वी पर न कभी फैली थी, न कभी फैलेगी।
मेरा प्रयास है कि संन्यास को रुग्णता से मुक्ति दिला दूं; उसे स्वस्थ कर लूं, उसे गरिमा दे दूं, उसे महिमामंडित कर दूं। इसलिए मैं संन्यास की परिभाषा बदल रहा हूं, उसका रंग-रूप बदल रहा हूं। स्वभावतः हिंदू नाराज हैं, मुसलमान नाराज हैं, ईसाई नाराज हैं, जैन नाराज हैं, बौद्ध नाराज हैं। होंगे ही, क्योंकि उनकी सारी संन्यास की धारणा को मैं राख किए दे रहा हूं। मेरी संन्यास की अपनी नई धारणा है। और मैं इस बात की घोषणा करता हूं कि मैं जिसे संन्यास कह रहा हूं, वही संन्यास मनुष्य-जाति के लिए सौभाग्य सिद्ध हो सकता है। अतीत का संन्यास तो दुर्भाग्य सिद्ध हुआ। संन्यास अर्थात जीवन को जीने की कला। न इससे कुछ कम, न इससे कुछ ज्यादा--बस जीवन को जीने की कला।
अब तुम पूछते हो हर्ष कुमार कि "संन्यास के बिना भगवत्ता को पाना असंभव है?"
संन्यास तक की हिम्मत नहीं है, भगवान को पचा पाओगे? फिर यह सरिता सागर
को पी जाएगी? संन्यास तक की हिम्मत नहीं है और भगवान को पाने का इरादा रखते हो? जीवन तक को जीने की छाती नहीं है, भगवान को झेल सकोगे? कहां है वह झोली तुम्हारे पास? कहां हैं वे प्राण तुम्हारे पास? संन्यास उसी की तो तैयारी है कि अगर परम अतिथि आए तो ऐसा न हो कि द्वार से ही लौट जाए, कि हमारे द्वार बंद हों। कहीं ऐसा न हो कि द्वार तो खुले हों, लेकिन बंदनवार न लगा हो। कहीं ऐसा न हो कि द्वार भी हो, द्वार भी खुला हो, वंदनवार भी लगा हो, लेकिन हम बेहोश पड़े हों। कहीं ऐसा न हो कि हम बेहोश भी न हों, लेकिन आंख बंद किए बैठे हों।
संन्यास तैयारी है अपने को उस परम अतिथि के योग्य बनाने की कि वह आए
तो हमें तैयार पाए। और वह आता है, रोज आता है, प्रतिपल आता है, द्वार

खटखटाता है। मगर या तो तुम सोए और या तुम कहीं और, घर तो तुम मिलते ही नहीं, क्योंकि तुम सदा कहीं और। तुम जहां हो वहां नहीं होते।
ख्याल करना, तुम जहां हो वहां नहीं होते, तुम सदा कहीं और होते हो-- अतीत की स्मृतियों में खोए हो, भविष्य की कल्पनाओं में खोए हो। मगर वहां नहीं जहां तुम हो, कहीं और।
एक महिला एक साधु के पास जाती थी। वह अपने पति की अधार्मिकता से परेशान थी। अपने को धार्मिक मानती थी।
तथाकथित धार्मिक लोग दूसरों को अधार्मिक मानते हैं। यही उनका मजा है। यही अकड़, यही अहंकार उनका एकमात्र रस है। और तो कुछ पाया नहीं, मगर यह मजा उनको मिल जाता है कि हम धार्मिक!
स्त्रियां अक्सर साधु-संतों के पास जाती हैं, क्योंकि और जीवन की सब दौड़ में तो आदमी ने उनको अवरुद्ध कर दिया है। न चित्रकार हो पाती हैं, न मूर्तिकार हो पाती हैं, न कवि हो पाती हैं, न संगीतज्ञ हो पाती हैं, क्योंकि आदमी ने वे सब द्वार-दरवाजे बंद कर दिए। क्योंकि हमेशा आदमी को खतरा लगा हुआ है। संगीतकार होंगी तो संगीतज्ञों के पास बैठेंगी, किसी संगीतज्ञ को उस्ताद बनाएंगी। और क्या भरोसा इन लफंगों का! सो संगीतज्ञ नहीं होने देंगे। नर्तक नहीं होने देंगे, क्योंकि ये नाचने-गाने वाले ये कोई ढंग के आदमी हैं? कब भगा कर ले जाएं पत्नी को, कहां नौका डुबवा दें--इन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। चित्रकार, इनका क्या भरोसा करो! नग्न स्त्रियों के चित्र बनाते हैं। कवि, ये तो प्रेम का ही गीत गुनगुनाए चले जाते हैं। इन्होंने तो जहां सुंदर स्त्री देखी कि इनकी लार टपक पड़ती है। एकदम बेहाल हो जाते हैं। एकदम ठंडी श्वासें भरने लगते हैं।
सरदार बिचित्तरसिंह एक बस में क्यू लगाए खड़े थे। उनके सामने ही एक पंजाबी लड़की खड़ी थी। पंजाब में लगा होगा क्यू भी। और पंजाबी लड़की चुस्त कपड़े पहने हुई थी--ऐसे चुस्त कि पता नहीं कैसे निकालती, कैसे पहनती! यह चमत्कार भी लड़कियां ही कर सकती हैं, यह पुरुष नहीं कर सकते। आखिर बिचित्तरसिंह से जिज्ञासा न रुकी। गर्मी बहुत थी, पसीना-पसीना हुए जा रहे थे। तो उस लड़की से पूछा कि भैणजी... ! हालांकि दिल तो कुछ और हो रहा था, मगर दिल कुछ होता रहे, कहना तो पड़ता है--भैणजी! इस गर्मी में इतने चुस्त कपड़े आप पहने हैं, गर्मी नहीं लगती?

उस लड़की ने कहा कि नहीं, आप जैसे मनचलों के रहते कहां गर्मी! आस-पास खड़े ठंडी आह श्वासें भरते रहते हैं। अब आप ही कैसी-कैसी श्वासें भर रहे हो! हवा लगती रहती है। पंखे चलते रहते हैं चारों तरफ!
और जितने चुस्त कपड़े पहनो उतने ही पंखे चलते हैं। इसलिए तो गर्मी में चुस्त कपड़े पहनते हैं।
कवियों का क्या भरोसा, ठंडी श्वासें भरते हैं! जब देखो तब कविता। और कविता यानी प्रेम! तो पुरुषों ने स्त्रियों के और सब तो द्वार बंद कर दिए, भरोसा किया है सिर्फ साधुओं का कि ये सज्जन आदमी हैं साधु-संत-महात्मा, इनके पास भर जाने देते हैं। तो सारी जगह अवरुद्ध कर दी, सब दरवाजे बंद कर दिए, सो बेचारी स्त्रियां मंदिरों में बैठी हैं, सत्यनारायण की कथा सुन रही हैं, रामायण सुन रही हैं और अपने भाग्य को कोस रही हैं। और करें भी क्या! और तो कहीं कोई उपाय नहीं बचा तो अब उसी में ले अकड़ निकालती हैं वे क्योंकि अब और कोई अकड़ निकालने की दूसरी जगह नहीं। चित्रकार होतीं, मूर्तिकार होतीं, नर्तक होतीं, संगीतज्ञ होतीं, कवि होतीं, तो उससे अहंकार पूरा होता। वह सब अहंकार पर तो अड्डा पुरुषों ने कर लिया है। स्त्री को बस एक अहंकार की सुविधा छोड़ी है कि धार्मिक हो, नैतिक हो। सो स्त्रियां उसमें कंजूसी नहीं करतीं, क्योंकि अब एक ही चीज बची तो दिल खोल कर धार्मिक हो जाती हैं। और फिर पतियों को सताती हैं, पूरा बदला ले लेती हैं। पतियों को ठिकाने ही लगाती रहती हैं, कि तुम बिल्कुल अधार्मिक हो, नरक में सड़ोगे!
सो यह महिला भी अपने पति के पीछे चौबीस घंटे पड़ी रहती थी। यह बदला है,
और कुछ भी नहीं। आदमी ने जो किया है, उसका फल है यह। यह उसको तब तक भोगना

पड़ेगा जब तक स्त्री को स्वतंत्रता नहीं देता। तब तक यह कष्ट उसको झेलना ही पड़ेगा। यह स्त्री की स्वतंत्रता छीनने का दंड है।
तो महात्मा से उसने एक दिन कहा कि मैं क्या करूं, मेरे पति न पूजा करते, न प्रार्थना करते? मैं तो थक गई। मैं तो हार गई। ऐसा आदमी मैंने नहीं देखा। इसकी खोपड़ी में कुछ घुसता ही नहीं। अब तो आप ही कुछ करो।
महात्मा ने कहाः अच्छा, मैं कल सुबह आऊंगा। तो ब्रह्ममुहूर्त में ही महात्मा आए, और पत्नी ने देखा कि महात्मा आ रहे हैं तो ब्रह्ममुहूर्त के पहले ही उठ कर उसने अपना पूजागृह सजा कर और दीये जला कर, ऊदबत्ती-धूपबत्ती सब लगा कर घंटे-वंटे बजाने लगी और बड़ा उसने शोरगुल मचा दिया। पति की भी नींद खुल गई। अब ब्रह्ममुहूर्त में उनको उठने का सवाल ही नहीं उठता था, मगर इतना शोरगुल मचाया उसने... जय जगदीश हरे! ऐसा शोरगुल मचाया कि उनको नींद न आए, करवट बदलें। आखिर उन्होंने सोचा कि पड़े रहने से कोई सार नहीं, उठ कर वे बगीचे घूमने लगे। उधर महात्मा आए। यहां जय जगदीश हरे का पाठ चल रहा था। महात्मा भी प्रसन्न हुए कि है बाई पहुंची हुई! पति बगीचे में ही मिल गए, तो महात्मा ने कहाः आपके लिए ही आया हूं। आपकी पत्नी कहां है?
तो पति ने कहाः मेरी पत्नी सब्जी खरीदने बाजार गई है। महात्मा ने कहाः सब्जी खरीदने गई है! ब्रह्ममुहूर्त में! अभी कहां सब्जी-मंडी खुलती है? होश में हो?
कहा कि मानो, सब्जी खरीदने गई है। और भिंडी खरीद रही है। आप जो आने वाले हो, सो भिंडी की सब्जी बनाने वाली है। और मोल-तोल करने में झगड़ा हो गया है। सो वह जो कुंजड़िया है, उसकी गर्दन पकड़ ली है मेरी पत्नी ने।
पत्नी सुन रही है यह सब। जय जगदीश हरे तो कहती जा रही है, यह सब सुन रही
है कि पति क्या कह रहा है। आखिर उसने छोड़ा जय जगदीश हरे, घंटी-वंटी बजाना बंद करके बाहर आ गई। कहा कि यह क्या झूठ चल रहा है, सरासर झूठ है! मैं पूजा कर रही हूं। शर्म नहीं आती कि महात्मा जी तक को तुम झूठ बोल रहे हो? अरे क्या खड़े देख रहे हो, पैर पड़ो महात्मा जी के!
महात्मा ने कहाः यह बात तो ठीक है। वही मैं देख रहा कि जय जगदीश हरे की आवाज आ रही है, घंटी बज रही है। पर पता नहीं कोई और कर रहा हो पूजा, क्या पता! अब यह पत्नी तुम्हारे सामने खड़ी है, तुम्हें झूठ बोलते शर्म नहीं आती? तुम्हारी पत्नी ठीक कहती है कि मेरे पति की बुद्धि बिल्कुल मारी गई है। अब तुम कहां कि भिंडी और कहां की सब्जी-मंडी लगाए हुए हो!
लेकिन पति ने कहा कि मैं प्रार्थना करता हूं अपनी पत्नी से भी कि आज
कम से कम सच बोल दे, कह दे ईमान से। खा महात्मा की कसम! और कह दे ईमान से कि नहीं तू गई थी बाजार और नहीं तू खरीद रही थी भिंडी और नहीं तूने कुंजड़िया की गर्दन पकड़ी थी?
अब महात्मा की कसम पत्नी नहीं खा सकी। एकदम उसे ख्याल आया कि बात तो
सच है। कह तो रही थी जय जगदीश हरे, लेकिन महात्मा आ रहे हैं तो विचार चल रहा था कि आज सब्जी क्या बनानी है, कि भिंडी की बना लेनी है। तो जल्दी से पूजा वगैरह खत्म करके एकदम जाना है सब्जी-मंडी में। और चली गई थी--विचार में, कल्पना में। और दाम पर झगड़ा हो गया था। सो गुस्सा उसे ऐसा आ गया कि महात्मा तो घर में आ रहे हैं और इस कुजंड़िया को कुछ अकल नहीं और दाम दुगने बता रही है! एकदम गर्दन पकड़ ली थी।
तो उसने कहा कि क्षमा करें, मेरे पति ठीक कह रहे हैं। जय जगदीश हरे तो ऊपर-ऊपर चल रहा था। गई तो मैं बाजार ही थी, सब्जी-मंडी, और पता नहीं इनको कैसे पता चला!
महात्मा भी बहुत चकित हुआ। उसने कहाः आपको कैसे पता चला?
उसने कहा कि कैसे पता चला! एक बात तय है कि जो जहां है वहां नहीं है। सो इतना तो पक्का है कि पत्नी पूजागृह में नहीं है। अब यह तो छोटा सा गणित है, इसको भिंडी की सब्जी बहुत पसंद है। सो महात्मा जी आएं सो भिंडी की सब्जी खिलाएगी। मुझे खिला-खिला कर मार डाला है। जिंदगी हो गई है भिंडी की सब्जी खाते-खाते। आत्महत्या करने का विचार आ जाता है जब भिंडी की सब्जी देखता हूं, मगर कुछ बोल नहीं सकता कि पता नहीं इसमें भी कोई अध्यात्म हो! भिंडी का कुछ राज हो! कोई योगशास्त्र हो, कि भिंडी में कोई रस हो जो आदमी को

धार्मिक बनाता हो। इसलिए चुप रहता हूं, खाए चला जाता हूं। प्राणों पर बन आती है, मगर क्या करूं? इसको भिंडी की सब्जी पसंद है। सो यह मुझे पक्का था कि यह भिंडी की सब्जी खरीदेगी। और अभी खरीद रही होगी, क्योंकि यही तो मौका है जब यह इसको मिलता है सुविधा का। जय जगदीश हरे ऊपर-ऊपर चलता रहता है और भीतर-भीतर इसको जो दिन भर की योजना बनानी है बनाती है। तो मैंने तो अंदाज लगाया कि भिंडी की सब्जी जरूर खरीदेगी यह आज, खरीद ही रही होगी। यह तो लग गया तीर, नहीं लगता तो तुक्का था। मगर लग गया तीर। और यह भी मैं जानता हूं यह जहां जाए वहां झगड़ा न हो, यह असंभव है। जिंदगी भर का अनुभव मेरा यह है कि मैं घर में घुसा नहीं कि झगड़ा। अरे हर बहाने झगड़ा! बोलो तो मुसीबत, न बोलो तो मुसीबत। कुछ भी बोलता हूं, उसी में से निकाल लेती है तरकीब। मैं बहुत सोच-सोच कर आता हूं कि यह बोलना है, मगर ऐसा आज तक नहीं हो पाया सफल कि कोई ऐसी बात मैं बोल पाया होऊं जिसमें इसने कुछ रास्ता न निकाल लिया हो। एक दिन तो मैंने कसम खा ली कि आज बोलना ही नहीं, सो मैं आकर बिल्कुल चुप बैठ गया, बस इसने उसमें से भी निकाल लिया कि क्या चुप बैठे हो! क्या मैं मर गई जो तुम चुप बैठे हो? अरे मैं मर जाऊं तब बैठे रहना, अभी तो बोल लो! कुछ तो बोलो! चुप में से भी निकाल लिया इसने! और मेरी गर्दन पर सवार रहती है, तो मैंने सोचा कि कुंजड़िया की गर्दन पर सवार होगी। यह सिर्फ कल्पना से मैंने किया। यह संयोग की बात है कि बैठ गई बात। मगर मेरे जीवन भर का अनुभव भी इसके पीछे खड़ा है। एकदम कल्पना भी नहीं है मेरी यह, जीवन भर के अनुभव का निचोड़ यह है कि यह होने वाला है। इसलिए मैंने कह दिया।
मगर यह तुम्हारी सबकी हालत है। तुम जहां हो वहां नहीं। और परमात्मा वहां आएगा तुम जहां हो। उसको क्या पता बेचारे को कि तुम सब्जी-मंडी गए हो, भिंडी खरीद रहे हो, कुंज.डिया की गर्दन दबा दी। कहां-कहां तुम्हारा पीछा करता फिरेगा! वह तो वहां आएगा जहां तुम हो और वहां तुम कभी भी नहीं हो। संन्यास का इतना ही अर्थ होता हैः तुम जहां हो वहीं होने का विधान, वर्तमान में जीन का विधान। न अतीत का कोई मूल्य है--जा चुका जा चुका; न भविष्य का कोई मूल्य है--आया नहीं आया नहीं। जो आया है, जो सामने खड़ा है, जो प्रत्यक्ष है--बस उसमें जीना। उसके आर-पार झांकना भी नहीं। वर्तमान के इस छोटे से क्षण में जो जी ले, वह संन्यासी है। क्षण-क्षण जो जीए चले वह संन्यासी है।
तुम पूछते होः "संन्यास के बिना भगवत्ता को पाना असंभव है या संन्यास सिर्फ सत्य का द्वार है?"
तुम्हारा प्रश्न या तो कोई सरदार पूछ सकता है या कोई राजनेता पूछ सकता है। सरदार तो तुम नहीं हो, नाम से ही पक्का पता चलता है। हो सकता है राजनीति में होओ। राजनीति में बुद्धि बिल्कुल खो जाती है। असल में बुद्धि हो तो कोई राजनीति में जाता ही नहीं।
नेताजी से उनके मित्र ने पूछा कि क्या भाई, क्या हालचाल हैं भाभी जी के? उन्हें बच्चा होने वाला था, क्या हुआ?
नेताजी सोचनीय मुद्रा बना कर बोले, श्रीमती जी ने जुड़वां बच्चों को जन्म दिया है। और मेरा ख्याल है कि उसमें एक लड़का है और एक लड़की। मगर हो सकता है कि मेरा यह ख्याल गलत हो और एक लड़की हो और एक लड़का।"
तुम भी क्या प्रश्न पूछ रहे हो!
एक बार प्रसिद्ध नेताजी की सभा में बड़ा हुड़दंग होने लगा, बड़ा हो-हल्ला होने लगा। नेताजी ने नाराज होकर कहा, लगता है इस सभा में सारे गधे इकट्ठे हो गए हैं। क्या अच्छा नहीं होगा कि एक बार में एक ही बोले?
एक व्यक्ति बोलाः ठीक है, तब आप ही शुरू करिए।
मैंने सुना है, एक नेता जी नये-नये चुन कर दिल्ली पहुंचे। एक दूसरे नेताजी के घर मेहमान थे। दोनों बैठे थे बैठकखाने में, खिड़की में से देखा नये-नये आए नेताजी ने कि गधों की एक कतार चली जा रही है। इतनी लंबी कतार उन्होंने कभी देखी नहीं थी। हो सकता है गधों ने मोर्चा निकाला हो, प्रधानमंत्री से मिलने जा रहे हों। अरे गधों को क्या, काम ही क्या! और गधे बड़ी राजनीति करते हैं। बड़ा लंबा जुलूस! तो नये-नये नेता ने पूछा कि इतने

गधे, क्या ये सब दिल्ली के ही गधे हैं? तो उस दूसरे नेता ने कहाः नहीं कुछ चुन कर भी आ जाते हैं। सभी दिल्ली के नहीं हैं।
तुम क्या राजनीति में हो हर्ष कुमार? ऐसा प्रश्न पूछते हो?
कह रहे होः "कृपया समझाइए।"
क्या खाक समझाऊं? कृपा भी करना चाहूं तो कैसे करूं? तुम भगवत्ता और सत्य को क्या दो चीजें समझे बैठे हो? अभी-अभी तुमने पंडित ब्रह्मप्रकाश को देखा, वे कम से कम बेचारे इस अर्थ में ठीक भी हैं कि संसार और ब्रह्म में कम से कम द्वैत दिखाई पड़ता है! चलो कम से कम तर्क के लिए माना जा सकता है कि दो हैं, विचार के लिए, विश्लेषण के लिए, परिकल्पना की तरह स्वीकार किया जा सकता है। मगर तुमने तो पंडित ब्रह्मप्रकाश को भी हरा दिया, उनको भी चारों खाने चित्त कर दिया। तुम तो भगवत्ता और सत्य में भेद कर रहे हो! जैसे सत्य तो माया और भगवत्ता सत्य। और सत्य माया!
सो तुम पूछ रहे होः "संन्यास क्या सिर्फ सत्य का ही द्वार है?"
सिर्फ! तुम्हें कुछ भी पता नहीं कि तुम क्या पूछ रहे हो; किन शब्दों का उपयोग कर रहे हो, इसका भी तुम्हें होश नहीं।

हर कदम पर नित-नये सांचे में ढल जाते हैं लोग।
देखते ही देखते कितने बदल जाते हैं लोग।।

किसलिए कीजै किसी गुमगश्ता जन्नत की तलाश।
जब कि मिट्टी के खिलौने से बहल जाते हैं लोग।।

कितने सादा दिल हैं अब भी सुन के आवाजें-जरस।
पेशो-पस से बेखबर घर से निकल जाते हैं लोग।।

अपने साए-साए सर न्योहढ़ाए आहिस्ता-खिराम।
जाने किस मंजिल की जानिब आजकल जाते हैं लोग।।

शमअ की मानिन्द अहले-अंजुमन से बेनियाज।
अक्सर अपनी आग में चुपचाप जल जाते हैं लोग।।

शायर उनकी दोस्ती का अब भी दम भरते हैं आप।
ठोकरें खाकर तो सुनते हैं सम्हल जाते हैं लोग।।

नहीं सम्हलते। सुनते हैं कि सम्हल जाते हैं लोग, मगर नहीं सम्हलते।
आदमी कितनी ही ठोकरें खाए, उन्हीं-उन्हीं जगहों पर ठोकरें खाता है। असल में उन्हीं उन्हीं जगह पर ठोकरें खाने की आदत हो जाती है।
सोच तो लिया करें पूछने के पहले कि प्रश्न बनता भी है या नहीं! और जब प्रश्न ही न बन सके तो उत्तर कैसे संभव हो? तुम्हारा प्रश्न भी विक्षिप्तता से भरा है।
संन्यास सत्य का द्वार है, संन्यास भगवत्ता का द्वार है। और संन्यास
के बिना कोई द्वार नहीं है। लेकिन जब मैं संन्यास की बात कर रहा हूं तो मेरे संन्यास की बात कर रहा हूं, किसी और संन्यास की धारणा से मुझे कुछ लेना-देना नहीं। उनकी वे जानें।

आखिरी प्रश्नः ओशो, आप न कहीं, आते न जाते, अपने कक्ष को ही नहीं छोड़ते हैं, फिर दूर-दूर देशों से कैसे लोग आपके पास खिंचे चले आते हैं? इसका राज क्या है?

स्वरूपानंद! राज कुछ भी नहीं। बात दो और दो चार, ऐसी साफ है। दीया जले
तो परवाने अपने आप चले आते हैं। न मालूम कैसे खबर हो जाती है! परवानों के प्राणों में न मालूम कौन अभीप्सा जगा देता है! चल पड़ते हैं दूर-दूर अंधेरों के लोक से। दीया जले भर कि परवाने चले आते हैं। और दीया एकांत

कक्ष में भी जले, कुछ फर्क नहीं पड़ता। परवाने रास्ता खोज लेते हैं-- खिड़कियों से चले आते हैं, द्वार से, रंध्रों से चल आते हैं। अगर जगह न मिले, प्रवेश के लिए द्वार न मिले, तो खिड़कियों के कांचों पर फड़फड़ाते हैं। मगर चले आते हैं।
राज कुछ भी नहीं। बात साफ है। सुबह सूरज निकलता है, कौन कह जाता है पक्षियों को कि गीत गाओ? सूरज तो किसी से कहता नहीं कि गीत गाओ। पक्षियों के कंठों से गीत फूटने लगते हैं--अवश! रोकना भी चाहें तो रोक नहीं सकते, गीत फूटने ही लगते हैं। वृक्ष जाग उठते हैं। फूल अपनी पंखुड़ियां खोल देते हैं, गंध आकाश में उड़ने लगती है। क्या हो जाता है? कैसे हो जाता है? राज क्या है? राज कुछ भी नहीं। सब बात गणित की तरह सीधी-साफ है। सूरज निकलेगा, पक्षी गीत गाएंगे, फूल खिलेंगे, वृक्ष जागेंगे। लोगों की नींद टूटेगी। दीया जलेगा, परवाने आएंगे।
बहुत दिनों तक तो मैंने किसी को कुछ कहा ही न था। चाहा था छिपा लूं। मगर कुछ मामला है कि छिपता नहीं। छिपाना चाहा था, क्योंकि कौन झंझट में पड़े मैंने सोचा था। मगर लोगों को खबर होने लगी। किसी तरह लोगों को आभास होने लगा। फिर जब मुझे लगा लोगों को खबर ही होने लगी और लोग आने ही लगे, तो छिपाना व्यर्थ है। अब प्रकट हो जाना ही उचित है, कि जिसको आना हो आ जाए। जाता मैं कहीं नहीं हूं, जाऊंगा भी नहीं। जाने-आने में मुझे रस नहीं। भीतर से ही आवागमन समाप्त हो गया तो अब बाहर का क्या आवागमन! लेकिन जिन्हें आना है वे आ जाएंगे। जिन्हें आवागमन समाप्त करना है वे आ जाएंगे।

चुप अगर रहता हूं तो दिल गम से फटा जाता है
नाला जो करता हूं तो अंदेशाए रुसवाई है

यह तो साधारण से प्रेम के संबंध में कही गई बात है। लेकिन जब व्यक्ति
और परमात्मा के बीच प्रेम की घटना घटती है, उस विराट प्रेम की, तब तो हिसाब भी लगाना मुश्किल है, असंभव!

चुप अगर रहता हूं तो दिल गम से फटा जाता है
नाला जो करता हूं तो अंदेशाए रुसवाई है
कभी कहा न किसी से तेरे फसाने को
न जाने कैसे खबर हो गई जमाने को
सुना है गैर की महफिल में तुम न जाओगे
कहो तो आज सजा लूं गरीबखाने को
अब आगे तुम पै भी मुमकिन है कोई बात आए जो हुक्म हो तो यहीं रोक दूं फसाने को कुछ ऐसे सज गए तिनके कि अब यह डर है मुझे
कहीं नजर न लगे मेरे आशियाने को
दुआ बहार की मांगी तो इतने फूल खिले
कहीं जगह न मिली मेरे आशियाने को
कभी कहा न किसी से तेरे फसाने को
न जाने कैसे खबर हो गई जमाने को

मैंने तो किसी को कहा न था। चाहा था चुप ही रह जाऊं। कौन झंझट ले! कौन व्यर्थ के उपद्रव में पड़े! लेकिन खबर होने लगी। धीरे-धीरे लोग आने लगे। फिर जब मैंने देखा कि झंझट में ही पड़ना है तो क्या छोटी झंझट में पड़ना! छोटी चीजों में मुझे रस नहीं। मेरी रुचि बहुत सीधी-सादी है। मुझे श्रेष्ठतम में ही रस है। और जब उलझना ही हो तो फिर पूरा ही। तो फिर मैंने कहा कि जब कहना ही है तो क्या एक-दो से कहना, फिर आ जाने दो सब परवानों को! फिर सारी पृथ्वी से आएं, दूर-दूर देशों से आएं। है तो कठिनाई।
चुप भी रहना बड़ा मुश्किल था, क्योंकि देखा जाए चारों तरफ लोगों को गिरते, कैसे चुप रहो, जब कि तुम्हें पता है कि तुम बता सकते हो कि यह गड्ढा है, मत गिरो? देखते-देखते कैसे चुप रहो लोगों को दीवलों से टकराते, जब कि

तुम्हें पता है कि द्वार कहां है? कैसे चुप रहो लोगों की उदासी, लोगों की बेचैनी, लोगों की परेशानी, विक्षिप्तता को देख कर--जब कि तुम्हें पता है कि इनके जीवन में क्रांति अभी हो सकती है, इसी क्षण हो सकती है? जब तुम्हें कुंजी पता है तो लोगों को तालों से सिर मारते देख कर कैसे चुप रहो?

चुप अगर रहता हूं तो दिल गम से फटा जाता है
चुप अगर रहता हूं तो दिल गम से फटा जाता है

एक करुणा उठने लगती है।

नाला जो करता हूं तो अंदेशाए रुसवाई है

और अगर जोर से पुकार कर कहूं तो बदनामी का डर है। फिर मैंने कहा होने
दो बदनामी। अब बात तो कह देनी है। जोर से ही कह देनी है। सो तुम देख रहे होः जिन्हें सुननी है उन्होंने सुन भी ली है; जिन्हें आना है वे आ भी गए और बदनामी भी जितनी होनी है वह भी हो रही है।

चुप अगर रहता हूं तो दिल गम से फटा जाता है
नाला जो करता हूं तो अंदेशाए रुसवाई है
कभी कहा न किसी से तेरे फसाने को
न जाने कैसे खबर हो गई जमाने को
सुना है गैर की महफिल में तुम न जाओगे
कहो तो आज सजा लूं गरीबखाने को
अब आगे तुम पै भी मुमकिन है कोई बात आए जो हुक्म हो तो यहीं रोक दूं फसाने को कुछ ऐसे सज गए तिनके कि अब ये डर है मुझे कहीं नजर न लगे मेरे आशियाने को
दुआ बहार की मांगी तो इतने फूल खिले कहीं जगह न मिली मेरे आशियाने को
कभी कहा न किसी से तेरे फसाने को
न जाने कैसे खबर हो गई जमाने को

आज इतना ही।

ज्यूं मछली बिन नीर
तीसरा प्रवचन

अंतर्यात्रा पर निकलो

पहला प्रश्नः भगवान,
अथर्ववेद में एक ऋचा है
पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम
अन्तरिक्षाद्दि विमारूहम्, दिवोनाकस्य
पृष्ठात्ऽ स्वर्ज्योतिरगामहम्।
अर्थात हम पार्थिव लोक से उठ कर अंतरिक्ष लोक में आरोहण करें, अंतरिक्ष लोक से ज्योतिष्मान देवलोक के शिखर पर पहुंचें, और ज्योतिर्मय देवलोक से अनंत प्रकाशमान ज्योतिपुंज में विलीन हो जाएं।
भगवान कृपया बताएं कि ये लोक क्या हैं और कहां हैं?

चैतन्य कीर्ति,
लोक शब्द से भ्रांति हो सकती हैहुई है। सदियों तक शब्दों की भ्रांतियों के दुष्परिणाम होते हैं। लोक शब्द से ऐसा लगता है कि कहीं बाहर, कहीं दूरयात्रा करनी है किसी गन्तव्य की ओर। लोक से भौगोलिक बोध होता है, जबकि ऋषि का मन्तव्य बिल्कुल भिन्न है। यह तुम्हारे भीतर की बात हैतुम्हारे अंतरलोक की।
जो जानता है, वह बात ही भीतर की करता है। बाहर कर बात तो सिर्फ इसलिए
की जा सकती है, ताकि भीतर की बात का स्मरण दिलाया जा सके। तुम तो बाहर की भाषा समझते हो, इसलिए मजबूरी है ऋषियों की। उन्हें बाहर की भाषा बोलनी पड़ती है। तुम जो समझ रहे हो वही तुमसे कहा जा सकता है। लेकिन फिर खतरा है। खतरा यह है कि तुम वही समझोगे जो तुम समझ सकते हो।
ऋषि जब जीवित होता है, तब तो वह तुम्हारी भ्रांतियों को रोकने के उपाय
कर लेता है, तुम्हें सम्हाल लेता है, शब्दों के जाल में नहीं पड़ने देता।
लेकिन जब ऋषि मौजूद नहीं रह जाता और ऋषि की जगह पंडित-पुरोहित ले लेते हैं जिनका की सारा आयाम ही शब्दों का हैतब ठीक वह होना शुरू हो जाता है जो ऋषि के विपरीत है।
जीसस ने बहुत बार दोहराया कि वह ईश्वर का राज्य तुम्हारे भीतर है। लेकिन फिर भी ईसाई जब हाथ जोड़ते हैं तो आकाश की तरफ। वह ईश्वर तुम्हारे भीतर हैथक गए बुद्धपुरुष कह-कह कर, लेकिन जब भी तुम पूजा करते हो तो किसी मूर्ति की। और अगर मूर्ति की भी न की, अगर मस्जिद में भी गए, तो पुकार भी लगाते हो तो बाहर के किसी परमात्मा के लिए। सारी अंगुलियां भीतर की तरफ इशारा कर रही हैं और तुम जब भी देखते हो बाहर की तरफ देखते हो।
मत पूछो कि ये लोक कहां हैं। कहां से उपद्रव शुरू होता है? तुमने पूछा
कि कोई बताने वाला मिल जाएगा कि कहां हैं। नक्शे टंगे हैं मंदिरों में इन लोकों के। ये लोक तुम्हारी चेतना के भिन्न आयामों के नाम हैं। और इतना साफ है, फिर भी आदमी इतना अंधा है। सारी बातें इतनी रोशन हैं, फिर भी अंधे को तो कैसे दिखाई पड़े! रोशनी ही दिखाई नहीं पड़ती, रोशनी में लिखे गए ये सूत्र हैं। इसलिए हमने इनको ऋचा कहा है, साधारण कविता नहीं।
कविता और ऋचा में भेद है। कविता अज्ञानी की ही व्यवस्था है, जोड़-ता.ेड है, शब्दों का जमाव है। राग में बांध ले, छंद में बांध ले, तुक बिठा देवह सब ठीक, लेकिन अंधेरा और अंधा टटोले, बस ऐसी ही कविता है। ऋषि हम उसे कहते हैं जिसने देखा और जो देखा, उसे गुनगुनाया, उसे गाया।
ऋषियों से जो वचन झरते हैं, बुद्धपुरुषों से जो वचन झरते हैं, उनके लिए हमने अलग ही नाम दियाऋचा। ऋषि से आए तो ऋचा। और ऋषि वह जो देखने में समर्थ हो गया, जिसके भीतर की आंख खुल गई। भीतर की आंख खुलेगी तो भीतर की ही बात होगी। तुम्हारी तो बाहर की आंखें हैं, भीतर की आंख बंद है। ऋषि भीतर की कहते हैं, तुम बाहर की समझते हो।

इसलिए हर शास्त्र गलत समझा गया है और हर शास्त्र की गलत टीकाएं और व्याख्याएं की गई हैं। कोई ऋषि ही किसी दूसरे ऋषि के मंतव्य को प्रगट कर सकता है। यह काम पांडित्य का नहीं, शास्त्रीयता का नहीं।
पार्थिव लोक से अर्थ हैतुम्हारी देह, तुम्हारा शरीर। अंतरिक्ष लोक से अर्थ हैतुम्हारा मन! ज्योतिष्मान देवलोक के शिखर से अर्थ हैआत्मा। और प्रकाशमान ज्योतिपुंज में अंततः सब विलीन हो जाता है, वह है अस्तित्व का नामचौथी अवस्था, तुरीय, समाधि, निर्वाण। तीन को पार करना है, चौथे को पाना है। न केवल शरीर के पार जाना है, न केवल मन के पार जाना हैआत्मा के भी पार जाना है, क्योंकि आत्मा भी सूक्ष्म रूप में अहंकार ही है। मैं-भाव अभी भी मौजूद है। आत्मा का अर्थ ही होता हैः मैं। इसलिए बुद्ध ने "अनत्ता" शब्द का उपयोग किया। "अत्ता" यानी आत्मा, मैं। अनत्ता यानी "न-मैं", अनात्मा। बुद्ध को समझा नहीं जा सका। अथर्ववेद की टीका करने वाले भी नहीं समझे, कैसा मजा है! ब्राह्मण, पंडित-पुरोहित नहीं समझे। जो दोहराते हैं ऋचाओं को निरंतर सुबह-सांझ, वे भी नहीं समझे। उनको तो लगा ये बुद्ध नास्तिक हैं, आत्मा भी नहीं! और यह अथर्ववेद का सूत्र यही कह रहा है कि "ज्योतिर्मय देवलोक से अनंत प्रकाशमान ज्योतिपुंज में विलीन हो जाएं", जहां सब विलीन हो जाता है। इस "विलीन" के लिए बुद्ध ने जो शब्द चुना, बड़ा प्यारा है"निर्वाण"। निर्वाण का अर्थ होता हैः दीये का बुझ जाना। जैसे दीया जला हो और तुम फूंक मार दो और दीया बुझ जाए और कोई पूछे कि कहां गई ज्योति। कहां बताओगे? कहां विलीन हो गई। इतना ही कह सकते हो। अब न बता सकोगे कहां है पता ठिकाना; विलीन हो गई, अस्तित्व में एक हो गई।
जैसे दीये का बुझ जाना है, ऐसे ही व्यक्ति का बुझ जाना हैतब समष्टि के साथ एकता सधती है। व्यक्ति का होना एक तरह का त्रैत है। शरीर, मन, आत्मायह त्रिकोण है। इस त्रिकोण से तुम निर्मित हो। इस त्रिकोण के मध्य में वह बिंदु है, जहां त्रिकोण शून्य हो जाता है। ये तीनों कोने मिट जाते हैंः निराकार प्रगट होता है, सब आकार खो जाता है।
बहुत स्पष्ट है ऋचा"हम पार्थिव लोक से उठ कर अंतरिक्ष लोक में आरोहण करें।" हम उठें शरीर से। अधिक लोग तो शरीर में ही खोए हैं। जो शरीर में खोया है वह पशु। जो शरीर में खोया है वह शूद्र। फिर चाहे वह ब्राह्मण घर में पैदा हुआ हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। जो शरीर में है वह शूद्र। और अधिकतम लोग शरीर में हैं। शरीर ही उनका सब कुछ है। खाओ पीओ मौज करोबस इतना ही उनके जीवन का अर्थ है। यही उनके जीवन का गणित है। काम उनके जीवन की सारी अर्थवत्ता है। वासना उनका सारा विस्तार है। भोगबस इतिश्री आ गई! भोजन, वस्त्र, काम, धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठाबस यहीं समाप्त हो जाता है।
और रोज देखते हैं लोगों को गिरते। रोज देखते हैं लोगों को कब्रों में उतरते। रोज देखते हैं लोगों को चिताओं पर जलते। फिर भी होश नहीं आता। जैसे तय ही कर रखा है कि होश को आने न देंगे! बेटियां हैं, परिवार है, मित्र हैं प्रियजन हैंऔर कौन अपना है? कहां कौन किसका है? मगर जीवन भर यही आकांक्षा रहती हैकिसी तरह खोज लें, शायद कहीं कोई मिल जाए। अभी तक नहीं मिला, आज तक नहीं मिला, कल मिल सकता हैआशा बनी रहती है। आशा की टिमटिमाती मोमबत्ती में हम चले चले जाते हैं।
अब तक मुझे न कोई मिरा राजदां मिला
अब तक मुझे न कोई मिरा राजदां मिला
जो भी मिला असीर-जमानो-मकां मिला
जो भी मिला...
क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश सौ बार बिजलियों को मिरा आशियां मिला सौ बार बिजलियों को...
उकता गया हूं जादा-ए नौ की तलाश में उकता गया हूं जादा-ए नौ की तलाश में
हर राह में कोई न कोई कारवां मिला
हर राह में...

किन हौसलों के कितने दीये बुझ के रह गए किन हैसलों के कितने दीये बुझ के रह गए ऐ सोजे-आशिकी तू बहुत ही गरां मिला
ऐ सोजे-आशिकी...
था एक राजदारे मुहब्बत से लुत्फे-जीस्त
था एक राजदारे मुहब्बत से लुत्फे-जीस्त
लेकिन वो राजदारे मुहब्बत कहां मिला
लेकिन वो राजदारे...
अब तक मुझे न कोई मिरा राजदां मिला
अब तक मुझे न कोई...
कहां मिलता है कोई संगी-साथी, राजदां? असंभव है मिलना। मगर आशा मिट-मिट कर भी नहीं मिटती। गिर जाती है, फिर उठा लेते हैं। हर बार गिरती है, फिर सम्हाल लेते हैं। नये सहारे, नई बैसाखियां खोज लेते हैं। कितनी बार तुम्हारा आशियां नहीं जल चुका! कितनी बार बिजलियां नहीं गिरीं तुम्हारे आशियां पर! देह में पहली बार तो नहीं हो, अनंत बार रह चुके हो। यह अनुभव कोई नया नहीं, मगर भूल-भूल जाते हो, विस्मरण करते चले जाते हो।
क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश
पता नहीं कैसा है आदमी कि फिर-फिर भरोसा कर लेता है! वही भूलें, वही भरोसे, कुछ नया नहीं। वर्तुल में घूमता रहता हैकोल्हू के बैल की भांति घूमता रहता है।
क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश
सौ बार बिजलियां को मिरा आशियां मिला
और फिर भी सौ बार बिजलियां गिर चुर्की, बार-बार मौत आई, बार-बार आशियां मिटा। फिर-फिर चार तिनके जोड़ कर तुम आशियां बना लेते होफिर इस आशा में कि अब नहीं बिजलियां गिरेंगी।
क्या जाने क्या समझ के हमेशा किया गुरेश
सौ बार बिजलियों को मेरा आशियां मिला
उकता जाते हो, ऊब जाते हो, घबड़ा जाते हो, बेचैन हो जाते होफिर कोई सांत्वना खोज लेते हो। नहीं मिलती तो गढ़ लेते हो, ईजाद कर लेते हो।
उकता गया हूं जादा-ए-नौ की तलाश में
हर राह में कोई न कोई कारवां मिला
और तुमने देखा, तुम अकेले ही नहीं चल रहे होकिसी भी राह पर जाओ, धन के पीछे दौड़ो, पद के पीछे दौड़ो, यश के पीछे दौड़ोहर जगह तुम करोड़ों लोगों की भीड़ को जाते देखोगे।
उकता गया हूं जादा-ए-नौ की तलाश में
हर राह में कोई न कोई कारवां मिला
कारवां चले जा रहे हैं। तुम अकेले नहीं हो। इससे और भ्रांति होती है। ऐसा लगता है जहां इतने लोग जा रहे हैं वहां कुछ जरूर होगा, इतने लोग गलती में नहीं हो सकते। तो फिर अपने को सम्हाल लेते हो। जागते-जागते रुक जाते हो, फिर सपने में पड़ जाते हो।
किन हौसलों के कितने दीये बुझ के रह गए
ऐ सोजे-आशिकी तू बहुत ही गरां मिला
और क्या-क्या हौसले ले कर आदमी चलता है! क्या-क्या स्वप्न संजोता है!
हर बार दीये बुझ जाते हैं। जरा सा हवा का झोंका और दीया बुझा। फिर हम जला लेते हैं। दूसरों से मांग लेते हैं तेल-बाती। दूसरों से मांग लेते हैं ज्योति। फिर-फिर दीये जला लेते हैं। दीये बुझते जाते हैं, हम जलाते चले जाते हैं।
िकहौसलोंके कितने दीये बुझके रह गए
ऐ सोजे-आशिकी तू बहुत ही गरां मिला
मगर यह हमारी वासना का विस्तार कुछ ऐसा है, टूटता ही नहीं। होश आता ही नहीं। अपने को सम्हाल ही नहीं पाते।
था एक राजदारे मुहब्बत से लुत्फे-जीस्त
लेकिन वो राजदारे मुहब्बत कहां मिला

आशा भर रहती है कि कोई मिल जाएगा अपना, कि कोई मिल जाएगा प्रेमी, कि कोई मित्र। इसी आशा में सोचते हैं जिंदगी में रस आ जाएगा, फूल खिल जाएंगे। था एक राजदारे मुहब्बत से लुत्फे-जीस्त
लेकिन वो राजदारे मुहब्बत कहां मिला
सोचो तो, कितने जमाने हो गए खोजते-खोजतेवो राजदारे मुहब्बत कहां मिला।
अब तक न मुझे कोई मिरा राजदां मिला
जो भी मिला असीरे-जमानो-मकां मिला
अब तक मुझे न कोई मिरा राजदां मिला
यहां शरीर के तल पर सिवाय असफलता के और कुछ भी नहीं, सिवाय विषाद के और कुछ भी नहीं। शरीर से ऊपर उठो। तुम शरीर ही नहीं हो, तुम्हारे भीतर और बहुत है।
शरीर तो यूं समझो कि अपने घर के कोई बाहर ही बाहर जी रहा हो, अपने घर के भीतर ही नहीं प्रवेश किया हो। यूं बाहर ही चक्कर काट रहे हो। चलो जरा भीतर चलो। शरीर से थोड़े भीतर, शरीर से थोड़े ऊपर। और भीतर और ऊपर का एक ही अर्थ है। भाषाकोश में कुछ भी हो, जीवन के कोश में एक ही अर्थ है। जितने भीतर गए उतने ऊपर गए। जितने बाहर आए उतने नीचे गए।
भीतर चलो तो मन है। मन अंतर्यात्रा का पहला पड़ाव है। मन अर्थात मनन की क्षमता, सोचने-विचारने की कला। मनन पैदा हो तो इतना तो दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है कि शरीर के जगत में सिर्फ भ्रांतियां हैं, मोह है, आसक्तियां हैं, बंधन हैं, पाश हैं। इसलिए मैंने कहा कि जो शरीर में जीता है वह पशुबंधा हुआ पशु। पाश से बंधा हुआ, जकड़ा हुआ।
भोजन, यौनये दो छोर हैं जिनके बीच घड़ी के पेण्डुलम की तरह शरीर में बंधा आदमी घूमता रहता हैएक से दूसरे की तरफ। इसे समझ लेना। जो लोग अपनी कामवासना को दबा लेंगे उनका भोजन में बहुत रस हो जाएगा, क्योंकि पेण्डुलम उनका भोजन में अटक रहेगा। जो लोग अपने भोजन पर दबाव डालेंगे, रुकावट डालेंगे, उनके जीवन में कामवासना ही कामवासना रह जाएगी।
मन अर्थात मनन। जरा सोचना अपने जीवन के संबंध में कि यह क्या है, मैं क्या कर रहा हूं, क्या मेरे हाथ लग रहा है, क्या किसी और के हाथ लग रहा है? इतने लोग दौड़ते रहे, इतने लोग सदियों-सदियों तक खोजते रहे, किसी को कुछ भी नहीं मिला है, मुझे कैसे मिल जाएगा? एक व्यक्ति नहीं है पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में, जिसने यह कहा होबाहर मैंने खोजा और पाया। जिन्होंने पाया वे थोड़े से लोग यही कहते हैंः भीतर खोजा और पाया। बाहर खोजने वाला तो एक नहीं कह सका कि मैंने पाया। है ही नहीं तो कोई कहेगा भी कैसे? किस मुंह से कहेगा? किस बल पर कहेगा? किस आधार पर कहेगा?
सोचो तो थोड़ा सा शरीर के ऊपर उठना शुरू होता है। लेकिन फिर सोच-विचार में ही उलझे न रह जाना नहीं तो उठे थोड़े ऊपर, गए थोड़े भीतर, लेकिन फिर अटकाव खड़ा हो जाता है। कुछ लोग जो शरीर से थोड़े ऊपर उठते हैं, वे मन में उलझे रह जाते हैं। उनका रस बदल जाता है, शरीर के रस से बेहतर हो जाता है। संगीत में उनका रस होगा, काव्य में उनका रस होगा, कला में उनका रस होगा। कोई पशु, कोई पक्षी उत्सुक नहीं हैंकला में, दर्शन में, काव्य में, मूर्तियों में, चित्रों में, संगीत में। मनुष्य केवल उस दिशा में यात्रा कर पाता है। "मनुष्य" शब्द भी मनन से ही बनता है, मन से ही बनता है जब तुम देह के ऊपर उठते हो तो तुम पशु नहीं रह जाते। मन में आते हो तो मनुष्य हो जाते हो। लेकिन बस मनुष्य। उतना होना काफी नहीं है। वह शुरुआत है सिर्फ यात्रा की; अंत नहीं, बस प्रारंभ है। फिर जल्दी ही सोच-विचार करने वाले व्यक्ति को यह ही दिखाई पड़ेगा कि सोच-विचार भी हवा में महल बनाना है, इससे भी कुछ उपलब्धि नहीं है। कितना ही तर्कयुक्त सोचो, कोई निष्कर्ष हाथ नहीं लगता। दर्शनशास्त्र के पास कोई निष्कर्ष नहीं है, कोई निष्पत्ति नहीं है।
फिर मन ही मन के ऊपर उठने का पहला बोध देता है, कि शरीर से ऊपर उठे, थोड़ा मुक्त आकाश मिलाअंतरिक्ष मिला, अंतर-आकाश मिला! एक कदम और उठ कर देखें।

मन से ऊपर उठने की कला का नाम ध्यान है। शरीर से ऊपर उठने की कला का नाम ध्यान है। ध्यान से आत्मा मिलेगी। और आत्मा में बहुत सुख है, बहुत अर्थ है, गरिमा है, महिमा है। और इसलिए खतरा भी बहुत है। बहुत से धार्मिक व्यक्ति आत्मा पर ही अटके रह गए। इतना सुख था कि उन्होंने सोचा, इससे ज्यादा और क्या हो सकता है? आत्मा में जितना मिलता है उससे ज्यादा की कल्पना करना भी असंभव है। लेकिन कुछ हिम्मतवर आत्मा के भी पार गए। उन्होंने कहाः शरीर को छोड़ा, इतना पाया; मन को छोड़ा, और बहुत पाया। काश, आत्मा को भी छोड़ सकें तो पता नहीं कितना मिले! बड़े साहस की जरूरत है।
और बद्धत्व केवल उनको उपलब्ध होता है जो आत्मा को भी छोड़ देते हैं। कुछ हिम्मतवर लोगों ने वह अंतिम कदम भी उठाया। खतरनाक कदम है। किसी अतल अज्ञात में गिरना है, जिसका कोई ओर छोर नहीं होगा। उसी को अथर्ववेद कह रहा हैः "और फिर ज्योतिर्मय देवलोक से अनंत प्रकाशमान ज्योतिपुंज में विलीन हो जाएं।" फिर विलीन हो जाने के सिवा कुछ भी नहीं है।
थोड़े से तुम बचते हो आत्मा में, बस थोड़े सेअस्मि, मैं-भाव। जरा सी आखिरी रेखा, जैसे पुच्छल तारा गुजर जाता है और पीछे थोड़ी सी रेखा छूट जाती है। थोड़ी देर जगमगाती रहती है, फिर विलीन हो जाती है। या जैसे जैट गुजरता है तो उसके पीछे धुएं की एक रेखा बनी रह जाती है। फिर थोड़ी देर में वह भी बिखर जाती है।
आत्मा भी धुएं की एक रेखा मात्र हैमगर बहुत सुखद, बहुत फूलों से भरी, बहुत सुगंधित। इसलिए अटकाने में बहुत समर्थ। और जिन्होंने सिर्फ शरीर ही जाना है, मन ही जाना है, उनके लिए तो यूं हो जाता है कि मिल गया धनों का धन। इसलिए बहुत से धार्मिक व्यक्ति आत्मा पर रुक जाते हैं, सोचते हैं बस आ गया पड़ाव, अंतिम मंजिल आ गई, अब कहीं जाना नहीं।
अभी एक कदम और हैः तुरीय। अभी चतुर्थ को पाना है। जब तक हो तब तक समझना
कि अभी और कुछ पाने को शेष है। मिट जाना है, तल्लीन हो जाना है, विलीन हो जाना है। जैसे सरिता सागर में विलीन हो जाती हैऐसे! तुम्हारी जो ज्योति है अलग-थलग वह महाज्योति में एक हो जाए। तब मैं बचता ही नहीं।
ऐसा नहीं है कि बुद्धों ने मैं शब्द का उपयोग नहीं कियाकरना पड़ता है लेकिन बस उपयोगिता की द्रष्टि से, क्योंकि तुमसे बात करनी है। अन्यथा उनके भीतर कोई मैं नहीं है।
यह सूत्र प्यारा है। लेकिन चैतन्य कीर्ति, मत पूछो कि ये लोक कहां हैं। ये तुम्हारे भीतर हैं। ये तुम्हारी निज की संपदाएं हैं। अंतर्यात्रा पर निकलो! अथर्ववेद का यह सूत्र तुम्हारी पूरी अंतर्यात्रा के मार्ग को आलोकित कर सकता है।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
क्या आप मसीहा हैं? आप अपने को क्या समझते हैं?

मेलाराम असरानी!
मैं हूं ही नहींकैसा मसीहा, कैसा अवतार, कैसा तीर्थंकर, कैसा पैगंबर!
और हूं ही नहीं तो क्या समझूं? समझे कौन? समझे किसको? मैं तो गया। मैं तो बहुत समय हुआ, जा चुका।
यह बूंद तो कब की सागर में खो गई। मगर बूंद जब सागर में खोती है तो सागर हो जाती है। इसलिए तो कबीर ने कहा कि यह देखो मजा, नदी सागर को पी गई। कबीर की ये उलटबांसियां कि नदी सागर को पी गईसूचक हैं, बड़ी सूचक हैं।
अब मैं नहीं हूं। अब तो जो है वही है। अब कहां मैं, कहां तू? यह मैं मैं
तू तू गई। अगर मैं कहूं मैं मसीहा हूं तो भूल होगी। अगर मैं कहूं मैं तीर्थंकर हूं तो भूल होगी। अगर मैं कहूं मैं अवतार हूं तो भूल होगी। मैं नहीं हूं, अब तो भगवत्ता है। वही भगवत्ता जो तुम्हारे भीतर भी है। मगर तुम मिटने की तैयारी नहीं जुटा पाते।
मेलाराम असरानी, तुम तो मेला बने हो। और मेले में तो झमेला होने वाला है। तुम तो भीड़ हो। मैं शून्य हूं, तुम भीड़ हो। तुम तो क्या क्या नहीं हो! तुम्हारे भीतर एक भी नहीं है, अनेक तन हैं। एक दौड़ नहीं, अनेक दौड़ें हैं।

और सब दौड़ें एक-दूसरे के विपरीत हैं, इसलिए हंगामा मचा हुआ है। इसलिए भीतर सतत संघर्ष है, द्वंद्व है, उपद्रव है।
और तुम यहां मेरे पास भी आते हो, तो तुम भी क्या करो, तुम्हारे उसी उपद्रव में से ऐसे प्रश्न उठते हैं कि क्या आप मसीहा हैं! क्या विचार है, सूली लगानी है मुझे? क्योंकि बिना सूली लगाए कहीं कोई मसीहा हुआ है? जीसस को कोई मानता मसीहा जब तक सूली न लगती? अगर तुम्हारे दिल सूली लगाने के हों तो चलो मैं मसीहा हूं। तुम अपनी मर्जी पूरी कर लो। या मेरे कानों में खीले ठोंकने हैं या मेरे ऊपर पागल कुत्ते छोड़ने हैं? क्योंकि जब तक खीले न ठुकें और पागल कुत्ते न छोड़े जाएं, तब तक कोई तीर्थंकर नहीं होता। जब तक चट्टानें न गिराई जाएं, विक्षिप्त हाथियों को न छोड़ा जाए, भोजन में जहर न दिया जाए, तब तक कोई बुद्ध नहीं होता। क्या तुम्हारे इरादे हैं?
मैं किन्हीं कोटियों में बंटने को राजी नहीं हूं। मैं किसी कोटि में खड़े होने को राजी नहीं हूं। बुद्ध के जीवन में एक प्यारा उल्लेख है, शायद तुम्हारे काम पड़ जाए। एक महाज्योतिषी काशी से लौट रहा हैअपने ज्योतिष का अध्ययन पूरा करके। उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी। उसकी भविष्यवाणियां सच होने लगीं। उसकी बात पत्थर की लकीर बनने लगी। वह अपने गांव वापिस आ रहा है। राह में एक छोटी सी नदी पड़ती हैनिरंजना। बुद्ध-गया के पास बहती है। उसी निरंजना के तट पर बुद्ध परम ज्योति में लीन हुए। नदी का नाम भी बड़ा प्यारा हैनिरंजना! निरंजन तो परमात्मा का नाम है। बुद्ध ने भी ठीक जगह चुनी।
निरंजना के तट पर बुद्ध एक वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे हैं। और वह काशी से आया हुआ पंडित, भरी दुपहरी है, जब नदी के तट पर पहुंचा तो देख कर हैरान हुआगीली रेत में किसी के पैरों के चिंह बने हैं। वह तो बहुत चौंका, क्योंकि उसके ज्योतिष के अनुसार इन पैरों के चिन्हों में जो लकीरें बनी हैं, वे तो केवल चक्रवर्ती सम्राट की हो सकती हैं। चक्रवर्ती सम्राट का अर्थ होता हैजो छहों महाद्वीप, सारी पृथ्वी का सम्राट हो। चक्रवर्ती सम्राट इस भरी दोपहरी में, इस गरीब नदी के किनारे, नंगे पैर चलने को आएगा! और चक्रवर्ती सम्राट कोई था भी नहीं उन दिनों। भारत में तो असंभव। भारत में बुद्ध के समय दो हजार राज्य थे, कहां चक्रवर्ती सम्राट! एक-एक जिला, एक-एक राजा।
भारत कभी राष्ट्र रहा ही नहीं। इसकी बुद्धि में टुकड़ों में बंटने की आदत है, वह अभी भी नहीं छूटी। इसे इकट्ठा होना नहीं आता। हर चीज टूट जाती है यहां। भारत दो हजार खंडों में बंटा हुआ था, कौन चक्रवर्ती सम्राट था! मगर ये पैर के चिंह बहुत स्पष्ट थे। ज्योतिष को बहुत चिंता हुई कि क्या मेरा शास्त्र गलत है। उसने पैरों के चिन्हों का पीछा किया। जिस तरफ चिंह जाते मालूम होते थे पैर के, उसी तरफ चल पड़ा कि इस आदमी को देखना जरूरी है। चलते-चलते पहुंचा उस वृक्ष के नीचे जहां बुद्ध बैठे थे, तब और मुश्किल में पड़ गया। बुद्ध के चेहरे को देख कर तो लगे कि है तो चेहरा चक्रवर्ती सम्राट का ही। व्यक्तित्व में वही आभा है जो चक्रवर्ती सम्राट की होनी चाहिएवही मंडल है, वही वर्तुल है प्रकाश का वही सुगंध है! वही ऐश्वर्य! मगर आदमी भिखमंगा मालूम होता है। पास में भिक्षापात्र रखा हुआ है, बिछाने को चटाई भी नहीं है। झाड़ के नीचे चट्टान पर बैठा हुआ है। वह पैरों पर गिर पड़ा ज्यातिषी उसके अपने शास्त्र जो बड़े बहुमूल्य थे वहीं रख दिए और बुद्ध से कहा कि मेरी जिज्ञासा को शांत कर दें, मैं बहुत अड़चन में पड़ गया हूं। बारह वर्ष की मेरी चेष्टा और श्रम पानी में मिला दिया आपने। ये पैरों के चिंह आपके हैं? जरा आपके पैर देख लूं।
बुद्ध ने पैर आगे बढ़ा दिए, उसने पैर गौर से देखे और कहा कि निश्चित ही आपको तो चक्रवर्ती सम्राट होना चाहिए। आप भिखारी कैसे? यह भिक्षापात्र कैसा? इस गरीब नदी के तट पर, गर्मी के दिन हैं, निरंजना बिल्कुल सूख गई है, जरा-सी पानी की धार है, आप यहां क्या कर रहे हैं चक्रवर्ती हो कर?
बुद्ध ने कहाः मैं कैसा चक्रवर्ती! इस भिक्षापात्र के सिवाय मेरे पास कुछ भी नहीं। और यह भी मेरा नहीं है। यहां कुछ भी मेरा नहीं है। अरे यह

मेरी देह भी मेरी नहीं है। यह मेरा मन भी मेरा नहीं है। मैं भी मेरा नहीं हूं।
तो उस ज्योतिषी ने पूछाः फिर एक ही बात हो सकती है कि आप कोई देवता हैं
जो आकाश से उतरे, पृथ्वी का निरीक्षण करने या किसी और प्रयोजन से?
बुद्ध ने कहा कि नहीं-नहीं, मैं कोई देवता भी नहीं हूं।
तो क्या आप गंधर्व हैं? गंधर्व हैं देवताओं के संगीतज्ञ। वह भी देवताओं की एक कोटि है। क्या आप गंधर्व हैं?
बुद्ध ने कहा कि नहीं, मैं कोई गंधर्व भी नहीं। ज्योतिष मुश्किल में पड़ता जा रहा है। क्रुद्ध भी होता जा रहा है कि यह आदमी कैसा है, हर बात में इनकार कर रहा है कि मैं यह भी नहीं। तो कहा, कम से कम आप आदमी तो हैं? बुद्ध ने कहा कि नहीं-नहीं, मैं आदमी भी नहीं। तब तो ज्योतिषी और गुस्से में आ गया। उसका गुस्सा स्वाभाविक, बारह साल का श्रम व्यर्थ गया, शास्त्र गलत सिद्ध हुए और यह एक आदमी है जो जवाब दे रहा है यूं कि इस पर कहीं से कोई पकड़ ही नहीं बैठती। इसको किस कोटि में रखें?
तो कहाः पशु हैं क्या?
बुद्ध ने कहा कि नहीं। पत्थर हैं क्या? बुद्ध ने कहाः नहीं। तो उसने कहा कि आप ही कहें, कौन हैं?
बुद्ध ने कहाः मैं सिर्फ जागरण हूं। मैं सिर्फ होश हूं, बोध हूं। मैं नहीं हूं, बोध मात्र है।
इसलिए मैं यह भी नहीं कह सकता कि मैं बुद्ध हूंसिर्फ बोध है। और मैं मिटा तब बोध हुआ। अगर मैं रहे तो बोध नहीं।
मेलाराम असरानी, मैं न मसीहा हूं, न तीर्थंकर, न पैगंबर न अवतार। मैं नहीं हूं। एक शून्य है। इस शून्य में तुम जो चाहो देख लो, तुम जो चाहो प्रक्षेपित कर लो। इसलिए किसी को भगवान दिख सकता है, किसी को शैतान दिख सकता है। यह शून्य तो दर्पण मात्र है, तुम्हारा चेहरा ही दिखाई पड़ेगा।
अब मेलाराम असरानी देखेंगे तो इनको मेला दिखाई पड़ेगाकुंभ मेला भरा हुआ! क्या नाम चुना हैमेलाराम! अरे राम ही काफी थे, राम तक को मेला बना दिया! राम को ही बचा लो, मेले को जाने दो। और राम तभी बचता है जब तुम मिटते हो। मेला मिटा यानी तुम मिटे। मेला अहंकार की भीड़-भाड़ है, उपद्रव है, शोरगुल है। मेला गया कि राम बचा। और राम जहां है वहां कोई मैं-भाव नहीं है। मेरा अर्थ दशरथ पुत्र राम से नहीं है, ध्यान रहे। राम से मेरा अर्थ भगवत्ता से है, भगवान से है। तुम्हारे भीतर भी भगवान पड़ा है, मगर उपेक्षित हीरे की तरह और तुम कचरे में भटके हुए हो।
मुझसे क्या पूछते हो मैं कौन हूं! मुझे तुम तभी पहचान लोगे, उससे पहले कोई उपाय नहीं है। जागे हुए को पहचानना हो तो नींद से जाग जाओ। मगर तुम नींद में ही पूछ रहे हो"क्या आप मसीहा हैं?" यह तुम नींद में बड़बड़ा रहे हो। ये तुम्हारे स्वप्न की बातें हैं। और अगर मैं कह दूं हां मैं मसीहा हूं, तो स्वप्न वाले दो काम कर सकते हैंकुछ हैं, जो मसीहा को मिटाने में लग जाएंगे, सूली बनाने में लग जाएंगे; और कुछ हैं जो मसीहा की पूजा करने लग जाएंगे। दोनों ही मसीहा को मिटाने में लगे हैंएक हिंसात्मक ढंग से, एक अहिंसात्मक ढंग से। सूली चढ़ाने वाला भी मिटा रहा है, पूजा करने वाला भी मिटा रहा है। पूजा करने वाला कह रहा है कि आप बड़े पूज्य हो, बस कृपा करो, दूर-दूर रहो; दो फूल हम चढ़ा देते हैं, इससे ज्यादा हमसे कुछ और न हो सकेगा। हमें माफ करो, हम पर कृपा करो। ये दो फूल ले लो और हमें छुटकारा दो।
सूली चढ़ाने वाला भी यही कह रहा है। जरा उसका ढंग हिंसात्मक है। वह कह रहा है कि हम नहीं चाहते तुम रहो, क्योंकि तुम्हारी मौजूदगी हमें अड़चन देती है। हम तुम्हारी मौजूदगी को मिटा देना चाहते हैं। वह भी मिटा रहा है, पूजा करने वाला भी मिटा रहा है। पूजा करने वाला कह रहा है कि तुम मसीहा हो, भगवान हो, तीर्थंकर हो, पैगंबर हो, अवतार हो। हम मनुष्य ठहरे। हम हैं मेलाराम, तुम हो राम, क्या लेना-देना? मगर अब मिल गए हो राह पर तो जयराम जी! ये दो फूल ले लो और हमें जाने दो!

दोनों अपने-अपने ढंग से इनकार करने की कोशिश कर रहे हैं। समझने की चेष्टा करो, जानने की चेष्टा करो। तभी तुम पहचान पाओगे कि शून्य होना भी एक ढंग है। वही तो अथर्ववेद की ऋचा है
पृष्ठात्पृथिव्या अहमन्तरिक्षमारुहम्
अन्तरिक्षादिद विमारुहम्, दिवोनाकस्य
पृष्ठात्ऽस्वर्ज्योतिरगाहम्
चले चलो, उठ चलोशरीर से, पार्थिव लोक से अंतरिक्ष लोक; अंतरिक्ष लोक
से ज्योतिषमान लोक, से परम ज्योतिपुंज में लीन हो जाओ। शून्य हो जाओगे तो महाशून्य तुम्हारा है। मिटोगे तो सब कुछ तुम्हारा है।

तीसरा प्रश्नः भगवान,
आप कहते हैं कि कीचड़ से ही कमल पैदा होता है। क्या राजनीति की कीचड़ से बुद्धत्व का कमल संभव नहीं?

कृष्णतीर्थ भारती,
निश्चित ही कीचड़ से ही कमल पैदा होता है, लेकिन कीचड़ को भी थोड़ी शांति चाहिए। झील की तलहटी में कीचड़ को भी थोड़ा विश्राम चाहिए। उस पर धमाचौकड़ी मचाए रखो तो कमल पैदा नहीं होगा। और राजनीति धमाचौकड़ी है। कीचड़ तो है ही, मगर कीचड़ को भी शांति नहीं है वहां। कीचड़ भी एक दूसरे पर फेंकी जा रही है। कीचड़ को फुरसत कहां कि कमल को उगा ले, राहत कहां? कमल उगाने के लिए थोड़ा समय तो चाहिए।
मगर ये जो राजनीति के उपद्रवी हैं, ये न खुद चैन से बैठते हैं, न किसी
और को चैन से बैठने देते हैं। इनका धंधा ही खुद बेचैन रहना और दूसरों को बेचैन करना है। ये अपनी मिट्टीेे खराब करते हैं, दूसरों की मिट्टीेे खराब करते हैं।
राजनीति से कमल पैदा होना असंभव है, क्योंकि तुम राजनीति का मतलब समझो। कीचड़ है इतना तो तुम समझ गए, मगर कीचड़ भी बड़ी उथल पुथल में है। भूकंप चल रहा है, प्रतिक्षण भूकंप आ रहा है। तो कमल कब पैदा हो? कीचड़ को भी खदेड़ा जा रहा हैयहां से वहां, फेंका जा रहा है, उलटाया जा रहा है, पुलटाया जा रहा है। कीचड़ को भी मौका तो दो थोड़ा विश्राम कर ले।
और फिर जब मैं कहता हूं कीचड़ से कमल पैदा होता है, तो एक बात ख्याल रखना, कहीं चूक न हो जाएजरूर कीचड़ से कमल पैदा होता है, लेकिन कमल के बीज भी चाहिए, नहीं तो अकेली कीचड़ से कमल पैदा नहीं हो जाता। अकेले बीज से भी पैदा नहीं होता। कीचड़ और कमल के बीजों को मिलन होना चाहिए।
तुम्हारे भीतर कमल पैदा हो सकता है मगर कम से कम कमल के बीज तो तुम्हें बोनें ही होंगे। और राजनीति कमल के बीज नहीं बोने देगी, क्योंकि कमल के बीज का अर्थ होता हैबुद्धिमत्ता के बीज, ध्यान के बीज, जागरण के बीज। और राजनीति में तो वही जीतता है जो सौ-सौ जूते खाए तमाशा घुस कर देखे। कितनी कुटाई-पिटाई हो, कोई टांग खींच रहा है, कोई लंगोटी ले भागता है, कोई टोपी फेंक देता है, कोई फिक्र नहीं, अपनी टोपी सम्हाल लेते हैं, फिर अपनी लंगोटी बांध लेते हैं, फिर जूझ पड़ते हैं। कितना ही घसीटो, पटको, कुछ भी करो, मगर बड़े धुन के पक्के लोग होते हैं। वे तो कुर्सी पर बिल्कुल चढ कर ही रहेंगे, हालांकि कुर्सी पर चढ़ कर भी चैन नहीं है। वहां भी चैन मिल जाए तो कमल खिल सकते हैं। वहां भी चैन कैसे! कुर्सी से चिपके रहना पड़ता है, क्योंकि लोग दूसरे खींच रहे हैं कि हटो। उठा पटक जारी है। यह तो मल्लयुद्ध है। यहां चारों तरफ दंड-बैठक लोग लगा रहे हैं, भुजाएं फाड़ रहे हैं। वह जो कुर्सी पर बैठा है उसको डरवा रहे हैं कि भागो, हटो! कोई उसकी स्तुति कर रहा है, पैर दबा रहा है। लेकिन जो पैर दबा रहा है, उससे भी उसको सावधान रहना पड़ता है, क्योंकि जो पैर दबा रहा है वह गर्दन दबाएगा। असल में गर्दन ही दबाना चाहता है, पैर से शुरू कर रहा है। हर चीज क ख ग से ही शुरू करनी पड़ती है। एकदम से किसी की गर्दन दबाओगे तो वह भी नाराज हो जाएगा। पैर दबाते दबाते पहुंचोगे, समझोगे मालिश ही कर रहा है। फिर गर्दन कब दबा देगा, पता नहीं चलेगा।

राजनीति में कोई मित्र तो होता ही नहीं, सब शत्रु होते हैं। मित्र भी शत्रु होते हैं, शत्रु तो शत्रु होते ही हैं। जितना ही निकट होता है आदमी उतना ही खतरनाक होता है राजनीति में। क्योंकि जो जितने निकट है उतनी ही उसकी आशा बंध जाती है कि अब मैं भी पद पर हो सकता हूं। अगर मोरारजी देसाई पद पर हो सकते हैं तो चरणसिंह क्यों नहीं हो सकते? जरूर हो सकते हैं। जब देखा कि मोरारजी देसाई चढ़ गए तो चरणसिंह क्यों पीछे रहें! कोई भी चढ़ सकता है। जब देख लिया कि एक लंगूर चढ़ गया, तो दूसरे लंगूर तुम सोचते हो चुपचाप बैठे रहेंगे?
राजनीति के लंगूरों में कहां से बीज बोओगे? उनको तुम कमल के भी दोगे, कुछ का कुछ कर लेंगे। तुमने राजनीतिज्ञों को जरा देखा गौर से? इनमें बुद्धि के कोई लक्षण दिखाई पड़ते हैं?
एक नेताजी को किसी मुशायरे की अध्यक्षता करनी पड़ी। मुशायरा शुरू होते
ही मुकर्रर मुकर्रर की आवाजें सुन उन्होंने धीरे से अपने सेक्रेटरी से पूछाः मुकर्रर क्या होता है? मुशायरे की अध्यक्षता कर रहे हैं और मुकर्रर क्या होता है, यह भी पता नहीं! सेक्रेटरी ने कहाः सर, लोग इस शेर को फिर से सुनना चाहते हैं। वे कह रहे हैंवंस मोर, एक बार फिर। मुकर्रर का मतलब एक बार फिर और हो जाए।
यह सुनना ही था कि नेताजी ने माइक अपनी ओर खींचा और बोलाः देखिए साहबो, एक बार में शेर सुनिए। मेरे होते हुए आप इस तरह शायर को तंग नहीं कर सकते।
बुद्धि भी तो होनी चाहिए। कमल तो पैदा हो जाए, मगर बुद्धि कहां? एक नेताजी अपने विदेश यात्रा के संस्मरण लोगों को विस्तारपूर्वक सुना रहे थे कि मैं अमरीका गया, इंग्लैंड घूमा, अफ्रीका के जंगल देखे, बर्फानी प्रदेशों में फंसा। पास बैठे एक सज्जन ने हैरत से कहाः फिर तो आपको भूगोल की अच्छी जानकारी होगी?
उन नेताजी ने कहाः नहीं, मैं वहां नहीं गया। अक्ल नाम की चीज और नेता में मिल जाए, बिल्कुल असंभव।
एक नेताजी पहली ही पहली बार दिल्ली आए हुए थे। जब अन्य सब काम हो गए तो नेताजी ने सोचा कि जब यहां आए हैं तो दिल्ली शहर के किसी अच्छे नाई से हजामत ही क्यों न बनवा ले। ऐसा सोच एक बड़ी नाई की दुकान पर जा पहुंचे और बोले कि मुझे हजामत बनवानी है, कितने पैसे लगेंगे?
नाई बोलाः नेताजी, आपको जितने पैसे वाली बनवानी हो, पचास पैसे, एक रुपये, दो रुपये, पांच रुपये, दस रुपये, जैसी भी आप चाहें।
नेता जी बोलेः अच्छा ऐसा करो, आठ आने वाली बनाओ।
नाई ने उस्तरा उठाया और नेताजी की पूरी नाक साफ कर दी। जब नाई अपना काम कर चुका तो उसने कहा कि लाइए नेताजी, पैसे दीजिए। इस पर नेताजी बोले, अब एक रुपये वाली हजामत बनाओ। नाई तो घबड़ाया कि अब एक रुपये वाली हजामत के लिए जगह ही कहां बची है! उसे घबड़ाया देख नेताजी बोलेः घबड़ा मत, अभी तो धीरे- धीरे दस रुपये वाली तक बनवाऊंगा। बेफिकरी से बना।
बुद्धि तो नाममात्र को नहीं। बुद्धि हो तो राजनीति में क्यों हों? कीचड़ तो है, मगर कमल के बीज कहां? और कमल के बीज हों तो पता नहीं उनको चना- फुटाना समझ कर चबा जाएं, क्या करें! इनका कुछ भरोसा नहीं।
इन लंगरों की एक जमात खड़ी हो गई पूरे देश में। एक से एक लंगूर हैं इसमें।
अकालग्रस्त क्षेत्र के दौरे पर गए
एक खाद्दमंत्रीजी,
बताया गया उन्हें
कि यहां लोग घास खा रहे हैं
बड़े प्रसन्न हुए
और सभा में भाषण देते हुए बोले, "मेरे अकालग्रस्त क्षेत्र के भाइयो! मुझे प्रसन्नता है
यह जान कर

कि आप लोग
घास खा रहे हैं,
मैंने सुना है
कि आजादी की रक्षा के लिए प्रताप ने भी घास खाई थी
और
नेताजी सुभाष बोस ने भी कहा था कि गुलामी की डबल रोटी से
तो आजादी की घास बेहतर है
मैं आपको मुबारकबाद देता हूं कि आप भी आजादी की रक्षा के लिए घास खा रहे हैं,
अपना फर्ज निभा रहे हैं,
अब ज्यादा क्या कहें
हमारे लंच का वक्त हो गया
हम जा रहे हैं!
जयहिंद!"
राजनीति का जरा सरकस तो देखो! एक से एक जोकर, क्या-क्या करतब दिखा रहे हैं! एक नेताजी हैंराजनारायण। वही सिर्फ नेताजी के नाम से जाने जाते हैं, बाकी तो सिर्फ ठीक ही हैं, नेता ही हैंनेताजी तो राजनारायण हैं!
श्री राजनारायण सुमिर मन, कोटि जनगण रंजनम्
नित जोड़-तोड़म्, तोड़-फोड़म्, जनतापार्टी-भजनम्
सिर नवल हरित रूमाल, मुख पर मूंछ-दाढ़ी शोभितम
तव देह अति विकराल, रुप कराल, जिमि वनमानुषम्
सुद्दढ़ अंग-प्रत्यंग, कलि-बजरंग, कपि-कुल भूषणम्
नित सांझ घोटत भंग, पीवत प्रात उठ-जीवन-जलम
तन रमत सुरभित तेल, इत्र-फुलेल वस्त्र-विभूषणम् नित साम दामम्, दण्ड भेदम्, सकल संसद-दूषणम्
जय पतित-पावन नगर काशी, पाप-पुण्य समर्पणम
पुनि पहुंच गंगा-तट त्रिपाठी, कीन्हि अन्तिम तर्पणम
इति वदति अल्हड़दास जोकर-चरित विकट विलक्षणम
कलिकाल जगजीवन विनाशम चरण-शरण-सुरक्षणम्
श्री राजनारायण सुमिर मन, कोटि जन-गण-रंजनम्
नित जोड़-तोड़म्, तोड़-फोड़म्, जनता-पार्टी भजनम्
एक से एक अदभुत लोग हैं। अब तुम सोचते हो कि राजनारायण में और कमल पैदा हो जाएं? असंभव और इनमें से कोई कमल पैदा करना चाहता भी नहीं। ये तो कुछ और चाहते हैं। ये पद चाहते हैं, प्रतिष्ठा चाहते हैं, अहंकार के लिए आभूषण चाहते हैं। ये तुम्हारे सिर पर चढ़ना चाहते हैं। इनको कमल चाहिए? कमल के लिए कोमलता चाहिए। कमल होने के लिए इतनी उपद्रवग्रस्त चित्त अवस्था कैसे भूमिका बन सकती है?
और देखते हो इनको घुटने टेके हुए? भिखमंगे से लेकर राष्ट्रपति तक बस
यह भीख ही मांग रहे हैं। कभी वोट मांग रहे हैं, किसी से पद मांग रहे हैं। जगह-जगह इनका एक ही काम हैः अपने से नीचे जो है, उसको दबाना; अपने से ऊपर जो है, उसकी खुशामद करना, उसकी मालिश करना, उसकी सेवा में रत। उसका बदला नीचे जो है उससे लेना।
मैंने सुना है, अकबर ने एक दफा गुस्से में आकर बीरबल को चांटा मार दिया। बीरबल ने आव देखा न ताव, बगल में खड़े एक आदमी को चांटा मार दिया। वह आदमी बहुत भन्नाया। उसने कहा कि यह हो गई, मैंने तो कुछ तुम्हारा बिगाड़ा नहीं। और अकबर ने तुम्हें चांटा मारा, मारना हो अकबर को मारो, मुझे क्यों मारते हो?
बीरबल ने कहाः जो जिसको मार सकता है, उसको मारेगा। तू आगे वाले को बढ़ा दे।

और उस आदमी की भी बात समझ में आ गई, उसने आगे वाले को बढ़ा दिया। उसने दिया एक चांटा बगल में खड़े आदमी को। और फिर तो पूरे दरबार में चांटा घूम गया। चपरासी तक पहुंच गया। यूं चलती है यात्रा।
एक आदमी जब इंदिरा गांधी प्रधानमंत्री थीं पहले, तो उनकी प्रशंसा करता था। फिर मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री हो गए, उनकी भी प्रशंसा करता था। और जब इंदिरा पुनः प्रधानमंत्री हो गईर्ं तो वह आदमी फिर आकर प्रशंसा करने लगा। मैंने कहा कि मेरे भाई, तू कुछ तो सोच, कभी इंदिरा की प्रशंसा करता, कभी मोरारजी देसाई की, कभी चरणसिंह की! तेरे पास कुछ लाज-शरम भी है या नहीं?
उसने कहा कि इसमें मैं क्या गलती कर रहा हूं? अरे मुझे क्या लेना मोरारजी से, मुझे क्या लेना इंदिरा से? जो भी प्रधानमंत्री, मेरी निष्ठा तो प्रधानमंत्री से है। मैं तो प्रधानमंत्री की प्रशंसा करता हूं। मुझे क्या लेना देना इन लोगों से? कि कौन आया गया? ये तो आते-जाते रहते हैं मैंने उससे पूछाः तेरा काम क्या है? उसने कहा कि मैं चपरासी हूं प्रधानमंत्री का। और यह तो टेंपररी हैं, मैं तो परमानेंट! ये तो आते-जाते रहते हैं, ये तो बरसा के मेंढक की भांति टांय-टांय किए और गए। मैं तो परमानेंट हूं! मैं तो यहीं जमा हूं। अब मुझे क्या लेना-देना, कौन बैठा कुर्सी पर! जो बैठा सो मालिक।
एक नेता जी, जो इंदिरा को धोखा दे गए थे और मोरारजी के साथ हो गए थे, जब इंदिरा वापस सत्ता में आ गई, तो उनका इस पद में वर्णन है
मैया मोरी मैं नहिं कोउ पद पायौ।।
नई सरकार बनाई तैने, ऐसी खोट कियौ का मैंने,
आंख फारि देखे सब पेपर, मेरौ नाम न आयौ।
प्रतिपक्षितन ने बहुत सतायौ, घेरि-घेरि कै जेल पठायौ,
जब-जब मांगो न्याय, कोर्ट को कुत्ता हू गर्रायौ।
मैया मोरी मैं नहिं कोउ पद पायौ।।
फूंक-फूंक कर पांव धरूंगो, आज्ञा देगी सोहि करूंगो, अब नहिं खाऊंगौ जैसे पहिलै धोखौ खायौ।
मैया मोरी मैं नहिं कोउ पद पायौ
नसबन्दी कौ सोर मचायौ, भोरी जनता को भरमायो,
जबरन करी पुलिस नै, मेरौ झूठो नाम लगायौ।
मैया मोरी मैं नहिं कोउ पद पायौ।
द्वारे खड़े किसोर-किसारी, मन्त्रिन के कछु छोरा-छोरी, खेलन दे दिल्ली में होरी, यह सुभ अवसर पायौ।
मैया मोरी मैं नहिं कोउ पद पायौ।।
फेल भयौ किस्सा कुर्सी कौ, अब दै-दै हिस्सा कुर्सी कौ,
जोर मारिकै मर गए बैरी, तऊ संसद में आयौ।
मैया मोरी मैं नहिं कोउ पद पायौ।।
वात्सल्य उमङग्या मन मैया, धीरज धर मेरे कुवंर-कन्हैया,
तोहि "प्रधान" बनाइकै मानूं, हाथ फेरि दुलरायौ।
मैया मोरी मैं नहिं कोउ पद पायौ।।
इन मूढ़ों में, तुम सोचते हो कमल खिल सकते हैं? कीचड़ में जरूर। मगर ये
तो कीचड़ से भी गए-बीते हैं। ये तो कीचड़ से भी बदतर।
राजनीति तो मनुष्य के जीवन का निम्नतम जो रूप है, उसको प्रगट करती है। राजनीति में कोई संभावना नहीं है। कैसे तो वहां ध्यान बनेगा, कैसे वहां समाधि? और समाधि के बिना कैसे कमल? वह सहस्र-दल-कमल, जिसकी बुद्धों ने चर्चा की सदा, तुम्हारी चैतन्य की परम शांति में ही खिल सकता है, मौन में ही खिल सकता है। उसके लिए अति बुद्धिमत्ता चाहिए। उसकी पूरी कला सीखनी होती है। यह धोखाधड़ी की दुनिया, यह बेईमानी, यह चालबाजों की दुनिया, यह एक-दूसरे की गर्दन काटते हुए लोगों की दुनिया, यहां कैसे सहस्र-दल-कमल खिले? असंभव।
राजनीति से मुक्त होना पड़े, तो जरूर कमल खिल सकता है। राजनीति से मुक्ति का अर्थ हैमहत्वाकांक्षा से मुक्ति। राजनीति अर्थात

महत्वाकांक्षा। और महत्वाकांक्षा से मुक्ति अर्थात परम शांति। जहां महत्वाकांक्षा नहीं है वहां अशांति का कोई कारण न रहा। जब तक तुम कुछ और होना चाहते हो, जब तक तुम कुछ पाना चाहते हो, जब तक तुम्हारी दौड़ है, तब तक चैन नहीं, विश्राम नहीं। ठहरना होगा, रुकना होगा, बैठना होगा। आंख बंद करके भीतर झांकना होगा। जरूर कमल खिल सकता है। कुछ मैं यह नहीं कह रहा हूं कि राजनीति के जीवन में कमल खिल ही नहीं सकता। राजनीति में रहते हुए नहीं खिल सकता। नहीं तो राजनीतिज्ञ भी तुम्हारे जैसा मनुष्य है। थोड़ा पगला गया है, सो पागलपन छोड़ सकता है; क्योंकि पागलपन ने उसे नहीं पकड़ा है, उसने ही पागलपन को पकड़ा है। जब चाहे तब छोड़ दे। छोड़ दे तो कीचड़ ठहर जाए। छोड़ दे तो उस छोड़ने में ही बीज बो जाएं। महत्वाकांक्षा चली जाए, तो कमल के खिलने में क्या देर लगती है? वह तो हमारा स्वभाव है।
इस जगत में जो भी पाने योग्य है वह तुम्हें मिला ही हुआ है, सिर्फ उसे मौका दो। आपाधापी न करो।
जीसस कहते थेः तुम बीज फेंको, कुछ पड़ जाएंगे रास्ते पर जहां से लोग गुजरते हैं, वे कभी अंकुरित न हो पाएंगे? कैसे अंकुरित होंगे? राह दिन-रात चलती है, बीज पैरों में दबते रहेंगे, इधर से उधर हटते रहेंगे। गाड़ियां गुजरेंगी, घोड़े गुजरेंगे, टापें पड़ेंगी, चाक घूमेंगे, कैसे बीजों में अंकुर आएंगे? लेकिन कुछ बीज राह के किनारे पड़ जाते हैं, उनमें अंकुर शायद आ जाएं, मगर कभी फूल न खिलेंगे। क्योंकि राह के किनारे माना कि उतने लोग नहीं चलते, लेकिन फिर भी कभी-कभी लोग चलते हैं। जब रास्ते पर गाड़ियां निकल रही हों, घोड़े निकल रहे हों, गधे निकल रहे हों, तो लोग रास्ते के किनारे चलते हैं। तो हो सकता है रास्ते के किनारे कोई बीज अंकुरित हो जाए मगर अंकुरित ही हो कर मर जाएगा। फिर कुछ बीज रास्ते से दूर हट कर खेत की मेड़ पर पड़ सकते हैं। तो शायद अंकुर पौधे बन जाएं, मगर खेत की मेड़ से भी किसान कभी- कभी गुजरता है। बहुत लोग नहीं गुजरते, मगर खेत का मालिक गुजरता है। उसकी पत्नी रोटी ले कर आती है। उसके बच्चे उससे मिलने आते हैं। कभी उसके मेहमान भी आ जाते हैं। पौधे भी बन जाएंगे तो भी मर जाएंगे। और कुछ बीज खेत में पड़ जाते हैं। जो खेत में जाते हैं, वे अंकुरित भी होंगे, पौधे भी बनेंगे, उनमें फूल भी लगेंगे, उनमें फल भी लगेंगे। उनकी छाया के नीचे शायद कोई विश्राम भी कर सके। उनसे गंध भी उठेगी। वे नाचेंगे आकाश में तारों के साथ। वे चांद और सूरज से बातचीत करेंगे। नृत्य भी होगा, उत्सव भी होगा। क्योंकि जो वृक्ष अपने फूलों पर आ जाता है वह वृक्ष परितृप्त हो गया।
और वही मनुष्य परितृप्त होता है जो अपने सहस्र-दल-कमल को खिला सकता है। हजारों पंखुड़ियों वाला यह कमल है तुम्हारे भीतर। मगर इन बीजों को रास्ते पर मत डालो।
राजनीति तो ऐसे है जैसे चलता हुआ रास्ता। वहां तो बीज डाले तो बीज मर जाएंगे। लेकिन राजनीति में जो है हट सकता है।
मेरे एक संन्यासी अमृत चैतन्य ने लिखा है कि बरसों हो गए, आपने मुझे समझाया था कि राजनीति में मत गिर जाना। मगर मैंने आपकी न सुनी, मैं राजनीति में पड़ गया विधान-सभा का सदस्य बन गया। अब सोचता हूं कि मैंने इतने वर्ष व्यर्थ गंवाए। अब आपकी बात समझ में आती है कि मैं नाहक कुटा- पिटा, नाहक समय गया। अब पश्चाताप होता है।
अब उन्होंने पूछा है कि अब क्या करूं। इस पश्चाताप से कैसे छुटकारा हो?
अमृत चैतन्य, जो गया सो गया। सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भुला नहीं कहलाता। अब पश्चाताप में समय मत खराब करो। एक से एक मजा है! पहले राजनीति में खराब किया, अब पश्चाताप में खराब करोगे। अब कम से कम पश्चाताप न करो। क्या पश्चाताप? शायद जरूरी था, तभी तुम नहीं सुन पाए। भीतर कहीं अभी पड़ा होगा कुछ रस, कोई राग, कोई दौड़। शायद राजनीति में जाना जरूरी था। तो जो बात मैंने तुमसे कही थी वह अब समझ में आई। चलो। जब समझ में आ गई तभी जल्दी है। तब समझ में न आई थी, कोई बात नहीं। शायद मैंने समय के पहले कह दी होगी। शायद समय पका नहीं था। तब तुमने सुना होगा, लेकिन समझे नहीं, समझते कैसे? क्योंकि राजनीति के उपद्रव में न पड़ते तो तुम्हें मेरी बात समझ में

आती भी नहीं। पड़ गए उपद्रव में चलो इतनी समझ आई, यह भी कुछ कम लाभ है? अगर पड़े ही रहते तो बुद्धू थे। निकल आए और पश्चाताप पकड़ गया, यह बुद्धिमत्ता का लक्षण है। अब पश्चाताप में समय मत खराब करो। बात खतम हो गई सीख लिया एक पाठ। आखिर आदमी भूल करके ही सीखता है। इसमें पछताना क्या?
हाथ जलता है तो ही बच्चा सीखता है कि आग में हाथ नहीं डालना। गड्ढे में गिरता है तो ही सीखता है गड्ढे में से कैसे बचना। मूढ़ तो वे हैं जो गिर गिर कर नहीं सीखते।
तुमसे मैंने पंद्रह साल पहले यह बात कही थी। जल्दी है कि तुम पंद्रह साल में सीख गए। लोगों के जो पंद्रह जन्म गुजर जाएं तो भी सीख नहीं सकते। अब मोरारजी देसाई की उम्र पच्चासी वर्ष हो रही है, अभी तक अकल नहीं। अभी फिर सुगबुगाहट उनको पैदा हो गई है। कुछ दिन ठंडे हो कर बैठ गए थे समझ कर कि अब कोई आशा नहीं है। लेकिन अब उनके शागिर्दों ने, दूसरे लंगूरों ने दंगे- फसाद करवा दिए देश में। चीजों के भाव बढ़ रहे हैंइन्हीं की कृपा से बढ़ रहे हैं, इन्हीं सज्जन की कृपा से बढ़ रहे हैं! क्योंकि संख्या बढ़ा दी इन्होंने तीन साल जब तक सत्ता में रहे, क्योंकि संतति निरोध को बिल्कुल बंद करवा दिया। संख्या बढ़ गई लोगों की। चीजें उतनी की उतनी हैं और संख्या बढ़ गई तो दाम तो बढ़ने वाले हैं। अब दाम नहीं बढ़ने चाहिए, इसका आंदोलन चला रहे हैं। इनकी ही गर्दन पकड़नी चाहिए लोगों को कि तीन साल में तुमने जो शरारत की है देश के साथ, उसका यह परिणाम है। परिणाम आने में समय लगता है। तीन साल तुमने जो उपद्रव कर दिया, तीन साल तुमने जो अव्यवस्था फैला कर रखी... तीन साल इन सज्जन ने किया ही क्या? सिर्फ एक काम किया कि किसी तरह इंदिरा को नेस्तनाबूद कर दें। शर्म भी होती है संकोच भी होता है कि हारे हुए को नहीं मारता। जो गिर पड़ा उसको फिर चोट नहीं की जाती। लेकिन इन्होंने तीन साल में उतनी भलमनसाहत भी नहीं बरती। इंदिरा को जड़-मूल से नष्ट का देने की चेष्टा में लगे रहे। तीन साल में इनका कुल काम इतना रहा कि किस तरह इंदिरा को बर्बाद कर दें।
और ध्यान रखना जो दूसरे को बर्बाद करने में लगता है वह खुद बर्बाद हो जाता है। जो दूसरों के लिए कांटे बोता है, एक दिन उन्हीं कांटों पर उसे खुद चलना होता है। जो दूसरों के लिए गड्ढे खोदता है एक दिन उन गड्ढों में उसे खुद ही गिरना पड़ता है। वे ही गड्ढे उसकी कब्र बन जाते हैं।
तीन साल में देश ने देख लिया कि हमने गधों के हाथ में सत्ता दे दी है। गधे शब्द से नाराज मत होना। गधा का मतलब हैगंभीर रूप से धार्मिक। वह संक्षिप्त है। गधा मैं संक्षिप्त कर लिया हूं कि बार-बार क्या कहनागंभीर रूप से धार्मिक, गंभीर रूप से धार्मिक! अब जरा इन्होंने देखा कि दूसरे गधों ने, इनके शार्गिदों ने, लंगूरों ने उपद्रव शुरू कर दिए हैं जगह-जगह दंगे-फसाद, हिंदु-मुस्लिम दंगे, जिनका कोई कारण नहीं है और जिसके पीछे निश्चित शड्यंत्र दिखाई पड़ता है, क्योंकि एक ही ढंग से वे दंगे सब जगह हो रहे हैं। एक ही रुख और एक ही व्यवस्था अपनाई गई है। मुरादाबाद में दंगा हुआ, वही ढंग थाएक सुअर को ईदगाह में छोड़ दिया। इलाहबाद में दंगा हुआ, वही तरकीब थीएक सुअर को मार कर मस्जिद के सामने लटका दिया। जाहिर है कि इस तरह की घटनाओं के पीछे सुअरों का हाथ है। और किसका हो सकता है? और इसके पीछे एक सुनियोजित शड्यंत्र हैः सारे मुल्क को हिंदु-मुस्लिम दंगों के उपद्रव में फंसा दो। स्वभावतः सरकार को गिरना आसान हो जाएगा।
और भाव बढ़ रहे हैं चीजों के, बढ़ेंगे हीसंख्या बढ़ रही है। कोई नहीं रोक सकता भाव बढ़ने से। और भाव बढ़ने से रोकना हो तो एक ही उपाय है कि जबरदस्ती करनी पड़ेगी। जबरदस्ती करो तो यही दुष्ट खड़े हो जाएंगे कहने को कि देखो, फिर इमरजेंसी आ गई, फिर जबरदस्ती शुरू हो गई! हम कहते थे कि इंदिरा को लाए कि जबरदस्ती आएगी। अब तुम देखते हो, किस तरह की राजनीति का जाल चलता है! जबरदस्ती के बिना भाव नीचे नहीं लाए जा सकते। ये पुलिस के डंडे की जबरदस्ती से भाव नीचे आ सकते हैं। लेकिन पुलिस का डंडा उठाओ तो इंदिरा गई, क्योंकि तुमने जबरदस्ती की जनता के साथ। लोकतंत्र में जबरदस्ती! अगर डंडा मत उठाओ तो इंदिरा गई, क्योंकि भाव बढ़ते जा रहे हैं, जनता पीड़ित हो रही है और तुम अपना आश्वासन पूरा नहीं कर पाए।

इस तरह के द्वंद्व में फांसने की कोशिश की जा रही है। उसको लगा कि अब संभावना एक बार फिर प्रधानमंत्री होने की है। तो कुछ दिन बिल्कुल ठंडे बैठे रहे। जनता पार्टी के सदस्यों के चुनाव के प्रचार के लिए भी नहीं गए। और अब फिर सक्रिय हो गए। अब फिर यात्रा शुरू। अब फिर आशा बंधी। कितने बार हौसले टूट जाते हैं, मगर फिर भी मरते नहीं हौसले। पच्चासी वर्ष की उम्र में भी आदमी राजनीति से पार न हो पाए, तो इतना ही मानना होगा कि संभवतः बुद्धि नाम की कोई चीज इस व्यक्ति में नहीं है। नहीं तो सब देख लिया, अब क्या उसी उपद्रव में फिर जाना! लेकिन अभी और इनको पिटना है, अभी और इनको कुटाई पिटाई करवानी है। अभी फिर नशा चढ़ने लगा।
तो तुम, अमृत चैतन्य, तो ज्यादा बुद्धिमान हो कि ये दस-पंद्रह वर्ष के उपद्रव में ही तुम्हें समझ में आ गया कि बेवकूफी हो गई। और मैंने तो बीज डाल दिया था तुम्हारे मन में कि मत गिरना। और मैंने जब बीज डाला था और तुमसे कहा था मत गिरना राजनीति में, तो निश्चित ही यही देख कर कहा होगा कि तुम गिरोगे, नहीं तो क्यों कहता? हर किसी को नहीं कहता हूं कि मत गिरना राजनीति में। तुमसे कहा था मत गिरना राजनीति में, देखा होगा कि गिरने के करीब हो, कि बिल्कुल गड्ढे के किनारे खड़े हो और दिल तुम्हारा बहुत मचल रहा है कूदने को। बिल्कुल लंगोट बांधे हुए खड़े हो। तो ही कहा होगा मैंने कि भैया, रुक जाओ तो रुक जाओ। हालांकि मैंने यह नहीं सोचा होगा कि तुम रुक जाओगे। लेकिन इतना जरूर सोचा था कि कोई फिकर नहीं, गिरे भी तो यह बात पड़ी रह जाएगी, शायद कभी काम आ जाए। वह आज काम आ गई।
अब पश्चाताप की कोई जरूरत नहीं। जल्दी ही बाहर आ गए। जन्म-जन्म लग जाते हैं, लोग बाहर नहीं आ पाते। बड़ी मुश्किल से बाहर आ पाते हैं। जो बाहर आ जाएं वे बुद्धिमान हैं।
मैत्रेय को देखते हो, वे बारह साल तक संसद के सदस्य थे। अभी होते अगर संसद में तो कैबिनट स्तर के मंत्री निश्चित होते, कोई कारण नहीं था... । नहीं तो कम से कम बिहार के मुख्यमंत्री तो होते ही। पूरी संभावना थी।
लेकिन मैंने उनसे कहा और वे बाहर आ ही गए। असल मैं बारह साल देख ही चुके थे, शायद रास्ते में राह ही देख रहे होंगे कि कोई कहे कि कोई बहाना मिल जाए तो निकल आएं। तुम गड्ढे में गिरे नहीं थे। तुमसे मैंने कहा, तुम गिर कर सीखे।
मैत्रेय को मैंने कहा, वे गड्ढे में गिरे ही हुए थे, गड्ढे का अनुभव था। हड्डी-पसली चकनाचूर हो ही रही थी। मैंने कहा कि निकल आओ, वे निकल आए उसी वक्त।
हर चीज का समय होता है। पछताने की तो कोई भी जरूरत नहीं है। न पीछे लौट
कर देखना है, न पीछे के विचार में पड़ना है। आगे जाना है। जो हुआ हुआ। और उससे लाभ हो गया। आखिर तुम्हारी बुद्धिमत्ता बढ़ी। पंद्रह साल पहले जो बात समझ में न आई थी आज समझ में आने लगी, यह अच्छा लक्षण है। अब दुबारा न गिरना, बस इतना ही तुमसे कहता हूं। और पश्चाताप किया तो दुबारा गिर सकते हो, क्योंकि पश्चाताप बड़ा सूक्ष्म और नाजुक मामला है।
तुम पश्चाताप के विज्ञान को समझ लो। यह खतरनाक चीज है पश्चाताप। पश्चाताप आदमी करता क्यों है? सोचते तुम हो इसलिए करता है कि भूल की। नहीं, पश्चाताप आदमी इसलिए करता है कि जो भूल की उसको पोंछ दे, उस पर पानी फेर दे, ताकि फिर भूल करने की सुविधा बन जाए। नहीं तो वह भूल खड़ी रहेगी और चेताती रहेगी कि देखो, अब मत करना भूल। पश्चाताप करके तुम अपने अहंकार को फिर से खड़ा कर लोगे। वह जो टूट फूट गया, जगह-जगह छेद हो गए, फिर पैबंद लग जाएंगे।
पश्चाताप का मतलब यह है कि तुम अपने को समझा लोगे कि देखो, गलती की थी
तो पछता भी तो लिया पश्चाताप यानी गंगा स्नान। और जब गंगा से लौटे तो फिर पाप करने में क्या हर्ज है? अरे जब रास्ता ही मिल गया, गंगा में जाकर फिर स्नान कर लेंगे। अगर पश्चाताप किया तो घाव भर जाएगा। यह मलहमपट्टी है पश्चाताप। तुम किसी पर क्रोधित होते हो, फिर जाकर माफी मांग लेते हो। इसका मतलब नहीं कि तुम दुबारा क्रोध नहीं करोगे। इसका कुल मतलब इतना है कि क्रोध करने से तुम्हारे अहंकार को चोट पड़ी, तुम्हारे अहंकार की प्रतिमा गिर गई। तुम सोचा करते थे कि मैं तो अक्रोधी हूं, मैं कभी क्रोध नहीं करता।

तुम्हारे मैं को बड़ा घाव पड़ गया। अब तुम किस मुंह से कहोगे कि मैं अक्रोधी हूं, मैं क्रोध नहीं करता? तुम्हारा सिर झुक गया। तुम जाकर माफी मांग आते हो, सिर फिर खड़ा हो गया। अब तुम कह सकते हो कि अगर क्रोध किया भी तो क्षमा मांग ली। देखते हो, मेरे जैसा विनम्र कोई है! तुमने घाव को फिर भर दिया। इसका कुल परिणाम इतना होगा कि कल तुम फिर क्रोध करोगे, क्योंकि तुमको तरकीब मिल गई घाव को भरने की।
मैं कहता हूंः घाव को भरो मत, पश्चाताप करो मत। पश्चाताप पौंछने का इरादा है कि हमने लीप पोत कर सब साफ कर लिया। फिर खतरा है। तुम उसको जिंदा रहने दो, घाव को बना रहने दो, ताकि तुम्हें चेताता रहे, इंगित करता रहे कि सावधान। वह एक तीर की तरह इशारा करता रहे कि याद रखो, भूल मत जाना। पश्चाताप भूलने की व्यवस्था है कि देखो भूल की तो पश्चाताप भी तो कर लिया, अब और क्या करना है! बात खतम हो गई। काबा हो आए, हाजी हो गए, गंगा नहा लिए, सब धुल गया मामला। अब फिर जी भर कर कहो। फिर खतरा है। पश्चाताप करना ही मत। एक तो गलती की राजनीति में आकर, अब दूसरी गलती मत करना पश्चाताप करके। पहली गलती माफ की जा सकती है, दूसरी गलती माफ करना मुश्किल हो जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने दफ्तर से तनख्वाह लेकर चला। पांच सौ रुपये की जगह छह सौ रुपये भूल से उसको मिल गए। दो नोट चिपके हुए थे। रास्ते में उसने गिने छह थे, बड़ा प्रसन्न हुआ। सांझ को जब दफ्तर के कोषाध्यक्ष ने जांच-पड़ताल की, तो उसे समझ में आ गया कि किसको उसने सौ-सौ के नोट दिए हैं। मुल्ला नसरुद्दीन को दिए हैं। तो एक नोट ज्यादा चला गया है। वह चुप रहा कि देखें, यह लौटाता है कि नहीं लौटाता। वह काहे को लौटाए! उसने तो सोचा कि यह अपनी प्रार्थनाओं का फल है। यह जो रोज नमाज पढ़ता हूं, आखिर उसका कुछ तो फल मिलना ही चाहिए! और जब परमात्मा देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है, कोई ऐसा थोड़े ही देता है कि एकाध रुपया दे दिया। अरे सौ रुपये का पूरा नोट! उसने तो समझा यह पुण्य का ही फल है। तो धन्यवाद दिया परमात्मा को, दिल खोल कर परमात्मा को धन्यवाद दिया, मगर और किसी की बात न की।
वह कोषाध्यक्ष भी चुप रहा कि अब कहने से सार भी नहीं है, मुकर ही जाएगा यह। दूसरे महीने उसने पांच सौ की जगह चार सौ रुपये लिफाफे में रख कर नसरुद्दीन को पकड़ा दिए। नसरुद्दीन जल्दी बाहर जाकर देखा कि कहीं फिर तो छह नहीं आ गए, क्योंकि जब परमात्मा देता है छप्पर फाड़ कर देता है। लेकिन वहां देखा कि पांच की जगह चार ही थे। भनभनाया हुआ भीतर आया। टेबल पर पटक दिया लिफाफा और कहा कि अंधे हो, गिनती आती है कि नहीं आती? पांच सौ की जगह कुल चार सौ दिए!
उसने कहाः और पहले महीने की याद करो। जब पांच सौ की जगह छह सौ दे दिए थे, तब कुछ न बोले?
मुल्ला ने कहाः एक दफे कोई गलती करे तो माफ किया जा सकता है। लेकिन दुबारा कोई गलती करे, मैं माफ नहीं कर सकता।
यही मैं तुमसे भी कहता हूं। एक दफा गलती की, चलो कोई बात नहीं, मगर अब दुबारा तो न करो। अब पश्चाताप नहीं। अब तो प्रफुल्लित होओ, आनंदित होओ कि जल्दी सूझ गई, जल्दी बोध मिल गया। धन्यवाद दो राजनीति को कि तेरी बड़ी कृपा, मैया कि ज्यादा न भरमाया, जल्दी से बोध जगाया! अब छोड़ो, पीछे की बात गई, जो गई सो गई। बीती ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेय। आगे का सवाल है अब, पीछे मत लौटो। जितना पीछे लौट कर देखोगे उतना समय व्यर्थ जाता है, क्योंकि पीछे तो जा नहीं सकते। इसलिए देखना क्या? आगे देखो।
राजनीति में समय गंवा दिया, अब उस ऊर्जा को ध्यान में लगाओ। इतना ही काफी नहीं है कि राजनीति न करो, अब जरूरी है कि राजनीति से अगर सच में बचना हो तो धर्म में गति करो, नहीं तो तुम सुरक्षित नहीं हो, खतरा फिर बना रहेगा। बैठे-बैठे क्या करोगे? बैठे-बैठे ऊबने लगोगे। ऊबोगे तो पुरानी आदतें कहेंगी कि चलो, चुनाव ही लड़ लो। अब बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? समय तो यूं ही खराब जा रहा है, तो राजनीति में कम से कम उलझे तो रहते थे, व्यस्तता तो रहती थी। इसके पहले कि तुम्हारा खालीपन को आनंद से भर लो, ध्यान से भर लो। इसके पहले कि राजनीति के कांटो में पड़ने की फिर खुजलाहट उठे... खुजलाहट

है राजनीति। खाज है। और खाज का, तुमने देखा, नियम क्या है? आदमी खुजाता है तो तकलीफ होती है, नहीं खुजाता तो तकलीफ होती है। खाज बड़ी अद्भुत चीज है! न खुजाओ तो बनता नहीं, बात कुछ ऐसी है कि बनाए न बने। न खुजाओ तो ऐसा मन होता है कि अरे खुजा ही लो। एकदम प्राण कहते हैं कि क्या कर रहे हो बैठे-बैठे, खुजाओ! अरे चूको मत! यह अवसर चूको मत! मजा आ जाएगा, खुजा ही लो! और मिठास उठती है भीतर! एकदम लार टपकने लगती है, खुजा ही लो! और कैसी मिठास उठती है भीतर! एकदम लार टपकने लगती है, खुजा ही लो! भूल ही जाते हो कि पहले भी खुजा चुके हो। और जब भी खुजाया तभी तकलीफ पाई, क्योंकि जब भी खाज खुजलाई, लहू निकल आया। छिल गई खाल। तकलीफ हुई। वे सब बातें भूल ही जाती हैं। अब इस मिठास के क्षण में कौन याद करे, इधर मधुमास आया है! कौन सोचता है पतझड़ की! इधर अमृत पुकार रहा है। खाज का बड़ा आकर्षण है, जैसे खाज न हो शैतान हो!
एक धर्मगुरु सदा अपने उपदेश में कहा करता थाः शैतान से सावधान! कभी उसकी बातों में न आना! शैतान उकसाएगा, उसने जीसस को भी उकसाया। अरे उसने किसको छोड़ा! उसने बुद्ध को भी उकसाया! उसने हरेक को उत्तेजना दी।"
मगर मैं सोचता हूं कि उसने न मालूम कैसी उत्तेजना दी, जीसस को कहा कि तुझे सारे जगत का सम्राट बना देंगे। इससे तो बेहतर था खाज पैदा कर देता, फिर देखते कि जीसस कैसे बच सकते थे। खाज पैदा होती तो खुजलाते। बुद्ध को भी बहुत भरमाने की कोशिश की, नहीं भटका पाया। खाज पैदा कर देनी थी। शायद तब तक शैतान को भी समझ नहीं थी। आखिर शैतान भी तो अनुभव से सीखता है।
यह धर्मगुरु सदा समझता था। अपनी पत्नी को भी कहता था कि शैतान से सावधान। एक दिन पत्नी बजार गई और वहां से एक मंहगा कोट खरीद लाई। सर्दी आ रही थी और ऊनी नये-नये कोट बाजार में आए थे। डरते-डरते घर में प्रवेश किया, क्योंकि इतना कीमती कोट पादरी की हैसियत के बाहर था, पति की हैसियत के बाहर था। लेकिन वह पत्नी ही क्या, जो पति की हैसियत के बाहर न जाए! पत्नियों का काम ही यह है कि पतियों की हैसियत बढ़वाती हैं वे। ऐसे खर्च कर डालती हैं कि पति को और-और तरकीबें खोजनी पड़ती हैं कि कैसे कमाओ, कैसे रिश्वत खाओ, कहां से लाओ, क्या करो!
एंड्रू कारनेगी से किसी ने पूछा कि तुमने इतना धन कैसे कमाया? एंड्रू कारनेगी ने कहा कि मेरी एक प्रतियोगिता चल रही थी मेरी पत्नी से। मैं यह देखना चाहता था कि क्या मैं इतना कमा सकता हूं कि वह खर्च न कर सके। इसलिए धन कमाया, मगर मैं हार गया।
एंडरू कारनेगी दुनिया के बड़े से बड़े धनपतियों में से एक था। लेकिन वह
भी कहता है, मैं हार गया। कितना ही कमाओ, तुम लाख तरकीबें खोजो कमाने की, पत्नी करोंड़ तरकीबें खोजती है खर्च करने की। और ऐसी चीजों में खर्च करती है कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि ये चीजों पर भी खर्च करेगी।
डरी थोड़ी घर आते कि पादरी की हैसियत के बाहर हालत हो गई है। मगर कोट भी ऐसा था कि क्या किया जा सकता है। अंदर प्रविष्ट हुई। पति ने कोट देखाः कितने में खरीदा? कहाः पांच सौ में।
पति ने कहाः तू सोच थोड़ा। डेढ़ सौ तो मुझे तनख्वाह मिलती है, ये पांच सौ कहां से लाऊं? और लाख दफा समझाया कि शैतान जब उत्तेजित करे तो साफ कह दिया करहट जा शैतान! जैसा जीसस ने कहा थाहट जा शैतान, पीछे हट! तूने नहीं कहा? उसने कहाः अरे उसी में तो झंझट हो गई। जब में कोट पहन कर आईने में देख रही थी, शैतान मुझे उकसाने लगा कि ले ले, ले ले बाई, ले ही ले, चूक मत। तो मैंने कहाहट शैतान पीछे जा। सो वह चला गया। और पीछे से बोला मेरे कंधे के ऊपर से देख कर कि अहापीछे से तो गजब का लग रहा है! इसी में तो फंसी। यह तुम्हारा उपदेश का ही फल है कि बार-बार पीछे जा, पीछे जा समझाते थे, सो मैं फंसी कि पीछे जा। वह पीछे से कहने लगापीछे से तो गजब का लग रहा है। अरे कटारें चल जाएंगी! जहां से निकल जाएगी, लाशें बिछ जाएंगी! एकदम लोग फिल्मी गाने गाने लगेंगे, सीटी बजाने लगेंगे। मुर्दे भी सीटी बजाएगे देखते ही से तेरे को। कब्रिस्तान में जाएगी, सीटियां बजने लगेंगी। पीछे से तो बड़े गजब का लग रहा है! आगे से तो कुछ भी नहीं, पीछे से तो बिल्कुल जहां जाएगी कहर ढ़ाएगी।... उसने मुझे वहीं से पीछे से ही तो भरमाया। न तुम यह उपदेश देते, न मैं इस कोट में फंसती।

शैतान कहीं और नहीं, तुम्हारे मन में ही है। मन का ही दूसरा नाम शैतान है। और मन भी क्या अजीब है! खाली नहीं बैठने देता। कहावत बिल्कुल गलत है। कहावत यह है कि खाली मन शैतान का घर। बात ठीक नहीं है। खाली मन को शैतान पसंद ही नहीं करता। खालीपन में तो परमात्मा उतर आता है। अगर तुम शून्य हो जाओ, तो क्या चाहिए? शैतान मन को खाली होने ही नहीं देता। तुम एक चीज से खाली करो, जल्दी दूसरी चीज से भर लेता है। तुम खाली नहीं कर पाते, वह भरने लग जाता है, क्योंकि खाली तुम हो गए, क्षण भर को भी खाली हो गए तो शैतान मरा, सदा के लिए मरा, उसकी मौत हो गई।
तो अमृत चैतन्य, तुमसे कहूंगा कि अब पंद्रह साल राजनीति के धक्के- मुक्के खाए, उपद्रव झेले, अब पश्चाताप में मत पड़ो। यह भी उसी मन की तरकीब है। अब यह पश्चाताप में उलझ रहा है। और पश्चाताप में उलझाते-उलझाते यह फिर से खुजली पैदा कर देगा। फिर चुनाव आ रहे हैं। और आदमी की स्मृति ही कितनी है? भूल-भूल जाता है। अरे सांझ कसम खाता है, सुबह भूल जाता है। और बहाने तो निकाल ही लेता है। सुबह ही जाकर मसजिद में तोबा कर आता है कि अब नहीं पीऊंगा और सांझ ही पी लेता है। यूं दोनों दुनिया सम्हल जाती हैं। यह दुनिया भी हाथ रही और जन्नत भी हाथ से न गई। फिर सुबह तोबा कर ली और सांझ फिर तोबा तोड़ ली। और फिर बहाने तो खोज ही लेता है कि करें भी तो क्या कि तोबा तोड़ने के कोई इरादे तो न थे, लेकिन घटाएं यूं घुमड़ कर उठीं! और फिर यह कमबख्त जी भी कुछ ललचा गया! बहाने खोज लेता है। घटाएं! अब घटाओं को क्या लेना-देना तुम्हारी शराब से? घटाएं कुछ यूं घुमड़ कर उठीं और फिर यह कमबख्त् जी भी ललचा गया! मगर कोई फिक्र नहीं है। सुबह तौबा की, सांझ तोबा की, सांझ तोड़ ली; यूं शराब भी हाथ रही और जन्नत भी न गई।
तुम जरा सावधान रहना। यह मन बहुत चालबाज है। जो पंद्रह साल भरमाया वह पंद्रह जन्मों में भी भरमा सकता है। पश्चाताप में मत पड़ोपहला काम। अगर पश्चाताप को तोड़ सको तो तुमने मन का पहला काम बंद कर दिया, दरवाजा ही बंद कर दिया। फिर मन को दूसरा कदम उठाने का मौका नहीं रहेगा। नहीं तो पछताते पछताते तुम पाओगे अब मैं यह क्या कर रहा हूं! जिंदगी में कुछ रस था, दौड़ धूप थी, कुछ मजा भी था। तुम जल्दी ही भूल जाओगे राजनीति का उपद्रव। राजनीति का रस याद आने लगेगा। रास्ते पर निकलते थे, लोग नमस्कार करते थे। जो देखो वही कहता थाआइए नेताजी, विराजिए! पान लेंगे, चाय पीएंगे, काफी? अब कोई पूछता भी नहीं। और एम. एल. ए हो गए थे, मंत्री होने में देर ही क्या थी, जरा टिके रहते! तुमसे पीछे जो गए वे मंत्री हुए जो रहे हैं।
मन में एक से एक बातें उठ आएंगी। यह कमबख्त मन! यह सच में ही कमबख्त है। यह ललचा जाएगा। फिर ललचा जाएगा। यह कांटे-कांटे भूल जाएगा। फूल-फूल चुन लेगा। और चुनाव फिर करीब आता है, तब तक स्मृति डांवाडोल हो जाएगी। इसलिए तो पांच साल का फासला रखते हैं चुनाव में, ताकि बुद्धू फिर फिर लौट आएं। जो किस तरह भाग गए थे, पांच साल का समय काफी है, इतनी देर में अपने आप भूल जाते हैं। फिर दिल में सुगबुगाहट उठती है, फिर खुजली उठती है, फिर खाज उठती है, और फिर लगता है कि एक दफा और खुजा लो अरे एक दफा और! बस एक दफा, आखिरी, फिर इसके आगे कभी नहीं। पता नहीं पिछली बार खुजलाया था तो छिल गए थे, जरूरी नहीं कि इस बार भी ऐसा हो। इस बार स्वाद ही कुछ और आ रहा है, मिठास ही कुछ और है! खुजा ही लो।
और थोड़ी-बहुत देर तुम करवटें बदलोगे, योगासन वगैरह करोगे; मगर जितना तुम ये करवटें बदलोगे उतनी खुजलाहट पीछा करेगी। वह कहेगी कि जरा सा खुजलाने में क्या बिगड़ा जा रहा है? चलो न सही ज्यादा दूर जाओ, लेकिन थोड़ा करो। खुद नहीं चुनाव लड़ना तो दूसरे को लड़वा दो। चलो किसी और के कंधे पर बंदूक रख कर चला दो। मगर यह मौका छोड़ने जैसा नहीं है। मंच का मजा छूटे नहीं छूटता।
न पश्चाताप करो। और याद रखना, भूलना मत। और इसके पहले कि मन के खालीपन
को शैतान फिर भरने लगे, इस, खालीपन को तुम ध्यान में रूपांतरित कर लो। और यही संन्यास का एकमात्र अर्थ हैः मन को ध्यान में रूपांतरित करने की कीमिया। और जिस दिन मन ध्यान बन जाता है, उस दिन राजनीति गई और धर्म का सूरज निकला। एस धम्मो सनंनतनो! यही धर्म का नियम है।

[illegible]

ज्यूं मछली बिन नीर
चौथा प्रवचन

ध्यान पर ही ध्यान दो

पहला प्रश्नः भगवान,
यह एक प्रचलित श्लोक हैः
अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़न।।
अठारह पुराणों में व्यास के दो वचन ही मुख्य हैं--परोपकार से पुण्य होता है और परपीड़न से पाप।
भगवान, इस पर कुछ कहने की कृपा करें।

शरणानंद!
यह सूत्र निश्चित ही बहुत विचारणीय है, क्योंकि इस देश का सारा आधार इसी सूत्र पर निर्भर है। यह बुनियाद है तथाकथित धार्मिक व्यक्तित्व पैदा होता है, वह पाखंड का ही होता है। यह सूत्र ऐसा है कि तत्क्षण इसमें भ्रांति दिखाई पड़नी असंभव है। सोचोगे तो भी नहीं समझ पाओगे कि इसमें कुछ भूल हो सकती है। बात इतनी साफ मालूम पड़ती है--दो और दो जैसे चार होते हैं ऐसी। कौन इसका विरोध करेगा? --"परोपकार से पुण्य होता है और परपीड़न से पाप।"
लेकिन मैं इसका विरोध करता हूं। मेरे देखे बात इससे बिल्कुल उलटी है। पुण्य से परोपकार होता है, पाप से परपीड़न। तब सवाल उठेगा कि पुण्य कैसे होता है। पुण्य है ध्यान की सुगंध और पाप है ध्यान के अभाव से उठती दुर्गंध। ध्यान हो तो जीवन में पुण्य की आभा होती है। जैसे फूल खिले, गंध उड़े; जैसे धूप जले और वायुमंडल सुवासित हो उठे--वैसे ही ध्यान है वहां पुण्य छाया की तरह आता है। और जहां पुण्य है वहां परोपकार है।
परोपकार बिना पुण्य के असंभव है। बांटोगे क्या जब देने को तुम्हारे पास ही कुछ नहीं? पुण्य यानी संपदा--आंतरिक संपदा। होगा कुछ तुम्हारे पास तो दे सकोगे, नहीं होगा तो देने का दिखावा करोगे, या वही दोगे जो है--अर्थात बाहर का। बाहर से पुण्य का कोई नाता नहीं है। धन दोगे, धन देने से पुण्य का कोई संबंध नहीं है। क्योंकि धन पाने के लिए पहले परपीड़न करना होगा।
गणित को समझने की कोशिश करो। धन पाओगे कहां से? एक हाथ से शोषण करोगे
तो धन इकट्ठा होगा। दस रुपये चूसोगे तो एक रुपया दान करोगे। दान करोगे कैसे? धन आएगा कहां से? जिनका शोषण करोगे उनको ही फिर दान करोगे। गरीबी क्यों है? फिर गरीब की सेवा करते हो, फिर कहते हो गरीब दरिद्रनारायण है! पहले उसे दरिद्रनारायण बनाते हो। बनाना ही पड़ेगा--सेवा तो करनी है! पहले उसे चूसो, ताकि वह दरिद्र हो जाए; फिर पुण्य करो, परोपकार करो। फिर उसे कुछ दे दो दो टुकड़े रोटी के, उसके लिए एक झोपड़ा बनवा दो, धर्मशाला खुलवा दो, अनाथालय बनवा लो; विधवा आश्रम बनवा दो, पहले विधवाएं खड़ी करो। विधवा को विवाह मत करने देना, नहीं तो विधवा आश्रम कैसे बनाओगे? फिर परोपकार कैसे होगा? पहले दीन करो, दरिद्र करो। और करना ही होगा, नहीं तो धन कहां से लाओगे? पुण्य कैसे करोगे?
बाहर से अगर परोपकार होता होता, तब तो फिर परोपकार का आधार ही परपीड़न होगा। और जिस परोपकार के आधार में परपीड़न है उसे किस मुंह से परोपकार कहते हो? जिनको तुम कहते हो --दानी दाता, महादानी--वे लाते कहां से हैं? बिड़ला ने इतने मंदिर बनवाए, स्वभावतः महादानी! मगर यह धन आता कहां से है, बिड़ला ने जितना शोषण किया है इस देश का, किसी और ने किया? और यह भी मत सोचना जितना शोषण किया, उतना दान कर दिया। व्याज भी दान नहीं किया है। यह तो बड़े मजे की बात हुई, यह दुनिया भी हाथ से न गई और जन्नत भी बचा ली। यहां भी लूटा और वहां भी लूटेंगे। वहां भी... स्वभावतः इतने मंदिर बनाए तो बिड़ला के लिए तो परमात्मा के ठीक बगल में जगह बनानी होगी। किसने बनाए इतने मंदिर, बनाए कभी किसी ने? है कोई ऐसा महादानी? यहां भी चूसा, वहां भी चूसोगे।

जुगल किशोर बिड़ला से मेरा मिलना हुआ था। उनसे मैंने कहा कि ये सब मंदिर, ये धर्मशालाएं, ये दान--धोखा है। तिलमिला गए। कहने लगेः आप भी अजीब आदमी हो! सो किसी साधु-संत ने मुझसे नहीं कहा।
मैंने कहाः मैं कोई साधु नहीं, कोई संत नहीं। अजीब आदमी हूं! मैं तो जो
सच है वही करूंगा। साधु संत कैसे कहेंगे? साधु-संत तुम्हारे ही मंदिरों में तो अड्डा जमाए बैठे हैं। साधु संत और तुम्हारे बीच तो सांठ-गांठ है। तुम्हारे तथाकथित ऋषि मुनि, तुम्हारे महात्मा, तुम्हारी कौड़ियों पर जी रहे हैं। वे तो तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाएंगे, स्तुतियां गाएंगे। वे तुमसे क्यों कहेंगे?
वे मुझसे कहने लगेः महात्मा गांधी ने भी मुझसे कभी ऐसी बात नहीं की। मैंने कहाः वे भी कैसे कहेंगे! तुमने उनको दस्तखत करके चैक दिए हुए थे
कि जितना पैसा लिखना हो तुम लिख लो।
महात्मा गांधी ने फेहरिश्त दे रखी थी बिड़ला को उन लोगों की, जिनको प्रतिमाह बिड़ला की तरफ से पैसा मिलता रहना चाहिए। उसमें जयप्रकाश नारायण का भी नाम था। जयप्रकाश नारायण जीवन भर बिड़ला की तरफ से धन पाते रहे! अजीब साजिश है! और अकेले जयप्रकाश नहीं थे, भारत का ऐसा कोई नेता नहीं था जो बिड़ला से पैसे न पाता हो। बातें दरिद्रनारायण की! और फिर बिड़ला की तो प्रशंसा करनी ही होगी, स्तुति करनी ही होगी।
मैंने कहा कि मुझे आप से कुछ चाहिए नहीं। मुझे उनके पास ले गए थे सेठ गोविंददास; वे भारत के सबसे पुराने संसद-सदस्य थे, पचास साल, अंग्रेजों के जमाने से संसद के सदस्य थे, मरते दम तक संसद सदस्य रहे। कहते हैं कि विंस्टन चर्चिल के अतिरिक्त्त दुनिया में कोई आदमी इतने लंबे समय तक संसद का सदस्य नहीं रहा। वे मुझे ले गए थे और ले इसलिए गए थे कि बिड़ला मेरे काम में कुछ सहयोगी होंगे। तो स्वभावतः वे बिचारे बड़ी पेशोपेश में पड़ गए। वे मेरा कुरता खींचने लगे। मैंने उनसे कहा कि आप कुरता न खींचे। मुझे तो जो कहना है मैं कहूंगा।
पर उन्होंने कहाः आपको याद दिला दूं, हम आए ही इसलिए हैं कि उससे कुछ सहायता लेनी है।
मैंने कहा कि मुझे सहायता नहीं लेनी है और सहायता किसी शर्त पर तो मैं
ले ही नहीं सकता। अगर मेरी बात उन्हें ठीक लगे और फिर मेरे काम में आ सकते हों तो गलती में हैं। खरीद लिया होगा महात्मा गांधी को और जयप्रकाश नारायण को, मुझे कुछ लेना देना नहीं! मैं बिकने को नहीं हूं।
परोपकार कैसे करोगे? धन से? धन आएगा कहां से? तो तुम्हारे सारे इतिहास के बड़े-बड़े दानी बड़े-बड़े से बड़े शोषक थे। मैं बाहर की चीजें लेने- देने में दान नहीं मानता, न पुण्य मानता हूं। पुण्य तो आनंद बांटने का नाम है, प्रेम बांटने का नाम है। वह आंतरिक संपदा है। और भेद बड़ा है। बाहर की संपदा दूसरों से छीननी पड़ती है, तब मिलती है। और भीतर की संपदा किसी से छीननी नहीं पड़ती, तुम उसे ले कर आए हो--सिर्फ आविष्कृत करनी है, सिर्फ खोजनी है, तुम्हारे भीतर पड़ी है। आनंद है, प्रेम है, गीत हैं, संगीत है, नृत्य है--तुम्हारे भीतर सब पड़ा है। तुम्हारे भीतर महोत्सव की क्षमता है, लेकिन उसकी तलाश करनी होगी; उसकी तलाश की प्रक्रिया ध्यान है।
इसलिए मैं कहता हूंः ध्यान से पुण्य, पुण्य से परोपकार। मगर ध्यान मूलतः स्वार्थ है। तब और अड़चन खड़ी होती है, क्योंकि तुम्हारी बंधी धारणाएं हो जाती हैं उनके जीवन में सोचने की तो मृत्यु हो जाती है, विचार की तो लाश निकल जाती है। विचार की तो कभी की अरथी उठ चुकी होती है। विवेक तो खो ही जाता है।
ध्यान तो स्वार्थ है, क्योंकि स्वयं के अर्थ की खोज ही स्वार्थ है। स्वयं की अर्थवत्ता को जान लेना ही स्वार्थ है। मैं "स्वार्थ" को बुरा शब्द नहीं मानता, बड़ा प्यारा शब्द है। जरा उस शब्द की व्युत्पत्ति देखो-- स्वयं का अर्थ! ध्यान का वही तो प्रयोजन है, वही लक्ष्य है। और जिसने स्वयं का अर्थ जान लिया, वही तो दूसरे के किसी काम आ सकता है। क्यों? क्योंकि जिसने स्वयं का अर्थ जान लिया, वही तो दूसरे के किसी काम आ सकता है। क्यों? क्योंकि जिसने स्वयं को जाना उसने यह भी जाना कि कोई दूसरा नहीं है--एक का

ही विस्तार है। यह हाथ भी मेरा है और यह हाथ भी मेरा है। हालांकि दो दिखाई पड़ते हैं, मगर दो नहीं हैं, क्योंकि दोनों मुझमें जुड़े हैं।
जिस व्यक्ति ने अपने आंतरिकतम केंद्र का आविष्कार कर लिया उसे तत्क्षण दिखाई पड़ जाता हैः परिधि पर हम भिन्न हैं, केंद्र पर हम एक हैं। फिर परोपकार भी उपकार नहीं है; वह भी अपना ही आनंद है। इसलिए उस परोपकार से अहंकार निर्मित नहीं होता, अकड़ पैदा नहीं होती कि मैंने इतना दान किया, इतना पुण्य किया, इतनी धर्मशालाएं, इतने मंदिर बनवाए, इतनी मस्जिदें खड़ी करवाईर्ं, इतने प्याऊएं खुलवा दीं, इतने वृक्ष लगवा दिए। उससे फिर अहंकार पैदा नहीं होता। बात करने की है ही नहीं। मेरा आनंद था। किसी से कुछ इसका प्रत्युत्तर नहीं पाना है।
और दूसरा है कौन? एक ही जी रहा है। एक ही हरेक हृदय में धड़क रहा है। मगर स्वयं को जानने वाला ही इस सत्य के प्रति जागरूक हो पाता है, इस अद्वैत के प्रति बोध से भरता है। व्यास के इस सूत्र में तो द्वैत स्वीकार ही कर लिया गयाः परोपकार से पुण्य होता है। पर को तो मान ही लिया कि दूसरा दूसरा है और तुम्हें उसकी सेवा करनी है।
पुण्य है, दूसरे की सेवा पुण्य है। परमात्मा ने तुम्हें इसलिए बनाया
है कि दूसरों की सेवा करो।
छोटे बच्चों के पास तो बड़ी निष्कलुष दृष्टि होती है, सड़ी गली दृष्टि नहीं; न हिंदु की होती है, न मुसलमान की, न जैन की, न बौद्ध की। स्पष्ट दृष्टि होती है। उस बच्चे ने कहाः यह तो मेरी समझ में आ गया। तुम कई बार मुझे कह चुकी हो कि मुझे परमात्मा ने इसलिए बनाया कि मैं दूसरों की सेवा करूं। सवाल यह उठता है, दूसरों को किसलिए बनाया? इसीलिए कि मैं उनकी सेवा करूं? दसरों को भी इसीलिए बनाया? दूसरे क्या करेंगे? उनको किसलिए बनाया? अगर तुम कहो कि दूसरों को मेरी सेवा करने के लिए बनाया और मुझको उनकी सेवा करने के लिए बनाया, तो परमात्मा भी गणित में बड़ी गलतियां कर रहा है।
उस बच्चे ने कहाः मैं अपनी सेवा कर लूं, वे अपनी सेवा कर लें, बात खतम। मैं उनकी सेवा करूं, वे मेरी करें--इतना जाल क्यों फैलाना? जब वे मेरी कर सकते हैं तो अपनी कर सकते हैं। जब मैं उनकी कर सकता हूं तो अपनी कर सकता हूं।
यह परोपकार की धारणा ही परपीड़न को छिपाने की व्यवस्था है। जब तुम दूसरों को सताते हो... बिना दूसरों को सताए न तो धन है और न पद है, न प्रतिष्ठा है। दूसरों को सताओगे तो ही सब कुछ है। फिर दूसरों को सताने से अपराध-भाव पैदा होता है। भीतर लगता है, यह मैं क्या कर रहा हूं! उस अपराध-भाव को छिपाने के लिए कुछ करना पड़ता है। उसका नाम परोपकार है। उस अपराध-भाव की लीपापोती करनी पड़ती है। उसके ऊपर सुंदर-सुंदर पर्दे लटकाने होते हैं। घाव पर दो फूल रख कर छिपा देते हैं। घाव भूल जाता है, फूल दिखाई पड़ने लगते हैं।
परपीड़न चल रहा है। उसको छिपाने के लिए परोपकार चल रहा है। और कितनी सदियों से तुम परोपकार कर रहे हो व्यास की मान कर, अब तक हो नहीं पाया। कब होगा? कम से कम दस हजार साल से तो तुम परोपकार कर ही रहे हो। न भिखारी मिटता है, न गरीब मिटता है, न दीन हीन मिटता है। बढ़ते जाते हैं दीन हीन, गरीबी बढ़ती जाती है, भिखारी बढ़ते जाते हैं। परोपकार भी हो रहा है। परिणाम कहां है? हाथ में क्या लगता है? हाथ लाई कुछ भी नहीं। गणित का विस्तार बड़ा है।
महात्मा समझा रहे हैं परोपकार करो और परोपकार करने वाले परोपकार कर रहे हैं। हो कुछ भी नहीं रहा है। महात्मा समझा-समझा कर कि सेवा, परोपकार बड़ा पुण्य है, अपनी सेवा करवा रहे हैं। और जो सेवा कर रहे हैं वे अपना अपराध छिपा रहे हैं। फेंक देते हैं दो टुकड़े--उन्हीं को, जिनके लहू को चूस कर बैठे हैं। लेकिन हाथ में खून लग गया, उसको धोना भी जरूरी है, तो गंगा-जल में धो लेते हैं। परोपकार यानी गंगा जल। परपीड़न को छिपाने के ये उपाय हैं। इससे मिटा नहीं परपीड़न। मिटेगा भी नहीं कभी, क्योंकि हम मसले को हल नहीं करना चाहते, सिर्फ गुप्त करना चाहते हैं। आड़ बना लेना चाहते है कि किसी को दिखाई भी न पड़े, मुखौटा ओढ़ लेना चाहते हैं।

इसलिए मैंने कहा कि यह सब पाखंड को पैदा करने वाला सूत्र है।
मेरा जोर ध्यान पर है। ध्यान का अर्थ हैः स्वार्थ, परम स्वार्थ, आत्यांतिक स्वार्थ! क्योंकि ध्यान से ज्यादा निजी कोई बात नहीं है इस जगत में। ध्यान का कोई सामाजिक संदर्भ नहीं। ध्यान का अर्थ है अपने एकांत में उतर जाना, अकेले हो जाना, मौन, शून्य, निर्विचार, निर्विकल्प। लेकिन उस निर्विचार में, उस निर्विकल्प में जहां आकाश बादलों से आच्छादित नहीं होता--अंतर आकाश--भीतर का सूरज प्रगट होता है। सब जगमग हो जाता है। सब रोशन हो जाता है। फिर तुम्हारे भीतर प्रेम के फूल खिलते हैं, आनंद के झरने फूटते हैं, रस की धाराएं बहती हैं। फिर उलीचो, फिर बांटो। बांटना ही पड़ेगा। और उस बांटने को मैं परोपकार कहता हूं।
और जिसकी जीवन में ध्यान नहीं है, वह तो दूसरे को सताएगा। सताएगा ही! अपरिहार्यरुपेण सताएगा। क्यों। क्योंकि जो खुद दुखी है वह दुख ही बांट सकता है। और गैर ध्यानी दुखी होगा ही, नहीं तो कोई ध्यान तलाशे क्यों? अगर बिना ध्यान के जीवन में सुख हो सकता होता, तो सुख कभी का हो गया होता। बिना ध्यान के जीवन में सुख होता नहीं। ध्यान के बिना सुख का बीज टूटता ही नहीं, अंकुरण ही नहीं होता। फूल तो लगेंगे कैसे? फल तो आएंगे कैसे? ध्यान तो सुख के बीजों को बोना है।
बुद्ध एक खेत के पास से गुजरते थे। उस खेत के किसान ने उन्हें रोका और कहाः भंते, एक प्रश्न है मेरे मन में। मैं तो किसान हूं। मुझे कुछ ऐसी भाषा में समझाएं, जो मेरी समझ में आ सके। मैं कुछ बड़े शास्त्र नहीं समझ सकता।
बुद्ध ने कहाः बड़े शास्त्र की मैं बात ही नहीं करता। मैं भी किसान हूं।
किसान थोड़ा चौंका। उसने कहाः आप और किसान! न तो आप पहले किसान थे। मुझे पता है कि आप राजपुत्र हैं और न आप अब किसान हैं। अब प्रबुद्ध हो गए। आपको मैंने कभी खेतीबाड़ी करते नहीं देखा। कहां है खेत, कहां है फसल? और अगर खेतीबाड़ी करते हैं आप तो यह कोई समय है यहां-वहां घूमने का? यही तो मौसम है। आप जा कहां रहे हैं?
बुद्ध ने कहाः मैं भीतर की खेती करता, तुम बाहर की खेती करते। मैं भीतर बीज बोता, मैं भीतर की फसल काटता। तुम बाहर बीज बोते, बाहर की फसल काटते। मैं तुम्हारी भाषा में बोल रहा हूं। तुम्हीं ने तो कहा कि तुम्हारी भाषा में बोलूं। तो तुम्हारी भाषा में बोल रहा हूं।

ध्यान भीतर की खेती है, भीतर की बागवानी है। और जब भीतर फूल होते हैं
और फसल ऊगती है, और फसल लहलहाती है और जब तुम्हारे भीतर आनंद की तरंगे उठती है, तो क्या करोगे? इस आनंद को बांटना ही पड़ेगा। जब बादल जल से भरे होते हैं तो बरसना पड़ता है। और जब दीये में रोशनी होती है तो किरणें फैलती हैं। और जब फूल में सुगंध उड़ती है, चांद-तारों को छूने की अभीप्सा रखती है। जिसके भीतर आनंद है वह बांटेगा। और आनंद ही सच्चा धन है। क्योंकि इसे किसी से छीनना नहीं होता, इसे किसी और से लेना नहीं होता। यह अपना है। और अपना है, वही दो, तो पुण्य है। जो अपना है ही नहीं, उसकी दे कर पुण्य मना रहे हो!
बिड़ला के पास यह धन आया कहां से? जन्म के साथ तो कोई लेकर आता नहीं।
लोग कहते हैं--जैन कहते हैं--अपने शास्त्रों में कि महावीर ने धन का त्याग किया, बहुत बड़ा त्याग किया। मैं उनसे पूछता हूं, महावीर लेकर आए थे? खाली हाथ आए थे। तो यह धन महावीर का हो नहीं सकता। यह धन तो उन्हीं का था जिनको वे दान कर रहे हैं। और जिसका था उसी को दे दिया, इसमें दान क्या है? यह धन अपना तो हो ही नहीं सकता। हर बच्चा खाली हाथ आता है और हर मुर्दा खाली हाथ जाता है। बस यहां चार दिन की चांदनी है, फिर अंधेरी रात। चार दिन की चांदनी को तुम अपनी मान लेते हो। यह अपनी नहीं है, जरा भी अपनी नहीं है। चार दिन की फकत चांदनी है
चांदनी का भरोसा नहीं है
इसलिए हूं अंधेरे का सौदा
रोशनी का भरोसा नहीं है

कितने घर के दीयों को बुझाकर तू मनाता है नादां दिवाली जिंदगी पर अरे मरने वाले जिंदगी का भरोसा नहीं है चार दिन की फकत चांदनी है चांदनी का भरोसा नहीं है पहले खुद्दारियों मेरी देखो फिर मुझे शौक से गालियां दो दुश्मनी का भरोसा नहीं है चार दिन की फकत चांदनी है चांदनी का भरोसा नहीं है बिजली चमके तो जग सारा देखे और गिरती है यह कहीं पर
जिस कली से चमन में है रौनक उस कली का भरोसा नहीं है
चार दिन की फकत चांदनी है चांदनी का भरोसा नहीं है
जब भी मिलते हैं साकिर से वाइज
जिक्र हूरों का करते हैं वाइज
आपकी तो मुझे शेख साहब
बंदगी का भरोसा नहीं है
चार दिन की फकत चांदनी है
चांदनी का भरोसा नहीं है
इस जगत में हम आते हैं खाली हाथ, जाते हैं खाली हाथ। तो बीच में जो हम अपना मान लेते हैं, वह अपनी है ही नहीं। और जो अपना नहीं है उसका त्याग कैसा? जो अपना नहीं है उसको देने की बात कैसी? बात ही बेहूदी है। जो अपना है उसे ही दिया जा सकता है। उसे ही देने का मजा भी है। लेकिन अपने की पहले तलाश करनी होती है।
इसलिए मैं व्यास के सूत्र से राजी हूं। मैं तो कहता हूंः पहले ध्यान। ध्यान से पुण्य। पुण्य यानी धन--भीतर का धन--उसका नाम है पुण्य। और जहां पुण्य है, जहां भीतर का धन है, जहां भीतर की गरिमा है, भीतर का साम्राज्य-- वहां बांटना शुरू हो जाता है।
उस बांटने के पीछे एक राज और। बाहर का धन बांटो तो कम होता है, भीतर का
धन बांटो तो बढ़ता है। प्रेम जितना दो उतना ही तुम प्रेमल होते जाते हो। आनंद जितना बांटो उतना ही तुम आनंदित होते जाते हो। रोशनी में जितने लोग तुम्हारे भागीदार हो जाएं, तुम्हारी रोशनी उतनी ही प्रज्जवलित, उतनी ही ताजी, उतनी ही नई, उतनी ही विराट होती चली जाती है।
बाहर के अर्थशास्त्र में और भीतर के अर्थशास्त्र में बुनियादी विरोध है। बाहर का अर्थशास्त्र कहता हैः बचाओ, पकड़ो, रोको, देना मत, छीनो। अगर यूं बांटा तो खुद ही भिखमंगे हो जाओगे। लूटो। बाहर का अर्थशास्त्र लूटने का है। भीतर का अर्थशास्त्र बिल्कुल उलटा है--लुटाओ। दोनों हाथ उलीचिए! कबीर कहते हैंः यूं उलीचना चाहिए भीतर का आनंद, जैसे किसी की नाव में पानी भर जाए तो वह क्या करता है, दोनों हाथ उलीचता है। एकदम उलीचने में लग जाता है। ऐसे ही जब भीतर का आनंद आए तो दोनों हाथ उलीचिए। जितना उलीचोगे उतना ही पाओगे नये-नये स्रोत खुलते जाते हैं, झरनों पर झरने फूटने लगते हैं। सारे परमात्मा का साम्राज्य तुम्हारा हो जाता है। वह देने वाले का है। और भीतर जो दुखी है वह कैसे परपीड़न से बचेगा? दुखी व्यक्ति दुख ही देगा। कहे कुछ बेचारा, चाहे कुछ। मैं दुखी आदमी की मनोभावनाओं पर संदेह नहीं कर रहा हूं। अक्सर यूं होता है, रोज तो तुम देखते हो, हर जगह तो तुम देखते हो--दुखी आदमी भी चाहता है कि सुख दे। कौन मां-बाप नहीं चाहते कि अपने बच्चों को सुख दें। लेकिन क्या दे पाते हैं, सवाल यह है? बच्चों से पूछो। बच्चे तो सिर्फ पीड़ा अनुभव करते हैं। बच्चे तो अपने मां-बाप को कभी क्षमा नहीं कर पाते।

इसलिए दुनिया की सारी पाखंडी संस्कृतियां अब तक आदमी को यह समझाती रहीं कि मां-बाप का आदर करो। क्यों? क्योंकि आदर स्वभावतः उठता नहीं, सिखाना पड़ता है, थोपना पड़ता है, जबरदस्ती थोपना पड़ता है। सारी दुनिया की संस्कृतियां, सभ्यताएं इस बात पर राजी हैं कि मां-बाप का आदर करो। हर बच्चे को सिखाया जाता है बचपन से ही कि मां-बाप का आदर करो। क्यों? इतनी सिखावन की जरूरत क्या है? किसी मां को हम नहीं सिखाते कि बच्चे को प्रेम करो। कोई शास्त्र नहीं समझाता मां को कि बच्चे को प्रेम करो, क्योंकि बच्चे के प्रति मां का प्रेम स्वाभाविक है, नैसर्गिक है, इसे सिखाने की कोई जरूरत नहीं। युवकों को हम नहीं समझाते कि प्रेम में गिरो। रोकते हैं वरन कि देखो प्रेम से सावधान, किसी के प्रेम में मत पड़ जाना। गिराने की तो बात अलग, गिरने की समझाने की तो बात अलग--रोकते हैं, अड़चनें डालते हैं। युवक और युवतियों को मिलने नहीं देते, कक्षाओं में साथ नहीं बैठने देते, छात्रालयों में साथ नहीं रहने देते। दूर-दूर रहो! युवक-युवतियों की तो बात छोड़ दो, साधु-संन्यासी भी स्त्रियों से भयभीत रहते हैं। साधु और साध्वियां भी साथ नहीं बैठतीं। दूर-दूर, अलग-अलग! साध्वियां अलग चलती हैं, साधु अलग चलते हैं, उनका झंड इकट्ठा नहीं चलता। क्योंकि जो स्वाभाविक है उससे डर है; वह तुम्हारी सब साधुता, तुम्हारे सब पाखंड को तोड़ कर प्रगट हो सकता है। वह भीतर मौजूद है। दबाया हुआ है। वह कभी भी मौका पाकर, अवसर पाकर प्रगट हो सकता है।
लेकिन बच्चों को हम सिखाते हैं सारी दुनिया मेंः "अपने मां-बाप को आदर दो।" क्यों? सिर्फ इसलिए कि अगर बच्चों को हम यह न सिखाएं तो आदर तो देना दूर, बच्चे मां-बाप को अपना दुश्मन समझेंगे, अनादर देंगे। हालांकि हमारे सिखाने पर भी अनादर देते हैं, सिखाने के बावजूद भी अनादर करते हैं। इसलिए तो बुढ़ापे में मां-बाप को यह तकलीफ होती है कि बच्चे हमारा आदर क्यों नहीं करते, अनादर क्यों करते हैं? हमने इतना किया इनके लिए, कितने दुख हमने नहीं झेले इनके लिए और आज हमारी कोई चिंता नहीं है। कैसा कलियुग आ गया! इससे कलियुग का कोई संबंध नहीं। असल में मां-बाप दुखी हैं। चाहते हैं, उनकी मंशा अच्छी है कि बच्चों को सुखी बनाएं। लेकिन दुखी आदमी लाख कोशिश करे किसी को सुखी करने की, असंभव, सुखी नहीं कर सकता, दुखी ही करेगा। और बच्चे फिर बदला लेंगे। तो सारी शिक्षाएं एक तरफ पड़ी रह जाती हैं, हर बच्चा बदला लेता है। लेना ही पड़ेगा बदला। प्रतिशोध पैदा होता है उसके भीतर।
हर पति अपनी पत्नी को सुखी करना चाहता है। हर पत्नी अपने पति को सुखी करना चाहती हैं। पत्नियां तो सुखी करने के लिए दीवानी रहती हैं। और उनकी मंशा पर मैं जरा भी संदेह नहीं करता। मगर क्या कर पाती हैं, सवाल यह है। सिर्फ दुखी कर पाती हैं। पति पत्नियों को दुखी किए बैठे हैं, पत्नियां पतियों को दुखी किए बैठी हैं। और दोनों चाहते थे कि सुखी करें। इस दुनिया में हर आदमी चाह रहा है कि दूसरे को सुखी करें और कोई किसी को सुखी नहीं कर पाता, सब एक दूसरे को दुखी कर रहे हैं। तो जरूर कहीं बुनियादी भूल हो रही है।
व्यास के सूत्र में वह भूल है। भूल यह है कि हम सुखी तभी कर सकते हैं किसी को, जब हम सुखी हों। और हम दुखी हैं तो लाख हम चाहें, कोई उपाय नहीं, हम दुखी ही करेंगे। हम सुखी करने जाएंगे और दुखी ही करेंगे। हम नेकी करने जाएंगे और बदी हो जाएगी।
अंग्रेजी में बड़ी प्यारी कहावत है, बड़ी सार्थक कहावत है--व्यास के सूत्र से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण--कि नरक का रास्ता शुभ आकांक्षाओं से पटा पड़ा है। नरक का रास्ता शुभ आकांक्षाओं से पटा पड़ा है। आकांक्षाएं तो सबकी शुभ थीं, लेकिन ढकेल दिया है नरक में लोगों को। पहुंच गए हैं नरक। पत्नियों ने पतियों को पहुंचा दिया है नरक में और पतियों ने पत्नियों को पहुंचा दिया है नरक में। बच्चों ने मां-बाप को नरक में पहुंचा दिया है, मां-बाप ने बच्चों को नरक में पहुंचा दिया है। सारी पृथ्वी नरक हो गई है। इसलिए मैं इस सूत्र का विरोध करता हूं। मैं इस सूत्र को उलटा कर देना चाहता हूं। इस सूत्र के अनुसार जी लिए तुम दस हजार साल और परिणाम तुम्हारे सामने है--एक दुखी मनुष्यता, सड़ती-गलती मनुष्यता।

मेरी बात पर भी प्रयोग करके देखो। मैं कहता हूंः ध्यान से पुण्य, पुण्य से परोपकार। अपरिहार्यरूपेण होता है, तुम्हें करना भी नहीं पड़ता। और ध्यान के अभाव से पाप और पाप से परपीड़न।
व्यास का सूत्र हैः "परोपकार से पुण्य, परपीड़न से पाप।" मेरा सूत्र ठीक उलटा हैः "पुण्य से परोपकार, पाप से परपीड़न।"
लेकिन पुण्य और पाप के बीच क्या करोगे? कैसे पापको पुण्य में बदलोगे? ध्यान के अतिरिक्त कोई कीमिया नहीं है; कोई विज्ञान नहीं है ध्यान के अतिरिक्त।
इसलिए मेरा सारा जोर ध्यान पर है। में तुम से नहीं कहता कि तुम अपने आचरण को ठीक करो; वह तो तुम से बहुत कहा गया और आचरण ठीक नहीं हुआ। काफी यह बकवास हो चुकी। मैं तुमसे कहता हूंः ध्यान सम्हालो। आचरण को अभी भूलो, अभी ध्यान सम्हालो। अभी आचरण पर ध्यान ही मत दो, अभी ध्यान पर ही ध्यान दो। और एक बार ध्यान की ज्योति भीतर जगमगा उठे, तुम चकित होकर पाओगे कि जादू हो गया, तुम्हारा आचरण अपने-आप आ जाता है--शुभ आचरण।
मैं नीति नहीं सिखाता, धर्म सिखाता हूं। और तुम्हें अब तक नीति सिखाई गई। नीति तो तुम सीख गए, धर्म से वंचित रह गए। और स्वभावतः तुम्हारी नीति फिर थोथी होगी। जिस नीति की जड़ें धर्म में नहीं हैं, उसकी कोई जड़ें नहीं हैं। वह नीति प्लास्टिक के फूलों जैसी है। ऊपर से चिपका लो। दूसरों को धोखा हो जाएगा, शायद खुद को भी धोखा हो जाए। मगर कुछ भी कहीं बदला नहीं है, सब वैसा का वैसा गंदा है।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
आप पश्चिमी सभ्यता का इतना ज्यादा समर्थन और भारतीय संस्कृति का इतना विरोध क्यों करते हैं? क्या आप हमारे महान नैतिक मूल्यों की गरिमा को भूल गए हैं? पश्चिमी फिरंगियों ने तो सैकड़ों वर्षों तक हमें लूटा, हमारा रक्त चूसा और हमारी पवित्र मानसिकता में अपनी भोगलिप्सा से भरी दूषित संस्कृति के कीटाणु छोड़ गए। और आज हमारे युवक अपनी स्वर्णिम संस्कृति को भूल कर उनका अंधानुकरण कर रहे हैं। क्या समय रहते अपनी संस्कृति को बचा लेना जरूरी नहीं है? क्या आपका भारत के प्रति कोई कर्तव्य नहीं है?

विद्याधर वाचस्पति,
मैं अपना कर्तव्य निभा रहा हूं। यही मेरा कर्तव्य है! कर्तव्य का अर्थ होता हैः करने योग्य। आज जो करने योग्य है वही कर रहा हूं।
लेकिन तुम्हारा प्रश्न महत्वपूर्ण है। इसके एक-एक टुकड़े पर विचार कर लेना जरूरी है। पहली बात--तुम कहते हो, "आप पश्चिमी सभ्यता का इतना ज्यादा समर्थन और भारतीय संस्कृति का इतना विरोध क्यों करते हैं?" इसलिए कि पश्चिमी सभ्यता ऐसी है जैसे बुनियाद तो डाल दी गई हो मंदिर की और मंदिर न उठाया गया हो। और पूर्वीय सभ्यता ऐसी है कि बुनियाद तो कभी डाली नहीं गई, मंदिर का सपना देखा जा रहा है। पश्चिमी सभ्यता यानी विज्ञान और पूर्वीय सभ्यता यानी अध्यात्म। लेकिन बिना विज्ञान के अध्यात्म नपुंसक होगा, उसकी बुनियाद के पत्थर जुटाने होंगे। और वे पत्थर विज्ञान ही जुटा सकता है। उन पत्थरों को जुटाने का अध्यात्म के पास कोई उपाय नहीं। हां, अध्यात्म तो मंदिर बना सकता है। अध्यात्म तो मंदिर का शिखर होगा। स्वर्ण-शिखर! मगर स्वर्ण-शिखर अकेला रहे तो मंदिर नहीं बनता। रखे बैठे रहो स्वर्ण-शिखर को, किसी काम का नहीं है, थोथा है।
विज्ञान पहली चीज है, क्योंकि शरीर मनुष्य का आधार है--और आत्मा मनुष्य आत्यांतिक आविष्कार। वह अंतिम बात है। पहले विज्ञान, फिर धर्म। भारत एक बुनियादी भूल में पड़ा है। इसने विज्ञान का तिरस्कार किया, उसका फल भोग रहा है। विज्ञान के तिरस्कार के कारण तुम दो हजार साल गुलाम रहे हो, किसी और कारण से नहीं। और अभी भी विज्ञान का तिरस्कार किया तो तुम भ्रांति में ही हो कि तुम स्वतंत्र हो, तुम्हारी स्वतंत्रता दो मिनट में मिटाई जा सकती है। क्या करोगे तुम अणुबम के मुकाबले? क्या करोगे तुम

हाइड्रोजन बम के मुकाबले? तुम्हारी स्वतंत्रता दूसरों की कृपा पर निर्भर है, ख्याल रखना। तुम्हारी स्वतंत्रता दो क्षण में मिटाई जा सकती है।
और हमें शर्म भी नहीं आती यह कहते हुए कि फिरंगियों ने हमें गुलाम किया। तो तुम गुलाम हुए क्यों? इतना बड़ा देश, चालीस करोड़ का देश, कुल तीन करोड़ संख्या वाले देश का गुलाम हो गया। चुल्लू भर पानी में डूब मरो, इसके पहले कि इस तरह के प्रश्न पूछो! शर्म भी नहीं आती! चालीस आदमियों को तीन आदमी गुलाम बना लें और फिर भी गाली दें कि इन दुष्टों ने हमें गुलाम बना लिया! तो तुम करते क्या रहे? तुम भाड़ झोंकते रहे? तुमसे कुछ भी न हो सका? इतना तो कर सकते थे, कम से कम आत्महत्या करके मर ही जाते। वह भी तुमसे न हो सका। और तुम तो आत्मा की अमरता में विश्वास करने वाले लोग, तुम्हें कम से कम मर तो जाना ही था। कुछ और न कर सकते थे तो मर तो सकते थे। तो लाशें पड़ी रह जातीं। फिर जिनको लाशों पर मालकियत करनी होती वे कर लेते, वे खुद ही भाग गए होते। लाशों की सड़ांध ऐसी उठती--चालीस करोड़ लाशें--जरा सोचो तो, पूरा मुल्क कब्रिस्तान हो जाता! अंग्रेज तो भाग गए होते।
लेकिन तुम गुलाम इतने जल्दी हो गए। तुम अंग्रेजों के कारण गुलाम नहीं हुए, तुम्हारे तथाकथित ऋषि-मुनियों के कारण तुम गुलाम हुए हो। और जब तक तुम यह सत्य नहीं समझोगे, तुम फिर-फिर गुलाम होओगे। तुम्हारे भाग्य में गुलामी है फिर। यह तुम्हारे तथाकथित ऋषि-मुनियों की कृपा है कि उन्होंने तुम्हें उलटी बातें सिखाईं। उन्होंने जीवन की बुनियाद तो तुम्हें दी नहीं और जीवन के शिखर की बकवास शुरू कर दी। क ख ग सिखाया नहीं और तुम्हारे हाथ में कालिदास के शास्त्र पकड़ा दिए बड़े-बड़े। छोटे बच्चे के हाथ में जैसे कोई तलवार थमा दे, तो या तो वह खुद को नुकसान पहुंचाएगा या किसी और को नुकसान पहुंचाएगा।
तुम दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यता हो। तुम्हारे पास तो विज्ञान परम शिखर पर होना चाहिए था। लेकिन तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु तुम्हें भगोड़ा बनाते रहे, पलायनवादी बनाते रहे। कहते रहे--संसार तो माया है। और जो होना है वह तो परमात्मा की कृपा है। उसके बिना तो पत्ता भी नहीं हिलता। तो फिरंगियों ने तुम पर कब्जा कैसे कर लिया? फिरंगी तो तुम्हारे परमात्मा से भी ताकतवर मालूम होते हैं!
तुम कहते हो कि पश्चिमी फिरंगियों ने तो सैकड़ों वर्षों तक हमें लूटा। तुम लुटे क्यों? तुमसे कुछ करते न बना? तुम इतने नपुंसक? क्यों तुम इतने नपुंसक? तुम्हारे पास वैज्ञानिक साधन न थे। तुम मूढ़ताओं से भरे हुए लोग हो। और तुम अपनी म.ूढता को अभी भी बचाना चाहते हो और मुझसे कहते हो कि मैं भी अपना कर्तव्य पूरा करूं--तुम्हारी मूढ़ता बचाने के लिए! जिस मूढ़ता के कारण तुम परेशान रहे हो उसको में मिटा कर अपना कर्तव्य पूरा कर रहा हूं। और किस तरह कर्तव्य पूरा किया जा सकता है?
जरूर मेरी बात जहर की तरह लगेगी, लेकिन मेरी मजबूरी है। किसी को कैंसर
हो तो ऑपरेशन तो करना ही होगा। और तुम जिसको संस्कृति कह रहे हो, वह तुम्हारा कैंसर है। उसका आधार ही नहीं है कोई। धर्म की बकवास है तुम्हारे पास। और तुम्हारी बकवास कुछ काम न आई। तुम हमेशा गलत चीजों की वजह से हारे। इसमें किसी का दोष नहीं है। जब सिकंदर ने भारत पर हमला किया और पोरस हारा, तो हारने का कारण क्या था? हारने का कारण यह था कि पोरस हाथियों को लेकर लड़ने गया और सिकंदर घोड़ों को लेकर लड़ने आया था। उस जमाने में घोड़े विकसित साधन थे हाथियों के मुकाबले। हाथी कोई बारात वगैरह निकालनी हो तो ठीक, कि किसी संत-महात्मा का अखाड़ा निकालना हो तो ठीक। युद्ध के लिए हाथी ठीक नहीं हैं। जगह भी ज्यादा घेरते हैं, दौड़ भी सकते, घोड़े के मुकाबले उनकी क्षमता भी नहीं होती। उनके चलने-फिरने के लिए भी जगह काफी चाहिए। घोड़े छोटी जगह में से निकल जाएं। घोड़े में गति भी होती है तीव्रता भी होती है, त्वरा भी होती है। हाथी को तो मोड़ना ही हो तो आधा घंटा लग जाए। पोरस हारा हाथियों की वजह से। पोरस हारा अविकसित साधनों की वजह से।
दो हजार साल में किन-किन ने तुम्हें गुलाम बनाया, जरा सोचो तो! जो आया उसी ने तुम्हें गुलाम बनाया। हूण आए, बर्बर आए, तुर्क आए, मुगल आए--जो भी

आयाः तुम जैसे गुलाम बनने को तैयार ही बैठे थे! तुम एक भी नहीं जूझ सके। और फिर भी तुम अकड़ से कह पाते हो कि इन्होंने हमें गुलाम बनाया!
तुम गुलाम बने! तुम गुलाम बनने के लिए बैठे थे। तुम तो झोली पसारे बैठे थे कि आओ, हमें गुलाम बनाओ। तुम्हारे पास हमेशा अविकसित साधन थे। जो भी आया उसके पास विकसित साधन थे। और आज भी तुम्हारी स्वतंत्रता का क्या मूल्य है! कमजोर की स्वतंत्रता का क्या मूल्य हो सकता है? चीन ने तुम्हारी जमीन पर कब्जा कर लिया, तुमने क्या कर लिया? अब तो तुम स्वतंत्र हो, कुछ तो करके दिखा देते! लेकिन पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहाः उस जमीन का क्या करेंगे? उस पर तो घास भी पैदा नहीं होता। तो फिर लड़े ही काहे को? ऐसी भी तुम्हारे देश में पैदा ही क्या होता है? कम से कम मिलिट्रिरी को ही विदा करो, यह झंझट छोड़ो। सत्तर प्रतिशत देश का धन सेना पर खर्च होता है। काहे के लिए खर्च कर रहे हो? इसको ही बचा लो कम से कम। कुछ गरीबों के पेट भरेंगे, दरिद्रनारायण की कुछ सेवा होगी, कुछ मंदिर बना लो, कुछ धर्मशालाएं बना लो। काहे को... और ऐसे भी क्या पैदा होता है? जो भी आएगा सो खुद ही परेशान हो कर लौट जाएगा।
क्या क्या सांत्वनाएं खोजते हो! दो हजार साल से निरपवाद रूप से जो भी आया... वे कैसे कैसे छोटे-छोटे लोग आए! हूणों की कोई संख्या नहीं थी। मगर जो आया, तुम उसके ही पैर चूमने को राजी हो गए।
और मैं तुमसे यह कह देना चाहता हूं, तुम अपने कारण आजाद नहीं हुए हो।
इस भ्रांति को छोड़ दो। तुम्हारे राजनेता लाख तुम्हें समझाएं, तुम अपने कारण आजाद नहीं हुए हो। क्योंकि तुमने क्रांति तो उन्नीस सौ बयालीस में की थी, आजाद सैंतालीस में हुए! यह तो खूब मजा हुआ। दुनिया में कभी कोई ऐसी क्रांति देखी? उन्नीस सौ सत्रह में रूस में क्रांति हुई तो उन्नीस सौ सत्रह में क्रांति हुई कि उन्नीस सौ बाइस में जा कर सफलता मिली? उन्नीस सौ बयालीस में तुमने क्रांति की और उन्नीस सौ सैंतालीस में जाकर तुम आजाद हुए! इस आजादी में तुम्हारा कुछ भी नहीं है। इस आजादी में तुम भ्रांति में मत पड़ना कि तुम्हारा कोई बहुत बड़ा दान है, योगदान है। इस आजादी में भी तुम पर पश्चिम की कृपा है। गुलामी भी उन्होंने दी थी तुम्हें, आजादी भी दे दी उन्होंने तुम्हें। और आज तुम्हारी आजादी छीनी जा सकती है। अभी चीन तुम पर कभी भी सवार हो सकता है। अगर नहीं सवार होता तो रूस के कारण, तुम्हारे कारण नहीं। और चीन सवार नहीं होगा तो रूस सवार होगा। तुम तो खच्चर हो, तुम पर कोई न कोई सवार होगा। तुम किसी न किसी को ढोओगे।
इसलिए मैं कहता हूं, पहले विज्ञान। यह भूल बहुत हो चुकी, दस हजार साल में यह भूल बहुत हो चुकी। अब विज्ञान और विज्ञान की तकनीक... ! मगर तुम्हारे मूढ़ महात्मा तुमको समझाते हैं चरखा कातो। अगर में उनका विरोध करता हूं तो तुमको लगता है कि मैं तुम्हारी दुश्मनी कर रहा हूं। कातो चरखा! चरखा कातने से कोई अणु-बम का मुकाबला नहीं हो सकेगा। तुम कातते रहना चरखा! तुम फिर गुलाम होओगे। कोई तुम्हें समझा रहा है खादी पहनो। कोई तुम्हें समझा रहा है तीन ही वस्त्र अपने पास रखो। कोई तुम्हें समझा रहा है ब्रह्मचर्य साधो। कोई तुम्हें समझा रहा है उपवास करो, कोई तुम्हें समझा रहा है कि सिर के बल खड़े होओ, योगासन करो। कोई कह रहा है पद्मासन लगाओ, सिद्धासन लगाओ। यह तुम लगाते ही रहे दस हजार साल से और तुमने किया ही क्या?
मैं तुमसे कहता हूं, विज्ञान को जन्मा लो, समय रहते ही जन्मा लो। हमने बड़ी से बड़ी भूल जो की है अतीत में, वह थी--विज्ञान को नहीं जनमाया। और हम जनमा सकते थे, क्योंकि हमारे पास कोई विचारकों की कोई कमी न थी, चिन्तकों की कोई कमी न थी। मगर हमने चिंतकों और विचारों को गलत मोड़ दिया। हमने उनको भगोड़ा बना दिया, पलायनवादी बना दिया। हमारे सारे विचारक और चिंतक पहाड़ों में चले गए, गुफाओं में चले गए। अगर अलबर्ट आइंस्टीन यहां पैदा होता तो बैठे होते किसी हिमालय की गुफा में और जप रहे होते राम राम या हनुमान चालीसा पढ़ रहे होते। वह तो सौभाग्यशाली है कि यहां पैदा नहीं हुआ, नहीं तो तुमने बर्बाद कर दिया होता।
अब हनुमान चालीसा पढ़ोगे तो ठीक है, हनुमान जैसी बुद्धि हो जाएगी तुम्हारी भी। इससे ज्यादा आशा भी क्या कर सकते हो? कोई झाड़ों को पूज रहा

है। संस्कृति को तुम मुझसे बचाने को कह रहे हो? इसमें बचाने योग्य क्या है? इस कूड़ा कर्कट को बचाने की बात कर रहे हो?
और तुम कहते हो कि आप पश्चिमी सभ्यता का इतना ज्यादा समर्थन और भारतीय संस्कृति का इतना विरोध क्यों करते हैं? इसलिए कि भारत से मुझे प्रेम है। मैं चाहता हूं कि यह भी दुनिया में अपना स्थान पाए, सम्मानपूर्वक अपना स्थान पाए। और यह विज्ञान के बिना नहीं हो सकता है। भारत को विज्ञान सीखना होगा, पश्चिम को अध्यात्म सीखना होगा। तब यह सारी मनुष्यता एक संतुलन पर आएगी।
तो पश्चिम के आदमी से मैं कहता हूं अध्यात्म सीखो और पूरब के आदमी से कहता हूं विज्ञान सीखो। पश्चिम ने खुद बुनियाद रख ली है, मंदिर नहीं बन पाया। हमने मंदिर की कल्पना कर ली है, लेकिन बुनियाद ही नहीं है। अगर दोनों में से चुनना हो तो पश्चिम को चुनूंगा, क्योंकि पश्चिम ने कम से कम बुनियाद रख ली है। बुनियाद ही न हो तो मंदिर कैसे बनेगा? लाख कल्पनाएं करते रहो, सपने संजोते रहो, कुछ भी न होगा।
इस देश में नहीं बन सका मंदिर। कल्पना ही रही हमारी। क्या बन पाया है? कोई एक बुद्ध पैदा हो जाए, एक महावीर पैदा हो जाए करोड़ों-करोड़ों लोगों में, इसको तुम कुछ बनाव कहते हो? इसको तुम धार्मिक संस्कृति कहते हो? आदमी मर रहा है, सड़ रहा है, दुर्बल है, बीमार है, रुग्ण है। दुनिया में सबसे कम हमारी औसत आयु है, सबसे कम हमारी औसत बुद्धि है। सबसे ज्यादा काहिल और सुस्त हम हैं। कामचोर हैं। इस संस्कृति को तुम बचाने की बात कर रहे हो? और तुम कहते हो कि "हमारे महान नैतिक मूल्यों की गरिमा क्या आप भूल गए हैं?" कौन से महान नैतिक मूल्यों की बात कर रहे हो? महात्मा गांधी रामराज्य की बहुत प्रशंसा करते थे, लेकिन किसी ने भी उनसे यह नहीं पूछा कि रामराज्य में गुलाम बिकते थे बाजारों में। और मजा यह है कि स्त्रियां राजे-महाराजे ही खरीदते थे सो नहीं, ऋषि मुनि भी खरीदते थे। नीलाम में! एक तो स्त्रियों की नीलामी, पुरुषों की नीलामी--और नीलामी में खरीदारों में ऋषि मुनि भी मौजूद होते थे।
उपनिषदों में कथा है गाड़ी वाले रैक्व की। वे एक ऋषि थे, जो गाड़ी में चलते थे, बैलगाड़ी में चलते थे। तो उनका नाम ही "गाड़ी वाले रैक्व" हो गया। विनोबा कई जगह उनका उल्लेख किए हैं, लेकिन अधूरा और बेईमानी भरा। उल्लेख किया है उन्होंने कि उस समय का सम्राट अपने अंतिम जीवन के क्षणों में, रैक्व ऋषि के पास उनके चरणों में बहुत धन लेकर आया। रथों में धन भर कर लाया। अशर्फियां, हीरे-जवाहरात, ढेर लगा दिए उसने रैक्व के चरणों में। चरण छू कर उसने कहा कि प्रभु, मुझे ब्रह्मज्ञान दें! रैक्व ने कहा, अरे शूद्र! तू सोचता है कि धन से तू मुझे खरीद लेगा? ले जा अपना धन!
विनोबा इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं कि यह बड़ी अद्भुत बात है। इतने धन
को हमारे महर्षि ने कह दिया--ले जा यह धन, यह मिट्टी से तू सोचता है मुझे खरीद लेगा? इस मिट्टी से बह्मज्ञान पाना चाहता है? अरे शूद्र! विनोबा का अर्थ यह है कि शूद्र उन्होंने इसलिए कहा कि धन पर तेरी इतनी आस्था है, तो तू शूद्र ही है, अभी तुझे कुछ समझ में नहीं आया। ले जा अपना यह सब धन। ऐसे ब्रह्मज्ञान नहीं मिलता।
लेकिन यह कहानी अधूरी है। कहानी जब तक पूरी न हो जाए, बेईमानी है। कहानी पूरी यह है कि ऋषि रैक्व और यह सम्राट दोनों ही, जब जवान थे, तो एक नीलामी में जहां स्त्रियां, सुंदर स्त्रियां नीलाम हो रही थीं, खरीदने गए थे। स्वभावतः रैक्व ने एक सुंदर स्त्री पर दाम लगाए, बहुत दाम लगाए। मगर सम्राट भी उसी को खरीदना चाहता था। अब सम्राट के मुकाबले ऋषि न टिक पाए, क्योंकि धन इतना नहीं था। ऐसे काफी था, लेकिन इतना नहीं था। तो मजबूरी में वह स्त्री को छोड़ना पड़ा। सम्राट उस स्त्री को खरीद कर ले गया। तब से रैक्व के मन में दुश्मनी थी सम्राट के प्रति। फिर वृद्धावस्था में वह सम्राट... वृद्धावस्था में जब मौत करीब आती है तो ब्रह्म की स्मृति किसी को भी आने लगती है। मौत सभी को डरा देती है। वह सम्राट भी घबड़ाया। उसने पूछा कि मैं किससे ज्ञान लेने जाऊं? रैक्व का बड़ा नाम था, तो वह रैक्व के पास ज्ञान

लेने गया। तो रैक्व ने कहाः अरे शूद्र! हटा, ले जा अपने धन को। तू चाहता है इस तरह ब्रह्मज्ञान मिल जाएगा?
सम्राट ने वजीरों से पूछाः मैं क्या करूं?
वजीरों ने कहाः शायद आप भूल गए। वह जो स्त्री आपने खरीदी थी, आप उसी स्त्री को ले जाएं। इसलिए वे नाराज हैं। सम्राट फिर स्त्री को ले कर गया, तब रैक्व बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहाः वत्स, बैठ, अब बह्मज्ञान ले। यह पूरी कहानी है। विनोबा की बेईमानी देखते हो, कहानी का इतना छोटा टुकड़ा चुन लिया कि उसका अर्थ ही बदल जाए। यह पूरी कहानी है। कौन से नैतिक मूल्य? किसको तुम नैतिक मूल्य कहते हो? ऋषियों की पत्नियां होती थीं--एक नहीं अनेक। और यह ऋषियों की बात, साधारण आदमी की बात तो छोड़ दो। और पत्नियों के साथ-साथ वधुएं होती थीं। अब तो वधुओं का अर्थ बदल गया है। वह वैदिक अर्थ नहीं है। अब तो हम वधु कहते हैं पत्नी को। वर और वधु। मगर पुराना अर्थ, वैदिक अर्थ बड़ा और था। वधु नंबर दो की पत्नी का नाम था। और वधु कहते थे उसको जिसको खरीदा था। उससे तुम पत्नी का संबंध रख सकते थे। लेकिन वह जाए पत्नी नहीं थी। उसके बेटों को तुम्हारी संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता, कानूनी अधिकार नहीं होता। वह रखैल थी। उसको वधु कहते थे। तो ऋषियों के पास अनेक पत्नियां होती थीं और उससे भी ज्यादा रखैलें, वधुएं होती थीं। और तुम नैतिक मूल्यों की बात कर रहे हो!
कृष्ण के पास सोलह हजार स्त्रियां थीं और तुम नैतिक मूल्यों की बात
कर रहे हो! और ये स्त्रियां सब उनकी विवाहित नहीं थीं, चुराई गई थीं। इनमें बहुत तो दूसरों की स्त्रियां थीं। उनको भगा कर ले जाया गया था। उनको जबरदस्ती छीन लिया गया था। तुम किन नैतिक मूल्यों की बात करते हो? तुम्हारे पांडव, एक स्त्री को पांचों ने बांट लिया था। एक स्त्री के पांच पति बन बैठे थे। उस स्त्री को वेश्या बना दिया। और फिर इन पांचों पांडवों में, जिनमें प्रमुख युधिष्ठिर थे, जिनको कि तुम "धर्मराज" कहते हो--धर्मराज कहते हो तो निश्चित ही बड़े नैतिक व्यक्ति को धर्मराज कहते हो, तभी तो, नहीं तो धर्मराज कहने का क्या कारण? महान नैतिकता रही होगी। और नैतिकता देखते हो! जुआरी... और जुआरी भी ऐसे कि सब धन हार गए और पत्नी को भी दांव पर लगा दिया। आज कोई पत्नी को दांव पर लगा कर तो देखे, जेलखाने में सड़ेगा। और फिर भी धर्मराज, धर्मराज ही रहे। और वहां महान गुरु द्रोण उपस्थित थे और महान आध्यात्मिक पुरुष, बड़े ज्ञानी भीष्म उपस्थित थे। वे भी चुपचाप बैठे रहे। और इसकी बहुत चर्चा की जाती है।
अभी मुझे एक पत्र लिखा गया। किसी ने पत्र लिखा है कि माया त्यागी को नग्न करके रास्तों पर घुमाया गया। आप भगवान हैं। तो आपने उसकी रक्षा क्यों नहीं की? कृष्ण ने तो, जब द्रोपदी को नंगा किया गया था, तो उसकी रक्षा की थी।
बात तो बिल्कुल ठीक है। लेकिन फिर मुझे कृष्ण के दूसरे अधिकार भी चाहिए। एक माया त्यागी को बचाऊंगा, लेकिन अनेक स्त्रियां के कपड़े छीन कर कृष्ण झाड़ पर चढ़ बैठे थे, वह भी मुझे हक चाहिए। और जिसके कपड़े बचाए थे, वह उनकी बहन थी और जिनके कपड़े छीने थे, वह भी हक मुझे चाहिए। तो मैं भी शर्त पूरी करने को राजी हूं।
लेकिन तुम किन नैतिक मूल्यों की बात कर रहे हो? कौन सी नैतिकता थी तुम्हारे देश में? नाहक शोरगुल मचाए हुए हो? और तुम बुद्धू बना लेते हो पश्चिम के लोगों को, क्योंकि उनको तुम्हारे इतिहास का कोई पता नहीं है। इसलिए तुम्हारे महात्मागण जा कर पश्चिम में प्रचार करते फिरते हैं कि भारत की महान नैतिकता... । इससे ज्यादा अनैतिक कोई देश दुनिया में कभी नहीं रहा है।
तुमने बौद्ध भिक्षुओं के साथ क्या किया, क्या र्दुव्यवहार किया? कैसे बौद्ध धर्म एकदम भारत से विलुप्त हो गया? क.ड़ाहों में जलाया है तुमने। भारत से बौद्धों को बिल्कुल उखाड़ फेंका। किस नैतिकता की तुम बातें कर रहे हो? कौन से नैतिक मूल्य हैं तुम्हारे, जिनका मैं सम्मान करूं?
शूद्रों के साथ तुमने क्या किया है दस हजार वर्षों में? और तुमने ही नहीं, तुम्हारे राम ने क्या किया? तुम्हारे राम ने एक शूद्र के कानों में

सीसा पिघलवा कर भरवा दिया और अब भी तुम उनको मर्यादा पुरुषोत्तम कहे चले जाते हो। तुम्हें शर्म भी नहीं लगती, संकोच भी नहीं लगता। और मजा तो यह है कि शूद्र भी राम के मंदिर में प्रवेश करने को लालायित हैं। और महात्मा गांधी और विनोबा जैसे लोग आंदोलन चलाते हैं कि शूद्रों को प्रवेश मिलना चाहिए। किसके मंदिर में? यही राम का मंदिर, जिसने कि शूद्र के कान में इसलिए सीसा पिघलवा दिया कि इसने चोरी से वेद-वचन सुन लिए थे। कौन-सा गुनाह किया था? वेद पर किसी की बपौती है? शूद्र को हक नहीं है परमात्मा कि स्मरण करने का, परमात्मा को पाने का?
स्त्रियों के साथ तुमने क्या किया है, जरा सोचो तो! स्त्रियों को बिल्कुल मिटा ही डाला। उनका सारा व्यक्तित्व नष्ट कर दिया, उनकी आत्मा नष्ट कर दी। जैन धर्म में हिसाब है कि स्त्री पर्याय से मोक्ष नहीं हो सकता। स्त्रियों को जैन शास्त्रों को जला देना चाहिए। मगर वही स्त्रियां मूढों की तरह जैन मुनियों के चरणों में बैठी हैं, सेवा कर रही हैं।
गौतम बुद्ध ने वर्षों तक स्त्रियों को दीक्षा नहीं दी। जब भी दीक्षा
के लिए कहा गया, उन्होंने इनकार कर दिया। सिर्फ पुरुषों को दीक्षा, स्त्रियों को दीक्षा नहीं। क्यों? क्या स्त्रियों से ऐसा डर है? क्या ऐसी घबड़ाहट है? और अगर इतनी घबड़ाहट है तो क्या खाक तुम्हारे भिक्षु संन्यास को उपलब्ध हुए हैं? क्या उनको ध्यान उपलब्ध हुआ है, जो स्त्रियों से ऐसे डरे हुए हैं? और मजबूरी में, चूंकि बुद्ध की सौतेली मां ने जब मांगा, उसको इनकार न कर सके।
तुम बातें तो करते हो अपने-पराए की, कौन अपना कौन पराया! मगर बुद्ध को भी, औरों की स्त्रियां आईं, ओरों की माताएं आईर्ं, उनको इनकार कर दिया। खुद की सौतेली मां आई दीक्षा लेने तो उसको इनकार न कर सके। और चूंकि अपनी सौतेली मां को दिया तो फिर और स्त्रियों के लिए दरवाजा खुल गया। जिस दिन उन्होंने स्त्रियों को दीक्षा दी, उस दिन बुद्ध ने क्या कहा, याद करना। बुद्ध ने कहा कि अगर मैं स्त्रियों को दीक्षा न देता तो मेरा धर्म पांच हजार साल चलता, अब मुश्किल से पांच सौ वर्ष चलेगा।
स्त्रियों का अपमान तुम सोचते हो? किस-किस तरह से अपमान किया जा रहा है! राम सीता को बचा कर लौटते हैं लंका से, तो वाल्मीकि की रामायण में जो वचन हैं, बड़े अभद्र हैं। राम को शोभा नहीं देते--कम से कम मर्यादा पुरुषोत्तम जिसको कहते हो, उसके तो शोभा नहीं देते! राम ने क्या कहा? राम ने कहाः ए स्त्री, तू यह मत समझना कि मैंने तेरे लिए युद्ध किया है। ठीक ही कहते हैं, स्त्री के लिए कौन युद्ध करता है--पैर की जूती! फिर युद्ध किस लिए किया है? युद्ध इसलिए किया--कुल-मर्यादा के लिए, कुल की प्रतिष्ठा के लिए। यह कुल का अहंकार--रघुकुल! उसकी प्रतिष्ठा के लिए युद्ध किया है। सीता को बचाने के लिए नहीं।
और फिर सीता से कहा कि अग्नि-परीक्षा दो। तो चलो मान लें कि भय है कि सीता अकेली थी रावण के हाथ में, पता नहीं रावण के साथ कुछ अनैतिक संबंध बन गया हो! चलो ठीक--अग्नि परीक्षा हो ले। लेकिन राम भी तो इतने दिन अकेले रहे थे, अगर परीक्षा ही देनी थी तो दोनों को साथ-साथ देनी थी, ताकि सीता को भी भरोसा आ जाए कि इतनी देर पतिदेव अलग रहे, क्या किया क्या नहीं किया, क्या पता! लेकिन स्त्री को पूछने का कोई हक ही नहीं, सवाल ही नहीं उठता। पुरुष पुरुष है। पुरुष बच्चा! उसकी बात ही और। स्त्री की परीक्षा ले ली। और खुद? खुद का क्या भरोसा है?
लेकिन हमने स्त्रियों को इस तरह दबाया है, उनकी जबान काट दी है कि सीता को यह भी न सूझा कि कहती कि आओ तुम भी साथ, जैसे भांवर साथ-साथ डाली थी ऐसे हम दोनों ही अलग रहे इतने दिन, तुम भी न मालूम अंदरों-बंदरों के साथ किन-किन के साथ रहे, क्या किया क्या नहीं किया, क्या पता, तो दोनों ही साथ गुजर जाएं। परीक्षा ही है तो पूरी हो जाए।
तो सीता की परीक्षा हुई, राम की परीक्षा न हुई। यह पुरुष से, पुरुष के अहंकार से पीड़ित देश है। इसमें स्त्री के साथ जैसा अनाचार हुआ है, उसको देख कर इसे नैतिक नहीं कहा जा सकता। और फिर एक धुब्बड़ ने कह दिया अपनी

पत्नी को कि "तू रात भर कहां रही ? मैं कोई राम नहीं हूं कि तुझे घर में रख लूं ! निकल जा !"

बस इतनी सी बात से राम ने अग्नि परीक्षा लेने के बाद भी सीता को जंगल में फिंकवा दिया। और तुम नैतिक मूल्यों की बात करते हो ! अगर जाना था तो फिर दोनों ही चले जाते जंगल। लेकिन राज्य को नहीं छोड़ा, स्त्री को छोड़ दिया। यह अहंकार को बचाव है और कुछ भी नहीं। यह अहंकार पर जरा भी आंच आए, कोई यह न कह सके कि राम ने स्त्री को घर में रख लिया। और अग्नि परीक्षा का क्या हुआ ? अग्नि-परीक्षा सीता ने भी दी थी, इन सज्जन ने दी भी नहीं थी। और उसी को घर से फिंकवा दिया ! और अहंकार को बचाने के लिए कि कोई एतराज न कर सके, कोई संदेह खड़ा न कर सके, कोई शंका न उठा सके। गर्भणी स्त्री को ! जरा भी ख्याल नहीं। और नैतिक मूल्यों की बात करते हो तुम !

मुझे तो कोई नैतिक मूल्य नहीं दिखाई पड़ते। शूद्रों के साथ ब्राह्मणों ने जो व्यवहार किया है, इससे बड़ी अनीति कहीं भी नहीं हुई। हां, अच्छी-अच्छी बातें तुम्हारे शास्त्रों में लिखी हैं। मगर अच्छी-अच्छी बातें लिखने से कोई नैतिक नहीं होता। अच्छी-अच्छी बातें दुनिया के सब शास्त्रों में लिखी हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है ? इस्लाम शब्द का अर्थ होता हैः शांति का धर्म। लेकिन मुसलमानों ने दुनिया की शांति नष्ट की। नाम से क्या होता है ? जीसस ने कहा है प्रेम परमात्मा है और ईसाइयों ने जितने कत्लेआम किए दुनिया में, और जितने जिहाद लड़े और जितनी हत्याएं कीं, किसी ने भी नहीं कीं। शास्त्रों से क्या होता है ? शास्त्र तो बड़े-बड़े प्यारे वचन लिख देते हैं। अरे प्यारे वचन लिखने में क्या हर्ज लगता है ? कोई दाम लगते, कोई अड़चन आती? सुंदर-सुंदर कविताएं रचने में कौन सी मुश्किल है ? मगर जीवन क्या सबूत देता है ? जीवन तो कुछ और सबूत दे रहा है ?

मैं जीवन को देखता हूं। मैं तुम्हारे शास्त्रों को नहीं देखता। और मैं तुम्हारे शास्त्रों और तुम्हारे जीवन में बुनियादी विरोध पाता हूं। और तुम असली चीज हो, शास्त्र का क्या है ?

तुम पूछते हो, "पश्चिमी फिरंगियों ने तो सैकड़ों वर्षों तक हमें लूटा, हमारा रक्त चूसा और हमारी पवित्र मानसिकता में अपनी भोग-लिप्सा से भरी दूषित संस्कृति के कीटाणु छोड़ गए।"

क्या तुम सोचते हो खुजराहो, कोणार्क और पुरी के मंदिर फिरंगियों ने बनवाए ? क्या तुम सोचते हो कोकशास्त्र फिरंगियों ने लिखा ? क्या तुम सोचते हो वात्स्यायन का कामसूत्र फिरंगियों ने लिखा ? ऋषि वात्स्यायन कोई अंग्रेज थे ? और यह पंडित कोक, जिनके नाम से संभवतः कोकाकोला चलता है, ये कश्मीरी ब्राह्मण थे, जिनने कोकशास्त्र रचा। तुम किसकी बातें कर रहे हो ? दुनिया को पता भी नहीं था कोकशास्त्र का, वात्स्यायन के कामसूत्र का। पश्चिम में तो कामवासना की चर्चा बड़ी आधुनिक है। सच पूछो तो पहली दफा इस सदी के प्रारंभ में ने और हेवलक ऐलिस ने, दो आदमियों ने पश्चिम में कामशास्त्र की चर्चा शुरू की। और तुम्हारे वात्स्यायन के सूत्र तीन हजार साल पुराने हैं। और तुम्हारा कोकशास्त्र पंद्रह सौ साल पुराना है। जो पश्चिम में अभी इन अस्सी वर्षों में हुआ है, वह तुम तीन हजार साल से कर रहे हो। और तुम कहते हो तुम्हारी पवित्र मानसिकता !

आदमी थोड़ा सोचता भी है ! मगर हम अपने शब्दों के जाल में ऐसे खो गए हैं कि हम भूल ही गए कि हमने क्या किया है। तुम जरा अपने शास्त्रों को उठा कर देखो, अपने पुराणों को उठा कर देखो, तब तुम्हें पता चलेगा। तुम्हारे पुराण जितनी गंदगियों से भरे हैं उतनी गंदी फिल्म बनी नहीं अब तक दुनिया में। तुम्हारे देवता जिस तरह की गंदगी से भरे हुए हैं, जिस तरह की भोग-लिप्सा से भरे हुए हैं, उस तरह की भोग-लिप्सा गुंडों में भी नहीं पाई जाती। तुम अपने पुराण उठा लो। देवता उतर आते हैं छिप कर, ऋषि मुनि बेचारे गए हैं स्नान करने ब्रह्ममुहूर्त में... शायद इनको इसीलिए समझाया गया कि ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने जाओ... यह तो ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने चले गए हैं, देवता आ जाते हैं छिप कर, पति बन कर। और पत्नियां सो रही हैं बिस्तर में, उन्हीं धोखा दे जाते हैं, उनके साथ भोग कर जाते हैं; इसके पहले कि मुनि आएं, वे भी नदारद भी हो जाते हैं। ये तुम्हारे देवता हैं ! तो आदमी की क्या हालत

रही होगी, जरा यह तो सोचो। जब देवताओं की यह हालत है तो आदमियों की क्या हालत रही होगी?
तुम शंकर की पिंडी में किस चीज को पूज रहे हो? वह जननेंद्रिय का प्रतीक है। और फिर भी तुम्हें शर्म नहीं आती! और प्रश्न पूछते हुए विद्याधर वाचस्पति, तुम तो शास्त्रों के ज्ञाता होओगे, वाचस्पति हो, विद्याधर हो, तुम्हें तो सब पता होगा। फिर भी तुमने यह प्रश्न पूछ लिया कि "हमारी पवित्र मानसिकता में अपनी भोगलिप्सा से भरी दूषित संस्कृति के कीटाणु छोड़ गए"! जरा भी नहीं।
तुमसे ज्यादा भोगी, तुमसे ज्यादा कामलोलुप कोई जाति कभी रही नहीं। तुम्हारी पवित्रता को कोई नष्ट नहीं कर सकता, हो तो नष्ट करे! तुममें क्या कीटाणु छोड़ेगा? तुम्हारे भीतर तो कीड़े-मकोड़े बैठे हुए हैं, कीटाणु वगैरह तो वे ही चाट जाएंगे, साफ कर जाएंगे।
और तुम कहते होः "आज हमारे युवक अपनी स्वर्णिम संस्कृति को भूल कर...
।" कहां की स्वर्णिम संस्कृति? ... "पश्चिम का अंधानुकरण कर रहे हैं!" करें न तो क्या करें? मजबूरी है। तुम्हारे पास कुछ नहीं है जिसका अनुसरण करें। तुम्हारे पास जो कुछ भी है वह सब पश्चिम का अंधानुकरण है। तुम्हारे पास अगर रेलगाड़ी है तो पश्चिम से तुमने सीखी; हवाई जहाज है तो पश्चिम से सीखा; फाउंटेन पेन है तो पश्चिम से सीखा; साइकिल है तो पश्चिम से सीख; बिजली है तो पश्चिम से सीखी; टेलीग्राफ, पोस्ट आफिस... । क्या है तुम्हारे पास जो तुमने पश्चिम से नहीं सीखा?
विद्याधर वाचस्पति, बीमार पड़ोगे तो फौरन अस्पताल में भरती होओगे--जो पश्चिम है। फौरन डाक्टर को नब्ज दिखाओगे। मैं वैद्यों को जानता हूं कि जब वे बीमार होते हैं तो डाक्टरों के पास जाते हैं। यूं आयुर्वेद की बड़ी चर्चा करते हैं, लेकिन जब मुसीबत आ जाती है तो भागे हुए तब भागे हुए एलोपैथी की शरण में पहुंच जाते हैं।
तुम जो भी सीखे हो, पश्चिम से सीखे हो। सच तो यह है, तुमने लोकतंत्र की धारणा पश्चिम से सीखी है। तुमने स्वतंत्रता की धारणा पश्चिम से सीखी है। तुम्हारे सारे नेता पश्चिम में शिक्षित हुए थे, इसलिए स्वतंत्रता और लोकतंत्रता की बात उठी, नहीं तो तुम्हारे मन में तो उठ नहीं सकती थी कभी। तुम कभी स्वतंत्र रहे नहीं, जमाने हो गए तुम कभी स्वतंत्र नहीं रहे। या तो तुम दूसरों के गुलाम रहे या अपने ही राजा-महाराजाओं के गुलाम रहे और तुम्हारे राजा-महाराजाओं ने तुम्हें जिस तरह चूसा उस तरह किसी ने नहीं चूसा।
तुम्हारे देश में तुमने सदियों से सिवाय गुलामी के कुछ नहीं देखा। इसलिए तो तुम्हें अड़चन न हुई! तुम्हारे राजा-महाराजा चूसते थे, बुरी तरह चूसते थे, तुमने सोचाः क्या फर्क पड़ता है कि राजा महाराजा हिंन्दु हैं कि मुसलमान हैं कि ईसाई हैं? कोई नृप होय हमें का हानि! हमें फर्क ही क्या पड़ता है? हमको चुसना है। अब मच्छर भारतीय हैं कि अभारतीय हैं, क्या फर्क पड़ता है, खून तो पीएंगे! गोरे हैं कि काले, क्या फर्क पड़ता है? खटमल तो खटमल हैं, कहीं ले जाओ, वे तो खून पीएंगे।"
तुम हजारों साल से गुलाम हो। तुमने कभी लोकतंत्र नहीं जाना। तुमने कभी स्वतंत्रता नहीं जानी। और अचानक तुम्हें फिक्र पड़ गई है कि अंधानुकरण न हो पश्चिम का। होगा ही, क्योंकि तुम्हारे पास कोई मूल्य नहीं है जिनको पढ़ा-लिखा हुआ सुशिक्षित युवक स्वीकार करने को राजी हो सके। या तो मूल्य पैदा करो। मैं मूल्य पैदा कर रहा हूं। और तुम देख सकते है उन मूल्यों के कारण पश्चिम के युवक आ रहे हैं। मूल्य हों तो युवक कहीं से भी आएंगे। युवकों के पास दृष्टि होती है, सूझ होती है, हिम्मत होती है, साहस होता है। यह सवाल इसका नहीं है कि पश्चिम का अंधानुकरण क्यों कर रहे हैं; तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, जिसको पकड़ कर बैठें। पकड़ने योग्य कुछ नहीं है, तो मजबूरी है।
मूल्य पैदा करो। आइंस्टीन पैदा करो। रदरफोर्ड पैदा करो। तुम यहां पैदा करो लोग। विटगिंसटीन पैदा करो। बर्ट्रेंड रसल पैदा करो। मैं उसी कोशिश में लगा हूं कि यहां मूल्य पैदा करें, यहां मनुष्य पैदा करें। आज

मेरे संन्यासियों में पश्चिम से जो आए हुए लोग हैं, तुम जान कर हैरान होओगे, सैकड़ों पीएच. डी. हैं, हजारों एम. ए. हैं, कोई इंजीनियर है, कोई डाक्टर है, कोई सर्जन है, कोई प्रसिद्ध चित्रकार है, कोई अभिनेता है, कोई कवि है, कोई मूर्तिकार है। भारत को हमेशा शिकायत रही है कि हमारी प्रतिभाएं पश्चिम चूस लेता है। मैं शिकायत मिटाए देता हूं। हम पश्चिम की सारी प्रतिभाओं को यहां ला सकते हैं। मगर तुम्हारे इस देश के गधों के कारण मुसीबत है। उनके कारण अड़चन है।
मैं मूल्य भी पैदा कर रहा हूं और मूल्यों का आकर्षण भी दे रहा हूं। मूल्यों का निमंत्रण भी पहुंचना शुरू हो गया है। तुम इसमें पड़े हो कि पश्चिम का अंधानुकरण न करें युवक। यह तो नकारात्मक बात है। मैं तो यह कह रहा हूं कि मूल्य पैदा करो, पश्चिम तुम्हारा अनुकरण करेगा। क्यों तुम इस चिंता में पड़े हो? यह तो हमेशा कमजोरों की बात है कि दूसरों के पीछे न जाओ। ताकतवर कहता है मेरे पीछे आओ, क्या बात करनी दूसरों के पीछे नहीं जाने की! और क्या तुम बचा सकोगे? तुम्हारे पास चुनाव क्या है? तुम सामने विकल्प क्या देते हो? तुम कुछ विकल्प तो बताओ अपने युवक को कि यह विकल्प है। विकल्प कुछ भी नहीं है। उससे कहते होः "रामायण पढ़ो बाबा तुलसीदास की!" वह क्या खाका रामायण पढ़े बाबा तुलसीदास की, जो बिल्कुल अमानवीय है! ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी! कैसे युवक राजी हों? स्त्रियों को तुम ढोल के साथ गिनती कर रहे हो, गंवारों के साथ गिनती कर रहे हो, पशुओं के साथ गिनती कर रहे हो! और स्त्रियों से तुम पैदा हुए। पशुओं से ऋषि कैसे पैदा है रहे हैं, यह भी बड़ी हैरानी की बात है! पशुओं से एकदम परमात्मा पैदा हो रहे हैं! ढोरों से, गंवारों से ऋषि-मुनि चले आ रहे हैं! ढोरों में से निकल रहे हैं! ये बाबा तुलसीदास कहां से पैदा हुए? लेकिन बाबा तुलसीदास स्त्री से नाराज हैं। और नाराजगी का कुल कारण इतना है कि इनकी स्त्री ने ही इनको बोध दिया। ये बरदाश्त नहीं कर सके। ये क्षमा नहीं कर पाए उसको। ये अंधे, लोलुप, कामी आदमी थे। स्त्री मायके गई थी। ये कुछ दिन चैन से न बैठ सके। राम राम जपते रहते, माला फेरते, कुछ भी करते। कई तरह की बेवकूफियां हमें आती हैं, कुछ भी करते रहते। मगर नहीं, बरसात की अंधेरी रात, ये पहुंच गए। नदी पूर पर थी। नाव मिली नहीं। सोचा एक लक्कड़ बहा जा रहा है--लक्कड़ नहीं था, लाश थी आदती की--उसका ही सहारा ले कर उस पार पहुंच गए। सामने के दरवाजे से तो घुसने की हिम्मत नहीं थी, क्योंकि लोग पूछते--ऐसी आधी रात आप अचानक आ गए! पर कामवासना इतनी तेजी से उठी होगी कि आधी रात भी हो तो क्या करें! रोक नहीं सके अपने को। तो मकान के पीछे से चढ़ने की कोशिश की, समझे की रस्सी है। अंधी रही होगी कामवासना, बिल्कुल अंधी रही होगी। सांप लटका था। सांप को पकड़ कर ऊपर चढ़ गए।
पत्नी को बहुत हैरानी हुई। पत्नी ने कहा कि आप मेरे प्रेम में अंधे हो रहे हैं, काश परमात्मा के प्रेम में अंधे होते, इतने अंधे परमात्मा के प्रेम में होते तो जीवन का परम आनंद आपका था, सत्य आपका था, मुक्ति आपकी थी! चोट खा कर लौटे, इस स्त्री को माफ नहीं कर पाए। इसी स्त्री को लिख रहे हैं-- ढोल गंवार शूद्र पशु नारी! ढोल कौन था इसमें? गंवार कौन था? शूद्र कौन था? यह स्त्री या बाबा तुलसीदास? स्त्री नहीं आई थी सांप पर चढ़ कर, मुर्दे का सहारा लेकर। स्त्री में ज्यादा संयम था, इन सज्जन में बिल्कुल नहीं था। वह नाराजगी भीतर बैठी हुई है।
तुम युवकों को क्या कहते हो? विटगिंसटीन के मुकाबले या बर्ट्रेंड रसल
के मुकाबले बाबा तुलसीदास को पढ़ें? गांव के गंवार पढ़ते रहीं ठीक; उनके पास बेचारों के पास कुछ है भी नहीं। या तो बाबा तुलसीदास को पढ़ें, उनकी चौपाइयों में खोए रहें और या फिर आला ऊदल। आला ऊदल बड़े लड़ैया, जिनके हार गई तलवार! इसको दोहराएं। और तुम्हारे पास है क्या?
तुम मुझसे कह रहे हो कि "क्या समय रहते अपनी संस्कृति को बचा लेना जरूरी नहीं?" समय रहते इसको नष्ट कर देना जरूरी है। समय रहते इसको आग लगा देना जरूरी है। इससे छुटकारा पा लेना जरूरी है। समय रहते नई संस्कृति को पैदा कर लेना जरूरी है। ताकि तुम्हारे युवक दूसरों के पीछे न जाएं। क्यों तुम्हारे युवक दूसरों के पीछे जाएं? लेकिन यहां सड़ रही है लाश। यहां

तुम्हारी संस्कृति मुर्दा हो गई है, कब की मरी हुई है, सांस चल नहीं रही उसमें सदियों से। कब तक लाश को पकड़े रहें? दुर्गंध उठ रही है। इसको जलाओ और खाक करो। नई संस्कृति को जन्म दो उसी काम में मैं लगा हुआ हूं। नई संस्कृति हो तो पश्चिम भी उसका अनुसरण करने को राजी हो सकता है।
तुम यहां प्रत्यक्ष प्रमाण देख सकते हो। मैं कभी नकारात्मक ढंग से सोचता नहीं। मुझे इसकी फिक्र नहीं कि तुम्हारे युवक क्यों पश्चिम का अनुसरण कर रहे हैं। मुझे इसकी फिकर है कि क्यों न ऐसी संस्कृति पैदा हो कि तुम्हारे युवक भी उसका अनुसरण करें, पश्चिम भी उसका अनुसरण करे। लेकिन वह संस्कृति भिन्न होगी--पश्चिम से भिन्न होगी, पूरब से भी भिन्न होगी। उसमें पूरब का दकियानूसीपन नहीं होगा। उसमें पूरब का सड़ा गलापन, बुढ़ापा नहीं होगा। उसमें पश्चिम की छिछली भौतिकता नहीं होगी, उथलापन नहीं होगा। उसमें पश्चिम का विज्ञान होगा, पूरब का अध्यात्म होगा। किसी तरह अलबर्ट आइंस्टीन और गौतम बुद्ध को एक साथ खड़ा कर देना है, एक ही सिक्के के दो पहलू बना देना है। विज्ञान और धर्म जहां मिल जाएं, भविष्य उसी सिक्के का है। उसी सिक्के का राज्य भविष्य पर चलने वाला है। उसी सिक्के का चलन होने वाला है।
निश्चित, मैं दोनों को नाराज करूंगा। भारतीय नाराज होंगे, क्योंकि मैं पश्चिम से विज्ञान लूंगा। और पश्चिमी पंडित-पुरोहित, वे भी मुझसे नाराज हैं। चर्चों में--जर्मनी में, हालैंड के, अमरीका के--मेरे खिलाफ दिए जा रहे हैं, वक्तव्य दिए जा रहे हैं। घंटों विवाद हो रहा है। सारी दुनिया में तहलका मचा हुआ है, चर्चा चल रही है कि मैं जो कह रहा हूं वह कहां तक सच है। और उनको घबड़ाहट पैदा है गई है, क्योंकि मैं उनके युवकों को आकर्षित कर रहा हूं।
अभी यहां इटली से, इटली सरकार की तरफ से टेलीविजन फिल्म बनाने के लिए लोग आए हुए हैं। वे सिर्फ इसलिए आए हुए हैं कि क्या कारण है, इटली में इतने युवक और युवतियां क्यों पूना जा रहे हैं? वे सिर्फ इस बात का पूरा का पूरा अध्ययन करने के लिए और इसका अध्ययन करके फिल्म बनाने कि लिए आए हुए हैं। और तुम पड़े हो इस फिक्र में कि हमारे युवक अंधानुकरण न करें!
मुझे नकारात्मक बातों में रस नहीं है। मेरा रस इस बात में है कि हम यहां एक ऐसा उत्तुंग शिखर पैदा करें। स्वर्णयुग लाया जा सकता है, लेकिन वह होगा समन्वय का। वह न होगा भारत का, न होगा किसी और देश का। वह भौगोलिक नहीं होगा। वह सारी पृथ्वी का होगा। वह पूरे मनुष्य का होगा। सारी मनुष्यता उसमें अपना दान देगी। उसमें लाओत्सु, च्वांगत्सु, लीहत्सु, कनफ्यूशियस का दान होगा। उसमें महावीर, बुद्ध, रमण, कृष्णमूर्ति का दान होगा। उसमें जीसस, फ्रांसिस, इकहार्ट, बोहमे का दान होगा। उसमें सूफी फकीरों का दान होगा, झेन फकीरों का दान होगा, हसीद फकीरों का दान होगा। उसमें योग का दान होगा, तंत्र का दान होगा। जगत में जो भी श्रेष्ठतम हुआ है, उन सारे फूलों से निचोड़ कर एक इत्र मैं यहां तैयार कर रहा हूं। मुझे भारत और गैर-भारत में कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन मैं भविष्य में उत्सुक हूं। अतीत में मेरा कोई रस नहीं है।
आज इतना ही।

ज्यूं मछली बिन नीर
पांचवां प्रवचन

सत्य की कसौटी

पहला प्रश्नः भगवान,
मनुस्मृति का यह बहुत लोकप्रिय श्लोक हैः
सत्यं ब्रूयात्प्रिंयं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम।
प्रियं च नानृतं बू्रयादेष धर्मः सनातनः।।
अर्थात मनुष्य सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य को न बोले, और असत्य प्रिय को भी न बोले। यह सनातन धर्म है।
भगवान, इस पर कुछ कहने की कृपा करें।

शरणानंद!
मनुस्मृति इतने असत्यों से भरी है कि मनु हिम्मत भी कर सके हैं इस सूत्र को कहने की, यह भी आश्चर्य की बात है। मनुस्मृति से ज्यादा पाखंडी कोई शास्त्र नहीं है। भारत की दुर्दशा में मनुस्मृति का जितना हाथ है, किसी और का नहीं। मनुस्मृति ने ही भारत को वर्ण दिए हैं। शूद्रों का यह जो महापाप भारत में घटित हुआ है, जैसा पृथ्वी में कहीं घटित नहीं हुआ, उसके लिए कोई जिम्मेवार है तो मनु जिम्मेवार हैं। यह मनुस्मृति की शिक्षा का ही परिणाम है, क्योंकि मनुस्मृति है हिंदु धर्म का विधान। वह हिंदु धर्म की आधारशिला है।
इन पांच हजार वर्षों में शूद्रों के साथ जैसा अनाचार हुआ है, बलात्कार हुआ है, वह अकल्पनीय है। उस सबके पाप के भागीदार मनु हैं। शूद्रकी स्त्री के साथ कोई ब्राह्मण अगर बलात्कार करे तो कुछ रुपयों के दंड की व्यवस्था है। और कोई शूद्र अगर ब्राह्मण की स्त्री के साथ बलात्कार करे तो उसे मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था है। कैसा सत्य है! शूद्र की स्त्री की कीमत कुछ रुपये है और ब्राह्मण की स्त्री की कीमत--शूद्र का जीवन। बलात्कार भी ब्राह्मण करे तो यूं समझो कि धन्यभागी हो तुम कि तुम्हारे साथ बलात्कार किया। बड़ी कृपा है मनु की कि उन्होंने यह नहीं कहा कि उसको कुछ रुपयों का पुरस्कार दो। देना तो यही था पुरस्कार, कि कितनी कृपा की ब्राह्मण महाराज ने! धन्यभागी है शूद्र की पत्नी! उसकी देह को इस योग्य माना!
ऐसे असत्यों का प्रचार करने वाले लोग भी सुंदर-सुंदर सुभाषित कह गए हैं। यह सुंदर सुभाषितों की आड़ में बहुत पाप छिपा है। शूद्र को उन रास्तों पर चलने की आज्ञा नहीं जहां ब्राह्मण रहते हैं, क्योंकि गऊ तो माता है! और गऊ माता है, सो बैल पिता हुए ही। इससे कैसे बचोगे? वह तो स्वाभाविक तर्क होगा फिर। भैंसें भी चल सकती हैं, ये भी चाचियां समझो, न सही मां। भैंसें चल सकते हैं, इनको चाचा समझो। गधे चल सकते हैं, इनको मौसेरे भाई-बंधु समझो। मगर शूद्र नहीं चल सकता। शूद्रचले तो उसे जीवन-दंड भी दिया जा सकता है। शूद्र अगर वेद पढ़े तो मनु ने विधान किया, उसके कान में सीसा पिघला कर
भर दो। अगर वेद-वचन बोले, उसकी जबान काट दो। शूद्र अगर ब्राह्मण का मजाक उड़ाए तो उसकी जबान काट देने का विधान है। व्यंग्य करे तो जबान काट देने का विधान है। गाली दे दे तो उसकी जबान काट देने का विधान है। अगर कोई शूद्र अपने हाथ से ब्राह्मण को छू दे तो उसका हाथ काट देने का विधान है।
इस तरह की अनाचार से भरी बातें अैर इस तरह के लोग सनातन धर्म की व्याख्या कर रहे हैं! इसने व्याख्या हो नहीं सकती। होगी भी तो उसमें बुनियादी भूलें हो जाएंगी। स्वाभाविक है कि भूलें हों। अब जैसे यह सूत्र मानाकि बहुत पुनरुक्त्त होने के कारण तुम यह भूल ही जाते हो कि इस पर विचार भी करें। इसे आदमी स्वीकार करने लगता है। पुनरुक्ति एक तरह का सम्मोहन पैदा करती है, सोच-विचार को समाप्त कर देती है।
सोचो थोड़ा मनु कहते हैंः "मनुष्य सत्य बोले।" लेकिन अगर मनुष्य ने सत्य अनुभव नहीं किया है तो बोलेगा कैसे? अनुभव की तो कोई बात ही नहीं की जा रही है, बोलने को सवाल है। सत्य का अनुभव बुनियादी बात है। सत्य का

अनुभव तुम्हें सत्य बनाएगा। और तुम जब सत्यरूप हो जाओगे, तो तुम उठोगे भी तो सत्य होगा बोलोगे तो भी सत्य होगा, न बोलोगे तो भी सत्य होगा। तुम्हारे मौन में भी सत्य की आभा होगी। तुम्हारे वचनों में भी सत्य की सुगंध होगी। उठने--और बैठने में भी सत्य की ही मुद्राएं होंगी। तुम्हारा हर पल सत्य में भिगोया हुआ होगा। फिर अलग से सत्य बोलने के लिए कोई आयोजन न करना होगा। आयोजन करना पड़ता है इसलिए कि सत्य तुम्हारा जीवन नहीं है। और जब जीवन नहीं है तो सत्य बोलोगे तो वह सत्य उधार होगा। वह तुम्हारा नहीं होसकता। और जो तुम्हारा नहीं है वह सत्य ही कैसा? जो तुम्हारा नहीं है वह तो असत्य ही है। रहा होगा किसी के लिए सत्य, जिसका था, मगर तुम्हारे लिए नहीं।
मेरा सत्य तुम्हारा सत्य नहीं है। मेरा सत्य सत्य इसलिए है कि मेरा अनुभव है। और जब तक तुम्हारा अनुभव न बन जाए तब तक तुम्हारे लिए तो झूठ ही है, झूठ के ही बराबर है। हां, तुम तोते की तरह दोहरा सकते हो।
सो मनु ने तोतों की जमात पैदा कर दी। यह तो पंडितों का इतना बड़ा वर्ग
इस देश की छाती पर दाल घोंट रहा है, मूंग दल रहा है, यह मनु खड़ा कर गए। येसब सत्य बोल रहे हैं। सत्य से इनका मतलब--वेद का उद्धरण दे रहे हैं, गीता दोहरा रहे हैं, रामचरित-मानस दोहरा रहे हैं। इसमें से कोईभी इनका अनुभव नहीं, कोई भी निज की प्रतीति नहीं, स्वयं का साक्षात नहीं।
लाओत्सु कहता है कि सत्य तुमने कहा नहीं, दूसरे ने सुना नहीं कि झूठ
हो जाता है। क्योंकि जब तुम कहते हो, तुम्हारा तो अनुभव होगा, लेकिन जिसने सुना उसका अनुभव नहीं है। वह सत्य नहीं सुनता, वह तो केवल शब्द सुनता है। तुम भी ईश्वर को मानते हो, मगर ईश्वर तुम्हारा सत्य है? तुम छाती पर हाथ रख कर कह सकते हो, तुमने जाना? इतना ही कर सकते हो कि मैं मानता हूं। लेकिन मानना और जानना, जमीन-आसमान का भेद है। मानता वही है जो जानता नहीं। जो जानता है वह मानेगा क्यों? मानने की जरूरत क्या है? जब जानता ही है तो मानने का सवाल ही नहीं उठता।
तुम्हारे सत्य विश्वास हैं, अनुभूतियां नहीं। और विश्वास सब झूठेहोते हैं। कैसे तुम सत्य बोलोगे?
मनु कहते हैंः "मनुष्य सत्य बोले।" पाखंडी बन जाएगा मनुष्य सत्य बोलने की चेष्टा में। सत्य हो। मैं तुमसे कहता हूंः मनुष्य सत्य बने, सत्य हो! सत्य उसका साक्षात्कार हो। सत्य उसका जीवन हो। फिर उस जीवन से जो भी निकलेगा वह सत्य होगा ही। गुलाब के पौधे पर गुलाब के पत्ते लगेंगे और गुलाब के फूल खिलेंगे। कुछ गुलाब की झाड़ी को यह कहने की जरूरत नहीं है कि देख, तुझमें गुलाब के फूल खिलने चाहिए। खिलेंगे ही। हां, गेंदे के पौधे से कहो तो बात जमती है कि देख, गेंदा मत खिला देना, गुलाब खिला। अब गेंदे का पौधा बेचारा क्या करे! बाजार से प्लास्टिक के गुलाब के फूल खरीद लाए, लटका ले प्लास्टिक के फूल, अपने गेंदों को छिपा ले घूंघट में और घूंघट के बाहर लटका दे गुलाब के फूल--इतना ही हो सकता है। पाखंड ही हो सकता है।
इस तरह के सूत्र पाखंड के जन्मदाता हैं।
मनु कोई बुद्धपुरुष नहीं हैं। मनु ने स्वयं जाना नहीं है, नहीं तो इस तरह की बात नहीं करते। बुद्धतो कुछ और कहते हैं। बुद्धकहते हैंः अप्प दीपो भव! अपने दीये बनो। ज्योति जलाओ। अपनी ज्योति, अपना दीया।
बुद्ध ने कहा हैः मैं कुछ कहता हूं, इसलिए मत समझ लेना कि सत्यहै। शास्त्र कहते हैं, इसलिए मत मान लेना कि सत्य है। शास्त्र गलत हो सकते हैं, फिर मैं धोखा न भी दूं, मैं खुद ही धोखे में हो सकता हूं, फिर?
तो बुद्ध ने कहा किः मेरी बात मत मान लेना। प्रयोग करना। जानना। और जब जानो, जब स्वयं की ज्योति जले, उस ज्योति में जो अनुभव हो, जो प्रकाशित हो, वह तुम्हारा होगा।
सत्य सदा स्वयं का होता है। और फिर उस सत्य के अनुभव में जो पत्ते लगेंगे, फूल लगेंगे, फल लगेंगे, वे सब सत्य के होंगे। यह सिखाने की जरूरत नहीं है कि मनुष्य सत्य बोले। ध्यान सिखाने की जरूरत है, सत्य सिखाने की जरूरत नहीं है। सत्य तो हम सबके भीतर पड़ा है। वह हमारा स्वभाव है।

महावीर का सूत्र ज्यादा कीमती हैः वत्थू सहावो धम्म। वस्तु का स्वभाव धर्म है। हमारा स्वभाव हमारा धर्म है। हम अपने स्वभाव को पहचान लेंऔर हमने सत्य जान लिया। फिर उसके बाद हम जो भी करें वह सभी सत्य होगा। लेकिन अगर तुमने सत्य बोलने की चेष्टा की तो तुम बड़ी झंझट में पड़ोगे।
क्या है सत्य फिर? बाइबिल सत्यहै? कुरान सत्य है? गीता सत्य है? धम्मपद सत्य है? ताओ-तेह-किंग सत्य है? क्या सत्य है? और इन सबकी बातों में बड़ा विरोध है। खुद बाइबिल में दो हिस्से हैं--पुरानी बाइबिल और नई बाइबिल। पुरानी बाइबिल यहूदियों की किताब है और नई बाइबिल ईसाइयों की किताब है। यहूदी तो सिर्फ पुरानी बाइबिल को मानते हैं; नई बाइबिल तो जीसस के वचन हैं, उसको तुमने इनकार कर दिया। जीसस को तो सूली पर लटका दिया। लेकिन ईसाई दोनों बाइबिल मानते हैं और ईसाइयों के पास काई उत्तर नहीं इस बात का। पुरानी बाइबिल में ईश्वर कहता हैः मैं बहुत ईर्ष्यालु ईश्वर हूं। जो मेरे साथ नहीं है वह मेरा दुश्मन है।" यह तो अडोल्फ हिटलरने यह लिखा ही है "मैनकैम्फ" में कि जो मेरे साथ नहीं वह मेरा दुश्मन है। या तो मेरे साथ, या मेरे दुश्मन। बस दो ही कोटियों में आदमी को बांटा है।
और स्पष्ट कहता है पुरानी बाइबिल का ईश्वर कि मैं ईर्ष्यालु हूं। ईश्वर--और ईर्ष्यालु! तो फिर ईश्वर को पा कर भी क्या करोगे? यही ईर्ष्या, यही लोभ, यही मोह, यही उपद्रव अगर वहां भी जारी रहना है तो यहां ही क्या बुराई है? फिर आदमी होने में क्या बुरा है?
और जीसस कहते हैं ईश्वर प्रेम है। ईसाई दोनोंकिताबों को पूजता है-- बिना इसकी फिक्र के कि जरा देखे इस विरोधाभास कोः ईर्ष्या और प्रेम! जहां प्रेम है वहां ईर्ष्या नहीं है और जहां ईर्ष्या है वहां प्रेम नहीं है। ईर्ष्या और प्रेम तो यूं हैं जैसे प्रकाश और अंधकार। इनका कोई तालमेल कहीं नहीं होता। फिर भी दोनों की पूजा जारी है।
अंधे हैं लोग। इन अंधे लोगों से कहो कि सत्य बोलो, क्या सत्य बोलेंगे? सत्य का पता ही नहीं है। हां, दोहरा सकते हैं तोतों की तरह, यंत्रों की तरह। और सत्य जब दोहराया जाता है तो मुर्दा हो जाता है। मुर्दा सत्य सड़ी हुई लाश होती है। उससे दुर्गंध उठती है। उससे जीवन मुक्त नहीं होता, बंधन में पड़ता है।
मैं नहीं कहता कि सत्य बोलो। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं कहता हूं कि सत्य मत बोलो। मेरी बात को समझने की कोशिश करना। मैं कहता हूंः सत्य हो जाओ। अप्प दीपो भव! दीये बनो। फिर उस रोशनी में तुम जो बोलोगे वह सत्य ही होगा। वह असत्य नहीं हो सकता। फिर तुम्हें बोलना न पड़ेगा। अभी बोलना पड़ेगा। और जब बोलना पड़ता है उसका अर्थ है... जहां श्रम है चेष्टा है, उसका अर्थ--तुम दो हिस्सों में बंट गए। तुम्हारे भीतर तो कुछ था और बाहर तुमने कुछ दिखाया। भीतर तो झूठों की कतार लगी थी और बाहर सत्य बोलने की चेष्टा की। भीतर तो गोलियां चल रही थीं और बाहर गीत गाया।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने मित्र चंदूलाल को एक रात निमंत्रित किया। दोनों ने डट कर पी। मुल्ला की पत्नी गई थी मायके, सो कोई अड़चन थी नहीं। सो दिल खोल कर पी। और जब दोनों विदा होने लगे, तो द्वार पर जो बात हुई, वह जरा समझने जैसी है। आमतौर से मेहमान से हम कहते हैं कि आपकी बड़ी कृपा, बड़ी अनुकंपा, कि आप पधारे! हम धन्य हुए! गरीबखाने पर आप आए, गरीब की कुटिया को पवित्र कर दिया। और मेहमान कहता है कि नहीं-नहीं ऐसी बात न करें। आपकी बड़ी कृपा कि आपने निमंत्रण दिया, मुझे इस योग्य माना कि अपना अतिथि बनाया! इतना सत्कार किया, इतनी सेवा की! मगर वह जो बात वहां हुई, बिल्कुल सच्ची हो गई, क्योंकि दोनों पीए थे। मुल्ला ने कहाः मैं भी धन्य हूं। मेरी भी कृपा देखो कि मैंने तुम्हें निमंत्रण दिया।
और चंदूलाल ने कहाः अरे नहीं-नहीं, मैं धन्य हूं! मेरी कृपा, देखो कि मैंने तुम्हारे जैसे का भी निमंत्रण स्वीकार किया!
यही पड़ा होता है भीतर तो। बाहर हम कहते हैं--बड़ी कृपा, आप पधारे! और भीतर यह होता है--यह दुष्ट कहां से आ गया! रास्ते पर मिल जातेहो तो भीतर कहते होः हे भगवान, कहां से इस दुष्ट की शक्ल सुबह-सुबह दिखाई पड़ गई, दिन भर न बिगड़ जाए! ऐसे उससे यह कहते हो कि बड़ा सौभाग्य, बड़े दिनों में दर्शन हुए!

अहोभाग्य, सुबह-सुबह दर्शन हो गए! मगर भीतर कुछ और चल रहा है, बाहर कुछ और चल रहा है।
इस तरह के वचनों ने ही, इस तरह के नैतिक वचनों ने ही तुम्हें खंड-खंड
कर दिया है। तुम्हें खंड-खंड करके ही तो पाखंडी बना दिया है। पाखंड का मतलब यह होता है कि जो व्यक्ति खंड-खंड है वह पाखंडी है। पाखंड यानी खंड-खंड हो जाना। अखंड होने में पाखंड नहीं होता। अखंड का मतलब होता है--जैसा भीतर है वैसा बाहर है।
मुझसे लोग नाराज इसलिए हैं कि मैं पाखंड में जरा भी भरोसा नहीं करता।
जो मेरे भीतर है वही मैं कहता हूं। जैसा है वैसा ही कहता हूं--बुरा लगे बुरा लगे, भला लगे भला लगे। जो मेरे लिए सत्य है वही कहता हूं, जो परिणाम हो। परिणाम की चिंता करके जो बोलता है वह तो सत्य बोल ही नहीं सकता। वह तो परिणाम के हिसाब से बोलेगा। वह तो दुकानदार है। वह तो यह देखता है कि लाभ किससे होगा, क्या कहूंजिससे लाभ हो? वह अगर सत्य भी बोलेगा तो तभी बोलेगा जब लाभ होता हो। उसने तो सत्य को भी लाभ का ही साधन बना दिया है। और सत्य किसी चीज का साधन नहीं है, परम साध्य है। सब कुछ सत्य पर समर्पित है, लेकिन सत्य किसी के लिए समर्पित नहीं है। सत्य से ऊपर कोई धर्म नहीं। सत्य से ऊपर कोई परमात्मा नहीं। सत्य ही परम धर्म है और सत्य ही भगवत्ता है। मगर यह अनुभव से हो।
मैं नहीं कहूंगा कि सत्य बोलो। मैं कहूंगाः सत्य हो जाओ। बोलना तो बड़ा आसान है, होने का सवाल है।
लेकिन मनु कहेंगेः प्रेम बोलो। मैं कहूंगाः प्रेमपूर्ण हो जाओ। वे तुम्हें पाखंड सिखा रहे हैं। वे कह रहे हैंः जरा जबान का अभ्यास कर लो-- मृदु, सुंदर प्रीतिकर सत्य हो, बोलो। इसलिए कहते हैंः सत्य बोलो, प्रिय बोलो।
लेकिन प्रेम भीतर न हो तो प्रिय कैसे बोलोगे? कहां से लाओगे प्रियता?
वह माधुर्य कहां से लाओगे? भीतर प्रेम लहरा रहा हो तो उसमें जब डुबकी लगा कर शब्द आते हैं तो मीठे हो जाते हैं, नहाए होते हैं, स्वच्छ होते हैं, ताजे होते हैं, जीवंत होते हैं। मगर भीतर मृदुता नहीं है। भीतर तो कटुता भरी है। जहर हो भीतर। भीतर जहर रहे आओ और ऊपर मीठा बोलना, तो तुम दो हो गए-- बोलने में कुछ होने में कुछ। और ध्यान रखना, करोगे तो तुम वहीजो तुम हो। बोलो तुम लाख कुछ और, होगा तो वही जो तुम हो। और जरा-सी खरोंच में निकल आएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन बीमार था, बहुत बीमार था। सर्द रात, बफली रात, पानी जमा जा रहा है--ऐसी सर्दी। आधी रात को डॉक्टर की भी छाती दहले बाहर निकलने में। लेकिन मजबूरी है, बीमार मरणासन्न है। पत्नी ने कहा, आना ही होगा। इसी वक्त आना होगा। शायद यह आखिरी ही क्षण हों, आ जाओ तो शायद बच जाएं।" झिझकता हुआ डाक्टर, गालियां देता हुआ, कि मर ही क्यों न गया यह आदमी शाम को और रात तक किसलिए जिंदा है, और हमको भी मारने के पीछे लगा है... मगर मजबूरी डाक्टर की, गालियां कितनी ही दो। गया। पत्नी को कहा कि तुम नाहक परेशान हो रही हो, बचने की कोई उम्मीद नहीं है। मैं दोपहर को ही तो देख कर गया था, बचने की कोई उम्मीद नहीं है। सुबह हो जाए तो बहुत। अब काहे को रात गई मुझे बुलाया? कुछ किया नहीं जा सकता।
भीतर तो क्रोध से आगबबूला हो रहा था। लेकिन पत्नी ने कहा कि आखिरी घड़ी है। सोचा एक बार और आप देख लो, शायद कुछ उपाय हो सके तो और कर लो। कहने को न रह जाए। यह मन में बात न रह जाए कि आखिरी क्षण में चिकित्सक को नहीं बुलाया। मगर एक बात की प्रार्थना है कि यह जो आप कह रहे हो कि अब बचने की उम्मीद नहीं है, मुल्ला के सामने न कहना। उनको दुख न लगे। विदा कम से कम हो ही रहे हैं तो मौन से और शांति से विदा हो जाएं।
डाक्टर ने कहाः ठीक। भीतर गया, नब्ज देखी, तापमान लिया और मुस्करा कर कहा कि अरे नसरुद्दीन, दोपहर को देख कर गया था तो मुझे लगता था पता नहीं बचोगे कि नहीं, मगर अब हालत बिल्कुल ठीक है। दिन दो दिन में उठ आओगे, चलने फिरने लगोगे। चमत्कार हो गया मालूम होता है। सब ठीक है, बिल्कुल स्वास्थ

जैसा होना चाहिए वैसा हो गया। दवा असर कर गई मालूम होता है। और भाग्यशाली हो, अभी तुम्हारी किस्मत में जाना नहीं लिखा है। अभी जीओगे दस पचास वर्ष। और तभी मुल्ला की पत्नी दरवाजा खोल कर भीतर आई। दरवाजा खोला तो हवा का सर्द झोंका भीतर आया। और मुल्ला की पत्नी दरवाजा खुला ही छोड़ कर पास आकर खड़ी हो गई। डाक्टर एकदम चिल्लाया कि बाई, कम से कम दरवाजा तो बंद कर दे। क्या नसरुद्दीन के साथ हमको भी मारना है? वह खरोंच जरा ही सी, हवा का झोंका और बात निकल आई जो दबी पड़ी थी। ऊपर से तो कह रहा था कि अब तुम काफी जीओगे। लेकिन हमारी भी अरथी उठवाना है क्या सुबह ही? इनकी तो उठी है, इनकी तो खाट खड़ी है, हमारी भी खड़ी करवा देना है क्या? बंद कर दरवाजा!
कैसे छिपाओगे? कब तक छिपाओगे? यहां-वहां से बह कर बात निकल आएगी। बच नहीं सकती। प्रिय बोले--मनु कहते हैं--अप्रिय सत्य को न बोले। यह बात तो और भी गलत है, बुनियादी रूप से गलत है। सत्य तो जब भी बोला जाएगा, अप्रियय होगा। क्योंकि तुम झूठ में जी रहे हो, झूठ ही तुम्हारी सांत्वना है। अगर अप्रिय सत्य न बोलना हो तो न जीसस बोल सकते हैं, न बुद्ध बोल सकते हैं। फिर तो मनु ही बोल सकते हैं--मनु, जिनको कि सत्य का कोई पता नहीं है। फिर न तो लाओत्सु बोल सकते हैं, न जरथुस्त्र बोल सकते हैं। फिर तो इस जगत में जिन लोगों ने सत्य बोला है, वे कोई नहीं बोल सकते, क्योंकि जब भी कोई सत्य बोलेगा वह अप्रिय होने वाला है। अप्रिय इसलिए नहीं कि सत्य अप्रिय होता है; अप्रिय इसलिए कि तुम झूठ में रगे-पगे हो और जब सत्य बोला जाता है, तुम्हारे झूठों पर चोट पड़ती है। और तुमने झूठों को सत्य मान रखा है। तो जब कोई सत्य बोलेगा, तुम्हारे झूठ गिरेंगे। तुम्हें यूं लगेगा कि जैसे किसी ने तलवार उठा ली और तुम्हारे झूठों को जड़ोंसे काट डाला। जैसे कोई कुल्हाड़ी लेकर तुम्हारे ऊपर टूट पड़ा है। सत्य तो जब भी होगा, अप्रिय ही होगा।
बुद्ध का वचन है कि झूठ पहले मीठा, बाद में कड़वा होता है; सत्य पहले कड़वा बाद में मीठा होता है। और बुद्ध ज्यादा ठीक बात कह रहे हैं। सत्य तो पहले कड़वा लगेगा ही, जहर जैसा लगेगा। क्योंकि तुम्हारी सारी सांत्वनाएं छीन लेता है, तुम्हारी नींद उखड़ जाती है, तुम्हारी बेहोशी टूट जाती है। तुम्हें कोई जगा दे नींद में से तो कोई प्रिय थो.ेडे ही लगता है। भला तुमने ही कहा हो कि सुबह-सुबह उठा देना... ।
जर्मनी का प्रसिद्ध विचारक हुआ, इमेनुअल कांट। वह घड़ी के कांटे से चलता था। कहते हैं जब वह विश्वविद्यालय पढ़ाने जाता था, लोग अपनी घ.डियां ठीक कर लेते थे। क्योंकि नियम से, मिनट, सेकेंड, ऐसा घड़ी का पाबंद था कि मशीन की तरह चलता था। एक दफा जा रहा था विश्वविद्यालय, कीचड़ थी आर एक जूता कीचड़ में फंस गया, तो उसने लौट कर जूता नहीं उठाया, क्योंकि उतने में तोदेर लग जाएगी। कुछ सेकेंड तो देर हो ही जाती, जूता निकलता कीचड़ से, साफ करता, पहनता, पैर में डालता। इतनी देर से वह नहीं पहुंचेगा। वह एक जूता वहीं छोड़ गया। एक ही जूता पहने वह विश्वविद्यालय पहुंचा। जब उसके विद्यार्थियों ने पूछा कि आपके एक जूते का क्या हुआ? उसने कहा कि वह लौटते में कीचड़ में से निकालूंगा। अभी निकालता तो पांच दस सेकेंड लेट हो सकता था।
उसको देख कर लोग घड़ियां सुधार लेते थे। उसने एक गांव छोड़ा नहीं, जिस गांव में रहा पूरी जिंदगी रहा। इसलिए नहीं छोड़ा कि दूसरे गांव में जाए तो कहीं जीवन के क्रम में कोई व्याघात न पड़ जा। अरे ट्रेन लेट हो जाए, भोजन समय पर न मिले, नींद वक्त पर न ले पाए... । ठीक सो जाता था नौ बजे। अगर नौ बजे उसके मेहमान भी बैठे हों तो उनसे भी यह नहीं कहता था कि अब मेरा सोने का वक्त हो गया, क्योंकि इतना भी समय खोना क्यों। जैसे ही घड़ी में नौ बजे वह छलांग लगा कर अपने बिस्तर में हो कर कंबल ओढ़ लेता था। वह बैठा आदमी एकदम चौंका ही रह जाए कि क्या हुआ। नौकर आकर उससे कहता था कि भैया अब घर जाओ, वे तो सो गए। नौ बज गए। नौ बजजाएं तो वे एक शब्द नहीं बोलते, क्योंकि उतनी देर... । ऐसा बिल्कुल पाबंद था। सुबह तीन बजे उठना नियम था। हिंदुस्तान में ब्रह्ममुहूर्त ठीक है, गरम देश है। और तुम सोना भी चाहो तो मच्छर कहां सोने देंगे! और सुबह-सुबह मच्छर और भनभनाते हैं।

सच तो यह है अभी अभी वैज्ञानिकों ने खोज की है कि सुबह आधा घंटा सूर्योदय के पहले और सांझ सूर्यास्त के बाद आधा घंटा, बस ये दो ही समय में मच्छर योग्य होते हैं लोगों में बीमारी फैलाने में, और बाकी समय उनकी योग्यता नहीं होती। ब्रह्ममुहूर्त में सावधान रहना मच्छरों से। वही वक्त है जब मच्छर बीमारी डाल सकता है--सिर्फ आधा घंटा सुबह और आधा घंटा शाम। अगर ये दो वक्त तुम बचा लो मच्छर तुम्हें कोई बीमारी नहीं दे सकता। उसी समय उसकी संभावना है।
तो यहां तो मच्छर वैसे ही किसी को है। ब्रह्ममुहूर्त में सोने नहीं देते। और गरम देश है। मगर ठंडे देश में तीन बजे रात उठना कठिन काम है। उसने कभी विवाह नहीं किया--इसीलिए कि स्त्री आए, कौन झंझट करे! माने न माने, सुने न सुने। वक्त पर काम हो या न हो। नौकर ठीक। नौकर है तो मान कर चलेगा। नौकर का काम यह थाकि वह तीन बजे उठ आए। और एक ही नौकर टिका, क्योंकि कोई भी नौकर दो-चार दिन में कह दे बस माफ करिए, अब में जाता हूं, मुझे नहीं करना यह काम। क्योंकि काम क्या था, चौबीस घंटे घड़ी की सुई की तरह चलना। और सबसे कठिन काम था सुबह तीन बजे। कांट को उठाना बहुत मुश्किल था, हालांकि वह कहता था कि तीन बजे उठाओ, मगर उठना नहीं चाहता था। छीन-छीन कर अपना कंबल अंदर घुस जाता था। शाम को कहता था कि चाहे कुछ भी हो जाए, उठाना। और सुबह गालियां बकता था, कि नौकर तू है कि मैं हूं? छोड़ कंबल, निकल बाहर! और फिर अपने बिस्तर में घुस जाए। और दूसरे दिन सुबह डांटे कि जब मैंने कहा था कि उठाना... । एक ही पहलवान छाप नौकर था वह रुका। वह उठा देता था। यहांतक नौबत आ जाती थी कि मार पीट हो जाती थी। कहा जाता है कि वह नौकर भी ऐसा था कि जमा देता था दो चार; अगर उसके साथ छीना-झपटी करे तो वह कहता था, "मालिक, आपने ही कहा। फिर अब बाद मेंमत कहना।" लगा देता था दो-चार उठा-पटक उनको। पटक देता उठा कर नीचे फर्श पर। मगर उठा कर रहता। बिस्तर उठा देता, निकाल बाहर कर देता कमरे के। वही नौकर टिका और उससे कांट बहुत खुश था। हालांकि सुबह बहुत गालियां बकता था, झूमा-झटकी होती थी, कपड़े फट जाते थे; मगर वह नौकर भी एक था! उसको क्या पड़ी थी! उसको मजा आने लगा था कि ठीक है, इनको उठा कर वह अपना सो जाता था जाकर, अब तुम करो अपना ब्रह्ममुहूर्त में जो करना है। वही एक नौकर टिका। एक दफा वह छोड़ कर चला गया तो उसको वापिस दुगनी तनख्वाहपर लाना पड़ा, क्योंकि उसके बिना कांटका जीना मुश्किल हो गया। कौन उठाए तीन बजे उसे!
जब कोई तुम्हें नींद से उठाएगा तो छीना-झपटी होने वाली है। सत्य तो अप्रिय होगा ही। और मनु कहते हैंः अप्रिय सत्य को न बोले। तब तो फिर सत्य को बोला ही नहीं जा सकता। और यह भी कहते हैं कि असत्य प्रिय को भी न बोले। तब तो बिल्कुल बोला नहीं जा सकता। बोलना ही खतम। अप्रिय सत्य को न बोले, यह एक शर्त लगा दी। और असत्य प्रिय को न बोले। और असत्य ही प्रिय होता है, क्योंकि असत्य तुम्हें सांत्वना देता है। तुम्हारी पत्नी मर जाती है, मौहल्ले पड़ोसके लोग आ कर समझाते हैं कि मत रोओ, अरे आत्मा तो अमर है! जैसे इनको पता है!
एक सज्जन की पत्नी मर गई तो मैं भी गया। वहां मैंने देखा मोहल्ले के लोग समझा रहे हैं कि आत्मा तो अमर है। एक सज्जन बहुतही समझा रहे थे। बड़े श्लोक वगैरह उद्धरण दे रहे थे कि आत्मा तो अमर है। अरे गीता में लिखा हुआ है--न हन्यते हन्यमाने शरीरे! नैनं छिन्दन्ति शास्त्राणि, नैनंदहति पावकः आग जलाती नहीं, शास्त्र छेदते नहीं। शरीर कट जाए, शरीर मिट जाए, मिट जाए, आत्मा नहीं मरती।
तो मैंने कहा कि इनको तो ज्ञान उपलब्ध हो गया मालूम होता है। संयोग की बात दो साल बाद उनकी पत्नी मरी, तो मैं उनके घर गया। वे रो रहे थे। मैंने कहाः अरे, तुम और रो रहे।... न हन्यते हन्यमाने शरीरे! भूल गए? दूसरे की पत्नी मरी तो क्या ज्ञान बघार रहे थे, अपनी मरी तो सब भूल गए! तो क्यों बकवास लगा रखी थी उस दिन?
वे मुझसे कहने लगेः भई, अभी विवाद न छेड़ो, अभी मैं मुसीबत में पड़ा हूं, तुम विवाद खड़ा कर रहे।

मैं विवाद खड़ा नहीं कर रहा, विवाद तुमने खड़ा करवाया। दूसरे की पत्नी मरी तो आत्मा अमर है। अपना जाता क्या! अपनी मरी तब पता चलना चाहिए। अभी सबूत दो। रोओ मत। आत्मा मरी ही नहीं। और शरीर तो मरा ही हुआ है। इसके लिए क्या रोना? अरे मिट्टी मिट्टी में मिल गई, बात खतम! यही बातें तुम समझा रहे थे, यही मैं तुम्हें दोहरा रहा हूं, सिर्फ याद दिला रहा हूं।
उन्होंने मुझे बड़े गुस्से से देखा। मैंने कहाः गुस्से से देखने का कोई सवाल नहीं है। अगर तुम्हें पता नहीं तो क्यों बकवास छेड़ रखी थी? क्यों उस बेचारे को बकवास सुना रहे थे अपनी?
और थोड़ी देर में, मैं वहां बैठा ही था कि वे सज्जन आए जिनकी पत्नी पहले
मर चुकी थी। वे भी समझाने लगे कि भैया क्यों रो रहे हो? अरे देह तो आती- जाती है। आत्मा का न कोई जन्म, न मृत्यु।
मैंने कहाः मालूम होता है आपकी पत्नी जब से मरी, आपको ज्ञान उपलब्ध हो गया। तब तो आपकी हालत खराब थी, ये ज्ञानी थे। अब इनकी हालत खराब है, आप ज्ञानी हैं।
मगर कसौटी तब आएगी--मैंने कहा--आपके पिता जी बहुत बीमार हैं, जल्दी ही मरेंगे, तब मैं आऊंगा। तब देखूंगा।
अरे--मैंने कहा--तुम अभी तो कह रहे थे, कोई मरता ही नहीं! अभी मरे भी नहीं, मैंने सिर्फ कहा ही है, उतने से ही तुम नाराज हो रहे हो! जब मरते ही नहीं तो मेरे कहने से क्या मर जाएंगे? क्या तुम सोचते हो मेरे कहने से मर जाएंगे? इनकी पत्नी मर गई तो भी नहीं मरी और तुम्हारे पिता मेरे कहने से मरे जा रहे हैं! अरे कोई मरता नहीं भैया! आत्मा अमर है!
दोनों मुझ पर नाराज।
यहां सांत्वना का खेल चल रहे हैं। यहां एक-दूसरे केघाव पर मलहम-पट्टी
की जाती है। यहां कोई सत्य बोलेगा तो अप्रिय होने वाला है, क्योंकि तुम प्रिय असत्यों में डूबे हुए हो। तुम्हारी जिंदगी प्रिय असत्यों के सिवायऔर है क्या? इन्हीं प्रिय असत्यों की ईंटों से तो तुमने चुनी है अपनी इमारत। और सत्य तो इस पूरी इमारत को गिरा देगा--ऐसे, जैसे कोई ताश के पत्तों से घर बनाए और हवा का झोंका गिरा जाए। सत्य आया, एक झोंका और तुम्हारे सारे ताश के महल नीचे गिर जाएंगे।
मैं मनु से राजी नहीं हूं। प्रिय होगा--असत्य होगा। सत्य होगा--अप्रिय होगा। फिर तुम्हें याद दिला दूं, लेकिन यह कोई सत्य का स्वभाव नहीं है अप्रिय होना, यह तुम्हारे कारण है। और असत्य का प्रिय होना भी तुम्हारे कारण है। तुम सत्य को खोजना नहीं चाहते। तुम सस्ता सत्य चाहते हो, वह झूठा ही होने वाला है। तुम ऐसा सत्य चाहते हो जो मिल जाए मुफ्त, कुछ करना न पड़े। न कोई ध्यान, न कोई प्रार्थना, न कोई योग--कुछ करना न पड़े, कोई दे दे मुफ्त। वह असत्य ही होने वाला है। हां, प्रिय हो सकता है, मगर होगा असत्य। और जब इस असत्य पर चोट करेगा कोई, तो कड़वा लगेगा, दुश्मन लगेगा।
जीसस को लोगों ने सूली क्यों दी? अगर जीसस प्रिय सत्य ही सकते थेतो जरूर बोले होते। लेकिन मजबूरी थी। महावीर को लोगों ने मारा, पीटा--क्यों? बुद्धपर लोगों ने पागल हाथी छोड़े, पत्थर सरकाए, चट्टानें गिराईं--क्यों? किस कारण? अगर ये सारे लोग प्रिय सत्य बोल सकते थे तो क्यों नहीं बोले? इन्हें कुछ अप्रिय सत्य बोलने की सनक सवार थी?
सुकरात को क्यों जहर देकर मारा गया? सत्य बोल रहा था बेचारा, और तो कुछ
कर नहीं रहा था। सिर्फ सत्य बोल रहा था। लेकिन नग्न सत्य हमेशा, नींद में जो पड़े हैं, असत्यों को ओढ़े जो बैठे हैं, उनको बहुत तिलमिला जाता है। सुकरात का एक ही कसूर था कि वह लोगों को याद दिला रहा था कि तुम असत्य में जी रहे हो। और यह याद कोई बर्दाश्त करना नहीं चाहता। उसने तो कुछ किसी को कहा नहीं, चोट नहीं पहुंचाई, कुछ नहीं किया। लेकिन उस पर अदालत में मुकदमा चला। अदालत में जो प्रधान न्यायाधीश था, उसको भी थोड़ी तो ग्लानि हो रही थी, अपराध अनुभव हो रहा था। क्योंकि सुकरात जैसा अदभुत व्यक्ति इसको सजा देनी पड़ रही है! लेकिन जूरी में से अधिक लोग सजा के पक्ष में थे, मृत्यु दण्ड के पक्ष में थे। लेकिन न्यायाधीश ने फिर भी एक अवसर खोजा। उसने कहा कि तुमसे मैं यहप्रार्थना करता हूं सुकरात, तुम अगर एथेंस छोड़ कर चले जाओ तो हम

तुम्हें कोई दंड न देंगे। एथेंस के लोग भी राजी हो जाएंगें कि तुमने एथेंस छोड़ दिया और फिर तुम्हें जो करना हो करो।
सुकरात ने कहाः मैं जहां जाऊंगा वहीं मुकदमा चलेगा। इससे क्या फर्क पड़ता है? एथेन्स छोडूंगा तो जहां जाऊंगा वहीं झंझट होने वाली है। इसलिए झंझट से यहीं निपट लेना ठीक है। सत्य तो जहां जाऊंगा वहीं चोट करेगा। और जब एथेन्स जैसे सुसंकृत नगर में चोट कर रहा है, तो अब कहां जाऊंगा जहां चोट नहीं करेगा?"
एथेन्स उस समय दुनिया की सबसे सुसंकृत नगरी थी। सच तो यह है कि उस तरह
की सुसंकृत नगरी दुनिया में न कभी थी, न फिर कभी हुई।
सुकरात ने कहाः एथेंस छोड़ कर कहां जाऊं? कहीं नहीं जाऊंगा। यही रहूंगा। जीऊंगा तो यहीं रहूंगा। मौत की सजा देनी हो तो सजा दे दो।" न्यायाधीश ने फिर उसे एक मौका दिया और कहा कि तो फिर तुम यह करो। रहो तुम एथेन्स में, हम तुम्हें बुढ़ापे में एथेंस से निकालना भी नहीं चाहते। मगर सत्य बोलना बंद कर दो।
सुकरात ने कहाः यह तो और भी असंभव है। यह तो मेरा धंधा है। धंधा शब्द
का उपयोग किया--यह मेरा धंधा है। सत्य बोलना मेरा धंधा है। इसके बिना तो मैं रह नहीं सकता। यह मेरा श्वास है। जैसे मैं श्वास के बिना जी नहीं सकता, सत्य बोले बिना नहीं जी सकता। मैं तो बोलूंगा तो सत्य। चलूंगा तो सत्य। उठूंगा तो सत्य। जीवन रहे कि जाए, उसका कोई मूल्य नहीं। तुम बेहतर हो, मृत्यु-दंड दे दो। कम सेकम कहने को बात रह जाएगी कि मैं मरा तो सत्य के लिए मरा और मैंने कोई समझौता न किया।
मनु कहते हैंः अप्रिय सत्य को न बोले।" तब तो सत्य बोला ही नहीं जा सकता। सुकरात जैसा कलाविद नहीं बोल सका, फिर कौन बोल सकेगा? बुद्ध जैसा व्यक्ति नहीं बोल सका, फिर कौन बोल सकेगा?
और कहते हैंः असत्य प्रिय को भी न बोले। और पूरी मनुस्मृति असत्य प्रियों से भरी हुई है। ब्राह्मणों की खुशामद और ब्राह्मणों को सबकी छाती पर बिठा देने की चेष्टा, शड्यंत्र। सब असत्य। यह झूठी बात है कि ब्राह्मण परमात्मा के मुंह से पैदा हुए और शूद्र परमात्मा के पैरों से पैदा हुए और क्षत्रिय बाहुओं से पैदा हुए और वैश्य जंघाओं से पैदा हुए। बकवास है। कहीं मुंह से कोई पैदा होता है, कि पैरों से काई पैदा होता है? यह परमात्मा क्या हुआ, यह तो पूरे शरीर पर योनियां ही योनियां हो गईं! यह तो परमात्मा क्या हुए, गर्भ ही गर्भ हो गए! मुंह भी गर्भ, बाहें भी गर्भ, जंधाएं भी गर्भ, पैर भी गर्भ। यह तो सारी स्त्रियों को मात कर दिए। यह तो शुद्ध स्त्री हो गए। और चार-चार स्त्रियों का काम अकेले कर रहे हैं। और पुरुष कहां है? चलो यह भी मान लो किपरमात्मा के मुंह से पैदा हुआ ब्राह्मण और पैर से पैदा हुए शूद्र मगर वह पुरुष कहां है, जिसने यह गर्भाधारण करवा लिया? वह पुरुष कौन है? और क्या गजब के गर्भाधारण हुए--किसी को मुंह मेंहुआ, किसी का पैर में हुआ, किसी का जंघाओं में हुआ! जहां होता है गर्भाधारण, पेट में, वहां तो किसी का न हुआ। तुम गजब देखते हो! झूठों के भी कोई अंत होते हैं। कपोल-कल्पनाओं के भी कोई अंत होते हैं! और शर्म भी नहीं है मनु को यह कहने में कि असत्यप्रिय भी को न बोले। यह ब्राह्मणों की खुशामद है। ब्राह्मणों को प्रसन्न करने की चेष्टा है। खुद भी ब्राह्मण हैं, इसलिए खुद के अहंकार को भी मजा आ रहा है, कि हम श्रेष्ठतम हैं, मुंह से पैदा हुए। लेकिन परमात्मा का मुंह हो कि परमात्मा का पैर, दोनोंदिव्य हैं। कोई पैर अलग थोड़े ही हैं, सब संयुक्त है। रक्त जो तुम्हारे सिर में घूम रहा है, थोड़ी देर में पैर में घूमता है, थोड़ी देर में फिर सिर में आ जाता है। रक्त का वर्तुल घूम रहा है। तुम बिल्कुल संयुक्त हो। हर चीज जुड़ी है। नस नस से गुथी है। कुछ ऐसे भेद हैं क्या? ? कहांजांघें खत्म होती हैं, कहां पैर शुरू होते हैं, कहां मुंह खत्म होता है और कहां हाथ शुरू होते हैं, कहीं कोई सीमा नहीं है? कोई सीमा रेखा है? मनुष्य का व्यक्तित्व, पूरा शरीर एक है। जब मनुष्य का व्यक्तित्वएक है, परमात्मा का तो और भी एक होगा।
और परमात्मा कोई व्यक्ति थोड़े ही हैकि उसका मुंह है, हाथ हैं, पैर हैं। परमात्मा तो इस समस्त अस्तित्व का, इस समष्टि का नाम है। इसमें कहां

मुंह, कहां हाथ, कहां पैर, लेकिन शूद्रोंको अपमानित करना था। शूद्रों को पददलित करना था। शूद्रों का शोषण करना था। उनके शोषण का उपाय खोजना था। शोषण की सबसे पुरानी परंपरा भारत की है। इसी शोषण का परिणाम हुआ। क्योंकि शूद्रों की संख्या बड़ी, वैश्यों की भी संख्या बड़ी। ये दानों ही निम्न हैं, क्योंकि दोनों ही नाभि के नीचे से पैदा हुए हैं। मनु के हिसाब के नाभि के ऊपर से जो पैदा हो, वह उच्च वर्ण और नाभि के नीचे जो पैदा हो वह निम्न वर्ण। क्षत्रियों को थोड़ा खुश करना जरूरी था, क्योंकि क्षत्रियों के हाथ में तलवार थी। क्षत्रिय यानी राजनीति। ब्राह्मण यानी धर्म पुरोहित पंडित। इन दोनों की सांठ-गांठ है। क्षत्रिय को तो प्रसन्न रखना पड़ेगा, नहीं तो तलवार खींच ले। वह गर्दन उतार दे। आखिर उसी ने तलवार खींची भी।
यह जो जैन धर्म और बौद्ध धर्म की बगावत हुई, यह क्षत्रियों की बगावत थी। ब्राह्मणों के खिलाफ। इसलिए जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं, बुद्ध भी क्षत्रिय हैं। यह क्षत्रियों की बगावत है। यह क्षत्रियों के बर्दाश्त से बाहर हो गया--यह ब्राह्मणों का छाती पर बैठे रहना। ये जो दो धर्म पैदा हुए भारत में, ये क्षत्रियों से पैदा हुए। वैश्यों और शूद्रों और क्षत्रियों, इन तीनों को ब्राह्मण ने नीचा रखने की कोशिश की; क्षत्रिय को अपने से नंबर दो, क्योंकि उसके हाथ में तलवार थी। उसको थोड़ा प्रसन्न करना जरूरी था। उसको शूद्र के और वैश्य के ऊपर रख दिया।
यह एक बड़ी साजिश मनुस्मृति की है। यह सरासर झूठ है। यहां कोई न ऊंचा है, न कोई नीचा है।
सब शूद्र की तरह पैदा होते हैं और सब ब्रह्म का साक्षात्कार करने की क्षमता लेकर पैदा होते हैं। मेरे हिसाब में सब शूद्र की तरह पैदा होते हैं और सब ब्राह्मण हो सकते हैं। यह सबका जन्मसिद्ध अधिकार है। जन्म से न कोई ब्राह्मण होता न कोई वैश्य होता, न कोई क्षत्रिय होता। जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं, क्योंकि जन्म से सभी बीज होते हैं--सिर्फ संभावनाएं मात्र। फिर तुम्हारे हाथमें है कि तुम क्या बन जाओगे। अगर धन इकट्ठा करोगे तो वैश्य बन जाओगे। अगर धन के लिए लोलुप रहे तो वैश्य बन जाओगे। अगर पद के लोलुप रहे--और ये दो ही तो उपद्रव हैं--तो राजनीति में पड़ जाओगे, तो क्षत्रिय बन जाओगे।
चीन का एक सम्राट अपने महल की छत पर खड़ा था और सागर में चलते हुए सैकड़ों जहाजों को देख रहा था। उसका बूढ़ा वजीर भी उसके पास था। सम्राट ने कहा कि देखते हैं, आज आकाश खुला है, सागर भी शांत है, तूफान नहीं आंधी नहीं कितने सैकड़ों जहाज चल रहे हैं, कितना सुंदर दृश्य!

उस वजीर ने कहाः महाराज गलती हो तो क्षमा करें। जहाज सिर्फ दो हैं, ज्यादा नहीं।
सम्राट ने पूछाः दो! क्या कहते हो तुम? अनेक स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं
और तुम कहते हो दो!
उसने कहाः मैं फिर कहता हूं दो हैं। या तो धन के जहाज चल रहे हैं या पद
के जहाज चल रहे हैं। बस जहाज तो दो ही हैं, दिखाई कितने ही पड़ते हों।। बस दो ही दौड़ें हैं आदमी की, दो ही गतियां हैं--धन की या पद की।
तो जिनकी धन की दौड़ थी वे वैश्य हो जाते हैं; जिनकी पद की दौड़ है, वे क्षत्रिय हो जाते हैं। और जो सब दौड़ छोड़ देते हैं, जो अपने स्वरूप में समा रहते हैं,, जो अपने भीतर अंतगर्भ में प्रवेश कर जाते हैं, वेबह्म को उपलब्ध हो जाते हैं, वे ब्राह्मण हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति शूद्र की तरह पैदा होता है। फिर ये तीन संभावनाएं हैं--या तो वैश्य हो जाए, धन के पीछे दीवाना या क्षत्रिय हो जाए, पद के पीछे दीवाना और या फिर ब्राह्मण हो जाए, स्वयं की भगवत्ता को जान कर।
जन्म से कोई भेद नहीं होता। कर्म से भेद होता है। अनुभव से भेद होता है। कृत्य से भेद पड़ता है।
असत्य तो बहुत बोले हैं मनु। जितनी मनुस्मृति असत्य से भरी है, उतना कोई शास्त्र नहीं। मगर वे सब असत्य प्रिय हैं, क्योंकि जो पद पर थे उनकी

खुशामद है। इसका ही स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि भारत में जब भी काई बाहर से हमला हुआ तो आम जनता ने उस हमले का कोई विरोध नहीं किया। क्या जरूरत थी विरोध करने की? उसको तो चूसाही जाना था--अपने चूसें की पराए चूसें, भेद ही क्या पड़ता था! किसको ढोना है, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता था। हूण आएं, मुगल आएं, तुर्क आएं, अंग्रेज आएं, पुर्तगाली आएं, कोई भी आए, क्या फर्क पड़ता था आम जनता को? शूद्र को क्या भेद पड़ता था?
यह मनु की वजह से यह भारत दो हजार साल गुलाम रहा है, क्योंकि तुमने जब शूद्र को पददलित कर दिया, उसको तो पैरों के नीचे दबना ही है, फिर किसके बूटों के नीचे दबता है, क्या फर्क पड़ता है? उसे तो बूटों के नीचे ही दबना है। और सच तो यह है कि सफेद चमड़ी के बूटोंके नीचे वह कम दबा... । क्योंकि मुसलमानों में कोई वर्ण नहीं होते। जब मुसलमानों की सत्ता आई तो शूद्र में थोड़ा बल आया, वैश्य में थोड़ा बल आया। क्योंकि ब्राह्मणों की पुरानी ताकत कम हो गई। ब्राह्मणों का बोझ छाती पर से थोड़ा कम हो गया। ब्राह्मणों का बल कम हो गया। इसलिए आम जनता ने कोई विरोध नहीं किया गुलामी का, क्योंकि आम जनता को तो गुलामी ऐसे लगी कि बोझ कम हो रहा है। और जब अंग्रेज भारत में आए तो आम जनता को तो बहुत सुखद प्रतीत हुआ, क्योंकि सदियों की गुलामी से यह गुलामी बेहतर मालूम पड़ी।
कल विद्याधर वाचस्पति ने जो पूछा था कि अंग्रेजों ने हमें चूसा, हमारा खून चूसा, और इन्हीं फिरंगियों ने हमारा सदियों तक शोषण किया--और आप फिर भी पाश्चात्य सभ्यता की प्रशंसा में बोल देते हैं।
मैं उनसे यह पूछना चाहता हूं कि भारत में दोनों ही राज्य थे--ब्रिटिश राज्य था और देशी राज्य भी थे। अगर अंग्रेजों के चूसने के कारण तुम बर्बाद हुए तो देशी राज्यों में तो बर्बादी नहीं होनी चाहिए थी। मगर देशी राज्य की जनता और प्रजा ज्यादा बदतर हालत में थी, बजाए ब्रिटिश राज के। यह थोड़ा सोचने जैसा है। शोषण कहां ज्यादा चल रहा था? नेपाल तो स्वतंत्र था, उस पर तो कोई ब्रिटिश हुकूमत नहीं थी। लेकिन नेपाल ने कौन सी गरिमा पा ली स्वतंत्रता में, कौन सा गौरव पा लिया? वही गरीबी। तुमसे भी ज्यादा गरीब। देशी रियासतें--निजाम और ग्वालियर, और कितने रजवाड़े थे--इनकी हालत बदतर थी।
अंग्रेज ने चूसा हो भला, लेकिन चूसने के साथ-साथ उसने तुम्हें विज्ञान भी दिया, टेक्नालॉजी भी दी, उद्योग भी दिया। उसने चूसा हो भला, लेकिन तुम्हारे हित के लिए भी बहुत कुछ किया। उस हित को तुम भुला मत देना। तुम्हें शिक्षा भी दी। तुम्हें लोकतंत्र और स्वतंत्रता और समाजवाद का पाठ भी पढ़ाया।
तुम्हारे सारे नेता पश्चिम से ही स्वतंत्रता का स्वाद लेकर आए। भारत
को तो स्वतंत्रता का कोई स्वाद ही नहीं था। भारत में तो सिर्फ ब्राह्मण स्वतंत्र था, बाकी सब गुलाम थे। थोड़ी स्वतंत्रता क्षत्रिय की भी थी। लेकिन वह भी तभी तक थी जब तक वह ब्राह्मण के पैर छुए। कितना ही बड़ा सम्राट हो, छूना तो ब्राह्मण के पैर ही पड़ेंगे उसे। असली राज्य तो ब्राह्मण का था। पुरोहितों ने इतना बड़ा राज्य कभी नहीं किया जितना इस देश में चला। और सबकी जड़ में मनु महाराज हैं।
इसलिए मैं कहता हूं कि मनु से तो छुटकारा इस देश का चाहिए। मगर मनु इस देश के खून हड्डी मांस मज्जा में घुस गए हैं। अभी भी तुम शूद्रके साथ बैठ कर भोजन नहीं कर सकते। भीतर से ग्लानि उठने लगेगी, उबकाई आने लगेगी, कै हो जाए ऐसा लगने लगेगा। चाहे शूद्र कितना ही नहाया धोया हो। और गंदे से गंदे ब्राह्मण के पास बैठ कर तुम भोजन कर सकते हो। गंदे से गंदा ब्राह्मण तुम्हारा भोजन बना सकता है। नाक साफ करता रहे उसी हाथ से, तुम्हारी चपाती भी बनाता रहे उसी हाथ से, कोई फिक्र नहीं। ब्राह्मण महाराज है! इनकी तो नाक भी है तो सनातन धर्म समझो! इसका स्वाद तो बात ही और है। शूद्र तुम्हारे पास बैठ जाए तो बेचैनी मालूम होने लगती है। हालांकि तुम चाहे बुद्धि से यह समझते भी हो कि यह बात मूर्खतापूर्ण है, मगर बुद्धि का वश नहीं है। अचेतन में घुस गई बात, गहरे में उतर गई बात। सदियों सदियों का संस्कार हो गया है।

यह सूत्र ही पूरा गलत है। सत्य बनो, बोलना अपने से आएगा। बोलने पर मेरा जोर नहीं है। आचरण पर मेरा जोर नहीं है। प्रिय बनो। प्रेम से लबालब हो जाओ तुम्हारे जीवन में प्रेम ही धर्म हो--सनातन धर्म। तो तुम्हारे जीवन से जो भी निकलेगा वह प्रिय होगा। और सत्य बोलो, चाहे अप्रिय ही क्यों न हो। अप्रिय ही होगा। और असत्य कभी न बोलो। चाहे कितना ही प्रिय हो।
ये कहते तो हैं मनु लेकिन खुद पूरी मनुस्मृति में वे इसी तरह के असत्य बोले हैं जो प्रिय हैं। जब भी तुम इन सूत्रों को समझना चाहो तो इनकी पूरी पृष्ठभूमि को समझने की कोशिश करना। इनको संदर्भ से बाहर निकाल कर पढ़ोगे तो शायद तुम्हें साफ नहीं हो पाएगा। संदर्भ के बाहर न निकालो। इनके पूरे संदर्भ में पढ़ो। और इन सूत्रों की जांच ही करनी हो तो उनका पूरा शास्त्र उठा कर देखो, तब तुम्हें पता चलेगा कि वे खुद भी इन सूत्रों को मानते हैं या नहीं मानते। और अगर खुद हीन मानते हों तो दो कौड़ी के सूत्र हैं ये। खुद मानते हों, तो ही इनकीकोई मूल्यवत्ता है। तो ही इनमें कोई अर्थ है। तो ही इनमें कोई यथार्थ है।
दूसरा प्रश्नः भगवान,
पत्र-पत्रिकाओं में आपके चित्रों सहित आपके विचारों का व्यापक प्रचार-प्रसार देख कर लोगों की ऐसी धारणा बन गई है कि आप विज्ञापन एवं प्रसिद्धि पाने के लिए लालायित हैं, जो कि भारत की संत परंपरा के साथ सुसंगत नहीं है। हमारे साधु संत भीड़भाड़ तथा दिखावे से दूर एकांत में सादा जीवन बिताते थे।
भगवान, निवेदन है कि इस विषय में कुछ कहें।
सत्य वेदांत,
पहली तो बात यह कि मुझे भारत या किसी की परंपरा से कोई लेना देना नहीं। मैं किसी की परंपरा का हिस्सा नहीं हूं। इसे एक बार और आखिरीबार समझ लो कि मैं किसी की परंपरा का हिस्सा नहीं हूं। मैं किसी परंपरा की अपेक्षाएं पूरा करने के लिए कोई बंधा हुआ नहीं हूं। मैं तुम्हारे तथाकथित संतों में अपनी गिनती करवाना भी नहीं चाहता हूं। मुझे तो तुम्हारे तथाकथित संतों में मूढ़ों की जमात दिखाई पड़ती है।
इसलिए अच्छा ही है कि लोग समझ लें कि मैं तुम्हारा संत, तुम्हारा महात्मा, तुम्हारे ऋषि मुनि इनमें नहीं हूं। मेरी अपनी कोटि है। मैं किसी की कोटि में सम्मिलित नहीं हूं। मैं एक नई कोटि की शुरुआत हूं। मुझसे जो राजी होंगेवे मेरी कोटि में होंगे। मैं किसी पुरानी कोटि का हिस्सा नहीं हूं। मैं किसी शृंखला का अंग नहीं हूं। मैं किसी शृंखला की कड़ी नहीं हूं-- एक नई शृंखला की शुरुवात हूं। इसलिए मैं कुछ तुम्हारे साधु-संतों की क्या परंपरा थी, उसका अनुगमन करने को आबद्ध नहीं हूं।
और यह बात बिल्कुल झूठी है कि तुम्हारे साधु-संत प्रचार प्रसार नहीं करते थे। तो महावीर चालीस साल तक क्या करते रहे घूम-घूम कर? भाड़ झौंक रहे थे? पूरे बिहार को रौंद डाला! उनके ही कारण "बिहार" नाम पड़ा प्रदेश का-- बुद्धऔर महावीर के कारण। बिहार का मतलब होता है भ्रमण। चूंकिबुद्ध और महावीर पूरी जमीन रौंद डाली बिहार की, इसलिए उस प्रदेश का नाम ही बिहार हो गया--जहां बुद्धऔर महावीर विहार करते हैं, विचरण करते हैं। जहां तक उन्होंने विचरण किया वही सीमा बनी बिहार की। चालीस साल तक महावीर ने, बयालीस साल तक बुद्धने आखिर किया क्या? मैं तो अपने कमरे से बाहर जाता नहीं। ये क्या कर रहे थे, प्रचार प्रसार नहीं कर रहे थे तो क्या कर रहे थे? पागल थे?
और अगर तुम्हारे साधु संत प्रचार प्रसार नहीं करतेतो उन्होंने शास्त्र क्यों लिखे? क्या जरूरत थी शास्त्र लिखने की? वेद क्यों रचे? उपनिषद क्यों रचे? कृष्ण ने गीता क्यों कही? अर्जुन को समझाने की पूरी चेष्टाकी। अर्जुन भागा भागा हो रहा था, उसको खींच खींच कर लाए। हजार तर्क दिए। उन दिनों जो साधन थे, उन्होंने उनका उपयोग किया। आज जो साधन हैं, उनका मैं उपयोग कर रहा हूं। हां, यह जरूर सच है, कि वे लाउडस्पीकर पर नहीं बोलते थे, क्योंकि लाउडस्पीकर नहीं था। यह सच है कि वे जो बोलते थे वह टेप-रिकार्ड नहीं होता था। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि टेप रिकार्ड होता और

बुद्ध टेप-रिकार्ड न करवाते। आखिर उनके शिष्य लिख तो रहे थे, नोट ले रहे थे। वह पुराना ढंग था, ढर्रा पुराना था। उसमें भूल चूक की संभावना है। उसमें भूल-चूक हुई। बुद्ध के मरते ही बुद्ध के शिष्य छत्तीस संप्रदायों में बंट गए, क्योंकि अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग तरह के नोट लिए थे। किसी ने कुछ छोड़ दिया था, किसी ने कुछ जोड़ दिया था। अपने-अपने हिसाब से लोगों ने नोट लिए थे। जो जिसको पसंद था वह उसनेलिख लिया था, जो पसंद नहीं था वह अलग कर लिया था। मीठा-मीठा गप्प, कड़वा-कड़वा थू! छत्तीस संप्रदाय हो गए।
मैं वैज्ञानिक साधनों का उपयोग कर रहा हूं, जो ज्यादा तर्कयुक्त हैं
और जिनमें भूल-चूक की संभावनाकम है। और मुझे कुछ उसमें एतराज नहीं। निश्चित ही मैं अपनी बात का प्रसार करना चाहता हूं, प्रचार करना चाहता हूं--सारे बुद्धों ने सदा यही किया। और जिन्होंने नहीं किया वे बुद्धु रहे होंगे। उन बुद्धुओं में मैं अपनी गिनती करवाना भीनहीं चाहता। वे भगोड़े थे, जो बैठ गए जंगलों में जा कर। उन भगोड़ों से फायदा क्या हुआ तुम्हें? और उन भगोड़ों का उपयोग क्या है, उनका दान क्या है जगत को? दान तो इनका है-- बुद्ध का, महावीर का, जीसस का, मोहम्मद का, जरथुस्त्र का, लाओत्सु का--दान इनका है। मगर इनका दान कैसे संभव हो पाया? क्योंकि इन्होंने प्रचार-प्रसार किया।
मैं विज्ञापन विरोधी नहीं हूं, क्योंकि जब दुनिया में असत्य का विज्ञापन होता हो तो सत्य का विज्ञापन क्यों न हो? जोर शोर से होना चाहिए। असत्य से अगर लड़ना हो तो असत्य जिन जिन साधनों का उपयोग करता है वे सारे साधन सत्य को भी उपयोग करने पड़ेंगे। अगर असत्य रेडियो से प्रचारित होता है, टेलीविजन पर प्रसारित होता है, फिल्म बनती है असत्य की, तो सत्य की भी बननी चाहिए और सत्य भी रेडियो से बोला जाना चाहिए और टेलीविजन पर होना चाहिए। मैं तो सारी चेष्टा करूंगा। सत्य के लिए कुछ भी उठा नहीं छोड़ना है, कुछ भी अधूरा नहीं छोड़ना है।
लेकिन इस देश में यह मूढ़ता है कि हम ढर्रे से बांधे हुएहैं हर चीज को,
उस ढर्रे में किसी को बैठना चाहिए। उस ढर्रे में मैं कैसे बैठूंगा? महावीर नग्न थे। जैन मुझसे पूछ सकता है कि आप जब तक नग्न नहीं होंगे, तब तक हम आपको कैसे तीर्थंकर माने? तो क्या मैं इसलिए नग्न फिरूं कि महावीर नग्न थे? यह महावीर की मौज थी कि वे नग्न थे। वे अपने ढंग से जीए। यह उनका रुझान था। बुद्ध तो नग्न नहीं थे। बुद्ध तो कपड़े पहनते थे। महावीर के समसायिक थे, मगर बुद्ध ने कपड़े पहने। हालांकि जैनों को यही एतराज रहा बुद्ध पर कि अगर वे कपड़े छोड़ दें तो तीर्थंकर। मगर कपड़े पहने हुए हैं तो तीर्थंकर नहीं, थोड़े नीचे--महात्मा, अभी तीर्थंकर होने में थोड़ी देर है। तो कोई जैन बुद्ध को भगवान नहीं लिखता। महावीर को भगवान लिखता है, बुद्ध को महात्मा लिखता है। और कोई बौद्ध महावीर को भगवान नहीं लिखता, महात्मा लिखता है और बुद्धको भगवान लिखता है। क्योंकि बौद्धों की अपनी धारणाएं हैं। वे कहते हैं कि व्यक्ति को नग्न हो कर नाहक प्रचार नहीं करना चाहिए। यह प्रचार का ढंग है नग्न होना। यह तो बात सच है। तुम नंगे खड़े हो जाओ जा कर चौरस्ते पर, देखो फौरन भीड़ लग जाएगी। और कपड़े पहने खड़े रहो, कोई नहीं आएगा।। कोई पूछेगा ही नहीं, जय राम जीभी नहीं करेगा। जरा नंगे खड़े हो जाओ और फिर देखो, पुलिसवाला भी आ गया, इंस्पेक्टर भी आ गया, भीड़ भी लग गई और शोरगुल भी मचने लगा कि यह माजरा क्या है! तुम खड़े ही रहो सिर्फ, तुम कुछ कर ही नहीं रहे, मगर प्रचार हो रहा है। महावीर नग्नता को अगर प्रचार का साधन बनाया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं।
और मजा यह है कि तुम्हारी जब कोई धारणा पक्की हो गई होती है तो उस धारणा का शोषण करने वाले लोग पैदा हो जाते हैं। कोई इसलिए जंगल में जा कर बैठ जाता है कि तुम्हारी धारणा है कि जब तक जंगल में न बैठे तब तक संत नहीं। संत जिसको होना हो वह जंगल में बैठ जाता है। और जब वह जंगल में बैठ जाता है, संत हो जाता है--यह उसके प्रचार का ढंग है--तुम पहुंचने लगते हो खोजते हुए। चाहे संत के पास कुछ और न भी हो, कुछ भी न हो, लेकिन बैठा है जंगल में बस इतना काफी है, चली फिर कतार! और ये संत भी जंगल से निकल आते हैं जब कुंभ मेला भरता है, तब इनसे भी नहीं रुका जाता कि अब अपनी जगह बैठे रहें।

कुंभ के मेले में एक करोड़ आदमी इकट्ठे होंगे, वहां तो अड्डा जमा देंगे, सारे संत आ जाएंगेहिमालय से उतर कर। ये कुंभ के मेले में किसलिए आ जाते हैं? तुम किन संतों की बात कर रहेहो? अगर तुमयही पूछते हो कि एकांत में सादा जीवन, तो मुझसे ज्यादा एकांतमय, मुझसे ज्यादा सादा जीवन बिताने वाला आदमी नहीं है। चौबीस घंटे अपने कमरे में हूं, इससे ज्यादा एकांत कहां और होगा? और सादे जीवन की बात करते हो मेरे कमरे में कुछ नहीं है सिवाय मेरे। बिल्कुल अकेला हूं। सामान भी नहीं है। लेकिन मेरे अपने ढंग हैं और मैं किसी के ढंग की नकल करने में उत्सुक नहीं हूं। मैंचाहता भी नहीं कि मेरा नाम किसी के साथ जोड़ा जाए। लेकिन इतना मैं तुमसे कह देता हूंकि जीसस ने भी घूम-घूम कर प्रचार किया, नहीं तो सूली न लगती। अगर चुप ही बैठे रहते तो सूली कोई लगाता? काहेके लिए सूली लगाता? इसलिए कि क्यों चुप बैठे हो? तो सुकरात को कोई जहर किसलिए पिलाता? इसलिए कि चुप क्यों बैठे हो, जहर पिलाएंगे, बोलो! सुकरात प्रचार कर रहा था।
सत्य जब प्रकट होगा तो इसका प्रचार रोका नहीं जा सकता। और जो चुप बैठे रहे जंगलों में, जाहिर है बुद्धू थे, कुछ सत्य वगैरह उपलब्ध नहीं हुआ है, वे जंगल से वापिस बस्ती लौट आए हैं। आखिर उनसे कहना होगा जिनको नहीं उपलब्ध हुआ है। उनको खबर देनी होगी। जब फूल खिलेगा तो गंध उड़ेगी ही। यह भी प्रचार ही है फूल का। अगर यूं समझो तो प्रचार है, क्योंकि फूल खबर दे रहा है कि मैं खिल चुका, मधुमक्खियों, आओ! यह फूल कह रहा हैः तितलियों, यह मेरा संदेश रहा, यह मैं खबर भेजे दे रहा हूं। और मधुमक्खियों को दूर खबर लग जाती है, तीन-तीन मील दूर फूल की गंध पकड़ जाती है। सूरज निकलता है सुबह तो ऐसे कंबल ओढ़ कर नहीं निकलता, काली कमली वाले बाबा! सारी किरणें दूर-दूर तक फैल जाती हैं। यह सब प्रचार प्रसार है। एक-एक फूल को जाकर गुदगुदाती हैं कि खिल! एक-एक पक्षी के कंठ में गुदगुदाती हैं कि बोल, गा! द्वार दरवाजों पर दस्तक देती हैं कि उठो, जागो, सुबह हो गई! तुम तोसूरज से ही कहने लगो कि भैया, तुम कंबल ओढ़ कर क्यों नहीं निकलते? इतने प्रचार प्रसार की क्या जरूरत है? फल फूल को जगाए दे रहे हो, पक्षी-पक्षी को गवाए दे रहे हो, मोरों को नचाए दे रहे हो। लोगों को सोने नहीं दे रहे, उठाए दे रहे हो। अपना कंबल ओढ़ कर आओ जाओ चुपचाप, सादा जीवन ऊंचे विचार! यह क्या कर रहे हो?
मैं हूं तो मेरी किरणें भी लोगों तक पहुंचेंगी, उनके द्वारों पर दस्तक भी देंगी। और मैं हूं तो लोगों के गीत भी गूजेंगे। और मैं हूं तो मेरी गंध भी जाएगी। परवानों तक जानी ही चाहिए खबर शमा की। शमा भी खबर भेजती है, बिना खबर नहीं पहुंचती परवानों तक बात। वे किरणें पहुंच जाती हैं शमा की। उसकी नाचती हुई लौ परवानों के भीतर नाच को जगा देती है। वह जो नाचती हुई लौ परमात्मा की जब किसी व्यक्ति में प्रगट होती है तो परवाने आएंगे, दूर-दूर से आएंगे। और खबर पहुंचनी चाहिए, ताकि किसी को यह कहने को न रह जाए कि मुझे खबर न मिली। तो मैं तो जोर से प्रचार करने में तैयार हूं। मुझे इसमें कोई अड़चन नहीं है।
और इसको एकबारगी मेरे संन्यासियों को सारी दुनिया को साफ कर देना चाहिए कि मैं प्रचार के अत्याधुनिक साधन उपयोग करूंगा, कर रहा हूं! क्या कारण है कि थोड़े से लोगों को लाभ हो? क्या कंजूसी? जब बांटना ही है तो जितने ज्यादा लोगों को बंट सके उतना अच्छा। मगर कुछ भोंदू हैं जिनको अड़चन होती है। उन भोंदुओं की बंधी हुई धारणाएं हैं। मैं किसी की धारणा में बंधने को मजबूर नहीं हूं। मैंने ठेका लिया किसी की धारणाएं पूरी करने का? न तुम्हारे साधु-संतों से मैं कहता हूं कि मेरे अनुसार जियो। वे जीते रहे एकांत में, पहाड़ियों में, तो मैंने तो उनसे नहीं कहा था। तुम्हारे साधु- संत अपने ढंग से जीए, मैं अपने ढंग से जी रहा हूं। और मुझे साधु-संत होने की उत्सुकता नहीं है, मैं अपना हो कर काफी हूं, जैसा हूं वैसा काफी हूं। अब क्या ये छोटी मोटी बातें--ये साधु संत, महंत, महात्मा! टुच्ची बातों में मुझे रस नहीं है। ये तुम अपने सम्हालो ये शब्द। तुम तो मुझे तीर्थंकर भी कहो तो मुझे रस नहीं है। तुम मुझे अवतार कहो तो मुझे रस नहीं है। रखो अपने शब्द अपने पास। मैं काफी हूं बिना शब्दों के, बिना लेबिल के। कुछ मुझे अड़चन नहीं है। लेकिन प्रचार मैं पूरा करूंगा। बात पहुंचानी होगी। जीसस ने

कहा है अपने शिष्यों सेः "चढ़ जाओ मकानों की मुंडेरों पर, क्योंकि लोग बहरे हैं। जोर से चिल्लाओ तब शायद सुनें तो सुनें।"
अब मुंडेरों पर भी चिल्लाओगे चढ़ कर... उस जमाने में और इससे ज्यादा सुविधापूर्ण कोई चीज नहीं थी। अब मैं अपने शिष्यों से नहीं कहता मुंडेरों पर चढ़ जाओ। मैं तो कहता हूंः चढ़ जाओ रेडियो पर! चढ़ जाओ अखबारों पर! क्या मुंडेरों पर चढ़ना! वह गोरखधंधा है। मुंडेरों पर चढ़े भी तो दस-पांच आस-पास के लोगों को शोरगुल होगा, और क्या होने वाला है? जब शोरगुल पूरी पृथ्वी पर हो सकता है, फिर क्या छोटे-मोटे काम करना? एकाध मुहल्ले को जगाने में जिंदगी खराब कर देना? हिला देंगे पूरी पृथ्वी को। मुझे कुछ इसमें एतराज नहीं है।
मैं तो यह स्वीकार करता हूं कि मैं पूरा प्रयास करूंगा बात को दूर-दूर
तक पहुंचाने के लिए। पृथ्वी के कोने-कोने तक बात पहुंचानी है। अगर बात में सचाई है तो पहुंचनी चाहिए। लोगों को लाभ होना चाहिए। और अगर सचाई नहीं है तो भी लोगों को पता चल जाना चाहिए, ताकि वे जांच कर लें कि सचाई है या नहीं। इसको छिपा कर क्या रखना है! इसको उघाड़ना है।
मुझे अपने सत्य पर भरोसा है। जो चुपचाप बैठे रहे हैं, उनको भरोसा नहीं रहा होगा। डरपोक रहे होंगे, कायर रहे होंगे, भयभीत रहे होंगे कि किससे कहें, कोई माने न माने। और कौन कह कर झंझट में पड़े! कोई तर्क करने लगे, कोई विवाद करने लगे। मेरी चुनौती है, जिसको तर्क करना हो करे, विवाद करना हो विवाद करे। मुझे सब में रस है। मैं विवाद करने तैयार हूं, तर्क करने तैयार हूं। मेरे लिए खेल से ज्यादा कुछ भी नहीं है। जिसको पीना है उसको पिलाने को तैयार हूं। मुझे कोई अड़चन नहीं है। इतना तय है कि मैंने जो जाना है वह मेरे लिए इतना प्रगाढ़ सत्य है कि मुझे कोई संकोच नहीं कि उसका प्रचार हो। ढोल पीट कर दुदंभी बजा कर उसका प्रचार करना है।
इसलिए तो तुम्हें गैरिक वस्त्र दिए हैं। तुम क्या सोचते हो गैरिक वस्त्रों से कोई मुक्ति होती है? गलती में हो! गैरिक वस्त्र सिर्फ प्रचार का साधन हैं, और कुछ भी नहीं। गैरिक वस्त्र ऐसे हैं कि तुम जहां भी पहुंचे वहीं लोगों को चौंकाओगे कि यह चला आ रहा है, एक आदमी और पागल हुआ! तुम्हें देख कर ही वे मेरे संबंध में पूछना शुरू कर देंगे। उसे मेरी बात करनी ही पड़ेगी। मैं उसको मजबूर कर रहा हूं। उसको पता नहीं कि मैं उसको मजबूर कर रहा हूं कि उसे मेरे संबंध में चर्चा करनी पड़ेगी। उसे पता नहीं कि मैंने किस तरकीब से उसकी गर्दन पकड़ ली। वह समझ रहा है कि बड़ी होशियारी की बातें कर रहा है। जैसे बैल को लाल झंडी दिखा देते हैं न, वैसे मैंने तुम्हें कपड़े दे दिए हैं कि जहां जहां बैल होंगे, एकदम चौंकेगे, एकदम फनफनाने लगेंगे, एकदम गुर्राने लगेंगे। और मेरे संन्यासियों को कोई अड़चन नहीं, वे तत्क्षण उछल कर बैल के ऊपर सवार हो जाएंगे। वे सवारी गांठ देंगे। ऐसा मौका वे छोड़ते ही नहीं। हर बैल पर चढ़ जाओ, जहां मिले चढ़ जाओ जी खोल कर प्रचार करो। लोग सोचते हैं इस तरह की आलोचनाएं करके वे कोई मेरी निंदा कर सकते हैं। मैं तो इसको आलोचना मानता ही नहीं, मैं तो इसको अपना काम मानता हूं। सच तो यह है, जो लोग मेरे खिलाफ इस तरह की बातें करते हैं वे सब मेरेप्रचार में लगे हुए हैं, उनको पता नहीं। मेरे अपने काम के ढंग हैं। मैं किस तरकीब से किससे काम लेता हूं, यह मैं जानता हूं। जो मेरे खिलाफ काम में लगे हैं वे भी मेरा प्रचार कर रहे हैं।
जर्मनी से एक सज्जन ने मेरी खिलाफत में--ईसाई पादरी हैं वे, उन्हें ऐसा गुस्सा चढ़ा, गुस्सा इस बात पर चढ़ा कि मैंने जीसस पर जो कहा है उसका ईसाइयों पर बहुत प्रभाव पड़ रहा है। इतना प्रभाव पड़ रहा है कि ईसाई पादरियों को भी यह स्वीकार करना पड़ा है कि सदियों में कोई ईसाई भी ईसा पर इस तरह से नहीं बोला है। तो बैचेनी फैल गई कि एक गैर-ईसाई ईसा पर ऐसी बात कह सका, इतनी साफ-सुथरी, और हम क्या करते रहे! तो उस पादरी को इतना गुस्सा आया, उसने अपना मकान बेच दिया। अपना मकान बेच कर अपने बेटे को सारा पैसा दिया कि एक फिल्म बनाओ आश्रम की--इस तरह की फिल्म बनाओ कि जो-जो नकारात्मक हो, जो-जो गलत हो, उसी-उसी को उभार कर दिखाओ। ऐसी वीभत्स फिल्म बनाओ, उसको जर्मनी में जगह-जगह प्रचारित करो, ताकि लोग पूना जाना बंद कर दें।

वह आया। उसके पहले खबर भी आ गई मुझे, संन्यासियों ने खबर भेजी कि ये सज्जन एक आ रहे हैं, इनके पिता ने मकान बेच दिया और ये फिल्म बनाने आ रहे हैं, इनको फिल्म न बनाने दी जाए। मैंने कहा कि इसकी फिकर ही मत करो, इनको फिल्म बनानी दी जाए और जैसी बनानी हो ये बनाएं। उसने गलत ही फिल्म बनाई, गलत ही बनाने के लिए वह आया था। मगर हमारी तरफ से उसको पूरा सहयोग मिला! वह भी थोड़ा चौंकता था कि बात क्या है। पता भी चल गया, उसको भी पता था कि पता चल गया है, डरा हुआ था। फिल्म भी बना कर गया। फिल्म पूरी जर्मनी में दिखाई जा रही है। सोचा था कुछ, हुआ कुछ। लोग उस फिल्म को देख कर आ रहे हैं। मेरे पास रोज पत्र आते हैं कि हमने वह फिल्म क्या देखी, हमारा दिल एकदम पूना आने के लिए आतुर हो उठा है!
अभी निरंजना--मेरी एक संन्यासिनी--वापिस लौटी स्विटजरलैंड से। उसने कहा कि मैं एक होटल में खाना खा रही थी, दो महिलाएं मेरे पास आईं। गैरिक वस्त्र देखे, माला देखी और कहा कि ठीक, हम तलाश में थे किसी संन्यासी की, हम अपने उदगार प्रकट करना चाहते हैं। हमने वह फिल्म देखी, जो आश्रम के खिलाफ बनाई गई थी। मगर हमारा हृदय आंदोलित हो गया है। हम जल्दी ही आना चाहते हैं। जिस आदमी की हमें प्रतीक्षाथी, लगता है वह आ गया। और जिस आंदोलन की हम आशा करते थे, लगता है वह शुरु हो गया।
निरंजना तो बहुत चौंकी क्योंकि उसने सुन रखा था कि फिल्म गलत बनाई गई
है, विपरीत बनाई गई है, दुश्मनों ने बनाई है। उसने पूछा कि आप उस फिल्म को देख कर इतनी प्रभावित हैं? उन्होंने कहा कि माना फिल्म बनाई गई है नकारात्मक दृष्टि से, वह साफ है कि कोई आदमी जान कर पूरा का पूरा गलत उपस्थित कर रहा है। वह बात इतनी साफ है कि अंधे को भी दिखाई पड़ जाएगी। मगर जिस व्यक्ति के संबंध में गलत प्रदर्शित करने के लिए कोई मकान बेचता हो, फिल्म को गांव-गांव घुमाया जाता हो, वहां कुछ तो होना चाहिए। हम अपनी आंख से आ कर देखना चाहते हैं।
न मालूम कितने लोग उस फिल्म के कारण आ रहे हैं। और तुम चकित होओगे, जर्मन सरकार की सहायता थी उस पादरी को। अब जर्मनी सरकार भी चिंतित हो गई है कि फिल्म को बैन करना चाहिए या नहीं। जर्मन पार्लियामेंट में यह सवाल उठा है कि फिल्म को बैन कर दो, उसको रोक लगा दो, क्योंकि परिणाम उल्टा हो रहा है।
सत्य का तुम विरोध भी करोगे तो प्रचार ही होता है। और असत्य का तुम समर्थन भी करो तो भी तुम उसे खड़ा नहीं कर सकते। असत्य में कोई बल नहीं होता। उसको किसी तरह खड़ा भी कर दो, तो वह गिरजाएगा। उसमें पैर ही नहीं होते। उसमें प्राण ही नहीं होते। लाश को कब तक चलाओगे, कैसे चलाओगे? और जहां जीवन है वहां तुम रूकावटें भी डालो, हर रुकावट सीढ़ी बन जाती है। सत्य और एक कदम ऊपर उठ जाता है। हर रूकावट को सीढ़ी बना लेंगे। और प्रचार जोर से करना है।
सत्य वेदांत, मेरी दृष्टि को ठीक से समझ लो। सारे संन्यासियों को मेरी दृष्टि ठीक से समझ लेनी चाहिए। मैं बिल्कुल ही प्रचार के पक्ष में हूं, विज्ञापन के पक्ष में हूं। और सारे आधुनिक साधनों का उपयोग करना है। मैं कोई दकियानूसी परंपरागत आदमी नहीं हूं। वे हमेशा अपनी परंपरा से तौलते रहते हैं।
तुमसे कहता कौन है कि तुम मुझे संत मानो? तुम्हारे संतों की भीड़-भाड़ में मैं खड़ा भी नहीं होना चाहता। कौन इस कचरे में खड़ा होगा--उन मुदा में मुझे क्या मरना है? तुम्हारे साधु संत अगर स्वर्ग जाते हैं तो मैं नर्क जाना पसंद करूंगा, मगर स्वर्ग नहीं। तुम्हारेसाधु-संतों के सामने मैं बैठना भी पसंद नहीं करता। वह कोई संग-साथ है? उससे तो शराबी बेहतर। कम से कम आदमियों में कुछ बल तो होता है। यह नपुंसकों की भीड़, इसमें मुझे कोई रस नहीं है। इसलिए तुम सोचते हो कि शायद यह मेरी निंदा हो रही है, कि कोई कह देता है कि हमारे साधु-संत, भारत की परंपरा! भाड़ में जाए भारत और भारत की संत परंपरा! मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। मैं भौगोलिक सीमाओं में विश्वास नहीं करता। मैं सारी मनुष्यता को एक मानता हूं। कैसा भारत और कैसा चीन! मैं किसी सीमा में भरोसा नहीं करता। सब सीमाएं तोड़ देने को आबद्ध हूं।

परंपरा का सत्य से कोई संबंध नहीं है। सत्य हमेशा वर्तमान का होता है। परंपरा हमेशा मुर्दा होती है, अतीत की होती है।
इसलिए मुझेतुमकिसी भीड़-भाड़ में सम्मिलित मत करो। तुम कहते हो कि हमारे साधु-संत भीड़-भाड़ और दिखावे से दूर एकांत में सादा जीवन बिताते थे। मैं भी भीड़-भाड़ से--साधु-संतों की भीड़-भाड़ से--दूर जीवन बिताता हूं। और मैंने साधु-संत पैदा किए हैं, ये मस्त लोग हैं, परवाने हैं। यह र्रिदों की जमात है। यह मयकदा है--यह कोई मंदिर नहीं, यह कोई मस्जिद नहीं।
दफ्न करना मेरी मैयत वह भी मैखाने में
ताकि मैखाने की मिट्टी रहे मैखाने में
दफ्न करना मेरी मैयत वह भी मैखाने में
मैं कोई र्रिद नहीं इसलिए पीता हूं शराब
उनकी तसवीर नजर आती है पैमाने में
दफ्न करना मेरी मैयत वह भी मैखाने में
जाम थर्राने लगे उड़ गई बोतल से शराब
बेवुज आ गया शायद कोई मैखाने में
दफ्न करना मेरी मैयत वह भी मैखाने में
मैं तुम्हें ध्यान दे रहा हूं, ताकि तुम उस शराब को पीने योग्य हो सको। उसके लिए पवित्रता चाहिए, एक मौन चाहिए, एक शून्य चाहिए। जामथर्राने लगे उड़ गई बोतल से शराब
बेवुज शायद आ गया कोई मैखाने में
तुम जो चाहो तो बदल दो मेरे गम की दुनिया
तुमको तो खुद ही मजा आता है तड़पाने में
दफ्न करना मेरी मैयत वह भी मैखाने में
इस कदर फूंक दियासोजे-मुहब्बत ने कमर
आह करने की भी ताकत नहीं दीवाने में
दफ्न करना मेरी मैयत वह भी मैखाने में
ताकि मैखाने की मिट्टी रहे मैखाने में
यहां तो दीवाने इकट्ठे हुए हैं, परवाने इकट्ठे हुए हैं। यह कोई साधारण अर्थों का मंदिर नहीं है। यह तीर्थ है--और तीर्थ भी ऐसा नहीं कि जो सड़ चुका हो, अतीत का हो। अभी जनम रहा है, अभी पैदा हो रहा है। यह नया काबा पैदा हो रहा है। यह नया कैलाश उठ रहा है। इसको तुम पुराने से मत तौलो। तुम्हारा कोई तराजू काम न आएगा। तुम्हारे सब तराजू टूट जाएंगे मुझे तौलने में। तुम्हारे कोई मापदंड मेरे काम नहीं आएंगे। तुम्हारी कोई कोटियों में तुम मुझे बिठा नहीं सकते। तुम सीधे-सीधे मुझे देखो, हटाओ तराजू, हटाओ कोटियां, हटाओ तुम्हारे गणित! मैं अपने ढंग का आदमी हूं। मुझे किसी से क्या लेना-देना है?
हाले-दिल उनको सुना कर मुझे क्या लेना है
उनको एहसास दिला कर मुझे क्या लेना है
हाले दिल उनको सुना कर मुझे क्या लेना है
एते मामात की खातिर से किया है मैंने
वरना बज्म अपनी सजा कर मुझे क्या लेना है हाले-दिल उनको सुना कर मुझे क्या लेना है कोई मकहूमे-दुआ हो तो कोई बात भी हो बेसबब हाथ उठा कर मुझे क्या लेना है हाले दिल उनको सुना कर मुझे क्या लेना है तेरे कदमों में पड़ा हूं मैं रहने दे मुझे साकिया होश में आ कर मुझे क्या लेना है हाले-दिल उनको सुना कर मुझे क्या लेना है जर्रे जर्रे में नजर आता है उनका जलवा फिर भला तूर पर जा कर मुझे क्या लेना है हाले-दिल उनको सुना कर मुझे क्या लेना है उनको एहसास दिला कर मुझे क्या लेना है हाले दिल उनको सुना कर मुझे क्या लेना है

मुझे क्या प्रयोजन है? कौन क्या सोचता है मेरे संबंध में, क्या पड़ी मुझे? सारी दुनिया से रोज अखबारों की कटिंग आती है। मैं तो पढ़ता भी नहीं, देखता भी नहीं। कौन समय खराब करे! शीला आ जाती है और बता जाती है कि इस अखबार में यह है, इस अखबार में वह है। मैं कहता हूंः ठीक, गलत है तो ठीक और ठीक है तो ठीक। किसको क्या लेना है? और इन मूढ़ों से तो क्या बात करनी?
कोई मकहूमे दुआ हो तो कोई बात भी हो
बेसबब हाथ उठा कर मुझे क्या लेना है
मैं तो उस जगह पहुंच गया, जहां से अब मुझे होश में आने की भी कोई जरूरत नहीं है। अब तो बेहोशी होश है।
तेरे कदमों में पड़ाहूं मैं रहने दे मुझे
साकिया, होश में आकर मुझे क्या लेना है
जर्रे जर्रे में नजर आता है उनका जलवा
फिर भला तूर पर जाकर मुझे क्या लेना है
मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं अपने ही ढंग से जीए जाऊंगा। जिनको मेरे साथ जुड़ना हो, उन्हें मेरा ढंग सीखना होगा। जो मेरा ढंग नहीं सीख सकते, उनकी वे जानें। मुझे उनकी कुछ पड़ी नहीं है। उनको विरोध करना हो, आलोचना करनी हो, जो उनको करना हो करें।
लेकिन दीवाने भी इस दुनिया में कम नहीं हैं। कल गुजरात की असेम्बली में मेरे कच्छ जाने का सवाल पुनः उठा। और अब तो गुजरात के मुख्यमंत्री माघवसिंह सोलंकी को कहना पड़ा कि हम सौ प्रतिशत आश्रम कि लिए जगह देने को कटिबद्ध हैं। कहना पड़! इसलिए कि पैंसठ संस्थाओं ने मेरा विरोध किया है और तीन सौ पचास संस्थाओं ने मेरा समर्थन! और मैं कहीं भी नहीं गया, कच्छ से मेरा कोई नाता नहीं रहा है। लेकिन गंध पहुंचने लगी। जहां मैं गया नहीं, वहां भी पहुंचने लगी है। तीन सौ पचास संस्थाओं ने अपने आप... न तो हमने संन्यासी भेजे वहां, न कोई प्रचार किया गया है, न कोई उपाय किया गया है। लेकिन सत्य के समर्थन करने वाले दीवाने भी हमेशा उपलब्ध हो जाते हैं। अब मुंह की खानी पड़ी।
वे जो पैंसठ संस्थाएं हैं, वे भी संस्थाएं नहीं हैं। उनमें भी पच्चीस-तीस तो एक एक व्यक्तियों के कार्ड हैं। उनमें भी ऐसे कार्ड हैं कि जिनके लिखने वालों ने पूछा गया तो पता चला है उन्हें पता ही नहीं है कि उनके दस्तखत किसने लिए! अठारह संस्थाएं हैं; वे सब जैनियों की। और जैनी सब छोटे- छोटे पंथ हैं, हर पंथ कि नाम से एक-एक दरखास्त लगा दी है। एक दरखास्त इस पंथ की, एक दरखास्त उस पंथ की। और वे चार पांच आदमी हैं जो सारी दरखास्त लगवा दिए हैं। वे पैंसठ भी अगर खोजबीन की जाए तोपांच भी उनमें से सत्य निकलने वाले नहीं हैं।
और अगर मैं एक बार कच्छ जाऊं तो वह जो तीन सौ पचास की संख्या है, वह तीन हजार पांच सौ हो जाएगी।
मेरे बिना गए कोई बात पहुंच गई है, यह कैसे पहुंच गई? मैं बैठ जाऊं किसी गुफा में, पहुंच जाएगी? सुगंध को उड़ाना होगा फूल को। और सूरज को अपनी किरणें पहचानी होंगी। जरूरी नहीं कि सूरज तुम्हारे घर में आए; घर में आएगा तो तुम जल कर खाक हो जाओगे। किरणें ही आ जाएं इतना ही काफी है। मैं तो अत्याधुनिक व्यक्ति हूं। सच तो यह है कि इक्कीसवीं सदी का व्यक्ति हूं। यह बीसवीं सदी चल रही है, अभी सौ साल का वक्त है मरे ठीक ठीक समझे जाने के लिए। लेकिन सौ साल पहले आना पड़ता है, ताकि तैयारी शुरू होजाए। लोग इतने धीरे-धीरे चलते हैं, घसिटते-घसिटते कि सौ साल लग जाएंगे उनको समझाने में। हरेक को अपने समय के पहले आना पड़ता है।
और मैं किसी साधन को छोडूंगा नहीं, सारे साधनों का उपयोग करूंगा। मैं बीसवीं सदी में जो उपलब्ध है, उसका उपयोग करूंगा। साधारण रेडियो इत्यादि का ही उपयोग नहीं हो रहा है, अब सेटेलाइट का भी मैंने उपयोग शुरू किया है। अभी एक सेटेलाइट से उन्होंने, एक वीडियो टेप प्रसारित किया, जो सारी दुनिया में देखा जा सका। नया कम्यून बन जाए, हम अपना सेटेलाइट बना लेंगे, क्या दूसरों पर निर्भर रहना! जब प्रचार ही करना हो... जो भी करना हो उसको मैं फिर पूरी तरह करना चाहता हूं अधूरा-अधूरा क्या करना! बिहार ही बिहार

के क्या चक्कर लगाते रहना, इतनी बड़ी दुनिया पड़ी है! और जब कमरे में बैठ कर सारी दुनिया को प्रभावित किया जा सकता हो तो जाना ही क्यों? नहीं जाता हूं उसका कारण यह है कि कमरे में बैठ कर ही अब सब कुछ किया जा सकता है, अब सारे साधन उपलब्ध हैं। ये महावीर बुद्ध को, बेचारों को बहुत कष्ट झेलना पड़ा! पैंतालीस साल, पचास साल भागते फिरे। बुढ़ापे में बयासी साल के बुद्ध हो गए हैं, फिर भी चले जा रहे हैं। आखिरी दिन, मरे उस दिन भी यात्रा जारी थी। इसकी कोई जरूरत नहीं है।

आखिरी प्रश्नः भगवान,
मैं एक आधुनिक कथा लेखक और कवि हूं। अकहानी लिखता हूं और अकविता लिखता हूं। पर सफलता हाथ नहीं लगती है। आपका आशीष चाहता हूं।

धन्य कुमार कमल!
जब अकविता लिखोगे और अकहानी लिखोगे, असफलता हाथ लगेगी। यह तो सीधा तर्क है। पहली तो बात, कविता लिखने वालों को ही कहां सफलता मिलती है! और तुम अकविता लिख कर सफल होना चाह रहे!
मगर तुम आधुनिक नहीं मालूम होते। नहीं तो सफलता के लिए आशीष मांगते?
यह परंपरागत ढंग है। और अगर सफलता नहीं मिल रही तो इससे कुछ समझो, कि तुम्हारी कविता लोगों का सिर खा रही होगी; अक्सर कवियों की खाती है। तुम क्षमा करो लोगों को। मुझसे आशीष मांगने की बजाय तुम लोगो को क्षमा कर दो। तुम भैया कुछ और करो। तुम्हारी बड़ी कृपा होगी। कवि वैसे ही इस मुल्क में बहुत हैं, मुहल्ले मुहल्ले में हैं। बरसात में जैसे मेंढक टर्राने लगते हैं, वैसे ही कवि यहां टर्राते रहते हैं। कौन सुनने वाला है?
एक कवि को निमंत्रित किया गया। निमंत्रण भी इसलिए करना पड़ा, क्योंकि
वे राजनेता भी थे और कवि भी। जब वे पहुंचे तो बड़े हैरान हुए, हाल खाली था, वहां कोई था ही नहीं। सिर्फ आमों का एक ढेर लगा था। तो उन्होंने संयोजक से पूछाः मामला क्या है?
तो उसने कहाः मैं भी क्या करूं! आपसे कह चुका था, निमंत्रण दे चुका था
कि आप आइए, जनता आई नहीं। सो फिर मैंने एक तरकीब सोची। आपसे कहा था आम सभा होने वाली है, तो मैंने आम के ढेर लगा दिए। पढ़ो कविता! आम सभा! अब मैं भी क्या करूं, कोई जबरदस्ती मार-पीट कर लोगों को लाया जाए? लोग कविता की बात सुन कर ही भाग खड़े होते हैं।
एक कवि सम्मेलन में श्रीमान पोपटमल गीत सुन रहे थे--या दिल की सुनो दुनिया वालो, या मुझको अभी चुप रहने दो।
श्रोताओं में से एक स्वर उभरा--चुप ही हो जा भैया!
बाजार में महाकवि भोलानाथ एक आदमी के पीछे बड़ी तेजी से चिल्लाते हुए भाग रहे थे कि पकड़ लो इस हरामजादे को, बच कर न जाने पाए! अरे बड़ा बेईमान है, बड़ा धोखेबाज है!
आखिर जब एक पुलिसवाले ने यह सब सुना तो पूछा कि भैया, आखिर बात क्या है? भोलानाथ बोलेः इसने अपनी कविता तो हमें सुना दी, लेकिन जब मेरी बारी आई तो भाग खड़ा हुआ!
भोलानाथ मरणशय्या पर पड़े थे। डाक्टरों ने कह दिया था कि अब इनके बचने
की कोई उम्मीद नहीं है। सब जगह यह खबर भेजी जा चुकी थी कि भोलानाथ जी की हालत चिंतनीय है और जिन्हें अंतिम दर्शन करना हो वे कर लें। सो उनके गुरू स्वामी मटकानाथ बह्मचारी उन्हें देखने आए। और हालचाल पूछने के बादभूल से उनसे पूछ बैठे कि कोई कविता बनाई क्या?
आग्रह सुन कर भोलानाथ की आंखें चमक उठीं। उन्होंने झट से मटकानाथ के लिए चाय-नाश्ता मंगवाया और तकिए के नीचे से अपनी कविताओं का बंडल निकाल लिया और शुरू हो गए। जब तीन-चार घंटे हो गए तो भोलानाथ के पुत्रों ने सोचा मामला क्या है! मटकानाथ अभीतक जमे हुए हैं। अंदर जाकर देखा तो बात उलटी ही थीः मटकानाथ तो खतम हो चुके थे, भोलानाथ बिल्कुल ठीक-ठाक कविता पाठ कर रहे थे।
तुम भैया, क्षमा करो।

ज्यूं मछली बिन नीर
छठवां प्रवचन

जीवन जीने का नाम है

पहला प्रश्नः भगवान,
ऋतस्य यथा प्रेत।
अर्थात प्र्राकृत नियमों के अनुसार जीओ।
यह सूत्र ऋग्वेद का है।
भगवान, हमें इसका अभिप्रेत समझाने की कृपा करें।

आनंद मैत्रेय!
यह सूत्र अपूर्व है। इस सूत्र में धर्म का सारा सार-निचोड़ है। जैसे हजारों गुलाब के फूलों का कोई इत्र निचोड़े, ऐसा हजारों प्रबुद्ध पुरुषों की सारी अनुभूति इस एक सूत्र में समाई हुई है। इस सूत्र को समझा तो सब समझा। कुछ समझने को फिर शेष नहीं रह जाता।
लेकिन इस सूत्र का इतना ही अर्थ नहीं है कि प्राकृत नियमों के अनुसार जीओ। सच तो यह है कि "ऋत" शब्द के लिए हिंदी में अनुवादित करने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए समझने की कोशिश करो। प्राकृत शब्द से भूल हो सकती है। निश्चित ही वह एक आयाम है ऋतु का। लेकिन बस एक आयाम। ऋतु बहु आयामी है। जिसको लाओत्सु ने "ताओ" कहा है। उसको ही ऋग्वेद ने ऋतु कहा है। जिसको बुद्ध ने "एस धम्मो सनंतनो" कहा है, "धम्म" कहा है, वही ऋत का अर्थ है।
ऋत का अर्थः जो सहज है, स्वाभाविक है; जिसे आरोपित नहीं किया गया है आविष्कृत किया गया है; जो अंतस है तुम्हारा, आचरण नहीं, जो तुम्हारी प्रज्ञा का प्रकाश है, चरित्र की व्यवस्था नहीं; जिससे यह सारा जीवन अनुस्यूत है; जिसके आधार से सब ठहरा है, सब चल रहा है; जिसके कारण अराजकता नहीं है। वसंत आता है और फूल खिलते हैं। पतझड़ आता है और पत्ते गिर जाते हैं। वह अद्दश्य नियम, जो वसंत को लाता है और पतझड़ को। सूरज है, चांद है, तारे हैं। यह विराट विश्व है और कोई अराजकता नहीं है। सब सुसंबद्ध है। सब संगीतपूर्ण है। इस लयबद्धता का नाम ऋतु है।
इतने विराट विश्व के भीतर अकारण ही इतना सुनियोजन नहीं हो सकता। कोई अद्दश्य ऊर्जा सबको बांधे हुए है। सब समय पर हो रहा है। सब वैसा हो रहा है जैसा होना चाहिए, अन्यथा नहीं हो रहा है। यह जो जीवन की आंतरिक व्यवस्था है... न तो वृक्षों से कोई कह रहा है कि हरे हो जाओ, न पत्तों को कोई खींच-खींच कर उगा रहा है... । बीज से वृक्ष पैदा होता है, वृक्षों में फूल लग जाते हैं। सुबह होती है, पक्षी गीत गाते हैं।
संगीत में कोई बांसुरी बजाता है तो हम कहेंगे सुंदर है कोई सितार बजाता है, वह भी सुंदर है और कोई तबला बजाता है, वह भी सुंदर है। लेकिन जब बहुत से वाद्य एक साथ किसी एक राग और एक लय में नियोजित हो जाते हैं, जब सारे वाद्यों का संगीत मिल कर एक प्रवाह बनता है--तब जो रस है, तब जो संगीत है, तब जो सौंदर्य है, वह एक-एक वाद्य का नहीं हो सकता। और अगर सारे वाद्य अलग-अलग संगीत पैदा करें तो सिर्फ शोरगुल पैदा होगा, संगीत नहीं पैदा होगा।
यह विश्व एक आर्केस्ट्रा है। और जिस सत्य के कारण यह आर्केस्ट्रा है,
कि बांसुरी तबले से बंध कर बज रही है, तबला सितार से बंध कर बज रहा है, सब एक दूसरे से बंध कर बज रहे हैं, कोई किसी के विपरीत नहीं है, कहीं कोई संघर्ष नहीं है, सहयोग है--ऋत शब्द में सब समाया हुआ है। इसलिए ऋत का अर्थ समझोः धर्म। प्राकृत होना उसका एक अंग है।
जैसे आग का धर्म है गर्म होना और पानी का धर्म है नीचे की तरफ प्रवाहित होना और मनुष्य का धर्म है परमात्मा की तरफ ऊपर उठना। जैसे अग्नि की लपट ऊपर की ओर ही जाती है, चाहे तुम दीये को उलटा भी कर दो तो भी ज्योति ऊपर की तरफ ही जाएगी, ज्योति उलटी नहीं होगी--ऐसे ही सारा जीवन प्रवाहित हो रहा है किसी अज्ञात शिखर की ओर! किसी ऊंचाई को छूने के लिए एक

गहरी अभीप्सा है। किसी सत्य को जानने की प्यास है। उस परम सत्य का नाम ऋत है।
लाओत्सु ने कहाः उसका कोई नाम नहीं, इसलिए मैं उसको ताओ कहूंगा। वेद
भी कहते हैं, उसका कोई नाम नहीं, हम उसे ऋत कहेंगे। ऋत शब्द से ही ऋतु बना है। ऋतु का अर्थ हैः पता नहीं कौन अज्ञात हाथ कब मधुमास ले आते हैं, मगर नियोजित, सुसंबद्ध, संगीतपूर्ण! कब हेमंत आ जाता है, कब वसंत आ जाता! कैसे आता है! न कहीं कोई आज्ञा सुनाई पड़ती है, न कहीं ढोल पीटे जाते, न कहीं नोटिस लगाए जाते। कोई किसी को कुछ कहता नहीं। पता नहीं कैसे फूलों को खबर हो जाती है! पता नहीं कैसे पक्षियों को पता चल जाता है! पता नहीं कैसे मेघ घिर आते हैं, मोर नाचने लगते हैं! पता नहीं कैसे, यह जो अज्ञात सबको समाए हुए है अपने में, यह जो अज्ञात सबके भीतर यूं समाया हुआ है जैसे माला के मनकों में धागा पिरोया होता है! यूं तो फूलों का ढेर भी लगा सकते हो, मगर फूलों का ढेर ढेर ही है। लेकिन धागा पिरो दो, इन्हीं फूलों में, तो माला बन जाए। और माला ही अर्पित हो सकती है।
यह जगत फूलों का ढेर नहीं, एक माला है। और माला परमात्मा के चरणों में अर्पित की जा सकती है। यह सारा जगत, जैसे-जैसे तुम समझोगे वैसे-वैसे पाओगे--संगीतपूर्ण है, लयबद्ध है।
तुम अपने ही भीतर देखो। वैज्ञानिक आज तक नहीं खोज पाए कोई उपाय कि रोटी कैसे खून बन जाती है। नहीं तो वैज्ञानिक रोटी से सीधा खून बना लें। रक्तदान की, अस्पतालों में रक्त के बैंक बनाने की ऐसी कोई जरूरत न रह जाए, लोगों से रक्त मांगना न पड़े, मशीन में ही इधर रोटी डाली पानी डाला और दूसरी तरफ ये रक्त निकाल लिया। विज्ञान इतना विकसित हुआ है, फिर भी अभी छोटी सी बात पकड़ में नहीं आ सकी कि कैसे रोटी रक्त बन जाती है। और तुम बनाते हो, ऐसा तो तुम सोचोगे भी नहीं, भूल कर भी नहीं कह सकते हो कि तुम बनाते हो। तुमने रोटी तो गले के नीचे कर ली, इसके बाद तुम्हें पता नहीं कि क्या होता है, कौन सब सम्हाल जाता है? कैसे रोटी टूटती है, कैसे रक्त बनती है, कैसे मांस मज्जा बनती है? वही रोटी तुम्हारी मस्तिष्क की ऊर्जा बनती है। वही रोटी वीर्य कण बनती है। उसी रोटी से जीवन की धारा बहती है। तुम्हारा जीवन ही नहीं, तुम्हारे बच्चों का जीवन भी उस रोटी से निर्मित होता है। तुम्हारे भीतर एक अदभुत कीमिया काम कर रही है। बस कीमिया का नाम ऋत है।
तुम क्यों श्वास लेते हो, कैसे श्वास लेते हो? अक्सर हम सोचते हैं, हम श्वास लेते हैं। वहां बड़ी भूल है, बुनियादी भूल है। हम श्वास नहीं लेते। अगर हम श्वास लेते होते, तब तो किसी का मरना संभव ही नहीं था। मौत आती और हम श्वास लिए चले जाते। हम कहते हम तो श्वास लेंगे, तो मौत क्या करती? लेकिन जब श्वास चली जाती है बाहर और नहीं भीतर लौटती, तो कोई उपाय नहीं है हमारे पास उसे भीतर लौटा लेने का। गई तो गई। हम श्वास लेते हैं, यह भ्रांति है।
श्वास हमें लेती है, यह ज्यादा बड़ा सत्य होगा। ज्यादा सही होगा कि श्वास हमें लेती है।
यह हमारा अहंकार है, नहीं तो ऋत को समझने में जरा भी अड़चन न हो।
तुम्हारे भीतर भी ऋत समाया हुआ है। तुम्हारी हर श्वास उसकी गवाही है।।
कौन ले रहा है श्वास तुम्हारे भीतर? तुम तो नहीं ले रहे हो, यह पक्का है।।
नहीं तो रात नींद में कैसे लोगे जब तुम सो जाते हो? यह शराब पीकर जब तुम बेहोश होकर नाली में गिर जाते हो, जब यह भी होश नहीं रहता कि नाली है, जब यह भी होश नहीं रहता कि कहां गिर पड़ा हूं, जब यह भी होश नहीं रहता कि कौन हूं... ।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात शराब पीकर लौटा। सामने ही उसके दरवाजे पर बिजली का खंभा है। दूर से ही उसने देखा खंभे को, तो खंभे से बच कर निकलने की कोशिश की कि कहीं टकरा न जाऊं। यूं काफी जगह है खंभे के दोनों तरफ। और खंभे की मोटाई ही क्या होगी--छह इंच। कोई उससे टकराने का कारण न था। कोई अंधा भी निकलता तो सौ में एक ही मौका था कि टकराता। मगर वह बच कर निकलने की कोशिश की कि कहीं टकरा न जाऊं और टकरा गया। बचकर निकलने में एक खतरा है टकराने का।

अगर तुमने नई-नई साइकिल चलानी सीखी हो तो तुम्हें पता होगा, साठ फीट चौड़ा रास्ता, और रास्ते के किनारे लगा हुआ एक मीन का पत्थर। वह बेचारा हनुमान जी की तरह अलग बैठा हुआ है, उसको कुछ लेना-देना नहीं तुम्हारी साइकिल से, तुमसे। मगर दूर से ही वह जो लाल हनुमान जी दिखाई पड़ते हैं मील के पत्थर के, सिक्खड़ साइकिल वाले को घबड़ाहट होती है कि कहीं पत्थर से टकरा न जाऊं। और टकराता है, उसी पत्थर से जाकर टकराता है। साठ फीट चौड़े रास्ते पर साठ मील लंबे रास्ते पर, एक छोटा सा पत्थर जिसमें कोई बहुत निशानेबाज भी अगर तीर मारना चाहता तो शायद चूक जाता, मगर नया सिक्खड़ नहीं चूकता। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिससे हम बचना चाहते हैं उस पर हमारी आंखें आरोपित हो जाती हैं। स्वाभावतः, उससे बचना है तो हमारा सारा चित्त उसी पर केंद्रित हो जाता है। और सब भूल जाता है, सारी नजर वहीं टिक जाती है, सारे प्राण वहीं अटक जाते हैं। वह साठ फीट चौड़ा रास्ता भूल गया, बस वे हनुमान जी दिखाई पड़ने लगे। अब तुम लाख भीतर-भीतर हनुमान चालीसा पढ़ो, कि कहो कि जय बजरंग बली, बचाओ बजरंग बली! मगर अब कुछ न होगा, आंखें तुम्हारी टिकी हैं। इसको मनोवैज्ञानिक कहते हैंः आत्म सम्मोहन। तुम सम्मोहित हो गए हो पत्थर से। अब वह पत्थर तुम्हें खींच रहा है। पत्थर का कोई हाथ नहीं है, तुम्हारा ही सब खेल है। और सिक्खड जाकर उसी पत्थर से टकराता है। और सोचता भी है कि माजरा क्या है, इतने बड़े रास्ते पर, खाली पड़े रास्ते पर टकरा क्यों गया! मगर उसके पीछे मनोवैज्ञानिक सूत्र है, वह आत्म-सम्मोहित हो गया, उसकी आंखें अटक गईं। बचने की कोशिश में वह सारा रास्ता भूल गया। बस पत्थर ही याद रहा। और पत्थर याद रहा तो चल पड़ा पत्थर की तरफ। जितना बचाने लगा उतना ही पत्थर की तरफ चल पड़ा। इस सूत्र को ख्याल में रखना।
तो शराबी तो और भी जल्दी सम्मोहित हो जाता है। शराब का अर्थ ही इतना होता है कि वह तुमसे तुम्हारा होश छीन लेती है। और जहां होश नहीं है वहां सम्मोहित हो जाना है; किसी भी चीज से सम्मोहित हो जाने में कोई अड़चन नहीं है; किसी भी कल्पना में जकड़ जाने में कोई अड़चन नहीं है।
मुल्ला बिल्कुल सम्हल कर चला कि खंभे से बच कर निकलना है और टकरा ही गया खंभे से जाकर। बड़ी जोर से चोट लगी। लौटा दस कदम पीछे। फिस से कोशिश की कि बच कर निकल जाऊं। अब की दफा और बुरी तरह टकराया। ख्याल रखना, जिस चीज से तुम एक बार टकरा गए तो उससे फिर अगर कोशिश करोगे बच कर निकलने की तो निश्चित ही टकराओगे। तीसरी बार और मुश्किल हो गई। चौथी बार, पांचवी बार, छठवीं बार... तब वह एकदम घबड़ाया और जोर से चिल्लाया कि, हे प्रभु, बचाओ! लगता है मैं खंभो के जंगल में खो गया हूं! उसको लगा कि खंभे ही खंभे हैं चारों तरफ, जहां जाता हूं खंभे से ही टकराता हूं! वहां एक ही खंभा है कुल जमा।
एक पुलिस वाले ने किसी तरह पकड़ कर उसे उसके दरवाजे पर पहुंचा दिया और कहा कि कोई जंगल वगैरह नहीं है, एक खंभा है। और मैं खड़ा देख रहा हूं, मैं चकित हो रहा हूं कि तुम कैसे उससे टकरा रहे हो।
हाथ कंप रहे हैं उसके। ताला पकड़ता है तो ताला कंप रहा है। तो पुलिस वाले ने कहा कि लाओ, मैं तुम्हारा ताला खोल दूं। उसने कहा कि नहीं-नहीं, मैं खोल लूंगा। ऐसा कुछ नशा नहीं है।
कोई नशा करने वाला नहीं मानता कि मैं कुछ नशे में हूं। पूरी कोशिश यह करता है कि मैं हूं ही नहीं। और फिर पुलिस वाले के सामने तो कैसे स्वीकार करे कि नशे में हूं। खीसे में हाथ डाला, चाबी निकाली। अब वह चाबी ताले में नहीं जाती, क्योंकि हाथ दोनों कंप रहे हैं, ताला भी कंप रहा है, जिसमें चाबी लिए हुए है वह भी कंप रहा है। पुलिस वाले ने कहा कि लाओ भैया, चाबी मुझे दो, मैं खोल दूं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः ऐसा करो कि अगर सहायता ही करनी है तो जरा मकान को पकड़ लो कि मकान हिले न। यह मकान इतने जोर से हिल रहा है, भूंकप आ रहा है या क्या हो रहा है?
इस बीच पत्नी भी जग गई। उसने खिड़की से झांक कर देखा और कहा कि फजूल के पिता, क्या बात है? चाबी तो नहीं खो गई है? कहो तो दूसरी चाबी फेंक दूं। नसरुद्दीन ने कहाः चाबी बिल्कुल ठीक है। हरामजादा ताला गड़गड़ कर रहा है। तू दूसरा ताला फेंक दे।

होश न हो तो आदमी जो भी करेगा, जो भी सोचेगा, वहीं भूल होती चली जाती है। होशियारी करता है। नशे में आया हुआ आदमी बड़ी होशियारी करता है। होशियारी में ही फंसता है। कैसे होशियारी करेगा?
हम सब अहंकार के नशे में पड़े हुए हैं, इसलिए ऋत से वंचित हैं। देख नहीं पाते। कहते हैं--मैं श्वास ले रहा हूं! मुझे भूख लगी है! क्या तुम्हें भूख लगेगी? तुम साक्षी हो भूख के। भूख तुम्हें नहीं लगती। न तुम्हें प्यास लगती है। न तुम श्वास ले रहे हो। न तुम जवान होते हो न तुम बूढ़े होते हो। तुम तो कुछ भी नहीं होते। तुम तो जैसे हो वैसे ही हो। तुम्हारे चारों तरफ कुछ हो रहा है। मगर होश कहां! शरीर बच्चा था, जवान हुआ, ब.ूढा होगा--और शरीर किसी एक अज्ञात नियम को मान कर चल रहा है। तुम्हारा कुछ वश नहीं है। लाख उपाय करता है आदमी कि जवानी में ही अटका रहे।
चंदूलाल की पत्नी उससे कह रही थी कि जरा मेरी तरफ तो देखो। तीन घंटे आईने के सामने सज कर आई थी। और चंदूलाल भन्नाए बैठे थे, क्योंकि अब स्टेशन जाने से कोई सार नहीं था, बाड़ी कभी की निकल गई होगी। अब तो दूसरी गाड़ी मिल जाए, वह भी बहुत है। मगर इसी आशा में थे कि दूसरी गाड़ी मिल जाएगी। मगर भन्नाए तो बहुत थे। और उसने, पत्नी ने आकर क्या पूछा. उसको गाड़ी-वाड़ी से क्या लेना! उसने पूछा कि जरा मेरी तरफ तो देखो, मेरी उम्र तुम्हें तीस साल की लगती है या नहीं?
चंदूलाल ले कहा कि लगती थी जब रहीं तुम तीस साल की। अब कैसे लगे? अब तीन घंटे नहीं, तुम तीस घंटे भी संवारो अपने को तो तीस साल की नहीं लग सकती हो। लगती थी कभी, जब तीस साल की रहीं।
मगर हर स्त्री कोशिश कर रही है कि जवानी को रोक ले। हर पुरुष कोशिश कर रहा है कि जवानी को रोक ले। तुम्हारे हाथ में नहीं है। सांस ही तुम्हारे हाथ में नहीं है, जवानी और बुढ़ापा तो तुम्हारे हाथ में क्या होगा! फिर किसके हाथों में है? कौन है अद्दश्य ऊर्जा? उस ऊर्जा का नामः ऋत। उसे नाम तो देना होगा, ताओ कहो, ऋत कहो, धम्म कहो, धर्म कहो, कोई भी नाम दे दो। उसका कोई नाम नहीं है, अनाम है। लेकिन एक बात समझ लो कि यह सारा जीवन किसी एक अज्ञात सूत्र के सहारे चल रहा है। उस सूत्र को खोज लेना ही सत्य को खोज लेना है। और उसे खोजने की दिशा में पहला कदम होगाः अपने से शुरू करो। अपने ही भीतर ऋत को खोजो। लेकिन वह ऋत नहीं खोज पाओगे अगर अहंकार में दबे रहे। और अहंकार कैसे-कैसे तर्क खोज लेता है--यह मैंने किया! कुछ तुमने किया नहीं है, सब हुआ है। कोई चित्रकार है, उसने कुछ किया नहीं। यह उसका ऋत है। यह उसका स्वभाव है। कोई कवि है, उसने कुछ किया नहीं। कोई गायक है, उसने कुछ किया नहीं। उसका जो स्वभाव था, वही प्रगट हुआ है। गुलाब है, जुही है, चंपा है। अगर गुलाब, जुही और चंपा के पास भी सोच विचार की क्षमता होती तो गुलाब भी कहता कि देखो, क्या फूल मैंने खिलाए हैं! कैसे फूल मैंने खिलाए हैं! क्या सुगंध है। और रातरानी भी कहती कि चुप रहो, बकवास बंद करो। सुगंध है तो मेरी है, कि सारा आंगन भर दिया है सुगंध से! तुम्हारी क्या सुगंध कि जब कोई पास आए, सूंघे तो बामुश्किल पता चले? सुगंध मेरी है! राह से गुजरते लोग भी आंदोलित हो रहे हैं। यह मैंने किया है!
मैंने सुना है, एक बच्चे ने एक पत्थर उठाया और एक महल की खिड़की की तरफ फेंक दिया। पत्थर जब उठने लगा ऊपर की तरफ, तो उसने पत्थरों की जो नीचे ढेरी थी जिसमें वह वर्षों से पड़ा था, अपने मित्रों, सगे-संबंधियों की तरफ चिल्ला कर कहा कि देखते हो मैं जरा महल की यात्रा के लिए जा रहा हूं। फेंका गया था, लेकिन कहा कि महल की यात्रा के लिए जा रहा हूं। कसमसा गए और पत्थर, ईर्ष्या से जल-भुन गए और पत्थर, मगर करते भी क्या! इनकार भी नहीं कर सकते थे। जा तो रहा ही था। उन्हें भी पता नहीं कि भेजा जा रहा है। और उनकी भी तो आकांक्षा थी कभी महल की यात्रा करें। यह महल पास में ही खड़ा है। यह सुंदर महल, पता नहीं इसके भीतर क्या हो रहा है! कभी गीत उठते हैं, कभी संगीत बजता है, कभी दीए जलते हैं, कभी दीवाली है, कभी होली है। पता नहीं क्या रंग, क्या ढंग भीतर गुजर रहा है! देखने की तो उनकी भी इच्छा थी। वे सब हार गए और उनका एक साथी जीत गया। जा रहा है, इनकार कर भी नहीं सकते। मन मसोस कर रह गए।

वह पत्थर ऊपर उड़ा और जाकर टकराया कांच की खिड़की से। कांच चकनाचूर हो गया। स्वभावतः, जब पत्थर कांच से टकराता है तो कांच चकनाचूर हो जाता है। यह पत्थर का ऋत और कांच का ऋत इसमें कुछ पत्थर की खूबी नहीं और कांच की कोई कमजोरी नहीं। यह सिर्फ स्वाभाविक नियम है, कि पत्थर कांच से टकराएगा तो कांच टूटता है। पत्थर कांच को तोड़ता नहीं, कुछ हथौड़ी लेकर कांच को तोड़ने नहीं बैठ जाता है। बस यह स्वाभाविक है। इसमें पत्थर को अकड़ने की कोई जरूरत नहीं है। न कोई कांच को दीन होने की जरूरत है। लेकिन कांच दीन-हीन हो गया। और पत्थर ने कहा, मैंने हजार बार कहा है, सुना नहीं तुमने? तुम्हें खबर नहीं? कितनी बार मैंने नहीं कहा है कि जो मुझसे टकराएगा चकनाचूर हो जाएगा! अब देख लो, अब खुद देख लो अपनी आंखों से क्या गति तुम्हारी हो गई है। मुझसे दुश्मनी लेना ठीक नहीं है।
और तभी पत्थर जाकर भीतर बहुमूल्य कालीन पर गिरा--ईरानी कालीन और पत्थर ने कहा, बहुत थक भी गया। लंबी यात्रा, आकाश में उड़ना। फिर दुश्मनों का सफाया। इस कांच से टकराना, कांच को चकनाचूर कर देना। यह विजय! थोड़ा विश्राम कर लूं।
विश्राम कर लूं--ऐसा सोच रहा है! गिरा है मजबूरी में; क्योंकि जिस बच्चे ने फेंका था वह ऊर्जा पूरी हो गई। जितनी ऊर्जा उस बच्चे के हाथ ने दी थी वह समाप्त हो गई। अब पत्थर को गिरना ही है। यह मजबूरी है, मगर मजबूरी को कोई स्वीकार करता है? हम तो मजबूरी में भी अहंकार खोज लेते हैं। हम तो वहां भी तरकीबें खोज लेते हैं। उस पत्थर ने भी खोज लीं। कहा कि थोड़ा विश्राम कर लूं, फिर आगे की यात्रा पर निकलूंगा।
तभी महल के दरबान ने, यह पत्थर का आना और कांच का टूटना, आवाज सुनी, पत्थर का गिरना, वह भागा आया। पत्थर पड़ा पड़ा ईरानी कालीन पर बहुत आनंद ले रहा था। सोच रहा था इस महल के लोग भी बड़े अतिथि-प्रेमी मालूम होते हैं। लगता है मेरे आने की खबर उनको पहले ही हो गई थी। कालीन इत्यादि बिछा रखे हैं। सब फानूस लटका दिए हैं। सुंदर चित्र लगा रखे हैं। दीवालों पर नया-नया ही रंग रोगन किया गया है। फर्नीचर भी सब ताजा ताजा है। तैयारी पूरी है। कहा भी है कि अतिथि तो देवता है। मैं अतिथि हूं! मेरे लिए ही यह इंतजाम हुआ है।
यही हमारी भाषा है। हर आदमी यही सोचता है कि मेरे लिए ही सारा इंतजाम हुआ है।। जैसे सब चांद तारे सूरज मेरे लिए ही उगते और डूबते हैं! यह सारा जगत, प्रत्येक व्यक्ति अपने आसपास ही घूमता हुआ अनुभव करता है कि मैं ही केंद्र हूं। पत्थर ने भी कुछ भूल तो न की, मनुष्य की भाषा में ही सोचा। दरबान ने पत्थर हाथ में उठाया और पत्थर ने सोचा कि दिखता है, महल का मालिक मुझे हाथों में उठा कर स्वागत कर रहा है कि धन्यभाग हमारे कि आप पधारे! पलक पांवड़े बिछाते हैं। स्वीकार करो हमारा आतिथ्य! हाथों में उठा कर यही कह रहा है। हाथों में उठाया था दरबान ने इसलिए कि वापिस फेंक दे। लेकिन यह बात तो कोई सोचता नहीं।
मौत तुम्हारी करीब आती है बौर तुम जन्म दिन मनाए चले जाते हो। मनाना चाहिए मृत्यु दिवस। हर साल मृत्यु दिवस मनाना चाहिए, मनाते हो जन्म दिवस। और जन्म तो पीछे छूटता जा रहा है, मौत करीब आती जा रही हैः हर साल एक एक साल और बीत गया। एक साल और गुजर गया। एक साल और कम हो गया। तुम्हारा जीवन घट और रीत गया। तुम व्यतीत हो रहे हो। तुम अतीत रहे हो। तुम समाप्त हो रहे हो। तुम बूंद-बूंद निचुड़ते जा रहे हो। मगर मनाते हो जन्म दिन। मृत्यु के दिन को तुम जन्म दिन मनाते हो! मरते हो और सोचते हो कि जीवन घटित हो रहा हो। घसिटते हो, लेकिन सोचते हो कि विजय यात्रा हो रही है!!
उस पत्थर को दरबान ने वापिस फेंक दिया। लेकिन पत्थर ने यही सोचा कि दरबान समझ सका... यह मालिक महल का समझ सका--वह तो मालिक ही समझ रहा था उसे-- कि मुझे घर की बहुत याद आ रही है, कि मुझे अपने प्रियजनों की बहुत याद सता रही है। मैं तो वापिस जाता हूं। अरे मुझे महलों से क्या लेना! महलों में रखा भी क्या है!
अंगूर खट्टे। मिलें न तो खट्टे, मिल जाएं तो मीठे। पत्थर वापिस गिरा अपनी ढेरी पर। गिरते समय उसने कहा, मित्रो, महल सुंदर था, बहुत सुंदर था!

मगर अपने घर की बात और, स्वदेश की बात ही और! तुम्हारी बड़ी याद आती थी, मैं तो वापिस लौट आया।
और कहने हैं, बाकी पत्थरों ने उससे कहा कि तुम हमारे बीच सबसे धन्यभागी पत्थर हो। तुम साधारण पत्थर नहीं, अवतारी हो। तुम अपनी जीवन कथा लिखो, ताकि बच्चों के काम आए।
अब वह पत्थर जीवन कथा लिख रहा है।
तुम्हारी भी जीवन कथा यही है। ऋत को कैसे समझोगे? अहंकार को थोपते जाते हो, आरोपित करते जाते हो। अहंकार को जरा हटा कर देखो, अहंकार का घूंघट हटा कर देखो! घूंघट के पट खोल! वह घूंघट क्या है? वह घूंघट का पट क्या है? किस चीज का घूंघट है तुम्हारे स्वभाव पर? अहंकार का। हटाओ अहंकार के घूंघट को! थोड़ा अपने में झांको। और तुम चकित हो जाओगे। तुम इस सूत्र का ही अर्थ, इस सूत्र का अभिप्राय, अभिप्रेत अनुभव कर पाओगे। ऋतस्य यथा प्रेत! ... तब तुम जानोगे कि जीवन की सम्यक कला ऋत के साथ एक होकर जीने में है; भिन्न होकर नहीं, अभिन्न होकर। जो इससे अलग होकर जीने की कोशिश करता है, टूटता है, हारता है, पराजित होता है। जो इसके अलग होकर जीने की कोशिश करता है, टूटता है, हारता है, पराजित होता है। जो इसके साथ जीता है, उसकी जीत सुनिश्चित है। उसकी जीत नहीं है, जीत तो ऋत की है हमेशा।
तुम यूं हो, अहंकार यूं है, जैसे कोई नदी में उलटी धार तैरना चाहे। थोड़े बहुत हाथ मार सकता है, मगर जल्दी थक जाएगा। नाहक थक जाएगा। और थकेगा तो नदी पर नाराज होगा। और कहेगा, यह दुष्ट नदी मुझे ऊपर की तरफ नहीं जाने देती। नदी जा रही है सागर की तरफ। तुम नदी के संगी-साथी हो लो। ऋतस्य यथा प्रेत! तुम नदी से लड़ो मत, नदी के साथ बहो। तैरो भी मत, बहो।
तुमने देखा, जिंदा आदमी नदी में डूब जाता है और मर जाता है और मुर्दा तैर जाता है! कुछ कला है जो मुर्दे को आती है, जो जिंदा को नहीं आती। जिंदा कैसे डूब गया और मुर्दा कैसे तैर गया? जिंदा नीचे जाता है, मुर्दा ऊपर आता है बात क्या है, मामला क्या है, रहस्य क्या है? रहस्य इतना ही है कि मुर्दा लड़ता नहीं है नदी से। लड़ सकता नहीं, मुर्दा समर्पित है समर्पित है। तो नदी का मित्र है। और मित्र को कौन हाथों पर न उठा ले! और जिंदा लड़ता है। हर तरह से लड़ता है; जब तक सांस है, लड़ता है, झगड़ता है। झगड़न में ही टूट जाता है। लड़ने में ही खुद की शक्ति गंवा बैठता है। लड़ने में ही डूबता है। लड़ने में ही मरता है
ऋतस्य यथा प्रेत। ऋत के अनुसार जीओ, अर्थात नदी के साथ बहो, लड़ो मत। यह जीवन की नदी, यह जीवन की सरिता परमात्मा के सागर की तरफ अपने-आप जा रही है। कुछ और करना नहीं है। इस जीवन के प्रति समर्पित हो जाओ। अस जीवन के साथ आपने को एक अनुभव करो। एक तुम हो, अनुभव करो या न करो! करो तो विजय का आनंद है। न करो तो पराजय की पीड़ा है।
लेकिन हमारी सारी शिक्षा इसके विपरीत है। हमारा सारा समाज इसके विपरीत है। हम प्रत्येक व्यक्ति को आचरण सिखाते हैं। अंतस का आविष्कार नहीं। आचरण का अर्थ हैः ऊपर से थोपी हुई बात। हम कहते हैंः ऐसे जीओ, ऐसा करो, ऐसा मत करना! यह पुण्य है, यह पाप है। दूसरे तय करते हैं। दूसरे अपने स्वार्थ से तय करते हैं। निश्चित, उनके अपने स्वार्थ होने वाले हैं। उन्हें तुमसे कोई प्रयोजन नहीं।
जब बच्चा पैदा होता है तो मां बाप तय करते हैं कि कैसे जीए, क्या बने क्या न बने। किसे पड़ी है बच्चे की, कि वह क्या बनने का राज लेकर आया है, कि उसका ऋत क्या है, किसी को प्रयोजन नहीं है। इसलिए तो हमने इतनी उदास मनुष्यता को जन्म दिया है, इतनी विक्षिप्त मनुष्यता को जन्म दिया है। जिसको संगीतज्ञ होना था, वह डाक्टर है। वह कभी सुखी नहीं होगा। वह सदा दुखी होगा। उसे बजानी थी वीणा। वह दवाइयों की बोतलें भर रहा है, प्रिस्क्रिप्शन लिख रहा है। जिसको दुकानदार होना था वह नौकरी कर रहा है। जिसको नौकरी करनी थी वह कविता कर रहा है। जिसको कवि होना था वह सब्जी बेच रहा है। सब औरों की जगह बैठे हुए हैं, कोई अपनी जगह नहीं है। कोई अपने स्वभाव में नहीं है, सब च्युत हो गए हैं। किसने किया यह सब उपद्रव? कौन कर रहा है यह उपद्रव? यह उपद्रव भी उनसे हो रहा है जो तुम्हारे बड़े

हिताकांक्षी हैं। यह बड़ी अच्छी अभिलाषा से हो रहा है। कौन मां-बाप अपने बच्चे को दुखी देखना चाहता है? लेकिन कौन मां-बाप अपने बच्चे को उसके स्वभाव के अनुसार जीने देने के लिए राजी हैं? मां बाप की अपनी महत्वाकांक्षाएं हैं, जो अतृप्त रह गईं। महत्वाकांक्षाएं तो सभी की अतृप्त रह जाती हैं, किसी की कभी पूरी होती नहीं।
बुद्ध ने कहा हैः तृष्णा दुष्पूर है। तृष्णा का स्वभाव ही है दुष्पूर होना, वह कभी पूरी नहीं होती। मां-बाप की अभिलाषाएं अधूरी रह गईं हैं, वे बच्चों के कंधों पर सवार होकर अपनी अभिलाषाएं पूरी करना चाहते हैं। हालांकि ऐसा वे सोचते नहीं, न ऐसा वे कहते हैं, न ऐसा उन्हें बोध है। वे तो सोचते हैं बच्चों के हित में वे यह कर रहे हैं। बच्चा कहता है, मुझे बांसुरी बजाना है। बाप कहता है, पागल फेंक बांसुरी, गणित कर, भूगोल पढ़, इतिहास पढ़। यह काम आएगा। बांसुरी बजा कर क्या भूखे मरना है, क्या भीख मांगनी है?
एक बहुत बड़े सर्जन की पचहत्तरवीं वर्षगांठ मनाई गई। नृत्य का आयोजन हुआ, भोज का आयोजन हुआ। उसके सारे मित्र, उसके सारे शिष्य इकट्ठे हुए। उन्होंने बड़ी प्रशंसा में, उसकी स्तुति में बड़ी-बड़ी बातें कहीं। कहा कि आपसे बड़ा सर्जन पृथ्वी पर नहीं है। लेकिन वह उदास ही बैठा रहा। उसके एक मित्र ने कहा कि हम सब उत्सव मना रहे हैं तुम्हारे पचहत्तरवें जन्म दिन का, दुनिया से, दूर दूर कोनों से तुम्हारे मित्र और तुम्हारे शिष्य इकट्ठे हुए हैं और तुम हो कि उदास बैठे हुए हो! तुम सफलतम व्यक्तियों में से एक हो।
उस सर्जन ने कहा, मत कहो यह बात, मत कहो! यह सारा उत्सव देख कर, नाचते हुए जोड़ों को देख कर मेरे चित्त में जो उदासी छा रही है, वह मैं जानता हूं। क्योंकि मैं वस्तुतः एक नर्तक होना चाहता था। लेकिन मेरे पिता ने मुझे सर्जन बना दिया। धक्के दे-देकर भेज दिया मुझे मेडीकल कॉलेज। मैं जाना चाहता था संगीत अकेडेमी में। आज तुम सबको नाचते देख कर मैं अनुभव रहा हूं, मेरा जीवन व्यर्थ गया। मुझे कोई आनंद नहीं मिला सर्जन होने से। धन मिला, सफलता मिली, आनंद नहीं मिला। मैं भीतर खाली का खाली रहा। मैं गरीब रहता, लेकिन नर्तक हो गया होता, तो मुझे आनंद मिलता।
और आनंद से बड़ी कोई संपदा है?
स्वभाव के अनुसार जब कोई चलता है तो आनंद घटता है और स्वभाव के प्रतिकूल जब कोई चलता है तो दुख। दुख और सुख की तुम परिभाषा ख्याल रखना। सुख का अर्थ हैः स्वभाव के अनुकूल। कभी भूल चूक से जब तुम स्वभाव के अनुकूल पड़ जाते हो तो सुख होता है। भूल चूक से ही पड़ते हो तुम, क्योंकि तुम्हें बोध तो है नहीं। कभी आकस्मिक रूप से संग-साथ हो जाता है तुम्हारा स्वभाव का, यह और बात। लेकिन जितनी देर को संग-साथ हो जाता है, उतनी देर के लिए जीवन में रोशनी आ जाती है। जितनी देर के लिए संग-साथ हो जाता है, जीवने में नृत्य और उत्सव आ जाता है। मगर यह सब आकस्मिक है। कभी कभी हो जाता है। आमतौर से तो तुम अपने साथ जबरदस्ती किए जाते हो; वही तुम्हें सिखाया गया है। इसको अच्छे-अच्छे नाम दिए हैं--अनुशासन, कर्तव्य, शिक्षा, दीक्षा। मगर क्या करते हैं हम शिक्षा दीक्षा में? महत्वाकांक्षा सिखाते हैं।
सम्यक शिक्षा का अभी पृथ्वी पर जन्म नहीं हुआ है। हो जन्म तो इस पृथ्वी पर एक एक व्यक्ति उत्सव हो। हर व्यक्ति में फूल खिलें। हर व्यक्ति में सुगंध हो, ज्योति जले। लेकिन सब उदास, सब बुझे दीए बैठे हैं। सारी पृथ्वी पर विषाद ही विषाद है। किसी तरह ढकेले जामे हैं, जीए जाते हैं। एक ही आशा है कि कोई सदा थोड़े ही जिंदा रहना है, अरे कभी तो खत्म हो ही जाएंगे। और इतने दिन गुजारा और थोड़े दिन गुजार लेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी, मरणशैया पर पड़ी थी। डॉक्टर ने उसके कान में फुसफुसा कर कहा कि क्षमा करो, तुम्हारी पत्नी दो-तीन महीने से ज्यादा नहीं जी सकेगी।
मुल्ला ने कहा, कोई फिक्र न करो। अरे जब तीस साल गुजार दिए तो तीन महीने और गुजार देंगे। क्यों इतने दुखी हो रहे हो? तीन ही महीने की बात है, गुजार देंगे।

यहां न कोई प्रेम अनुभव कर रहा है, न कोई धन्यभाव अनुभव कर रहा है। मामला क्या हो गया है? पशु पक्षी भी ज्यादा आनंदित मालूम होते हैं। तुमने कभी किसी कोयल से बेसुरापन सुना किसी कोयल से? तुमने कभी किसी कोयल के कंठ से बेसुरे राग उठते देखे? सभी कोयलों के कंठ से सदा सुर भरे राग ही उठते हैं। तुमने किसी पपीहे को जब पी-कहां पुकारता है, तो अनुभव किया? सारे पपीहे एक ही माधुर्य से पी-कहां पुकारते हैं। तुमने किसी हरिण को कुरूप देखा? सभी हरिण सुंदर मालूम होते हैं। जरा जंगल जाओ, पशु पक्षियों को देखो। सभी प्रफुल्लित, सभी मस्त, सभी अपने चाल में मदमाते! आदमी को क्या हो गया है? आदमी, जो कि इस पृथ्वी का सबसे ज्यादा श्रेष्ठ चैतन्य का मालिक है, बुद्धिमत्ता का धनी है, इसको क्या हो गया है? इस पर कौन सा दुर्भाग्य घटा है? इस पर कौन सा अभिशाप पड़ गया है?
पशु-पक्षियों के पास इतनी बुद्धि नहीं है कि वे स्वभाव के विपरीत जा सकें। सहज ही स्वभाव के अनुकूल होते हैं। आदमी का सौभाग्य भी यही है कि उसके पास बुद्धि है और दुर्भाग्य भी यही है कि उसके पास बुद्धि है। अब तुम्हारे हाथ में है, तुम चाहे सौभाग्य बना लो चाहे दुर्भाग्य। धन्य हैं वे लोग जो अपनी बुद्धि का उपयोग ऋत के साथ जोड़ लेते हैं। और अभागे हैं वे जन, जो ऋत के विपरीत चल पड़ते हैं।
ध्यान है ऋत के आविष्कार की प्रक्रिया। ध्यान का अर्थ होता हैः साक्षीभाव। भीतर साक्षीभाव से देखो कि तुम्हारी निजता क्या है। और अपनी निजता की उद्घोषणा करो, चाहे कुछ भी कीमत चुकानी पड़े। भूखा मरना पड़े, गरीब होना पड़े, मगर अगर बांसुरी बजाने में ही तुम्हारा रस है तो बांसुरी ही बजाना। तुम होकर भी सिकंदर महान से ज्यादा सुखी हो होओगे। मत बेच देना अपनी आत्मा को, क्योंकि आत्मा बेचने का एक ही अर्थ होता हैः ऋत के विपरीत चले जाना। आचरण थोथा है, ऊपर से आरोपित है। दूसरों ने कह दिया--ऐसा करो, ऐसा उठो, ऐसा बैठो--और तुम मान कर चले जा रहे हो। तुम नकलची हो गए हो। तुम पाखंडी हो गए हो। तुमने एक पर्त ओढ़ ली है ऊपर से, एक चदरिया ओढ़ ली है राम नाम की। और भीतर? भीतर तुम कुछ और हो। तो तुम्हारे भीतर खंड हो गए। तुम्हारा व्यक्तित्व विभाजित हो गया। और जहां विभाजन है वहां विषाद है। क्योंकि संगीत टूट जाता है। बांसुरी अलग बज रही है, तबला अलग बज रहा है; दोनों में कोई तालमेल नहीं है। तबला बांसुरी को नष्ट कर रहा है, बांसुरी तबले को नष्ट कर रही है; दोनों एक-दूसरे की दुश्मनी साधे हुए हैं। संगत नहीं बैठ रही है, साज नहीं बैठ रहा है। सब बेसाज हुआ जा रहा है!
तुम जरा अपने को भीतर देखो, सब बेसाज हुआ जा रहा है। और क्या कारण है बेसाज हो जाने का? तुमने अपनी न सुनी, औरों की सुनी। और औरों को क्या पता कि तुम क्या होने को पैदा हुए हो, तुम्हारी नियति क्या है? औरों को क्या पता कि तुम्हारे जीवन का अभिप्रेत क्या है? तुम्हें पता नहीं तो औरों को कैसे पता होगा? औरों को अपना पता नहीं, तुम्हारा कैसे पता होगा?
संन्यास का मैं एक ही अर्थ करता हूंः अपनी निजता की उद्घोषणा। संन्यास बगावत है, विद्रोह है--समस्त थोपे गए आचरण के विपरीत; दूसरों की जबरदस्ती के विपरीत। संन्यास इस बात का स्पष्ट स्वीकार है कि मैं अब अपने ढंग से जीऊंगा, चाहे जो परिणाम हो। मैं किसी और के द्वारा नहीं जीऊंगा। कोई और मुझे खींचतान करे तो मैं इनकार करूंगा। न तो में किसी की जबरदस्ती सहूंगा और न किसी पर जबरदस्ती करूंगा। संन्यास इन दो बातों की घोषणा है। ये दो बातें एक ही सिक्के के पहलू हैं--दो पहलू, मगर सिक्का एक। मैं स्वतंत्रता से जीऊंगा।
यह स्वतंत्रता शब्द बड़ा प्यारा है। दुनिया की किसी भाषा में ऐसा शब्द नहीं। स्वतंत्रता का अर्थ होता हैः स्वयं का तंत्र, स्वयं के आंतरिक बोध में जीना। और वही स्वच्छंदता का भी अर्थ होता है। बिगड़ गया, लोगों ने उसका अर्थ खराब कर लिया है। जिन्होंने खराब कर लिया है, वे ही लोग हैं तुम्हारे दुश्मन। उन्होंने ही तुम्हें खींच खींच कर परतंत्र किया है। मगर परतंत्र भी जब किसी को करना हो तो होशियारी से करना होता है। जंजीरें भी पहनानी हों तो सोने की पहनाओ, क्योंकि वे आभूषण लगेंगी और आभूषण के धोखे में आदमी पहन लेगा। मछली को भी पकड़ने जाते हैं तो कांटे में आटा लगाते हैं। कोई

मछली कांटा तो लीलने को राजी होगी नहीं, आटा लीलने को राजी हो जाती है। और आटे के साथ कांटा चला जाता है। जंजीरें बनानी हों तो कम से कम सोने का पालिश तो चढ़ा ही दो। न मिलें असली हीरे-जवाहरात तो सस्ते खरीद कर नकली लगा दो, मगर चमकदार पत्थर होने चाहिए। ऐसी भ्रांति हो जाए कैदी को कि ये आभूषण हैं, तो फिर तुम्हें उस पर पहरा नहीं बिठाना पड़ेगा। वह खुद ही अपने आभूषणों की रक्षा करेगा।
संन्यास इस बात की घोषणा है कि दूसरे आभूषण भी दें तो जंजीरें बन जाते हैं। दूसरा तुम्हें परतंत्रता ही दे सकता है। और दूसरे तुम्हें समझाते हैं कि देखो स्वच्छंद मत हो जाना। हालांकि स्वच्छंद शब्द बड़ा प्यारा है। उसका अर्थ हैः स्वयं के छंद को उपलब्ध हो जाना। बड़ा अद्भुत शब्द है! स्वयं के गीत को--छंद यानी गीत! हमारे पास एक उपनिषद हैः छांदोग्य उपनिषद। छंद बड़ा प्यारा शब्द है। ऋत का भी वही अर्थ है। तुम्हारे भीतर का जो नाच है, जो गीत है, जो संगीत है, जो स्वर है--उसको ही जीओ। जरूर कठिनाई होगी। तलवार की धार पर चलने जैसा है, क्योंकि ये चारों तरफ जो लोग तुम्हें घेरे हुए हैं, कोई भी बर्दाश्त न करेंगे। क्योंकि जो व्यक्ति अपने छंद से जीता है वह बहुत बार दूसरों की आज्ञा स्वीकार करने में अपने को असमर्थ पाता है। हर बात में हां न भर सकेगा। जब उसके स्वयं के छंद के अनुकूल होगी तो हां भरेगा, जब प्रतिकूल होगी तो विनम्रता से नहीं कहेगा। वह आज्ञाकारी नहीं हो सकता। जरूरत नहीं है कि वह जरूरी रूप से आज्ञा का खंडन करे। मगर आज्ञा को तब तक ही मानेगा जब तक उसके छंद के साथ तालमेल है; जहां छंद से तालमेल टूटा, वहां पिता कहते हों, कि शिक्षक कहते हों, कि राजनेता कहते हों, कि धर्मगुरू कहते हों, कोई भी कहता हो... । स्वयं के छंद से बड़ी कोई चीज नहीं, क्योंकि स्वयं का छंद ईश्वर की वाणी है। वह तुम्हारे भीतर बैठे हुए परमात्मा का स्वर है। उसके अनुसार जीना संन्यास है और उसको खोज लेना ध्यान है।
प्यारा है यह सूत्रः ऋतस्य यथा प्रेत! ऋत के अनुसार जीओ। यह क्रांति
का मूलसूत्र है। यह आध्यात्मिक क्रांति का आधार है, बुनियाद है। यह एक चिनगारी है, जो तुम्हारे भीतर आग को पैदा कर देगी। तुम्हें आग्नेय कर देगी। तुम प्रज्जवलित हो उठोगे। तुम न केवल खुद प्रकाशित हो जाओगे, तुम्हारे प्रकाश से दूसरे भी प्रकाशित होने लगेंगे। तुम्हारी ज्योति से दूसरे भी अपने बुझे दीयों को जला सकते हैं।
मगर यह जमीन गुलामों से भरी है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन है। ये सब गुलामों के नाम हैं। मैं तुमसे नहीं कहता कि जैन बनो। मैं कहता हूंः जिन बनो! जिन यानी विजेता। जैसे महावीर जिन थे। महावीर जैन नहीं थे। जैन वह है जो नकल कर रहा है, जो महावीर के ढंग से चलने की कोशिश कर रहा है। और ध्यान रखना, दुनिया में दो महावीर न पैदा हुए हैं, न होंगे। इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा अद्वितीय बनाता है, बेजोड़ बनाता है। और जब तुम किसी की नकल करते हो, तुम परमात्मा का अपमान करते हो। तुम अपना भी अपमान करते हो। ये दोनों एक ही बात है--परमात्मा का अपमान करना या अपना अपमान करना।
और जब तुम नकल करोगे तो एक बात ख्याल रखना, जिसकी तुम नकल कर रहे हो वह
तो तुम हो ही न पाओगे। वह तो हो ही नहीं सकता। वह तो ऋत के विपरीत है। क्योंकि दो आदमी एक जैसे न कभी होते हैं, न हो सकते हैं। और दूसरा खतरा है कि दूसरे होने की कोशिश में तुम्हारी सारी ऊर्जा लग जाएगी, तो स्वयं होने के लिए ऊर्जा न बचेगी। दूसरे तुम हो न सकोगे। और स्वयं तुम जो हो सकते थे, वह तुम हो न पाओगे। तुम्हारा जीवन विडंबना हो जाएगा। तुम्हारा जीवन एक तनाव--सिर्फ एक तनाव, एक चिंता, एक व्यथा हो जाएगी।
हर आदमी के चेहरे पर व्यथा लिखी है। व्यथा ही हमारी एकमात्र कथा है,
और हमारे पास कुछ भी नहीं। दुख ही दुख! और सबसे बड़ा दुख यह है कि व्यक्ति अपने केंद्र से च्युत हो जाए। और सारे तुम्हारे हितेच्छु तुम्हें च्युत करने में लगे हैं। वे भी अंधे हैं। कोई जानकर नहीं कर रहे हैं। सारी शिक्षा की आयोजन ऐसी है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके स्वभाव से हटा देती है। महत्त्वाकांक्षा दे देती है। पद पर पहुंचने की दौड़ दे देती है। धन

कमाने की एक विक्षिप्तता पैदा कर देती है। आगे हो जाओ, सबसे आगे हो जाओ! दौड़ो, लड़ो! फिर कोई भी साधन हों, येन केन प्रकारेण, लेकिन तुम्हें पद पर होना है! धनी होना है! और कोई नहीं पूछता कि पद पर होकर करोगे क्या? धन ही पा लोगे तो करोगे क्या? अगर खुद को गंवा दिया और सारी दुनिया का धन भी पा लिया तो क्या सार है, क्या हाथ लगेगा? ? खाक भी हाथ नहीं लगेगी।
लकड़ी जल कोयला भइ कोयला जल भइ खाक,
मैं पापिन ऐसी जली कोयला भइ न राख।
ऐसे जलोगे कि न कोयला हाथ लगेगा, न राख हाथ लगेगी।। कुछ भी हाथ न लगेगा। व्यर्थ ही जल जाओगे। लेकिन न तो अभी सम्यक शिक्षा पैदा हो सकी है, न सम्यक सभ्यता पैदा हो सकी है, क्योंकि बिना शिक्षा के कैसे सभ्यता पैदा हो? और जब सभ्यता ही पैदा नहीं हो सकती तो संस्कृति कैसे पैदा हो? शिक्षा पहली चीज है। सम्यक शिक्षा अर्थात स्वयं के ऋत के अन्वेषण की विधि। उससे दोनों चीजें पैदा होंगी! बाहर के जगत में सभ्यता पैदा होगी; तुम्हारे दूसरों से जो संबंध है, बड़े प्रीति और आनंद का हो जाएगा। और उससे संस्कृति पैदा होती है। संस्कृति भीतरी चीज है, आंतरिक चीज है। तुम्हारा आत्म परिष्कार होगा। तुम्हारे भीतर जो भी कूड़ा करकट है छंटता जाएगा। तुम्हारे भीतर परमात्मा की मूर्ति निखरती आएगी।
जार्ज बर्नाड शॉ से किसी ने कहा कि आपका सभ्यता के संबंध में क्या ख्याल है? जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा, सभ्यता बहुत अच्छा विचार है, लेकिन किसी को उस विचार को क्रियांवित करने की कोशिश करनी चाहिए। विचार ही है सिर्फ। अभी आदमी सभ्य हुआ नहीं। अभी हम सभ्यता पूर्व अवस्था में हैं। और संस्कृति तो बहुत दूर की बात है, जब सभ्यता ही नहीं हुई। सभ्यता यानी बाहर के संबंध, तो भीतर का परिष्कार तो अभी कैसे होगा? और दोनों नहीं हो पा रहे हैं, क्योंकि शिक्षा हमारी बुनियादी रूप से गलत है।
जिस शिक्षा में ध्यान आधार नहीं है, वह शिक्षा कभी भी सही नहीं हो सकती। वह क्या सिखाएगी? धन सिखाएगी, पद सिखाएगी, प्रतिष्ठा सिखाएगी, अहंकार सिखाएगी,। ये अहंकार के ही सींग हैं--पद प्रतिष्ठा इत्यादि- इत्यादि। और ध्यान तुम्हें निरहंकारिता सिखाता है। और निरहंकारिता में ही तो ऋत का अनुभव हो सकता है। जब मैं नहीं हूं तभी तो पता चलता है कि परमात्मा है। जहां मैं गया वहां परमात्मा है। और जहां मैं नहीं वहां ऋत है।
ऋत परमात्मा से भी प्यारा शब्द है। क्योंकि परमात्मा से खतरा है कि कहीं तुम पूजा न करने लगो। ऋत में तो यह खतरा नहीं है। ऋत की पूजा नहीं की जा सकती। ऋत के अनुसार जीआ जा सकता है। ऋत जीवन बनता है, परमात्मा आराध्य बन जाता है; वह खतरा है, शब्द खतरा है। इसलिए बुद्ध जैसे अदभुत व्यक्ति ने परमात्मा शब्द का उपयोग ही नहीं किया, इनकार ही कर दिया कि छोड़ो यह बकवास है। धर्म की बात करो, परमात्मा की बात मत करो।
आमतौर से हम सोचते हैं कि परमात्मा के बिना कैसा धर्म? लेकिन बुद्ध ने कहाः धर्म पर्याप्त है। धर्म यानी ऋत। धर्म यानी जिसने सबको धारण किया है। धर्म यानी जिसके आधार पर हम जी रहे हैं; श्वास ले रहे हैं, हम चेतन हैं। उसको ही समझ लो। उसको ही पहचान लो। ध्यान उसी के आविष्कार की कला है। जैसे हर जगह जमीन के नीचे पानी है, कुदाली उठा कर खोदो तो पानी मिल जाएगा। ध्यान कुदाली है हरेक के भीतर ऋत है। जरा खोदो। समाज ने बहुत सी मिट्टी तुम्हारे ऊपर जमा दी है। न मालूम कहां-कहां के कचरे विचार तुम्हारे ऊपर आरोपित कर दिए हैं! उन सबको जरा हटा डालो। कूड़ा करकट को अलग कर दो, पत्थर मिट्टी को तोड़ डालो और तुम्हारे भीतर झरना फूट पड़ेगा। फिर उस झरने को जीओ। वही झरना तुम हो, तुम्हारा स्वभाव है--तुम्हारी स्वतंत्रता, तुम्हारी स्वछंदता, तुम्हारी निजता, तुम्हारा अहोभाव। फिर तुम जैसा भी जीओगे वही ठीक है, वही सम्यक है, वही पुण्य है।
ऋत के विपरीत जाना पाप है। ऋत के साथ कदम उठाना पुण्य है। ऋत के विपरीत जो गया उसका परिणाम दुख है। और ऋत के साथ जो बड़ा उसका परिणाम महासुख है।
दूसरा प्रश्नः भगवान,

जिंदगी सहरा भी है और
जिंदगी गुलशन भी है
प्यार में खो जाओगे तो
जिंदगी मधुबन भी है।
रात मिट जाती है आता है
सवेरे का जनम
धीरे-धीरे टूट जाता है
अंधेरे का भी दम
हंसते सूरज की तरह से
जिंदगी रोशन भी है
पार उतरेगा वही जो
खेलेगा तूफान से
मुश्किलें डरती हैं
नौजवां इंसान से
मिल ही जाएंगे सहारे
जिंदगी दामन भी है
प्यार में खो जाओगे तो
जिंदगी मधुबन भी है
भगवान, इस बेबूझ पहेली को समझाने की कृपा करें।
कृष्ण सत्यार्थी,
जीवन समस्या नहीं है, इसलिए सुलझाया नहीं जा सकता। जीवन पहेली भी नहीं है, क्योंकि हर पहेली के उत्तर होते हैं। जीवन का कोई उत्तर नहीं। जीवन एक रहस्य है। निश्चित ही बेबूझ है।
रहस्य का अर्थ होता हैः जिसे सुलझाया न जा सके; जिसे सुलझाने की कोई जरूरत भी नहीं है। जीवन को जीओ, सुलझाना क्या है? सुलझा कर करोगे भी क्या? कुछ हैं ऐसे पागल जो सुलझाने में ही लगे रहते हैं। वे सुलझाते रहते हैं कि प्रेम क्या है। अरे प्रेम करो, सुलझाना क्या है? और कैसे सुलझाओगे बिना प्रेम किए? जान ही कैसे पाओगे? हां पुस्तकालय में बैठ कर प्रेम पर लिखी गई सैकड़ों किताबें पढ़ सकते हो, प्रेम के संबंध में हजारों सूचनाएं इकट्ठी कर सकते हो; लेकिन प्रेम के संबंध में जानना प्रेम को जानना नहीं है। और प्रेम को वह जानेगा जो समझने की फिक्र न करे। समझने की फिक्र जिसने की वह जान ही न पाएगा।
जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।।
यह कबीर का वचन ख्याल करो। मैं बौरी खोजन गई! मैं पागल खोजने तो गई थी, रही किनारे बैठ, मगर किनारे ही बैठी रही। समझने की कोशिश करोगे तो किनारे ही बैठे रह जाओगे। उतरो, डुबकी मारो। जिन खोजा तिन पांइयां, गहरे पानी पैठ! ऐसे डूबो कि फिर निकलने को भी न रह जाए कुछ शेष। डूबो ही नहीं, एक हो जाओ, तत्सम हो जाओ, तादात्म्य हो जाए।
जीवन को समझने की कोशिश में एक उपद्रव हो जाता है कि तुम जीने से वंचित हो जाते हो, किनारे बैठ जाते हो। जीवन जीने का नाम है। जीओ! और जितने बहु-आयामी ढंग से जी सको उतने बहुआयामी ढंग से जीओ।
इसलिए मैं पुराने संन्यास के विरोध में हूं, क्योंकि वह एक आयामी जीवन था--भगोड़ेपन का, पलायन का। वह जीवने से भागना था। वह जीवन की भगवत्ता को स्वीकार करना नहीं था। वह, जीवन पाप है, इसकी घोषणा थी। और जीवन से भाग जाने में पुण्य समझा गया था। भागोगे कहां? जंगल में जाओगे। अगर ठीक से देखो तो वहां भी जीवन है--वृक्षों का जीवन है, पशुओं का जीवन है, पक्षियों का जीवन है। भागोगे कहां? चारों तरफ जीवन ही जीवन है। चांद-तारों पर भी चले जाओगे तो चांद तारों का जीवन होगा। आदमियों से भाग सकते हो। और मजा यह है कि आदमी हो तुम आदमियों के साथ जीने में ही तुम्हें जीवन की गहराई मिलेगी। पत्थरों के साथ जीओगे, पत्थर हो जाओगे। स्वभावतः संग साथ का परिणाम होता है। इसलिए तुम्हारे गुफाओं में बैठे हुए लोग अगर मुर्दा पत्थरों की तरह हो जाते हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं है। भगोड़ों को और मिलेगा

भी क्या? जीवन को उसके अनंत अनंत रंगों में जीओ। यह पूरा इंद्रधनुष है। इसके सातों रंग जीने योग्य हैं।
हां, इतना ही ख्याल रहे कि साक्षीभाव से जीओ, होशपूर्वक जीओ। और होशपूर्वक की शर्त भी इसलिए है, ताकि पूरे-पूरे जी सको। बेहोश जीओगे तो अधूरे जीओगे। पूरे-पूरे जीओ। जागे हुए जीओ। मस्त होकर जीओ जरूर। जागने का मतलब यह मत समझ लेना कि मस्ती गंवा देनी है।
जीवन का यही तो सबसे बड़ा रहस्यपूर्ण हिस्सा है कि यहां एक ऐसा होश भी
है जो साथ ही साथ बेहोशी से भी ज्यादा गहरा होता है। यहां एक ऐसी बेहोशी भी है, जो साथ ही साथ होश के दीए से जगमगाती है। बाहर की शराब पीओगे तो बेहोश होओगे। भीतर की शराब पीओगे तो मस्ती भी होगी, बेहोशी भी होगी और होश भी न खोएगा। यह विरोधाभास घटता है। यही तो पहेली है--बेबूझ पहेली है यही रहस्य है।
जिंदगी सहरा भी है और जिंदगी गुलशन भी है। दोनों है। खिजां भी और मधुमास भी। वसंत भी और पतझड़ भी। बगीचा भी, रेगिस्तान भी। सब जिंदगी के अलग-अलग पहलू हैं। रेगिस्तान का अपना सौंदर्य है, जो किसी बगीचे में नहीं होता। कहां रेगिस्तान का सन्नाटा! कौन बगीचा उसका मुकाबला करेगा? कहां रेगिस्तान की ताजगी! दूर दूर तक फैला हुआ विस्तार, असीमता! कौन बगीचा उसका मुकाबला करेगा?
बगीचे का अपना सौंदर्य है। ये रंग-बिरंगे फूल, ये पक्षियों के गीत, ये वृक्षों का नृत्य... कौन रेगिस्तान इसका मुकाबला करेगा? मैं कहता हूंः चुनो मत। रेगिस्तान भी तुम्हारा है, मरूद्यान भी तुम्हारा है! यह सारा जीवन हमारा है। हम जीवित हैं, इसलिए हमें जीवन के सारे अंगों को छूना चाहिए। जितने अंगों को तुम छुओगे उतनी ही तुम्हारी आंतरिक समृद्धि होगी। अपने जीवन को रेलगाड़ी की पटरी जैसा मत बनाओ, मालगाड़ी के डिब्बे हो जाओगे नहीं तो। बस चले उसी पटरी पर, शंटिग ही करते रहोगे। ज्यादातर तो शंटिग ही करते हैं मालगाड़ी के डब्बे। बस इधर से उधर होते रहते हैं। और वही पटरी है बंधी हुई, उसी पर चलते रहना है, लीक, लकीर के फकीर।
नहीं, रेलगाड़ी की पटरी की तरह मत हो जाओ। मैं तो कहता हूं, नहर की तरह
भी मत होओ, नदी की तरह होना चाहिए। नहर में भी बंधाव हो जाता है। वह बंधी हुई धारा है। नदी की तरह कभी बाएं मुड़ते, कभी दाएं मुड़ते--और अज्ञात की यात्रा पर! और प्रतिपल अन्वेषण का है, आविष्कार का है। प्रतिपल नए नए का अनुभव है।
जिंदगी जीने वाले की है और जो जीता है वही जान पाता है। मगर जानना कुछ ऐसा गहरा है कि जान कर कोई कह नहीं सकता कि मैंने जान लिया। कहे कि जान लिया समझो कि नहीं जाना।
उपनिषदों का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जो कहे मैंने जान लिया, जानना कि नहीं जाना।
सॉक्रेटीज ने कहा कि मैं इतना ही जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता।
यह परम ज्ञान की अवस्था है।
उपनिषद का एक और अदभुत सूत्र है, लेकिन भारतीय पंडित उससे किस तरह चूकते गए हैं इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। उस सूत्र को तो भारत के हर पंडित की खोपड़ी पर खोद देना चाहिए। वह सूत्र कहता है कि अज्ञानी तो अंधेरे में भटकते ही हैं, ज्ञानी और महाअंधकार में भटक जाते हैं। क्या अदभुत बात है! जिसने कही होगी, किन गहराइयों से कही होगी! अज्ञानी तो भटकते ही हैं अंधकार में स्वभावतः लेकिन तथाकथित ज्ञान का जिनको अहंकार है, ज्ञानी पंडित है, हैं तो तोता--पंडित तोताराम--लेकिन इस भ्रांति में हैं कि उनको ज्ञान हो गया है। यह हमेशा भ्रांति ही है।
जो जीवन को जानेगा, जान ही लेगा, मगर गूंगे का गुड़ है। स्वाद तो ले लेगा। तुम पूछोगे तो मुस्कराएगा। तुम पूछोगे तो हो सकता है बांसुरी बजाए कृष्ण की तरह कि मीरा की तरह नाचे कि बुद्ध की तरह आंख बंद कर ले। तुम पूछोगे तो जवाब न देगा। तुमसे यह कहेगा कि तुम भी बैठ जाओ चुप्पी में जैसा मैं बैठा, कि तुम भी नाचो जैसा मैं नाच रहा, शायद तुम भी जान लो। जान लो तो

ही जान पाओगे। मेरे कहे से कुछ भी न होगा। मेरे कहे से तो बात खराब हो जाएगी।
जीवन अगर समस्या होती तो उत्तर खोजा जा सकता था, उत्तर दिया जा सकता था।
लेकिन अच्छा है कि जीवन समस्या नहीं है। नहीं तो एक बुद्ध हो जाता और उत्तर दे जाता, बात खतम हो गई, फिर तुम क्या करते? तुम्हारे लिए कुछ भी न बचता। अच्छा है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना स्वयं खोजना होता है। स्वयं का मजा कुछ और है, रस ही और है, आनंद ही और है। और परमात्मा ने यह आयोजन किया हुआ है--यह ऋत है, एस धम्मो सनंतनो--कि किसी दूसरे का सत्य कभी तुम्हारा सत्य नहीं हो सकता।
इसलिए कोई कहना चाहे तो कह नहीं सकता; कहने की कोशिश भी करे तो कह नहीं पाता। और कह भी दे समझने वाला समझ नहीं पाता, सुनने वाला कुछ से कुछ सुन लेता है।
जीवन की मदिरा पीओ। और यह मदिरा बड़ी अनूठी है, विरोधाभासी है। बेहोश
भी होओगे और जागोगे भी साथ साथ।
यारो मुझे मुआफ करो, मैं नशे में हूं
अब तो जाम खाली दो, मैं नशे में हूं
यारो, मुझे मुआफ करो।
मासूर हूं जो पांव मेरा बेतरह पड़े
तुम सरगरां तो मुझसे न होओ
यारो मुझे मुआफ करो, मुआफ करो
या तो हाथ दो मुझे जैसे कि जामे-मय
या थोड़ी दूर साथ चलो, मैं नशे में हूं
यारो, मुझे मुआफ करो
मुआफ करो, मैं नशे में हूं
एक नशा बाहर का, जहां कि पैर डगमगा जाते हैं। और एक नशा भीतर का, जहां डगमगाते पैर ठहर जाते हैं, संभल जाते हैं। एक नशा बाहर का, जो अंधा कर देता है। और एक नशा भीतर का, जो आंखें दे जाता है।
ध्यान की शराब पीओ, कृष्ण सत्यार्थी। जीवन की पहेली को बूझने मत बैठो। यह पहेली ही नहीं है, इसलिए कभी बूझ न पाओगे। और बूझते रहे तो बूझते- बूझते लाल-बुझक्कड़ हो जाओगे, कुछ हाथ न लगेगा। और जो भी बूझोगे, उल्टा सीधा होगा।
लाल बुझक्कड़ की कहानियां तो तुमने पढ़ी ही हैं। गांव से एक हाथी निकल गया। सुबह गांव के लोग बड़े चिंतित, विचार में पड़ गए। सारा गांव इकट्ठा, क्योंकि पैर के निशान थे। रात हाथी निकल गया, किसी ने देखा नहीं। और हाथी उस गांव से कभी निकला न था। उस इलाके में हाथी होते न थे। उस दिन गांव में कामधाम न हुआ! कैसे हो! ऐसी बड़ी पहेली आ खड़ी हुई! कोई खेत पर न गया, कोई बगीचे में न गया। लोग खाना पीना भूल गए। सारा गांव वहीं इकट्ठा है कि माजरा क्या है, यह पहेली क्या है। अगर कोई जानवर निकला है तो कितना बड़ा न होगा। इसके पैर तो देखो! और जानवर तो देखा नहीं कभी, होता नहीं।
फिर गांव में जो लाल बुझक्कड़ था--हर गांव में होते हैं--उसने कहा, कुछ इसमें चिंता की बात नहीं। मैंने सब राज खोल लिया। यह कुछ खास बात नहीं है। सीधी सीधी बात है। पैर में चक्की बांध कर हरिणा कूदा होय! कुछ और मामला नहीं है। किसी हरिण ने पैर में चक्की बांध कर कूदा है। सो निशान तो बन गए बड़े बड़े, रहा हिरण।
और गांव तृप्त हो गया कि क्या बात खोज ली लाल बुझक्कड़ ने! फिर एक दफे चोरी हो गई इसी गांव में। शहर इंस्पेक्टर आया। बहुत खोजबीन की, कुछ पता न चले। फिर लोगों ने कहा कि भैया, ऐसे पता नहीं चलेगा। एक दफा अड़चन आ गई थी हमको, इधर से कोई जानवर निकला था, कोई सूझ न सका, कोई बूझ न सका। बड़े-बड़े पंडित सिर खुजाने लगे। शास्त्रों में उल्लेख नहीं था। लेकिन गांव में हमारे लाल बुझक्कड़ हैं, हर चीज को बूझ देता है। उसने बूझ दिया, मिनट में बूझ दिया। जैसे ही आए, उसने कहा कि क्यों परेशान हो रहे हो। पैर में चक्की बांध कर हरिणा कूदा होय। अब तो मामला उससे सुलझेगा।

इंस्पेक्टर ने भी सोचा कि चलो, कोई बात नहीं, कोई और रास्ता तो मिल नहीं रहा, पूछ ही लें। यह कौन लाल बुझक्कड़ हैं! लाल बुझक्कड़ को लाया गया। उन्होंने इंस्पेक्टर से कहा, कुछ मामला बड़ा नहीं। मगर एकांत में बताऊंगा, बिल्कुल एकांत में बताऊंगा। क्योंकि मैं झंझट में नहीं पड़ना चाहता! मैं बता दूं कि किसने चोरी की, फिर वह मुझे परेशान करे। तो इसकी कसम खाओ, खाओ बाप की कसम, कि किसी को मेरा नाम नहीं बताओगे। और एकांत में बताऊंगा, कोई सुने नहीं।
तो लेकर लाल बुझक्कड़ उसको गांव के बाहर गए। जब बहुत दूर निकल आए, आदमी
भी छूट गए, रास्ता भी बहुत दूर रह गया, गांव भी दिखाई भी न पड़े। इंस्पेक्टर थोड़ा घबड़ाने लगा कि यह आदमी कैसा है! इससे पूछा कि भई अब तो बता, अब यहां कोई भी नहीं, पशु-पक्षी भी नहीं, गाय भैंस भी पीछे छूट गईं। अब रात भी आई जा रही है। तू कहां तक लिए जा रहा है?
और कान में लाल बुझक्कड़ ने क्या कहा, कहा कि ऐसा लगता है, किसी चोर ने चोरी की है! इसको बताने के लिए इतनी दूर लेकर आए... किसी चोर ने चोरी की है! इंस्पेक्टर ने अपनी खोपड़ी से हाथ मार लिया, कि क्या गजब रहस्य खोला, आपने भी!
लाल बुझक्कड़ हो जाओगे, कृष्ण सत्यार्थी। जीवन की पहेली को बूझने मत जाना, नहीं तो कुछ उल्टा सीधा हो जाएगा जीवन को जीओ--समग्रता से जीओ, पूर्णता से जीओ, साक्षीभाव से जीओ, होश से जीओ। होश में--और तल्लीनतापूर्वकः यही मेरा संदेश है मेरे संन्यासियों को।
और यहीं सारी कठिनाई है। होश में जीना आसान है, अगर जंगल में भाग जाओ, क्योंकि कोई अड़चन नहीं रह जाती। संसार में जीना आसान है, अगर होश खो दो। तल्लीनता आसान है संसार में। लोग तल्लीन ही हैं। कोई धन में तल्लीन है, कोई पद में तल्लीन, कोई पत्नी में, कोई बच्चों में। अपनी-अपनी तल्लीनता सबने खोज रखी है। मगर होश खो जाता है, तल्लीनता बच जाती है। जंगल में होश आसान है, तल्लीनता खो जाती है। और बिना दोनों के जीवन का राज समझ में नहीं आता। होशपूर्वक तल्लीनताः तल्लीनतापूर्वक होश!
डूबो जरूर, मगर जागे भी रहो! और तब तुम्हें जीवन का रहस्य अनुभव में आएगा। और ऐसा नहीं कि तुम बता सकोगे कि क्या अनुभव में आया। गुपचुप रह जाओगे। कंठ तुम्हारा अमृत से भर जाएगा। जीवन तुम्हारा ज्योतिर्मय हो जाएगा। मगर बोल न सकोगे, गूंगे हो जाओगे। वाणी ठहर जाएगी।
बुद्धों ने जो भी कहा है वह सत्य के संबंध में कहा है, सत्य तो कहा नहीं जा सकता। बुद्धों ने जो भी कहा है, वह इशारा है कि चल पड़ो, यह रही दिशा। फिर जाकर ही तुम्हें अनुभव हो पाएगा।
तुम मुझसे पूछो कि सूर्योदय कैसा होता है और कमरे के बाहर न निकलो, द्वार दरवाजे बंद किए बैठे रहो, मैं क्या करूं? कैसे समझाऊं तुम्हें कि सूर्योदय कैसा होता है? मैं तुमसे यही कह सकता हूंः द्वार दरवाजे खोलो, बाहर आओ। देख ही लो। लेकिन तुम कहो कि मैं बाहर तो तब आऊंगा जब मैं समझ लूं कि सूर्योदय होता कैसा है, है भी देखने योग्य या नहीं? तो ज्यादा से ज्यादा मैं कह सकता हूं कि एक तसवीर ले आऊं सूर्योदय की, और तो ज्यादा से ज्यादा क्या किया जा सकता है? एक तसवीर ले आऊं। लेकिन तसवीर तो मुर्दा होगी। तसवीर में सूर्य ऊगता हुआ नहीं होगा; अटका होगा, एक जगह ठहरा होगा। चंदूलाल की पत्नी धन्नो अपने बेटे को परिवार का अलबम दिखा रही थी। एक तस्वीर पर बेटे ने कहा, रुको-रुको! मम्मी, यह कौन है? ये दिलीप कुमार जैसी जुल्फें! यह है कौन?
तो गुलाबो ने कहाः अरे तू पहचाना नहीं! ये तेरे पापा हैं। ये तेरे पिताजी हैं।
तो उस बेटे ने कहा, ये मेरे पिताजी हैं! आज तक तुमने बताया ही नहीं। तो अपने घर में वह जो गंजा आदमी रहता है, वह कौन है? मैं तो उसी को अब तक पिताजी समझता रहा।
मगर वे दिलीप कुमार जैसी जुल्फें ठहरी थोड़े ही रहती हैं। वे कभी न कभी चली जाएंगी। तसवीर में ठहरी रहती हैं। तसवीर में सब चीज ठहरी रहती है।
इसलिए सब चीजें तसवीर की झूठी होती हैं।

बड़े चित्रकार पिकासो से किसी महिला ने कहा--बड़ी सुंदर अभिनेत्री ने--
कि कल मैंने तुम्हारी तसवीर एक घर में टंगी देखी और ऐसा भाव विभोर हो गई कि मैंने उसे छाती से लगा लिया और चूम लिया।
पिकासो ने कहा, फिर उस तसवीर ने क्या किया?
उस अभिनेत्री ने कहाः तस्वीर ने क्या किया! तस्वीर क्या करेगी? तस्वीर ने कुछ नहीं किया।
तो पिकासो ने कहाः फिर वह मैं नहीं था। फिर वह तसवीर ही रही होगी। किसी की भी हो, मुझे पता नहीं, मगर मैं नहीं था। क्योंकि मुझे कोई चूमे और मैं कुछ न करूं और मुझे गले लगाए और मैं कुछ न करूं, यह हो ही नहीं सकता। और पिकासो ने कहाः तू भी हद करती है! मुझे इतनी बार मिल चुकी, कभी गले न लगाया और कभी चूमा भी नहीं और तसवीर को चूमने गई!
मगर लोग यूं ही हैं। बुद्ध जिंदा होंगे तो नहीं बुद्ध के पास जाएंगे, मूर्ति को पूजेंगे, फिर सदियों तक पूजेंगे। लोग तस्वीरों को पूजने के आदी हैं; जिंदा से भागते हैं, डरते हैं, घबड़ाते हैं, क्योंकि जिंदा जवाब देगा। मुर्दे को पूजने में आसानी है। तुम्हारी जैसी मौज। अब जब चाहो कृष्ण जी के मंदिर के दरवाजे खोल दो और जब चाहो बंद कर दो, और जब चाहो मसहरी पर लिटा दो उनको। और जब चाहो उठा दो, बेचारे कुछ कर सकते नहीं। आधी रात उठा कर खड़ा कर दो कि चलो खड़े होओ कृष्ण कन्हैया! मगर असली कृष्ण कन्हैया के साथ ऐसा नहीं चल सकता। अरे असली कृष्ण की तो बात दूसरी, घर में छोटे से बच्चे को जरा सुलाने की कोशिश करो। उठ उठ कर बैठ जाता है कि नहीं सोना, क्यों सोएं?
एक घर में मैं मेहमान था। उस घर के मेहमान के बच्चे ने मुझसे कहा कि मेरी मम्मी पागल है। मैंने पूछा, क्यो? उसने कहा कि जब मुझे नींद नहीं आती तब कहती है सोओ और जब मुझे नींद आती है तब कहती है उठो। यह पागलपन नहीं तो क्या है? सुबह सुबह मुझे उठाने लगती है, जब मुझे नींद आती है और रात मुझे सुलाती है, जब मुझे नींद नहीं आती। मुझे टेलीविजन देखना है और वह कहती है सोओ। इसका दिमाग खराब है। आप अच्छे आ गए, इसको जरा समझाओ उलट-सुलट काम करती है।
बात बच्चा ठीक कह रहा है कि जब मुझे नींद नहीं आती है तब तो सोने नहीं देती। कहती है, ब्रह्ममुहूर्त है। और जब मैं जागना चाहता हूं, रेडियो पर खबरें आ रही हैं, टेलीविजन पर फिल्म चल रही है, तो मुझे कहती है सो जाओ।
यह बच्चे को तर्क समझ में नहीं आता। जिंदा बच्चे को भी नहीं सुला सकते। जिंदा कृष्ण कन्हैया को तुम क्या सुलाओगे? मगर मुर्दा कृष्ण कन्हैया को जब चाहो बांसुरी पकड़ा दो, जब चाहो छीन लो। जब चाहो भोग लगा दो। और मजा यह है कि खाओगे भोग तुम्हीं, लगाओगे उनको। जो दिल हो जैसे कपड़े पहनाने हों पहना दो। नंगा खड़ा कर दो, नंगे खड़े रहेंगे। ठंड हो तो ठीक। गरमी हो बरसात हो, तो ठीक। मुर्दा के साथ आसानी है। जिंदा के साथ मुश्किल है। लेकिन जिंदगी को जानना हो तो जिंदगी को ही जानना होगा। मैं तसवीर भी लाकर तुम्हारे सामने रख दूं तो यह सूर्यास्त नहीं है, यह सूर्योदय नहीं है। इसमें कुछ बात खो गई, बुनियादी बात खो गई। यह तो सिर्फ कागज है सपाट, जिस पर कुछ रंग बिखेर दिए गए हैं। यह तो झूठी बात है।
मैं तुमसे इतना ही कह सकता हूं कि मैं दरवाजा खोलने का रास्ता जानता हूं, मैंने अपना दरवाजा खोला। तुम्हारा थोड़ा भिन्न ढंग का होगा, थोड़ा ढांचा अलग होगा। मेरा पूरब खुलता है, तुम्हारा पश्चिम खुलता होगा। तुम्हारी सिटकनी और ढंग की लगी होगी, ताला और ढंग का होगा। मगर दरवाजा खोला जा सकता है, इतना पक्का है और हर ताले की चाबी खोजी जा सकती है, इतना पक्का है। सच पूछो तो ताले के पहले चाबी तुम्हें दी गई है। और पूरब से निकलो कि पश्चिम से, आकाश उपलब्ध है। और कहीं से भी निकल आओ तारों के नीचे। कहीं से भी निकल आओ वृक्षों के पास। तब तुम्हें अनुभव होगा।
मैं तुम्हें मार्ग दे सकता हूं सत्य नहीं दे सकता। पहेली बूझी नहीं
जा सकती। हां, पहेली में कैसे तुम डुबकी मार जाओ, इसकी कला तुम्हें दे सकता हूं। उसे ही मैं ध्यान कह रहा हूं। जागृति और तल्लीनता एक साथ। होश और बेहोशी एक साथ। जिस दिन तुम इस परम विरोधाभास को अपने भीतर पूरा कर लोगे,

उस दिन सब तुम्हारा है--सारा आकाश, सारे तारे, सारा सौंदर्य, सारा आनंद, सारा उत्सव!

तीसरा प्रश्नः भगवान,
आप कुछ भी कहें, लेकिन मैं तो लेखन-कार्य में सफलता के लिए आपका आशीष लेकर ही लौटूंगा।

धन्य कुमार कमल!
धन्य हो माई के लाल! नाम लेकिन तुमने बड़ा पुराना चुना है--कवि का नाम-- कमल। कमल के दिन लद गए। तुम कहते हो आधुनिक हूं। क्या खाक आधुनिक हो! कमल नहीं, कैक्टस, कोकाकोला, ऐसा कोई नाम रखो--जो आधुनिक हो, अंतर्राष्ट्रीय हो। क्या कमल? ? कहां की कमल बत्तीसी में पड़े हो? कमल के दिन लद गए। यह तो बड़ा पुराना प्रतीक है। तुम आधुनिक कवि, आधुनिक लेखक, अकविता लिखते हो, अकहानी लिखते हो।
और अक्सर ऐसा होता है कि अकविता वे ही लोग लिखते हैं जो कविता नहीं लिख सकते। अकविता का मतलब है, जिनसे तुकबंद भी करते नहीं बनती। फिर अकविता लिखते हैं वे। जो लोग लेखक नहीं बन पाते वे आलोचक हो जाते हैं। जो लोग राजनीति में सफल नहीं हो पाते वे पत्रकार हो जाते हैं। जो लोग रास्ते पर नहीं चल पाते वे किनारे पर खड़े होकर पत्थर मारने लगते हैं चलने वालों को, और क्या करेंगे! कम से कम दूसरे चलने वालों के रास्ते में बाधाएं ही खड़ी करेंगे। जो तुकबंदी भी नहीं कर पाते वे अकविता करने लगते हैं। अकविता का मतलब यही होता है कि तुमसे कविता नहीं बनती करते।
और सफल होकर भी क्या करोगे? और मैंने तुम्हें कल ही समझाया कि अगर तुम कवि हो तो आशीष मिले या न मिले, क्या फर्क पड़ता है आशीष से? तुम कवि हो तो कविता करने में तुम्हारा आनंद होगा। सच पूछो तो कवि को सफलता की आकांक्षा करनी ही नहीं चाहिए। आ जाए संयोग की बात है। नदी नाव संयोग। न आना ज्यादा सुनिश्चित है, क्योंकि कविता न तो ओढ़ी जा सकती है, न खाई जा सकती, न पहली जा सकती है। किसके काम की है? रोटी बनाओगे कविता की? कपड़े बनाओगे, छप्पर बनाओगे? और लोग चाहते हैं--रोटी, रोजी, मकान। और तुम कहते कविता ले लो, कि यह ले जाओ कविता। लेकिन भूखे भजन न होहिं गोपाला! वे भूखे बैठे हैं और तुम कविता पकड़ा रहे हो। वे तुम्हारी गर्दन दबा देंगे, सफलता की बात कर रहे हो तुम?
तुम देखते नहीं कवि सम्मेलनों में किस तरह लोगों को हूट किया जाता है, कैसे लोग जूते घिसते हैं, कैसे शोरगुल मचाते हैं, कैसे बंद करवाने की कोशिश करते हैं। और कभी अगर बंद नहीं भी करवाते तो उसके कारण अलग-अलग होते हैं।
मैंने सुना, एक कवि सम्मेलन में एक कवि छंदबद्ध संगीत में बंधी हुई कविता का पाठ कर रहा था तरन्नुम में। और लोग उससे बार-बार कहें--मुकर्रर, फिर से, एक बार और। उसने दुबारा कविता फिर गाई, बड़ा प्रसन्न हुआ, आह्लादित हुआ--सौभाग्य कि जनता ने स्वीकार किया। लेकिन लोग फिर चिल्लाए--मुकर्रर, फिर से वंस मोर। और प्रभावित हुआ। तीसरी बार लोग फिर चिल्लाए। फिर तीसरी बार उसने पढ़ दी। जब चौथी बार लोग चिल्लाए तो उसने कहा कि, मुझे और भी कविता पढ़ने दोगे या इसी-इसी को दोहराता रहूं? तब एक आदमी खड़ा हुआ कि जब तक तुम इसको ठीक से न पढ़ोगे, तब तक हम मुकर्रर ही कहे चले जाएंगे पहले इसको ठीक से पढ़ो, फिर आगे बढ़ो।
मैंने तुम्हें समझाया, मगर तुम समझे नहीं। लोग अपनी ही जिद में पड़े होते हैं, अपने ही ख्यालों में डूबे होते हैं। तुम अगर सच में कवि हो तो सफलता की आकांक्षा का सवाल ही नहीं उठता। कविता कर लेने में ही सफलता मिल गई। अपना गीत गा लिया, सफलता मिल गई। कौन कोयल फिकर कर रही है कि उसको नोबल प्राइज मिले, कि कौन पपीहा चिंता में पड़ा है कि कब भारत रत्न की उपाधि मिले, कम से कम पदम-विभूषण तो हो ही जाए? किसी को पड़ी नहीं। किसी को चिंता नहीं। अपना गीत गा लिया, गीत गाने में आनंद है। सफलता की बात ही क्या? सफलता का क्या मतलब? सफलता का मतलब हैः यश मिले।

तुमको तो मैं आशीर्वाद दे दूं, मगर मैं उनकी भी सोचता हूं जिनके कारण तुमको यश मिलेगा। उनकी तुम छाती पर दाल दलोगे।
एक रात एक शराब घर में ऐसा हुआ कि कुछ लोग आए और उन्होंने जी भर की शराब पी और डट कर पी और पिलाई भी। और भी जो लोग आए उनको भी पिलाते गए, जो अनजान अजनबी बैठे उनको भी पिलाई। जो आदमी था, बड़ा दिलफेंक आदमी था, जो पिला रहा था। और जब उसने पांच सात सौ रुपये का बिल चुकाया, आधी रात जब जाने लगे लोग, तो दुकानदार ने कहा कि तुम जैसे ग्राहक अगर रोज रोज आ जाएं तो हमारे तो सौभाग्य खिल जाएं, हमारी जिंदगी में रौनक आ जाए। उस जाते हुए आदमी ने कहा कि हम तो रोज-रोज आएं, तुम प्रार्थना किया करना परमात्मा से कि हमारा धंधा ठीक से चले।
उसने कहाः जरूर प्रार्थना करेंगे। अरे क्यों नहीं करेंगे! जरूर कल से
ही प्रार्थना करूंगा। गणपति बप्पा मोरया! कल से ही लो। गणपति की बिल्कुल जान खा जाऊंगा कि तुम्हारे धंधे को सफल करे। तुम्हारा सफलता से चले तो हमारा सफलता से चले। और हमारा सफलता से चले तो गणपति का सफलता से चले। सबका चले, साथ-साथ चले। यह तो संग-साथ की बात है। जरूर!
लेकिन जाते-जाते उसने पूछा कि यह तो बता जा भाई कि तेरा धंधा क्या है? उसने कहा, यह तुम न पूछो तो अच्छा। क्योंकि मैं मरघट पर लकड़ियां बेचने का काम करता हूं। लोग रोज-रोज मरते रहें, ज्यादा लोग मरते रहें, तो मेरा धंधा चलता है। मगर परमात्मा की कृपा से सब चलता है। कभी फ्लू, कभी हैजा, कभी डैंगू!
क्या-क्या बीमारियां परमात्मा ने ईजाद की हैं-डैंगू! अरे आदमी को मारना ही हो, एक बार में ही मार डालो। जिंदगी भर की सजा एक बार में ही क्यों नहीं गूदते? या तो बल्कि यूं कहो, जी भर कर सजा एक ही बार में क्यों नहीं देते? मारो, धीरे धीरे मारो, घिस-घिस कर मारो! हाथ पैर तोड़ो। कमर में दर्द, हाथ में दर्द, पैर में दर्द, सिर में दर्द। परमात्मा भी क्या-क्या आविष्कार करता है! बीमारियां लगा रखी हैं और फिर आदमी के पीछे--एलापेथी, होम्योपेथी, आयुर्वेदिक और हकीमी और नेचरोपेथी, और न मालूम कितनी पेथियां लगा रखी हैं! अगर किसी तरह बीमारी से बच जाओ तो इनसे बचना मुश्किल। डैंगू से बच जाओ तो डाक्टर मारेगा। बहरहाल किसी न किसी हालत में मरना है, बहाना कोई खोजो।
सो उसने कहा कि तुम प्रार्थना करो, घबड़ाओ मत। वैसे भी लोग मरते हैं। जरा प्रार्थना करोगे, थोड़े ज्यादा मरेंगे। प्रार्थना तो सुनी जाती है। और मुझे तो पक्की परमात्मा पर श्रद्धा है, क्योंकि जब भी मैंने प्रार्थना की, कभी खाली न गई। कोई न कोई बीमारी आ जाती है। जरूर सुनता है। अरे हृदय से पुकारो तो जरूर सुनता है! और लकड़ियां मेरी बिकती रहें तो मैं तो रोज आता रहा रहूं, यूं ही गलछर्रे उड़ें।
तुम तो आशीष मांगते हो, मगर उनका भी तो सोचो जिनको तुम्हारी कविता सुननी पड़ेगी। तुमको तो आशीष दे दूं, लेकिन उन बेचारों पर जो गुजरेगी, उनको जो डैंगू बुखार आएगा... ! सफलता का मतलब क्या? मगर तुम सुनते नहीं। तुम अपनी धुन में हो। तुम कहते होः आप कुछ भी कहें, लेकिन मैं तो लेखन-कार्य में सफलता के लिए आपका आशीर्वाद लेकर ही लौटूंगा। जैसी तुम्हारी मर्जी! भैया किसी तरह लौट जाओ, आशीर्वाद लो, मगर लौटो! मुझे आशीर्वाद देने में कोई झंझट नहीं, क्योंकि मैं जानता हूं आशीर्वाद मेरा फलता नहीं। क्या झंझट है, जाओ। एक व्यक्ति ने सुना था कि दिल्ली में बहुत जेबकतरे हैं। हैं ही, कोई झूठा भी नहीं सुना था। दिल्ली में रहना और जेब काटना न आता है तो क्या खाक दिल्ली में रहोगे! एक दिन वह अपनी जेब में खोटे सिक्के डाल कर पूरी दिल्ली घूमा और सोचा कि मेरी जेब देखें कोई कैसे काटता है। देखें ये दिल्ली के जेबकतरे मेरा क्या कर पाते हैं! शाम को जब घर लौटा तो टटोलने पर सब सिक्के ठीक-ठाक मिले, साथ में एक पर्ची भी मिली जिस पर लिखा था-- सूट पहनने से कोई बाबू नहीं बन जाता। जेब में तो खोटे सिक्के रखे हो।
कोई कविता ही लिखने से कवि नहीं बन जाता भैया। सूट वगैरह पहन लिया, इससे क्या होता है? जेब में सिक्के भी तो असली होने चाहिए। कोई जेबकतरा भी नहीं काटेगा। वह भी पर्ची रख गया।

लेकिन तुम अपनी जिद में हो। तुम्हें कुछ और समझ में ही नहीं आ रहा है,
बस सफलता ही पानी है।
एक व्यापारी ने दूसरे से कहा कि उसके शो रूम को आग लग गई, जिसके बदले उसको बीमा-कंपनी ने दो लाख रुपया अदा किया!
दूसरे ने बतायाः विचित्र संयोग है। मुझे भी बीमा कंपनी से पांच लाख रुपये मिले। मेरे गोदाम बाढ़ की चपेट में आ गए थे।
पहला आश्चर्य से बोलाः परंतु आप बाढ़ लाए कैसे?
पोल ज्यादा देर छिपती नहीं। उसने बेचारे ने आग लगाई थी, सो उसे पता था,
कि आग लगाना तो समझ में आता है मगर बाढ़ ले आया, यह आदमी हमसे आगे निकल गया! तुम कविता करते कैसे हो? क्योंकि मेरी अपनी प्रतीति यह है कि जो कवि
है वह सफलता की आकांक्षा नहीं करता। कविता तुम चुराते होओगे, इधर-उधर से जोड़-तोड़ करके बिठाते होओगे।
चोरी इस देश में बहुत चलती है। छोटे-छोटे लोग ही चोरी नहीं करते, बड़े- बड़े लोग चोरी करते हैं। उन्नीस सौ तीस में सर्वपल्ली राधाकृष्णन पर कलकत्ता की हाईकोट में मुकदमा चला चोरी का, कि उन्होंने एक विद्यार्थी की पीएच. डी. की थीसिस में से पन्ने के पन्ने चुरा लिए, चैप्टर के चैप्टर चुरा लिए। जिस किताब से डाक्टर राधाकृष्णन जगत-विख्यात हुए, वह पूरी की पूरी चोरी है। इंडियन फिलासफी नाम की किताब से वे प्रख्यात हुए। वह एक विद्यार्थी की एक थीसिस थी--एक गरीब विद्यार्थी की। उसकी थीसिस उनके पास जांच के लिए आई थी। वे प्रोफेसर थे, परीक्षक थे। उसकी थीसिस को तो दबा रखा उन्होंने और जल्दी से अपनी किताब पहले छपवा ली, ताकि अदालत में यह कहने को हो जाए--कभी अगर मामला बिगड़े भी--कि मेरी किताब पहले छपी। मुकदमा चला और मामला पकड़ में आ गया, क्योंकि उसने थीसिस उनके पहले, किताब के छपने के एक-डेढ़ साल पहले विश्वविद्यालय में समर्पित की थी। डेढ़ साल से वह राधाकृष्णन के पास पड़ी थी। और एकाध वाक्य मिल जाए तो समझ में आता है, चैप्टर के चैप्टर, वही के वही। जल्दी में करना पड़ा उनको, तो उसमें कुछ थोड़े बहुत मेल मिलान भी कर देते, थोड़ी मिलावट भी कर देते, जैसा इस मुल्क में चलता है, इधर उधर कुछ मिला-जुला कर एक सा कर देते तो शायद पकड़ में इतने जल्दी भी न आते। लेकिन जल्दी छपवानी थी, क्योंकि यह थीसिस पड़ी थी उसकी, उसको विश्वविद्यालय पीछे पड़ा था कि आप लौटाइए। हां या न कुछ भी भरिए।
और मजा तुम देखते हो, उन विद्यार्थी को इन्होंने फेल किया। फेल किया इसलिए कि उसको फिर से थीसिस लिखनी पड़ेगी, उसमें और दो साल लगेंगे। तब तक उनकी किताब जगत-विख्यात हो जाएगी, तब तक मामला बिल्कुल गड़बड़ हो जाएगा। लेकिन वह विद्यार्थी भी, था तो गरीब, लेकिन उसने जब इनकी किताब देखी तो दंग रह गया, भरोसा ही न आया। हाईकोट में मुकदमा गया। उस विद्यार्थी को दस हजार रुपये देकर किसी तरह--गरीब विद्यार्थी था--किसी तरह राजी किया और अदालत से मुकदमा वापस लौटाया।
राधाकृष्णन जैसे लोग, जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने, ये तक चोरी करते हैं। इस देश में चोरी का तो हिसाब ही नहीं है। बड़ा आश्चर्यजनक है यह देश। यहां मेरे देखे अधिकतर लोग बस उधार चलाते रहते हैं। जिनको तुम ज्ञानी और पंडित कहते हो, वह भी सब चोरी। अपना अनुभव तो कुछ भी नहीं। तुम्हारी कविता भी तुम्हारी नहीं हो सकती, नहीं तो सफलता की बात ही नहीं उठती। एक बात ख्याल रखो, काव्य एक सृजनात्मक आनंद है। यह अपने में ही अपना अंत है। यह किसी चीज का साधन नहीं है। यह तो अपनी मस्ती है कि तुमने गीत लिख लिया, अब सफलता क्या मांगनी! तुमने अपना गीत गाया, किसी से सुना या नहीं, क्या लेना-देना! जंगल में फूल खिलता है, कोई उसकी सुगंध ले या न ले, तो भी मस्ती से खिलता है। एकांत में नाचता रहता है सूरज की रोशनी में। कोई पास से राहगीर गुजर जाये गुजर जाए, न गुजरे न गुजरे। क्या लेना देना है? यह सफलता की इतनी आकांक्षा छोड़ो। यह सफलता की आकांक्षा व्यवसाई बुद्धि है। और यह बुद्धि खतरनाक है।
काया माया छोड़ कर, चले सत्य अवतार,
बेटों ने उत्साह से किया दाह संस्कार।
किया दाह संस्कार, कीमती शाल ओढ़ाई,

असली घृत से, मृत की चंदन चिता जलाई।
पशोपेश में एकाउंटेंट, कर रहे चर्चा,
किस खाते में डाले लालाजी का खर्चा?
एक आवाज उसी क्षण स्वर्गलोक से आई
पेकिंग-फार्वडिंग खर्चा दिखला दो भाई!
मर गए, मगर वह पेकिंग फार्वडिंग खर्चे में डाल दो, क्या सोच विचार में पड़े हो--स्वर्ग से आवाज दे रहे हैं!
सेठ चंदूलाल मारवाड़ी जब मर रहे थे तो उनके चारों बेटे सोचने लगे कि अब आखिरी घड़ी आ गई। पिताजी ने इतना कमाया, मगर कभी भोगा नहीं। कम से कम मरने के बाद तो इनकी अरथी यूं निकले जैसे कभी किसी की अरथी न निकली हो। इस शान से निकले! तो छोटे बेटे ने कहा,-ऐसा करो कि गांव में राजा साहब हैं, उनकी राल्सरायस मांग ली जाए। उसमें ही अरथी चले।
दूसरे बेटे ने कहा, वह जरा खर्चीला मामला है। उतना खर्च करने में सार क्या है? अरे अब आदमी तो मर ही गया, अब रॉल्स रॉयस में ले जाओ कि एंबेसडर में ले जाओ, क्या फर्क पड़ता है? जिंदा आदमी हो तो फर्क पड़ता है। जिंदा आदमी हो तो यह खतरा है कि एंबेसडर में कहीं मर ही न जाए। ऐसे दचके देती है एंबेसडर। अब मर गया, अब इनको क्या फर्क पड़ता है? दचके खा लेंगे थोड़े तो क्या फर्क पड़ता है? कोई गर्भवती स्त्री तो है नहीं कि दचका खाए तो बच्चा पैदा रास्ते में ही हो जाए। अब ये मर ही गए। एंबेसेडर मोहल्ले वाले की मांग लाएंगे। सस्ता काम, पेटा्रेल का भी कम खर्चा। वैसे ही पेटा्रेल के दाम देखो कैसे बढ़ते चले जा रहे हैं!
तीसरे ने कहाः क्या बकवास लगा रखी है? अरे अपने पिताजी की आत्मा को क्या दुख देना है? उनके जीवन भर की शैली समझो--सादा जीवन, उच्च विचार। बैलगाड़ी बिल्कुल ठीक रहेगी--भारतीय भी, परंपरागत भी। यह क्या एंबेसेडर लगा रखी है? सस्ती भी, न कोई पेटा्रेल की जरूरत, न कुछ। और अपने नौकर के पास ही बैलगाड़ी है। यूं मुफ्त में ही काम चल जाएगा।
अभी चंदूलाल मरे न थे, मरणशय्या पर थे। वे यह सब सुन रहे थे। यह सारी बात सुन रहे थे। यह सारी बात सुन कर वे उठ कर बैठ गए और बोले, बेटा, मेरे जूते कहां हैं?
तीनों बेटों ने कहाः अरे जूतों का क्या करिएगा?
उन्होंने कहा, बेटाः अभी मैं जिंदा हूं, मैं पैदल ही चला चलता हूं। वहीं चल कर जाऊंगा। क्यों खर्चा करना? बैलगाड़ी लाओ, घासपात खिलाओ, घास के दाम तो देखो!
आदमी अपने ही ढंग में पकड़े जाता है--मरते दम तक, मरने के बाद भी!
तुम सुनते नहीं जो मैंने कहा उसको।
मुक्केबाजी की प्रतियोगिता में एक मुक्केबाज ने अपने प्रतियोगी को
जब धराशाई किया तो रैफरी ने गिनती गिननी शरू कर दी। परंतु जब काफी समय तक धराशाई खिलाड़ी न उठ सका तो विजई मुक्केबाज बोला, अब गिनती न गिन कर राम-नाम का जाप कीजिए, शायद श्वास वापस आ जाए।
लोग होश में दिखाई पड़ते हैं, हैं नहीं। सुनते दिखाई पड़ते हैं, सुनते नहीं। तुम सुन रहे हो, मगर नहीं सुन रहे। तुम अपने भीतर हिसाब-किताब लगा रहे हो कि सफलता कैसे मिले। हम तो आशीष ही लेकर जाएंगे! अरे इसी के लिए तो आए हैं। मैं कहे चला जाऊं, तुम कहते होः आप कुछ भी कहें... !
लोग करीब-करीब सोए हुए हैं। राम-नाम ही सुन लें तो बहुत। जिंदगी में
तो सुनते नहीं, इसलिए लोग जब मरघट ले जाते हैं तो राम-नाम सत्य बोलते हैं, कि भैया अब सुन लो; जिंदगी भर तो सुना नहीं, अब शायद सुन लो। अब तो सुन लो! मगर जिसने जिंदगी में न सुना वह मर कर क्या खाक सुनेगा?
और यूं भी समझ लो कि तुम सफल भी हो जाओ तो क्या मिल जाएगा? किसी सड़ियल पत्रिका के संपादक हो जाओगे, और क्या हो जाएगा? छपास निकल जाएगी। छपास भी एक बीमारी है--छपना चाहिए। सो छपास निकल जाएगी। जैसे प्यास होती है न, ऐसे छपास! हो क्या जाएगा, मिल क्या जाएगा?
ये गैली ये डमियों ये प्रूफों का दफ्तर,
ये दफ्तर की छत से पर झड़ता पलस्तर!

ये ओ. के. रिवीजन में पन्नों की खलबल, ये खलबल अगर थम भी जाए तो क्या है! कहानी औ गजलों के संग लघुकथाएं,
हुआ क्या अगर ये पढ़ी भी न जाएं!
ये पढ़ पढ़ ये छप-छप फटाफट का दफ्तर,
ये दफ्तर हमें मिल भी गया तो क्या है! हरिक ब्लाक धुंधला, हरिक प्रिंट खतरा, कर जाता सुर्खी में गलती ये बतरा!
ये दफ्तर में गलती या गलती में दफ्तर, ये दफ्तर हमें मिल भी गया तो क्या है! यहां कोशिशें फुर्सतों की हैं नाकाम, ये मुदगल, ये उनियाल, अरुण और बलराम, ये नंदन घिरे रहते हर दिन सुबह-शाम, ये शामे अवध मिल भी जाए तो क्या है! किस दें दुआएं करें किसलिए गम,
खपो जितना मरजी मिलेगा बहुत कम! महीने में दो अंकों वाला ये दफ्तर,
ये दफ्तर हमें मिल भी गया तो क्या है!
उठा लो उठा लो उठा लो ये दफ्तर,
यूं ही सामने से हटा लो ये दफ्तर!
तुम्हारा है तुम ही सम्हालो ये दफ्तर,
ये दफ्तर हमें मिल भी गया तो क्या है!
फिर जैसी तुम्हारी मर्जी। कवि हो तो कविता में आनंद लो। कवि नहीं हो
तो फिर तलाश करो कि क्या तुम्हारा स्वयं का छंद है, क्या तुम्हारा स्वरूप है, क्या तुम्हारा ऋत है।
मैंने जीवन मैं कभी सफलता की भाषा में सोचा नहीं। वह मेरी भाषा नहीं। सफलता यानी अहंकार। कैसे तुम्हें आशीष दूं अहंकार की तृप्ति में। अहंकार ने ऐसा अंधेरा किया है हमारी आंखों में, हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और जो दिखाई पड़ता है वह गलत दिखाई पड़ता है।
जेलर साहब बहुत परेशान थे। उनके एक मित्र ने उनकी परेशानी का कारण पूछा तो उन्होंने जवाब दिया, कल रात रामनवमी के उपलक्ष में हमारे जेल के कैदियों ने रामलीला खेली।
तो मित्र ने कहाः इसमें परेशानी की क्या बात है? यह तो अच्छी बात है कि कैदियों ने रामलीला खेली।
जेलर ने कहाः पहले पूरी बात तो सुनो जी। लक्ष्मण जी को शक्ति-बाण लगने
पर हनुमान बना कैदी संजीवनी-बूटी लेने गया।
अरे--मित्र ने कहा--तो इसमें क्या बुराई है? यह तो होना चाहिए, नहीं तो रामलीला पूरी कैसे होगी?
जेलर ने कहाः तुम पूरी बात ही नहीं सुनते, बीच-बीच में अपनी अड़ा देते हो। वह अभी तक वापिस नहीं आया है।
जेलर की अपनी परेशानी है। उसको रामलीला से क्या लेना है? वे जो हनुमान
जी गए हैं जड़ी बूटी लेने, वे लौटे ही नहीं, वे निकल ही भागे दिखता है।
तुम मुझे सुन नहीं रहे हो। तुम अपने गणित में पड़े हुए हो। तुम शायद सोचते होओगे कि में कोई चमत्कार कर दूंगा, तुम सफल हो जाओगे। मैं चमत्कार वगैरह करता नहीं। राख वगैरह भी निकालता नहीं। उस सबके लिए जाना है तो सत्य सांई बाबा के पास चले जाओ। वे राख भी निकाल देंगे। हालांकि वह आशीर्वाद अभिशाप है, क्योंकि अहंकार की तृप्ति अभिशाप है। अहंकार तो हार ही जाए यह अच्छा है। अहंकार तो बिल्कुल हार जाए तो अच्छा है। उसको तो कभी सफलता न मिले तो अच्छा है। क्योंकि जब अहंकार हारता है, तभी जीवन में वह घड़ी आती है--विचार की, चिंतन की, मनन की, रूपांतरण की। हारे की हरिनाम!

आज इतना ही।

ज्यूं मछली बिन नीर
सातवां प्रवचन

श्रद्धा और सत्य का मिथुन

पहला प्रश्नः भगवान
ऐतरेय ब्राह्मण में यह सूत्र आता हैः
श्रद्धया पत्नी सत्यं यजमानः। श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम। श्रद्धा सत्येन मिथुने न स्वर्गाल्लोकान जयतीति।
अर्थात (जीवन-यज्ञ में) श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान। श्रद्धा और सत्य की उत्तम जोड़ी है। श्रद्धा और सत्य की जोड़ी से मनुष्य दिव्य लोकों को प्राप्त करता है।
भगवान, इस सूत्र का आशय समझाने की अनुकंपा करें।

आनंद मैत्रेय!
यह सूत्र अत्यंत अर्थगर्भित है। संदेह से सत्य नहीं पाया जा सकता। संदेह से सत्य अकस्मात मिल भी जाए, तो भी तुम चूक जाओगे। संदेह की दृष्टि सत्य को भीतर प्रविष्ट ही न होने देगी। सत्य द्वार भी खटखटाएगा तो भी तुम द्वार न खोलोगे संदेह कहेगाः "होगा हवा का झोंका।" संदेह, परमात्मा भी सामने खड़ा हो, तो उस पर भी प्रश्नचिन्ह लगा देगा।
जहां समस्या नहीं होती वहां संदेह समस्या बना लेता है, निर्मित कर लेता है। संदेह की एक ही कुशलता हैः समस्या निर्माण करना। समाधान उसके पास नहीं है। और किसी तरह खींचतान कर तुम कोई समाधान बना भी लो तो तुम्हारा संदेह पुनः नई समस्याएं निर्मित करता जाएगा।
संदेह में समस्याएं ऐसे ही लगती हैं, जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। लाख काटो, फिर-फिर लग जाएगें। वृक्ष पर और पत्ते घने हो जाएंगे। संदेह का अर्थ होता है कि मैं स्वीकार करने को राजी नहीं हूं; मेरे भीतर स्वीकार भाव नहीं है; अस्वीकार, इनकार, निषेध। संदेह अर्थात नकार; नहीं। और जो व्यक्ति नहीं में जीता है वह बंद हो जाता है--द्वार दरवाजे बंद, खिड़कियां बंद। इतना ही नहीं, छोटे-छोटे रंध्र भी रह गए हों कहीं, छोटी छोटी संधियां भी रह गई हों, उनको भी संदेहशील व्यक्ति बंद कर लेता है। वह जीते जी कब्र में समा जाता है। वह जीते जी मर जाता है। संदेह मृत्यु है। यूं चलोगे, उठोगे काम-धाम करोगे, लेकिन एक अदृश्य कब्र तुम्हें घेरे रहेगी; सूरज से न जुड़ने देगी; हवाओं से न जुड़ने देगी; फूलों से न जुड़ने देगी; तारों से न जुड़ने देगी--जुड़ने ही न देगी। संदेह की प्रक्रिया है तुम्हें तोड़ लेने की।
संदेह एक दीवाल है, सेतु नहीं; जोड़ता नहीं, तोड़ता है। जहां संदेह आया, तत्क्षण संबंध विछिन्न हो जाता है, टूट जाता है। संदेह के गृह में तो सत्य अतिथि नहीं हो सकता, असंभव है। प्रवेश ही नहीं मिलेगा। संदेह आतिथेय नहीं बन सकता, मेजबान नहीं बन सकता। वह क्षमता तो श्रद्धा की है।
श्रद्धा का अर्थ विश्वास नहीं होता, ख्याल रखना। वह पहली बात ख्याल रखना, नहीं तो चूक हो जाएगी। विश्वास तो संदेह के विपरीत है और श्रद्धा विश्वास और संदेह दोनों के अतीत है। श्रद्धा बात ही और है। विश्वास तो सिर्फ संदेह को छिपाना है, ढांकना है। जैसे घाव तो है, लेकिन सुंदर वस्त्रों से ढांक लिया है। औरों को दिखाई नहीं पड़ेगा, मगर तुम कैसे भूलोगे? तुम नग्न हो, तुमने वस्त्र ओढ़ लिए; औरों के लिए नग्न न रहे, मगर अपने लिए तो नग्न ही हो। हर व्यक्ति अपने वस्त्रों में नग्न है। कैसे तुम यह बात भुला सकते हो कि तुम वस्त्रों के भीतर नग्न नहीं हो? यह तो असंभव है। हां, औरों के लिए तुम नग्न नहीं हो, क्योंकि तुम्हारे और औरों के बीच वस्त्र आ गए। मगर तुम्हारे स्वयं के लिए तो तुम नग्न ही हो। तुम्हारे लिए तो वस्त्र बाहर हैं। तुम्हारी नग्नता ज्यादा करीब है; वस्त्र नग्नता के बाहर हैं, दूर हैं।
विश्वास वस्त्रों जैसा है। तुम्हारा संदेह को ढांक लेगा। औरों को लगेगा--तुम बड़े श्रद्धालु!

ये मंदिरों में घंटे बजाते हुए लोग, ये पाठ-पूजा करते हुए लोग, ये मस्जिद में नमाजें पढ़ते हुए लोग, ये गिरजाघरों में, गरुद्वारों में जय-जयकार करते हुए लोग--ये सब विश्वासी हैं। काश, पृथ्वी पर इतनी श्रद्धा से भरे लोग होते तो ऐसी विक्षिप्त, ऐसी रुग्ण, ऐसी सड़ी-गली मनुष्यता पैदा होती? इतनी श्रद्धा होती तो इतने सत्य के फूल खिलते! अनंत फूल खिलते। फूलों से ही पृथ्वी भर जाती, सुगंध ही सुगंध से भर जाती। पृथ्वी स्वर्ग हो जाती।
लेकिन देखते हो, नमाज पढ़ने आदमी मस्जिद जाता है और कहावत तो तुमने सुनी है, उसको चरितार्थ करता है--मुंह में राम, बगल में छुरी। मुरादाबाद की इस ईदगाह में जहां अभी-अभी हिंदू मुस्लिम दंगा हुआ और कोई डेढ़ सौ लोग मारे गए, नमाज पढ़ने लोग गए थे ईदगाह में। छुरे और बंदूकें किसलिए ले गए थे? फिर यह नमाज कैसी जो छुरे-बंदूकों के साथ हो रही हो? यह दंगा-फसाद करने की तैयारी थी। नमाज का क्या मूल्य रह गया? ऊपर के वस्त्र बड़े झीने हैं, भीतर की असलियत बहुत गहरी है। हिंदु लड़ते हैं, मस्जिदें जलाते हैं। मुसलमान लड़ते हैं, मंदिर जलाते हैं, मूर्तियां तोड़ते हैं। कुरान जलती है, गीता जलती है, बाइबिल जलती है। सारी पृथ्वी तथाकथित धार्मिक लोगों के कारण इतनी पीड़ित है कि आश्चर्य होता है हम कब जागेंगे, कब पुनर्विचार करेंगे? मनुष्य के इतिहास में जितना पाप धर्मों के नाम पर हुआ है, किसी और चीज
के नाम पर नहीं हुआ। राजनीति भी पिछड़ जाती है; धर्म ने वहां भी बाजी मार ली है।
निश्चित ही ये विश्वासी लोग हैं, लेकिन श्रद्धालु नहीं! श्रद्धालु हिंदु और श्रद्धालु मुसलमान और श्रद्धालु ईसाई और श्रद्धालु जैन में कोई भेद नहीं हो सकता। श्रद्धा का रंग एक, रूप एक, स्वाद एक। श्रद्धा एक ही अमृत है। जिसने पीया, फिर वह कौन है कोई फर्क नहीं पड़ता। उस एक परमात्मा से जोड़ देती है। उस एक सत्य से जोड़ देती है। विश्वास जोड़ते नहीं, तोड़ते हैं। इसलिए विश्वास केवल संदेह को छिपाने वाले वस्त्र हैं। विश्वास धोखा है। विश्वास को श्रद्धा मत समझ लेना।
वही भूल हो गई है। हमने विश्वास को श्रद्धा समझ लिया है। हम हर बच्चे
को विश्वास सिखा रहे हैं। बच्चा पैदा नहीं हुआ कि बस धार्मिक संस्कार शुरू हो जाते हैं। धार्मिक संस्कारों का क्या अर्थ है तुम्हारे? यही कि थोपो इस पर विश्वास--बनाओ इसे हिंदु, बनाओ जैन, बनाओ बौद्ध। इसे कुछ बना कर रहो। तुम जो हो वही इसको बना कर रहो। और कैसा आश्चर्य है, तुमने कभी यह भी न सोचा कि तुम जिंदगी भर हिंदु थे, जैन थे, बौद्ध थे, तुमने क्या खाक पा लिया है! तुम्हारे हाथों में क्या है? तुम्हारे प्राणों में क्या है? नहीं कोई दीया जलता दिखाई पड़ता। नहीं तुम्हारे जीवन में कोई उत्सव है। कम से कम इस बच्चे को तो न बिगाड़ो, इसे तो सावधान करो। इसे तो कहो कि मैं जिंदगी भर एक विश्वासी की तरह जीया, कुछ भी पाया नहीं। तू विश्वासी की तरह मत जीना। तू श्रद्धा की तलाश कर। हम तो न पा सके। हमने तो जिंदगी गंवाई, मगर तू मत गंवा देना।
मगर उलटा मजा है, मां-बाप थोपते हैं आपने आग्रहों को बच्चों के ऊपर। धार्मिक शिक्षा हो जाए। मुसलमान बच्चा पैदा होता है, यहूदी बच्चा पैदा होता है--खतना करो इसका, जल्दी खतना करो! क्योंकि कहीं जवान यह हो जाए और इनकार करने लगे। और जवान होगा तो इनकार करेगा ही, कि अगर परमात्मा को खतना ही करके भेजना था तो उसने खतना कर ही दिया होता। तुम्हारे हाथ में खतना छोड़ा होता? जो भी जरूरी था शरीर के लिए, उसने करके भेजा है। जैसा उसने शरीर बनाया है, इसमें काट-पीट करने का तुम्हें क्या हक है? जवान हो जाएगा तो इनकार करेगा। जल्दी से खतना कर दो, देर न करो। जल्दी से जनेऊ पहना दो, यज्ञोपवीत संस्कार कर दो।
क्योंकि बड़ा हो जाएगा तो संदेह उठाने लगेगा, प्रश्न खड़े करने लगेगा। फिर सुलझाना मुश्किल होगा। अभी ठूंस दो। अभी इसको कुछ होश नहीं है। अभी इसके सामने सवाल नहीं हैं। अभी यह असहाय है, तुम पर निर्भर है। अभी तुम जिलाओ तो जीएगा, तुम मारो तो मर जाएगा। अभी तुम्हारी मुट्ठी में है। कहीं अपने पैरों पर खड़ा हो गया और कहने लगे कि क्यों बांधे यह रस्सी नहीं

बांधता, मुझे इसमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। क्यों तुम्हारे मंदिरों में जाकर सिर झुकाऊं? मुझे पत्थर दिखाई पड़ते हैं। फिर मुश्किल हो जाएगी। इसलिए सारे लोग बड़े आतुर होते हैं--जल्दी से धर्म की शिक्षा दो! और धर्म की शिक्षा पर क्या शिक्षा देते हैं? शिक्षा यही कि कुछ अंधविश्वास थोप दो--ऐसे थोप दो कि वे खून में मिल जाएं, मांस मज्जा में सम्मिलित हो जाएं। बच्चा उनके साथ ही बड़ा हो, उसको याद भी न रहे कि कब किस घड़ी में ये विश्वास उसके भीतर डाल दिए गए। जब वह बड़ा हो, तो पाए कि ये विश्वास के साथ ही बड़ा हुआ है। जैसे ये विश्वास लेकर ही आया हो परमात्मा के यहां से।
अगर विश्वास और संदेह में चुनना हो तो मैं कहूंगाः संदेह चुनना। क्योंकि संदेह स्वाभाविक है, विश्वास अस्वाभाविक है। और मेरा यह भी अनुभव है कि अगर कोई व्यक्ति ईमानदारी से संदेह चुने तो आज नहीं कल श्रद्धा को खोजना ही पड़ेगा, क्योंकि संदेह के साथ जीना असंभव है। संदेह यूं है जैसे छाती में तीर चुभा हो। उसे निकालना ही होगा। लेकिन विश्वास मलहम-पट्टी कर देता है। विश्वास खतरनाक है--संदेह से भी ज्यादा खतरनाक है। विश्वास से सावधान। विश्वास, तीर भी चुभा रहता है, मलहम-पट्टी भी कर देता है। क्लोराफार्म की तरह है विश्वास। तुम सड़ते रहते हो और तुम्हें बेहोश रखता है। तुम्हें भरोसा दिलाए रखता है कि सब ठीक है, कुछ गलत नहीं है, सब ठीक है।
इस सब ठीक होने की भ्रांति में, जो गलत है तुम उसके भी आदी हो जाते हो।
धीरे-धीरे तुम घावों के भी आदी हो। तुम उन्हें जीवन का अनिवार्य अंग मान लेते हो।
मैं चाहता हूं संदेह को चुनना, अगर विश्वास और संदेह में चुनना हो। क्योंकि संदेह कम से कम परमात्मा का दिया हुआ है। और परमात्मा जो भी देता है, तुम जो भी जन्म के साथ लेकर आए हो, उसकी जरूर कोई सार्थकता है। संदेह से सत्य तो कभी नहीं मिलेगा, लेकिन संदेह में कोई जी नहीं सकता। संदेह में फांसी लग जाती है। और फांसी का फंदा कौन नहीं तोड़ना चाहेगा? फांसी का फंदा तोड़ा तुमने और श्रद्धा का आविर्भाव हुआ। संदेह के नीचे दबी है श्रद्धा और तुम संदेह के ऊपर थोप रहे हो विश्वास। ख्याल रखना, तुम श्रद्धा से और भी दूर हो गए। एक पर्त तो संदेह की थी, एक चट्टान तो संदेह की थी, तुमने एक चट्टान और रख ली--विश्वास की। अब श्रद्धा और भी दूर हो गई। अब खुदाई और भी करनी पड़ेगी।
एक बहुत बड़े संगीतज्ञ वेगनर के पास जब भी कोई संगीत सीखने आता था, वह पहली बात यही पूछता था कि तुमने कहीं और संगीत नहीं सीखा? अगर सीखा हो तो मेरी फीस दुगनी होगी। अगर बिल्कुल नहीं सीखा है कहीं, क ख ग से शुरू करना है, तो फिर कोई बात नहीं। फिर उतनी ही फीस लूंगा जितनी मैं सभी से लेता हूं। फिर दुगनी नहीं होगी। स्वभावतः किसी ने आठ साल दस साल संगीत का अभ्यास किया था, तो वह कहता, "आप उल्टी बातें कर रहे हैं। हम दस साल मेहनत करके आए हैं, संगीत सीख कर आए हैं। हम से आपको कम फीस लेनी चाहिए। जो क ख ग से शुरू करेंगे उनसे ज्यादा फीस लेनी चाहिए।
वेगनर कहता कि मेरा अनुभव कुछ और है। मेरा अनुभव यह है कि तुम जो सीख
कर आए हो पहले मुझे वह भुलाना पड़ेगा। तब काम शुरू होगा। काम तो क ख ग से ही शुरू होगा। पहले तुम्हारी स्लेट की सफाई करनी पड़ेगी, फिर लिखावट हो सकेगी।
यह मेरा भी अनुभव है। मैं वेगनर से राजी हूं। वह ठीक कहता था। वह पश्चिम के बहुत बड़े संगीतज्ञों में से एक था। उसने बात पते की कही है, गहरी कही है। मेरा भी यह अनुभव है। जो विश्वासी मेरे पास आ जाते हैं उनके साथ उतनी मेहनत नहीं करनी पड़ती, क्योंकि उनके पास एक ही चट्टान है जिसको तोड़ना है। विश्वासी के पास दोहरी चट्टानें हैं। पहले उसका विश्वास तोड़ो और विश्वास से वह चिपटता है, क्योंकि विश्वास में सांत्वना है। संदेह में तो कोई सांत्वना है ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति संदेह से मुक्त होना चाहता है। संदेह स्वाभाविक है, संदेह से मुक्त होने की आकांक्षा स्वाभाविक है। विश्वास अस्वाभाविक है, आरोपित है। और इसलिए विश्वास से मुक्त होने की कोई आकांक्षा भी नहीं है। क्योंकि कभी परमात्मा ने सोचा भी नहीं था कि तुम विश्वास में पड़ जाओगे। विश्वास पंडितों की, पुरोहितों की ईजाद है,

बेईमानों की ईजाद है, शोषकों की ईजाद है, जो तुम्हारा लहू चूस रहे हैं उनकी ईजाद है।
विश्वास झूठा सिक्का है; श्रद्धा के नाम से चलता है, लेकिन झूठा सिक्का है। विश्वास का अर्थ होता हैः उधार बासा। और सत्य कभी बासा हो सकता है, उधार हो सकता है? विश्वास तो एैसे है जैसे कभी-कभी किताबों में दबे हुए गुलाब के फूल मिल जाते हैं--सूखे, मुर्दा। न उनमें गुलाब ही गंध होती है, न रंग होता है। विश्वास ऐसा है--किताबों में दबा हुआ फूल। और श्रद्धा ऐसी है--अभी झाड़ी पर खिला हुआ फूल। अभी रसधार बह रही है उसमें अभी जीवंत है। अभी प्राण है उसमें। अभी सूरज की किरणें प्रवेश करती हैं। अभी हवाएं उसे दुलारती हैं। अभी वह सांस लेता है। अभी उसके हृदय में धड़कन है। अभी परमात्मा उसके भीतर विराजमान है।
श्रद्धा और विश्वास में वैसा ही फर्क है जैसे कागजी फूलों में और असली फूलों में; झूठे सिक्कों में और असली सिक्कों में। विश्वास में मत पड़ जाना। इसलिए मैं चाहता हूंः सौभाग्य का दिन होगा वह, जिस दिन हम अपने बच्चों को विश्वास देना बंद कर देंगे। हमें वस्तुतः अपने बच्चों को संदेह पर धार रखना सिखाना चाहिए। संदेह की तलवार पर धार रखना सिखाना चाहिए। संदेह की तलवार पर धार रखो। संदेह का उपयोग करो ताकि कोई विश्वास तुम्हें पकड़ न सके। संदेह को सजग रखो, ताकि किसी विश्वास के जाल में तुम उलझ न जाओ। और संदेह की एक खूबी है। खूबी यह है कि संदेह तुम्हें बैचेनी में रखेगा, अशांत रखेगा, परेशान रखेगा। उसमें कोई सांत्वना नहीं है। उसमें कोई सुरक्षा नहीं है कांटे पर कांटे पर जैसे कोई सोया हो, करवट भी नहीं बदल सकते।
विश्वास तो बड़ी सुखद शय्या दे देता है। जी भर कर सोओ। घोड़े बेच कर सोओ जागने का कोई सवाल ही नहीं है। विश्वास मूर्च्छित करता है। संदेह सजग रखता है। लेकिन संदेह से सत्य नहीं मिलता, पर संदेह से एक काम होता है, वह काम है कि संदेह तुम्हें अपने से मुक्त करने के लिए सदा उत्प्रेरित करता है। संदेह करता है कि मेरे पार जाओ। संदेह के पार जाना ही होगा।
तुम जरा सोचो तो तुम मान कर बैठ गए हो कि आत्मा अमर है; जाना नहीं। यह तुम्हारा मानना है कि आत्मा अमर है। बस आत्मा को अमर मान लिया तो अब आत्मा का अनुभव करने की क्या जरूरत रही। मान लिया सो बात खत्म हो गई। जब मान ही लिया तो अब खोजना क्या है? हटा दो इस विश्वास को और तब प्राणों में एक तड़फ उठेगी, एक बैचेनी, एक तूफान, एक आंधी, एक झंझावात। सब कंप जाएगा। मौत द्वार पर दस्तक दे रही है, हर पल आ सकती है, कभी भी आ सकती है। और आत्मा है भी या नहीं, यह भी पता नहीं, अमरता की तो बात दूर। मौत के बाद होगी या नहीं, यह तो सवाल नहीं; अभी भी है या नहीं यह भी संदिग्ध है। कैसे तुम बैठे रहोगे इस अंगारे पर। इस ज्वालामुखी पर, धधकते ज्वालामुखी पर ज्यादा देर नहीं बैठ सकोगे। यह संदेह तुम्हें अन्वेषण में ले जाएगा। यह संदेह ही तुम्हें खोज में गतिमान करेगा। और उसी खोज का अंतिम फल श्रद्धा है।
श्रद्धा है जानना, मानना नहीं। श्रद्धा है अनुभव। श्रद्धा है ध्यान, ज्ञान नहीं। ज्ञान विश्वास पैदा कर देता है। संदेह है अज्ञान। विश्वास है ज्ञान--उधार बासा, शास्त्रीय, तोतारटंत। और श्रद्धा है स्वानुभव, साक्षात्कार, सत्य के साथ मिलन।
संदेह से श्रद्धा को खोजो। श्रद्धा तुम्हें सत्य से मिला देगी। यह सम्यक सूत्र है। संदेह को सीढ़ी बनाओ--श्रद्धा के मंदिर तक पहुंचने के लिए। तलवार की धार पर चलना जै। मगर कोई उपाय नहीं है, कोई और सस्ता मार्ग नहीं है। चलना ही होगा तलवार की धार पर। यूं ही निखार आता है। यूं ही जीवन में ऊर्जा का आविर्भाव होता है। चुनौतियों में ही तो तुम जागते हो। संदेह चुनौतियां देता है।
संदेह का उपयोग करना सीखो। संदेह को दबाओ मत। मैं चाहता हूं कि तुम संदेह से जरूर मुक्त होओ, लेकिन दबा कर कोई कभी मुक्त नहीं हुआ है। जिसको तुम दबा लोगे, उसे बार बार दबाना पड़ेगा। उससे कभी मुक्ति नहीं होगी। वह भीतर बैठा रहेगा, वह भीतर पड़ा रहेगा। लाख दबाओ, फिर अवसर पाकर निकल आएगा। जैसे कोई बीज को जमीन में दबा दे, वर्षा आएगी, फिर अंकुरण हो जाएगा। लाख

दबाए चले जाओ, फिर-फिर अंकुर आएंगे। फिर-फिर अवसर आएंगे। संदेह फिर खड़ा हो जाएगा।
संदेह दबाया नहीं जा सकता। हां, संदेह मिटाया जा सकता है। और मिटाने
का उपाय हैः संदेह को जीओ। संदेह को उसकी समग्रता से जीओ। डरना क्या है? भय क्या है? संदेह की सीढ़ी पूरी तरह चलो। और तुम चकित होओगे यह जानकर कि संदेह श्रद्धा तक ले आता है। लोगों ने तुमसे उल्टी बात कही है। तुम्हें अब तक यही समझाया गया है कि संदेह से तुम कभी श्रद्धा तक नहीं पहुंचोगे। यह बात गलत है। मैं पहुंचा हूं संदेह से ही श्रद्धा तक। इसलिए अपने अनुभव से कहता हूं कि यह बात बुनियादी रूप से गलत है। संदेह के अतिरिक्त कोई कभी श्रद्धा तक नहीं पहुंचा है। हां, यह जरूर सच है कि संदेह से कोई सत्य नहीं तक पहुंचता है। संदेह श्रद्धा तक ले आता है, बस। और जो श्रद्धा पर आ गई उसकी भूमिका तैयार है। सत्य तक जाना ही नहीं होता, सत्य खुद आता है। तुम्हारा काम है संदेह से श्रद्धा तक आ जाओ, फिर प्रतीक्षा करो। फिर धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करो। सत्य खुद आएगा।
कबीर ने कहा हैः मैं खोज-खोज कर थक गया परमात्मा को, नहीं मिला नहीं मिला। परमात्मा तुम्हारी खोज से नहीं मिलता। तुम खोजोगे भी कहा? किस दिशा में? काबा में कि काशी में कि कैलाश में, कहां खोजोगे? उसका कोई पता भी तो नहीं, उसका कोई ठिकाना भी तो नहीं। नाम-धाम भी तो नहीं। जाओगे कहां? कहां खोजोगे, क्या करोगे? शास्त्रों में भटकोगे और शास्त्रों में भटकना बीहड़ जंगलों में भटकना है, जहां भटक गए तो निकलना मुश्किल हो जाता है। गीता में खोजोगे, कुरान में खोजोगे, बाइबिल में खोजोगे और भटक जाओगे, अटक जाओगे। सत्य को खोजा नहीं जा सकता।
कबीर ठीक कहते हैं कि मैंने बहुत खोजा, नहीं पाया। मगर खोजते-खोजते एक बात घट गईः मैं खो गया। उसे तो नहीं पाया, लेकिन मैं खो गया। और जिस दिन मैं खो गया, एक अपूर्व घटना घटी। उस दिन से परमात्मा मेरे पीछे लगा फिरता है। हरि लागे पाछे फिरत कहत कबीर कबीर! हरि लागे पाछे फिरत... पीछे पीछे हरि घूमते हैं और मेरे और कहते हैं--कबीर, कबीर, कहां जाते! अरे सुनो भी, रुको भी! अब मुझे कुछ पड़ी नहीं--कबीर कहते हैं। अब मैं जानता हूं कि मैं मिट गया। भूमिका तैयार हो गई।
जिस दिन संदेह मिटता है उस दिन मैं भी मिट जाता है। संदेह और मैं का संग-साथ है। श्रद्धा और मैं का कोई संग-साथ नहीं है। संदेह है अहंकार, श्रद्धा है निरहंकारिता। जहां श्रद्धा आई, भूमिका बन गई। फिर परमात्मा स्वयं आता है, सत्य स्वयं आता है।
इसलिए यह ऐतरेय ब्राह्मण का सूत्र बड़ा प्यारा हैः श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः। श्रद्धा को स्त्री कहा। ठीक ही कहा। ये काव्यात्मक प्रतीक हैं। सत्य तो है पुरुष, श्रद्धा है स्त्री। इसलिए सत्य को यजमान कहा, अतिथि कहा। और मेजबान तो कोई स्त्री ही हो सकती है; पुरुष की वह क्षमता नहीं, क्योंकि पुरुष की प्रेम ही पात्रता नहीं। श्रद्धा है प्रेम की पराकाष्ठा। श्रद्धा स्त्रैण है। इसलिए जब कभी पुरुष में भी घटती है तो उसके व्यक्तित्व में भी स्त्रैण कोमलता आ जाती है।
तुम देखते हो, बुद्ध, महावीर, जैनों के चौबीस तीर्थंकर, राम, कृष्ण, इनमें से किसी की हमने दाढ़ी-मूंछ नहीं बनाई है। तुमने कोई प्रतिमा देखी जिसमें राम और कृष्ण की दाढ़ी मूंछ हों? तुमने कोई प्रतिमा देखी जिसमें राम और कृष्ण की दाढ़ी मूंछ हों? या बुद्ध की, या महावीर की? और क्या तुम सोचते हो, सब मुखन्नस थे, कि किसी को दाढ़ी मूंछ थी ही नहीं? एकाध हो भी सकता है कि मुखन्नस हो, मगर चौबीस के चौबीस जैनों के तीर्थंकर बुद्ध भी राम भी, कृष्ण भी, सारे अवतार! इनकी दाढ़ी "मूंछ क्या हुई? और यूं भी नहीं कि सबके बचपन की तस्वीरें हैं ये। बुद्ध बयासी वर्ष जीए, महावीर अस्सी वर्ष जीए। अस्सी वर्ष तक कम से कम दाढ़ी मूंछ तो निकल ही आई होगी मगर क्या हुआ? हुआ यह कि हमने दाढ़ी मूंछ अंकित नहीं की। हम इतिहास का उतना भरोसा नहीं करते। इतिहास दो कौड़ी ही चीज है। हम समय का ही भरोसा नहीं करते, इतिहास का क्या भरोसा करें? हम कालातीत पर दृष्टि रखते हैं। हम, इतिहास से भी बड़ा कुछ

सत्य है, उस पर हमारी नजर है। इतिहास में तथ्य होते हैं, सत्य नहीं होते। सत्य तो बड़ी और बात है। सत्य तो काव्य में होता है।
ये काव्यात्मक प्रतिमाएं हैं। यह दाढ़ी मूंछ हमने हटा दी। दाढ़ी मूंछ
तो रही, निश्चित रहीं, इसमें कोई शक-शुबा का कारण नहीं है। लेकिन हमने मूर्तियों से हटा दी। हटा दी इसलिए कि जब ये व्यक्ति परम श्रद्धा को उपलब्ध हुए तो इनके व्यक्तित्व में एक तरह की स्त्रैणता आ गई। उस स्त्रैणता को कैसे हम सांकेतिक करें, किस तरह संकेत दें? पत्थर की प्रतिमा में कैसे लिखें इस बात को कि इनके व्यक्तित्व में स्त्रैण कोमलता आ गई थी, श्रद्धा पराकाष्ठा को पहुंच गई थी? दाढ़ी मूंछ हटा कर हमने वह काम किया है। फ्रेड्रिक नीत्शे ने अपनी बहुत सी महत्वपूर्ण बातों में एक बात यह भी कही है... हालांकि उसने तो आलोचना के लिए कही है, खंडन के लिए कही है। वह कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं था, नास्तिक था। उसने ही यह प्रसिद्ध सूत्र दिया है इस सदी को कि ईश्वर मर चुका है। यद्यपि उसने आलोचना में यह बात कही है, लेकिन मैं मानता हूं इसमें थोड़ी सचाई है। मैं तो प्रशंसा में मानता हूं इस बात को। मेरी व्याख्या और है। उसने कहा है कि बुद्ध और जीसस स्त्रैण हैं और उन्होंने सारी मनुष्यता को स्त्रैण कर दिया। उसने तो निंदा के लिए कहा है। वह उसी तरह कहा है, जैसे तुम किसी को कह देते हो--नामर्द, स्त्रैण। तुम तो निंदा के लिए, किसी को गाली देना चाहते हो, तब यह कहते हो। ऐसा ही उसने कहा है, क्योंकि उसके लिए पुरुष की जो पुरुषता है, जो कठोरता है, उसके प्रति बड़ा समादर है।
उसने लिखा हैः मैंने अपने जीवन में जो सुंदरतम अनुभव किया है, जो सबसे सुंदर मैंने दृश्य देखा है, वह सूर्योदय का नहीं है, सूर्यास्त का नहीं है, चांद-तारों का नहीं है, किसी सुंदर स्त्री का नहीं है, गुलाब के फूलों का नहीं है, कमल के फूलों का नहीं है--वह सुंदर दृश्य क्या है? वह सुंदर दृश्य है--उसे कहा--एक सुबह सैनिकों की एक टुकड़ी अपनी चमकती हुई संगीनें लेकर कवायद कर रही थी। सूरज की धूप में संगीनों की चमक, जूतों की खटाखट आवाज, लयबद्ध, सैनिकों का वह प्रखर रूप! वह मेरे मन को भा गया है। उससे ज्यादा सुंदर दृश्य मैंने कभी दूसरा नहीं देखा है। अब जिस आदमी के लिए यह सौंदर्य है--संगीनों ही धूप में चमक, सिपाहियों के बूटों की खनक, सिपाहियों के अकड़े हुए शरीर और उनकी कवायद में जिसको संगीत सुनाई पड़ रहा है, वीणा में नहीं, सितार में नहीं, पिआनो में नहीं, बांसुरी में नहीं--जूतों की आवाज में जिसे संगीत सुनाई पड़ रहा है, लयबद्धता जिसे पहली बार अनुभव हुई है--उस आदमी के लिए जीसस और बुद्ध को स्त्रैण कहने का मतलब साफ है। वह यह कह रहा है कि इन्होंने मनुष्य को बरबाद कर दिया। इन्होंने पुरुष जाति को नपुंसक कर दिया। इन्होंने प्रेम की शिक्षा दे-देकर--अहिंसा, प्रेम, क्षमा, अक्रोध, अपरिग्रह--आदमी को मार ही डाला। उसकी सारी जीवन ऊर्जा नष्ट कर दी। उसका सारा अभियान खंडित कर दिया।
नीत्शे तो यह निंदा के लिए कह रहा है, लेकिन मैं इसमें सत्य का एक कण पाता हूं। वह एक कण यह है कि जरूर जीसस और बुद्ध के व्यक्तित्व में एक स्त्रैणता है, एक नाजुकता है, फूलों जैसी नाजुकता। वह अपरिहार्य है। जब श्रद्धा पूर्ण होती है तो पुरुष मिट जाता है, क्योंकि पुरुषता मिट जाती है, कठोरता मिट जाती है, आक्रमक भाव चला जाता है। ग्राहक भाव पैदा होता है, ग्रहणशीलता पैदा होती है। स्त्रैण भी एक प्रतीक है।
तुमने ख्याल किया, कोई स्त्री किसी पुरुष के पीछे नहीं भागती। और अगर भागे तो पुरुष फिर बिल्कुल ही भाग खड़ा होगा। उस स्त्री से कोई भी पुरुष बचेगा, जो उसका पीछा करे। स्त्री कभी किसी पुरुष से प्रेम का निवेदन भी नहीं करती। पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी स्त्री ने कभी किसी पुरुष से प्रेम-निवेदन नहीं किया। ऐसा नहीं कि स्त्री को प्रेम अनुभव नहीं होता; पुरुष से ज्यादा अनुभव होता है। पुरुष का अनुभव प्रेम का बहुत छोटा है, आंशिक है। स्त्री का अनुभव प्रेम का बहुत बड़ा है और बहुत समग्र है। मगर निवेदन नहीं करती, क्योंकि निवेदन में थोड़ा आक्रमण है। "मैं तुमसे प्रेम करता हूं--यह बात कहना भी आक्रमण है। यह एक तरह का आरोपण है। यह एक

तरह की जबरदस्ती है। यह काम पुरुष ही कर सकता है। यह पुरुषों को ही करना पड़ता है। यह निवेदन पुरुष को ही करना पड़ता है।
इसलिए हर स्त्री अपने पति को कहती सुनी जाती है कि कोई मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी, तुम ही मेरे पीछे पड़े थे। तुम्हीं लिखते थे प्रेम पत्र। वह सम्हाल कर रखती है प्रेम पत्र, वक्त आने पर दिखा देती है कि ये देख लो, क्या-क्या तुमने लिखा था। और तुम ही मेरे बाप के चरण छूते थे आ-आकर। और तुमने ही चाहा था, कोई मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी।
ऐसे मुल्ला नसरुद्दीन से उसकी पत्नी एक सुबह-ही सुबह कह रही थी। बस चाय की टेबल पर शुरू हो जाती है कथा। चाय क्या है--श्री गणेशाय नमः! बस फिर कथा शुरू। वहीं से शुरू हो गया। और मुल्ला के मुंह से निकल गया कि तूने मेरी जिंदगी बरबाद कर दी। बस स्त्री तुनक गई। उसने कहा कि मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी। मैं तुम्हारे घर नहीं आई थी। मैंने तुम्हारे बाप की खुशामद नहीं की थी। तुम्हीं मेरे बाप के पास आए थे। तुम्हीं हाथ जोड़े फिरते थे। तुम्हीं चिट्ठियां लिखते थे। तुम्हीं संदेश भेजते थे। तुम्हीं रास्ते में खड़े होकर सीटियां बजाते थे। किसने गाए थे वे गीत मेरी खिड़की के पास?
मुल्ला ने ठीक कहाः ठीक है। मैं स्वीकार करता हूं कि यह बात सच है। मगर उसी तरह सच है जैसे कि चूहे को पकड़ने के लिए चूहेदानी तो बैठी रहती है, कोई चूहों के पीछे नहीं दौड़ती। चूहे खुद ही मूरख उसमें फंस जाते हैं। मैं ही फंसा यह सच है।
मगर चूहेदानी बैठी रहती है, रस्ता देखती रहती है कि आओ। इंतजाम सब कर देती है चूहादानी। रोटी के टुकड़े पड़े हैं, मक्खन पड़ा है, चीज पड़ा है, मिठाई रखी है। सब इंतजाम है। आओ। और तुमने देखा, चूहेदानी की एक खूबी होती है, उसमें भीतर आने का उपाय होता है, बाहर जाने का उपाय नहीं होता है। आ गए कि आ गए। आए तो आए ही क्यों? अब वह जो भीतर आ गया, इस ख्याल में था कि बाहर जाने का रास्ता भी होगा। बाहर जाने का रास्ता ही नहीं होता।
मजाक एक तरफ, लेकिन पुरुष आक्रमक होता है, वह हमला करता है। प्रेम भी करे तो भी उस प्रेम में उसकी आक्रमकता होती है। यह पुरुष का स्वभाव है। इसमें कुछ कसूर नहीं है। स्त्री अनाक्रमक होती है, ग्रहणशील होती है, स्वागत करती है, अंगीकार करती है। लेकिन उसका बुलावा भी आवाज में नहीं दिया जाता है--चुपचाप, मौन में, इशारों में। सच तो यह है कि वह नहीं-नहीं ही कहे चली जाती है।
सारी दुनिया के प्रेमियों का अनुभव है कि स्त्री के नहीं पर भरोसा मत करना। उसकी नहीं में हां छिपी होती है। जरा गौर से खोदना, कुरेदना। तुम उसकी नहीं में हां पाओगे।
सेठ चंदूलाल मारवाड़ी एक स्त्री के प्रेम में थे। एक दिन बहुत उदास बैठे थे। मुल्ला नसरुद्दीन, उनके मित्र ने पूछा, क्या हो गया, इतने क्यों विषाद में पड़े हो? क्या लुट गया?
चंदूलाल ने कहा कि मैं जिस स्त्री के प्रति आशा लगाए बैठा था, वह सब खंडित हो गई।
मुल्ला ने कहाः अरे इतनी जल्दी निर्णय न लो। स्त्री लाख नहीं कहे, उसका मतलब हां होता है। तुम घबड़ाओ मत। तुम तो पूछे ही चले जाओ, कहे ही चले जाओ।
चंदूलाल ने कहाः नहीं कहती तो ठीक था। उसने नहीं नहीं कहा।
तो मुल्ला नसरुद्दीन कहाः उसने ऐसा क्या कह दिया फिर? या तो नहीं कहेगी या हां कहेगी।
अरे--उसने कहा--न उसने नहीं कहा न हां कहा। कहने लगी--अरे मर्दुए, जाकर अपनी शक्ल आईने में देख! अब इसमें से मैं क्या समझूं? तुम तो कहते हो नहीं कहे तो हां समझो, नहीं कहती तो मैं भी हां समझता। हां कहती तो भी हां समझता। लेकिन न नहीं कहा न हां कहा। कहने लगी कि जा और अपनी शक्ल आईने में देख। अब इसमें से मैं क्या समझूं? नहीं कहती तब तो कुछ बात थी, तो उसमें से हां निकाल लेते।

स्त्री नहीं कहती है तो वह भी स्वीकार है। अनामक्रता इतनी होती है कि
वह हां भी भरे तो भी अशोभन मालूम होता है। उसकी लाज, उसकी लज्जा, उसका संकोच हां भी नहीं भरने देता। वह भी था.ेडा अभद्र मालूम होता है। वह नहीं ही कहती है, लेकिन इशारों से हां कहती है। स्वीकार है उसे। तुम उसके चेहरे पर, उसकी भावभंगिमा में पढ़ सकते हो कि हां। लेकिन ओंठों से नहीं कहेगी। हां कहना भी थोड़ा सा आक्रमण है, जल्दी है।
सत्य के प्रति व्यक्ति को स्त्रैण होना होता है--ग्राहक, ग्रहणशील।
द्वार खुले हैं। बंदनवार लगा है। स्वागतम लिखा है। हार्दिक स्वागतम है।
सत्य आए तो प्राणों में ले लेने की तैयारी है। न आए तो प्रतीक्षा की तैयारी है। धैर्य होता है, प्रतीक्षा होती है। और एक मौन निमंत्रण होता है।
इसलिए ठीक कहा ऐतरेय ब्राह्मण ने कि श्रद्धा पत्नी, सत्यं यजमानः। जीवन-यज्ञ में श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान।
और यह जीवन यज्ञ है। यह पूरा जीवन यज्ञ है। यह आग जला कर और घी फेंकना
और गेहूं फेंकना और चावल फेंकना, यह पागलपन है। यह जीवन-यज्ञ की जगह थोथे यज्ञ पैदा करना है। यह पूरा जीवन ही यज्ञ है। इसमें अगर कुछ-आग में डालना है तो अहंकार डालना है। और अहंकार तुमने जाना कि तुम्हारे जीवन में तत्क्षण श्रद्धा पैदा हुई। तुम गए कि फिर संदेह करने वाला ही न बचा, तो संदेह कैसे बचेगा? जड़ से ही बात कट गई। न रहा बांस न बजेगी बांसुरी। श्रद्धा को मैंने कहा प्रेम की पराकाष्ठा। उस पराकाष्ठा पर व्यक्तित्व चाहे पुरुष का हो चाहे स्त्री का, स्त्रैण हो जाता है। एक नाजुकता आ जाती है, एक कोमलता आ जाती है। फूलों की कोमलता। तितलियों के पंखों की कोमलता। इंद्रधनुषों की कोमलता।
और सत्य है पुरुष। इसलिए पुराना प्रतीक है कि सिवाय परमात्मा के और कोई पुरुष नहीं।
मीरा के जीवन में यह कथा है मीरा मथुरा गई, वृंदावन गई। कृष्ण के प्रेम में दीवानी थी। सो जहां कृष्ण के चरण पड़े थे, जहां कृष्ण की बांसुरी बजी थी, जिन बंसीबटों में, जिस यमुना-तट पर, वह सब उसके लिए तीर्थ था, महातीर्थ था। उन-उन जगहों पर जाना चाहती थी, वहां की मिट्टी भी पवित्र हो गई थी। वहां की मिट्टी सोना थी उसके लिए। लेकिन वृंदावन में एक मंदिर था कृष्ण का, बड़ा मंदिर, जिसका पुजारी स्त्रियों को नहीं देखता था।
यह पागलपन कुछ स्वामी नारायण संप्रदाय में ही नहीं है! यह पागलपन बड़ा पुराना है। स्वामी नारायण संप्रदाय के जो महंत हैं, प्रमुख जी महाराज, वे स्त्री को नहीं देखते। हवाई जहाज में भी यात्रा करते हैं तो उनकी सीट के चारों तरफ परदा बांध दिया जाता है--बुर्के के भीतर। वे अकेले ही आदमी हैं जमीन पर, जो बुर्के में चलते हैं। क्या मजा है! हाथी पर जुलूस निकलता है, मगर छाता ऐसा उनके ऊपर लगाया जाता है कि उनकी आंखें छाते की छाया में रहें, कोई स्त्री दिखाई न पड़ जाए। स्त्री से ऐसा भय है, ऐसी घबड़ाहट!
ऐसा ही वह पुजारी रहा होगा। या यही प्रमुख जी महाराज पिछले जन्म में रहे हों, क्योंकि ऐसे लोग तो भटकते रहते हैं। ऐसे लोगों की मुक्ति का तो कोई उपाय है नहीं! ये तो यहीं-यहीं चक्कर मारते हैं। ये जाएंगे भी कहां! जो स्त्री से बचेगा, स्त्री की कोख से फिर पैदा होगा, क्योंकि उसके चौबीस घंटे स्त्री ही खोपड़ी में समाई रहेगी। इधर मरा नहीं कि उसने स्त्री खोजी नहीं, कि गया स्त्री के गर्भ में, फिर गिरा गर्त में!
मीरा जब उस मंदिर पर पहुंची तो मीरा के आने की खबर तो पहुंच गई थी, उसके गीतों की, उसकी वीणा की लहर तो पहुंच गई थी। पुजारी सावधान था। तीस साल से उस मंदिर में कोई स्त्री प्रवेश नहीं कर सकी थी। उसने द्वार पर पहरे लगा रखे थे कि देखो, मीरा को भीतर मत घुसने देना। मगर मीरा जब आई और द्वार पर नाचने लगी तो पहरेदार उसके नाच में खो गए। कौन नहीं खो जाएगा-- मीरा नाचे! "पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे!" कौन मीरा के नृत्य में न खो जाएगा! "मैं तो प्रेम दीवानी!" वह किसको दीवान न कर देगी! वह स्वयं तो दीवानी थी ही, लेकिन उसके आसपास भी दीवानेपन का एक माहौल चलता था। वह खुद तो मस्त थी, मस्ती लुटाती भी थी। वे भी झूमने लगे। पहरेदार भी झूमने लगे।

भूल ही गए कि इसको रोकना है। पहले तो वह वहीं गीत गाती रही द्वार पर मस्त होकर, तो अभी सवाल ही न उठा था रोकने का। और जब वे बिल्कुल डूब गए, मस्त हो गए और डोलने लगे, तो मीरा नाचती हुई मंदिर में प्रवेश कर गई। रोकें रोकें कि वह तो भीतर थी। मीरा तो बिजली की चमक थी। कहां पकड़ पाओगे? जब तक उन्हें होश आया तब तक बात ही खतम हो चुकी थी, वह तो भीतर पहुंच गई थी। और पुजारी प्रार्थना कर रहा था, आरती उतार रहा था। उसने स्त्री को देखा। उसके हाथ से आरती छूट कर गिर पड़ी। यह तीस साल की पूजा और तीस साल की आरती! और कृष्ण के सामने होते हुए मीरा दिखाई पड़ गई और कृष्ण दिखाई क्या खाक पड़े होंगे इसको तीस साल में! यह नाहक ही मेहनत कर रहा था, नाहक कवायद कर रहा था। थाली गिर गई, थाल गिर गया। और क्रोधित हो उठा। और कहा कि "ए स्त्री, क्या तुझे द्वारपालों ने नहीं रोका? क्या तुझे मालूम नहीं है? सारी दुनिया जानती है, वृदांवन का बच्चा-बच्चा जानता है कि इस मंदिर में स्त्री का प्रवेश निषिद्ध है। द्वार पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है कि स्त्री-प्रवेश निषिद्ध है। तूने प्रवेश कैसे किया? में स्त्री को नहीं देखता हूं। तूने मेरी तीस साल की तपश्चर्या नष्ट कर दी।"
मीरा ने चुपचाप सुना और कहा कि मैं तो सोचती थी कि तुम कृष्ण के भक्त हो, लेकिन मैं गलती में थी। क्योंकि कृष्ण का भक्त तो मानता है एक ही पुरुष है--वह परमात्मा, वह कृष्ण। बाकी तो हम सब गोपियां हैं। तो तुम सोचते हो दुनिया में दो पुरुष हैं--एक कृष्ण और एक तुम? और क्या खाक तुम पुरुष हो। कृष्ण तो स्त्रियों से नहीं डरे। स्त्रियां नाचती रहीं उनके चारों तरफ। राधा की कमर में हाथ डाल कर वे बांसुरी बजाते रहे। उनके तुम भक्त हो, जरा मूर्ति में कृष्ण के बगल में ही। बांसुरी बज रही है, राधा नाच रही है। कृष्ण के तुम भक्त हो और स्त्रियों से ऐसा भय! यह क्या खाक भक्ति हुई? चलो, अच्छा हुआ मैं आ गई। यह तो पता चल गया कि दुनिया में दो पुरुष हैं--एक परमात्मा और एक तुम।
बड़ी चोट पहुंची पुजारी को। गिर पड़ा पैरों पर। माफी मांगी कि मुझे क्षमा कर दो। यह तो मुझे ख्याल ही न रहा कि पुरुष तो एक ही है।
भक्ति के शास्त्र का यह सारभूत है कि परमात्मा पुरुष है। वह आएगा। हम सिर्फ द्वार खोल कर प्रतीक्षा करें। वह मेहमान होगा। हम मेजबान बनें। हम आतिथ्य के लिए तैयार हो जाएं। अतिथि जरूर आएगा। कभी ऐसा नहीं हुआ कि न आया हो। जब भी किसी का हृदय आतिथ्य के लिए तैयार हुआ है, वह जरूर आया है।
तो जैसा मैंने कहा, श्रद्धा प्रेम की पराकाष्ठा है, स्त्रैणता की पराकाष्ठा है--वैसे ही सत्य ध्यान की पराकाष्ठा है। श्रद्धा प्रेम की पराकाष्ठा है और सत्य ध्यान की पराकाष्ठा है। तुम श्रद्धा पैदा कर लो और तुम्हारे जीवन में तत्क्षण सत्य उतर आएगा, ध्यान उतर आएगा, समाधि उतर आएगी।
यह सूत्र भक्ति का है। इस सूत्र में सारी भक्ति का शास्त्र समा गया। "श्रद्धा और सत्य की उत्तम जोड़ी है।" इससे उत्तम जोड़ी तो कुछ हो भी नहीं सकती। संस्कृत का सूत्र तो और भी अदभुत है। हिंदी में अनुवाद में कुछ खो गया। जिसने अनुवाद किया होगा हिंदी में, भय के कारण कुछ बात छोड़ गया। संस्कृत का सूत्र है--"श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तम मिथुनम्।" यह सिर्फ जोड़ी की ही बात नहीं है; इन दोनों के बीच जो संभोग होता है, जो मिथुन होता है, उसको छोड़ दिया है हिंदी सूत्र में। अक्सर मैंने देखा है कि संस्कृत के बहुमूल्य सूत्र हिंदी में अनुवादित होते-होते खराब हो जाते हैं क्योंकि हिंदी अब कमजोरों की भाषा है। संस्कृत बलशाली लोगों की भाषा थी। उन्होंने हिम्मत से सत्य कहे थे--जैसे के वैसे कहे थे। उन्हें कुछ कहने में कठिनाई न थी, कि इन दोनों के संभोग से... । मिथुन का अर्थः संभोग। इन दोनों का संभोग, परम संभोग है क्योंकि वही समाधि है। जहां श्रद्धा और सत्य का संभोग होता है, उस संभोग से ही मोक्ष का जन्म होता है, कैवल्य का जन्म होता है, निर्वाण का जन्म होता है।
लेकिन हिंदी में सूत्र जरा साधारण हो गया--"श्रद्धा और सत्य की उत्तम जोड़ी है।" जोड़ी में वह मजा न रहा। जोड़ी में बात खो गई। जोड़ी बड़ी साधारण बात हो गई। यह वैसी हो गई जैसे राम मिलाई जोड़ी, कोई अंधा कोई कोड़ी। राम भी क्या-

क्या जोड़ियां मिलाता है! जब मिलाता है, गलत ही मिलाता है। असल में राम को तुम मिलाने ही नहीं देते, तुम तो ज्योतिषियों से मिलवा आते हो! कहते हो-- राम मिलाई जोड़ी! मिलाते ज्योतिषी हैं। राम को मिलाने दो तो एक जोड़ी गलत न हो। मगर ज्योतिषियों से मिलवाते हो, सब गलत हो जाता है। इनकी खुद की जोड़ी तो देखो। जरा इनकी देवी जी को तो देख लो। फिर तुम समझ जाना, फिर इनसे जोड़ी मिलवाना। अपनी मिला न पाए, तुम्हारी मिला रहे हैं। और चार-चार आठ-आठ आने में, रुपये दो रुपये में मिला रहे हैं। जोड़ी मिला रहे हैं। जीवन भर का निर्णय दो रुपये में करवा लेते हैं!!
मैं जबलपुर में था तो मेरे पड़ोस में एक ज्योतिषी रहते थे। उनके पास बड़ी भाड़ लगी रहती थी, बहुत भीड़। साथ-साथ हम घूमने जाते थे सुबह, तो उनसे धीरे-धीरे पहचान हो गई। मैंने पूछाः आपसे पास बड़ी भीड़ लगी रहती है। और भी ज्योतिषी हैं, मगर उनके पास इतनी भीड़ नहीं रहती। उन्होंने कहाः इसका कारण है। अरे जिस की लग्न-कुंडली, जन्म कुंडली कोई न मिला सके उसकी मैं मिला देता हूं। अरे मिलाना अपने हाथ में है। सो जिनकी नहीं मिला पाता कोई, वे सब यहां आते हैं। और सस्ते में मिला देता हूं। एक रुपये में। दूसरे ज्योतिषी कोई दस मांगते हैं, कोई पंद्रह मांगते हैं, मैं तो एक रुपये में, मेरी तो निश्चित फीस है। मोल तोल करना ही नहीं। इधर एक रुपया रखो, इधर मिलाओ। और हमेशा मिलाता हूं, आज तक मैंने कभी ऐसा कुछ किया ही नहीं कि न मिलाया हो। जो भी आ जाए उसकी मिला देता हूं। अरे अपने हाथ में है। इधर का खाना उधर बिठाया, इधर की बात उधर समझाई, मिला मिलू के निपटाया। एक रुपये में और चाहते भी क्या हो? और जो आदमी एक रुपया दे रहा है, उसको एक रुपये का फल भी मिलना चाहिए। सो मिलता है फल।
रुपये दो रुपये में जोड़ी मिलवा रहे हो! फिर अंधे कोढ़ियों को मिलवा देते हैं वे। राम से जोड़ी तो प्रेम के द्वारा मिलती है, ज्योतिषी के द्वारा नहीं मिलती। मगर प्रेम को तो हम होने नहीं देते। सो हमें ईजाद करनी पड़ी हैं नकलें--ज्योतिषी से मिलवाओ, मां-बाप मिलाते हैं। प्रेम से तो हम मिलने नहीं देते। पता नहीं क्यों प्रेम से कैसी दुश्मनी है! प्रेम भर से सब दुश्मन हैं। और सब तरह से राजी हैं। धन पैसे का हिसाब करेंगे, कुलीनता का हिसाब करेंगे, धर्म का, जाति का, वर्ण का, सब विचार कर लेंगे। जनम के समय तारे कहां थे, क्या थे, इस सबका भी हिसाब लगा लेंगे। मगर दो हृदयों से नहीं पूछेंगे कि तुम्हें मिलना भी है भाई कि नहीं! सारी दुनिया मिला लेंगे, इन दो को भर छोड़ देंगे। इनसे नहीं पूछना है।
राम से मिलवाना हो तो इनसे पूछो। राम इनके भीतर से बोलेगा। और तो उसके पास बोलने का कोई उपाय नहीं है। इनके हृदय में धड़केगा।
इसलिए जब प्रेम होता है तो तुम किसी ज्योतिषी के कारण प्रेम में नहीं पड़ते, कि फलां ज्योतिषी ने कहा कि स्त्री के प्रेम में पड़ जाओ, तो पड़ गए। कि फलां ज्योतिषी ने कहा, क्या करें, प्रेम करना ही पड़ेगा! प्रेम जब होता है तो तुम्हें पता ही नहीं चलता कि क्यों। तुम जवाब भी नहीं दे पाते कि क्यों। तुम कहते हो, पता नहीं कंधे बिचकाते हो--हो गया! यह राम मिलाई जोड़ी! सूत्र में तो हैः इन दोनों का मिथुन, इन दोनों का संभोग--श्रद्धा का और सत्य का। सत्य है पुरुष, श्रद्धा है स्त्री। श्रद्धा है स्त्रैणता की पराकाष्ठा। सत्य है पुरुष की पराकाष्ठा। और जहां इन दोनों का मिथुन होता है, जहां इन दोनों का संयोग होता है, जहां इन दोनों का प्रेम होता है, जहां इन दोनों का ऐसा मिलन हो जाता है कि द्वैत समाप्त हो जाता है--मिथुन का वही अर्थ है जहां द्वैत समाप्त हो जाए, अद्वैत रह जाए; जहां दोनों मिल कर एक हो जाते हैं, एक साथ हृदय धड़कता है जहां--बस वही निर्वाण है, महापरिनिर्वाण है।
"श्रद्धा और सत्य की जोड़ी से मनुष्य दिव्यलोकों को प्राप्त करता है।" दिव्य लोक अर्थात समाधि, समाधान--जहां कोई समस्या न रही; जहां जीवन एक उल्लास है।
संस्कृत का सूत्र फिर समझ लेने जैसा हैः "श्रद्धया सत्येन मिथुने।" दुबारा दोहराया है कि कहीं चूक न जाओ। "श्रद्धया सत्येन मिथुने न

स्वर्गोल्लोकान जयतीति।" बिना इनके मिथुन के स्वर्ग का जो आलोक है, जो उल्लास है, स्वर्ग का जो आनंद है उसकी उपलब्धि नहीं।
श्रद्धा की तैयारी करो, सत्य आएगा। श्रद्धा के बीज बोओ, सत्य के फूल लगेंगे। श्रद्धा के द्वार खोलो, सत्य का सूरज तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाएगा। और जहां श्रद्धा और सत्य का मिथुन होगा, संभोग होगा... मेरी किताब संभोग से समाधि की ओर को बहुत गालियां दी गई हैं। किताब तो कोई पढ़ता ही नहीं। बस शीर्षक लोगों को खटक गया। शीर्षक ही पढ़ कर लोग समझ जाते हैं कि बस रुक जाओ। इन सब बुद्धुओं को मैं कहता हूं, जरा अपने शास्त्रों को देखो। ये हिम्मतवर लोग थे। यह ऐतरेय ब्राह्मण का ऋषि हिम्मतवर व्यक्ति रहा होगा। सीधी-सीधी बात कह दी कि सत्य और श्रद्धा का संभोग हो तो समाधि पैदा होती है। तो स्वर्ग है। तो मुक्ति है, कैवल्य है।
यत्रानंदाश्चय मोदाश्च मुदः प्रमुद आस्ते
कामस्य यत्राप्ताः कामाः तत्र माममृतं कुरु।
"हे प्रभु, मुझे वह अमृतत्व दे, जिसमें मोद-प्रमोद प्राप्त होता है, जहां कामनाएं स्वयं पूर्ण तृप्त हो जाती हैं।"
ये हिम्मतवर लोग थे। ये डरपोक कायर तुम्हारे तथाकथित साधु-संत और महात्माओं जैसे नहीं थे। सीधी प्रार्थना है कि हे प्रभु, मुझे वह अमृत दे, दे मुझे वह राज, वह कीमिया, कि जिसे पीकर मैं मोद प्रमोद को प्राप्त हो जाऊं। मोद-प्रमोद का क्या अर्थ होता है? तुम तो गाली देते हो। तुम तो मोद प्रमोद करने वाले लोगों को संसारी कहते हो। और यह ऋषि प्रार्थना कर रहा है--"मोद-प्रमोद को प्राप्त हो जाऊं।"
मेरे संन्यासियों को सारे जगत में गालियां पड़ती हैं। कहा जाता है कि
ये तो अधर्म फैला रहे हैं। संन्यासी को तपस्वी होना चाहिए, त्यागी होना चाहिए, भूखा मरना चाहिए, उपवास करना चाहिए, शरीर को गलाना चाहिए, कांटो पर लेटना चाहिए, धूप-ताप में खड़ा होना चाहिए, शीर्षासन, सिर के बल पर खड़ा होना चाहिए। ऐसे उलटे-सीधे उपद्रव करने चाहिए। मोद-प्रमोद!
मोद-प्रमोद तो वही हुआ, जिसके कारण हमने चार्वाकों को गाली दी है, कि चार्वाक मानते हैंः खाओ, पीओ, मौज करो। मोद-प्रमोद का अर्थ यही हुआः खाओ, पीओ, मौज करो। तथाकथित धार्मिक आदमी इसको गाली देता है। और तब मैं चकित होता हूं कि जो वेदों की पूजा भी करते हैं, वे भी वेदों को उठा कर देखते हैं या नहीं देखते! नहीं तो मेरा संन्यासी उपनिषद और वेदों की अंतर्द्दष्टि के ज्यादा करीब है, बजाए तुम्हारे तथाकथित त्रिदंडी साधुओं के, शंकराचार्य के शिष्यों के, तुम्हारे जैन मुनियों के। क्योंकि मैं उत्सव सिखा रहा हूं। नाचो, गाओ! यह जीवन परमात्मा की इतनी बड़ी भेंट, इसे यूं न गंवाओ। इसे अहोभाव से स्वीकार करो। इसके ऊपर और भी आनंद हैं, पर इसे जो पाएगा वही इसके ऊपर के आनंद को पाने का हकदार होता है।
उमर खैयाम का एक वचन है। कुरान कहती है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे हैं। उसी को आधार मान कर उमर खैयाम ने कहा हैः अगर स्वर्ग में शराब के चश्मे हैं तो हमें यहां पीने दो, थोड़ा अभ्यास करने दो। नहीं तो वहां पीएंगे एकदम चश्मों में से, तो खतरा होगा, बिल्कुल बहक जाएंगे। थोड़ा अभ्यास तो करने दो थोड़ी तैयारी तो करने दो जन्नत में आने की। यहां तो कुल्हड़ से पी जाती है। यहां कोई नदिएं तो नहीं बह रही हैं। और जिन्होंने जिंदगी भर अपने को दबाया और दमन किया, कभी पीया नहीं, वे एकदम जन्नत में पहुंच कर क्या करेंगे? जैसे मोरारजी देसाई क्या करेंगे? एकदम पीने में लग जाएंगे। जिंदगी भर तो खुद भी नहीं पीया, दूसरों को भी नहीं पीने दिया। और पीया भी तो क्या पीया--जीवन-जल पीया! एक बात तो पक्की है स्वर्ग में इनको जीवन-जल नहीं पीने दिया जाएगा। कौन घुसने देगा इनको जीवन-जल पीने के लिए स्वर्ग में? लोग खदेड़ कर बाहर कर देंगे कि अगर जीवन-जल पीना है तो वापस भारत में जाओ, यह काम वहीं चल सकता है।
वहां तो शराब के चश्मे हैं। उमर खैयाम एक सूफी फकीर है। उमर खय्याम कोई शराबी नहीं, जैसा कि लोगों ने समझ लिया है। उमर खय्याम एक सूफी फकीर है, एक सिद्ध पुरुष है--उसी कोटि का जिसमें बुद्ध और महावीर; उसी कोटि का जिसमें उपनिषद के ऋषि। मगर उसके प्रतीकों के कारण गलती हो गई। उसके

प्रतीक सूफी प्रतीक हैं। सूफियों के लिए शराब का अर्थ हैः उल्लास, आनंद, मस्ती। वह सिर्फ प्रतीक है। वह यह नहीं कह रहा कि शराब पीओ। वह यह कह रहा हैःलेकिन आनंदित होना है इसका थोड़ा अभ्यास तो कर लो। वे स्वर्ग में जो शराब के झरने बहते हैं, उसका भी मतलब यही है कि वहां आनंद के झरने बह रहे हैं। और तुम्हारे साधु संत, उनकी शक्लें तो देखो--उदास, मुर्दा... । ये अगर पहुंच भी गए वहां तो करेंगे क्या? आनंद उल्लास के उस जगत में, जहां अप्सराएं नाचती होंगी, श्री प्रमुख जी महाराज क्या करेंगे? एकदम बुर्का ओढ़ कर बैठ रहेंगे। स्वर्ग भी गए और बुर्का ओढ़े रहे। क्या खाक दीदार होगा! और कहीं भूल-चूक से परमात्मा स्त्री हुआ तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। और इस बात का पूरा खतरा है कि हो।
क्या पता! अरे परमात्मा का क्या भरोसा! अगर न भी हो तो कम से कम प्रमुख
जी महाराज के सामने तो स्त्री-रूप प्रकट होगा, यह मैं कहे देता हूं। इनके सामने तो वह स्त्री-रूप में ही प्रकट होगा। इतना व्यंग तो परमात्मा भी समझता होगा। इतना मजा तो वह भी लेगा! अब प्रमुख जी आ ही गए तो थोड़ा... इतना खेल, इतनी लीला तो वह भी रचाएगा। लीलाधर है। इतनी लीला तो करेगा कि प्रमुख जी को थोड़ा नचाएगा। डमरू थोड़ा बजाएगा कि जमूरे नाच!
स्वर्ग में आनंद है। आनंद का नाम स्वर्ग है। मेरे संन्यासियों को कोई अड़चन न आएगी। वे यहीं अभ्यास कर रहे हैं स्वर्ग का। उनके लिए स्वर्ग में कुछ मौलिक भेद नहीं हो जाएगा। हां, गुणात्मक भेद होगा, परिणात्मक भेद होगा; मगर कुछ तो बूंदें उन पर यहां भी पड़ गई हैं। बूंदाबांदी तो यहां हो गई, चलो वहां मूसलाधार वर्षा होगी। मगर उनकी थोड़ी पहचान रहेगी। कुल्हड़ से उन्होंने यहां शराब पी ली, वहां झरनों में तैर लेंगे और झरनों से पी लेंगे। यहां मस्त रहे, वहां भी मस्त रहने की उनको कला आ जाएगी।
तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। उदासी उनका अभ्यास है। उदासीनता उनकी तपश्चर्या है। अपने को गलाना, सड़ाना, भूखा मारना... । असल में यह सब अत्याचार है--इस निरीह शरीर पर, इस बे- जुबान शरीर पर, इस निहत्थे शरीर पर। ये आत्मघाती प्रवृतियां हैं। पहली तो बात, इनको स्वर्ग में जगह नहीं मिल सकती। भूल-चूक से ये घुस जाएं तो निकाले जाएंगे। न निकाले जाएं तो इनको स्वर्ग रास न आएगा। इनको लगेगा ये तो सब भ्रष्ट! ये तो वही रजनीशी संन्यासी यहां जमे हुए हैं! वही नाच-गान चल रहा है! हम तो सोचते थे वे ही लोग भ्रष्ट हैं; उन्होंने तो पूरा स्वर्ग भ्रष्ट कर रखा है। इससे तो नर्क भला, कम से कम वहां उदासीनता तो बचा सकेंगे अपनी, सिर के बल खड़े हो तो सकेंगे। यहां तो सिर के बल खड़े होंगे, कोई अप्सरा ही धक्का मार देगी, कि यह क्या कर रहे हो? यह कोई ढंग है? स्वर्ग में खड़े होने का यह कोई ढंग है? तुम परमात्मा का अपमान कर रहे हो। वहां उदास बैठेंगे, मुश्किल हो जाएगा। गंधर्व इनके आसपास वीणा बजाएंगे, बांसुरी बजाएंगे। अप्सराएं इनको गुदगुदाएंगी कि भैया, हंसो, थोड़ा प्रसन्न होओ, थोड़ा अब तो आनंदित होओ!
यह ऋषि का वचन सुनो--"हे प्रभु, मुझे अमृत दे, जिसमें मोद-प्रमोद प्राप्त होता है।" यह जिंदा कौम रही होगी तब। तब इसे मोद-प्रमोद की भाषा में कोई निंदा नहीं मालूम होती थी। तब इसे मोद-प्रमोद में कोई नास्तिकता नहीं मालूम होती थी। इसे जीवन का तब स्वीकार भाव था। तब इसके लिए जीवन ही परमात्मा था। "जहां कामनाएं स्वयं पूर्ण तृप्त हो जाती हैं। दे मुझे वह अमृत, जहां सारी कामनाओं की तृप्ति है।"
मेरे अनुभव में, इन दो-ढाई हजार वर्षो में भारत की मनोदशा इतनी विकृत
हो गई है कि आज इसे अपने ही सूत्रों को समझना मुश्किल हो गया है। मैं जो कह रहा हूं, वह सनातन धर्म है--एस धम्मो सनंतनो! मगर मेरी बात जहर की जहर लगती है उन लोगों को, जो सनातनधर्मी हैं। वे सोचते हैं--मैं धर्म को भ्रष्ट कर रहा हूं, मैं सभ्यता को भ्रष्ट कर रहा हूं, मैं संस्कृति को भ्रष्ट कर रहा हूं। उनको अपने वेद, अपने उपनिषद, अपने ब्राह्मण ग्रंथ उठा कर देख लेने चाहिए। वे बहुत चौंकेंगे। मेरे समर्थन में उन्हें कोई सूत्र नहीं मिलेगा। लेकिन जाना होगा उन्हें कम से कम ढाई हजार साल के पहले, तब उन्हें मेरे समर्थन में सूत्र मिलने शुरू होंगे। तब उल्लास था एक। तब इस देश ने

पहली पहली बार धर्म का आविष्कार किया था अनुभव किया था। तब बात ताजी थी फिर बासी पड़ती गई। फिर उस पर राख जमती चली गई, धूल जमती चली गई। फिर इतनी धूल जम गई व्याख्याओं की कि अब सूत्रों का तो पता ही चलना मुश्किल हो गया है। अब तो व्याख्याओं पर व्याख्याएं हैं और तुम व्याख्याओं में ही भटके रहते हो। और व्याख्याएं तो अपनी-अपनी मर्जी की हैं, जिसको जैसी करनी हों। कृष्ण की एक गीता है। निश्चित ही कृष्ण का एक ही अर्थ रहा होगा। कृष्ण कोई पागल नहीं थे। लेकिन हजारों टीकाएं हैं। और सब टीकाओं में विरोध है। अगर कृष्ण ठीक हैं तो ज्यादा से ज्यादा एक टीका सही हो सकती है। ये हजारों टीकाएं सही नहीं हो सकतीं। लेकिन जिसको जो मतलब निकालना हो... । शंकराचार्य कृष्ण की गीता में से ज्ञानयोग निकाल लेते हैं। और रामनुजाचार्य गीता में से भक्तियोग निकाल लेते हैं। और बालगंगाधर तिलक गीता में से कर्मयोग निकाल लेते हैं। गीता न हुई, भानूमति का पिटारा हो गया। कहीं न ईंट कहीं न रोड़ा, भानुमति ने कुनबा जोड़ा! और इसमें से तुम जो चाहो निकाल लो। यह तो कोई जादू की पिटारी हो गई, कि रूमाल डालो, कबूतर निकालो; कबूतर डालो, रूमाल निकालो। जो मर्जी।
इतना असत्य इन ढाई हजार वर्षों में बोला गया है। इसलिए मेरी बात तुम्हें अड़चन की मालूम पड़ रही, क्योंकि ढाई हजार वर्षों की दीवालें बीच में खड़ी हैं। अन्यथा मैं जो कह रहा हूं वह शाश्वत धर्म है, वह ऋत है। मैं जो सूत्रों का अर्थ कर रहा हूं, वह सीधा-साफ है, वह किसी पंडित का अर्थ नहीं है। वह मेरा अनुभव है। मैं तुमसे कहता हूं यहां आनंदित होओ तो तुम स्वर्ग के अधिकारी बनोगे। यहां प्रफुल्लित होओ तो आगे भी प्रफुल्लता है। तुम यहां जो हो, वही तुम आगे भी होओगे। हां, बहुत बड़े पैमाने पर होओगे। लेकिन यहां कुछ होना पड़ेगा। आंगन आकाश हो जाएगा, मगर आंगन तो हो। आंगन ही न होगा तो क्या खाक आकाश होगा?
इसलिए मरे इन सूत्रों के जो अर्थ हैं, बहुत ध्यानपूर्वक सुनना। काश,
इन सूत्रों का ठीक-ठीक अर्थ तुम्हारे ख्याल में आ जाए तो इस देश का पुनर्जन्म हो सकता है। और इस देश के पुनर्जन्म के साथ सारी मनुष्यता के लिए एक सौभाग्य का उदय हो सकता है, सूर्योदय हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
आप कभी अध्यात्म पर बोलते हैं तो कभी समाज पर, कभी राजनीति पर तो कभी विज्ञान पर, कभी शास्त्रों का समर्थन करते हैं तो कभी उनकी होली जलाने की बात करते हैं। इससे कई तरह के विरोधाभास खड़े हो जाते हैं, पर फिर आपका परंपरागत रूप भी दिखाई पड़ता है, क्योंकि आप गेरुए वस्त्रों और माला का आग्रह करते हैं।
क्या संन्यास के बिना क्रांति संभव नहीं? क्या व्यक्ति बिना संन्यास
के लेबिल के स्वस्थ नहीं हो सकता? क्या मनुष्य होना काफी नहीं है--मात्र मनुष्य? यह जो आप एक बड़ा विशाल संगठन खड़ा कर रहे हैं, इन सबका उद्देश्य क्या है?

मेलाराम असरानी!
मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। तुम्हारी तकलीफ बहुतों की तकलीफ है, इसलिए विचारणीय है, गंभीरतापूर्वक विचारणीय है।
पूछा है तुमने--"आप कभी अध्यात्म पर बोलते हैं तो कभी समाज पर।" निश्चित ही, क्योंकि मेरे लिए अध्यात्म इतना विराट है कि उसमें सब समा जाता है। वह अध्यात्म ही क्या जो एकांगी हो? वह अध्यात्म ही क्या, जिसके पास समाज के लिए कोई जीवन-द्दष्टि न हो? वह अध्यात्म ही क्या जो राजनीति को भी प्रभावित न कर सके? वह अध्यात्म ही क्या जो विज्ञान को भी अपने रंग में न रंग दे? वह अध्यात्म ही क्या जिससे संगीत का सृजन न हो, काव्य न जन्मे, साहित्य पैदा न हो, सृजनात्मकता के झरने न फूटें?
मेरे लिए अध्यात्म जीवन की समग्रता का नाम है। मेरे लिए अध्यात्म सर्वांगीणता है। तुम्हारे लिए अध्यात्म एक आयामी है, मेरे लिए अध्यात्म बहु-आयामी है। और तुम्हारा एक-आयामी अध्यात्म कभी का मर चुका है, सड़ चुका

है। उस सड़ना ही था, क्योंकि कोई भी चीज इस जगत में एक-आयामी नहीं हो सकती। किसी भी चीज को थोड़ा गौर करो। गुलाब का एक फूल खिला है। यह जमीन से रस ले रहा है और सूरज से प्रकाश ले रहा है। सूरज से भी इसको प्राण मिल रहे हैं। बिना सूरज के यह गुलाब मुरझा जाएगा। न मेरा भरोसा हो, इसे ढांक दो बुर्के में और तुम देखोगे यह मुरझा गया। जमीन अब भी रस दे रही है, लेकिन सूरज रोशनी नहीं दे रहा। सूरज के ताप के बिना इसका जीवन खो जाएगा। या जमीन से उखाड़ लो और रख दो इसे सूरज में, सूख जाएगा। अकेला सूरज भी काफी नहीं है। जमीन भी रस दे, सूरज भी प्राण दें। और हवाएं भी जरूरी हैं। छीन लो इसे हवाओं से, रोक दो हवाओं को, रख दो इसको एक खाली रिक्त स्थान में जहां हवा न आती हो--यह मर जाएगा। यह भी सांस लेता है। हवाएं भी इसे जीवन देती हैं। पानी मत दो इसे, यह मुरझा जाएगा। हवा भी हो, मिट्टी भी हो, सूरज भी हो, पानी न हो। और भी सूक्ष्म आयाम हैं।
सर जगदीश चंद्र बसु, ने एक खोज की थी आज से पचास साल पहले, साठ साल पहले। तब तो उन पर बहुत हंसा, सारा वैज्ञानिक जगत हंसा था कि यह भी क्या बात है! मगर लोगों ने कहा, "यह भारतीय इसी तरह की बातें करते हैं। ये उलटी सीधी बातें निकाल लाते हैं।" क्या बात निकाल ली जगदीश चंद्र ने, कि पौधों में भी प्राण हैं, संवेदनशीलता है, एक किस्म का बोध है। साठ साल लगे पश्चिम के विज्ञान को इस बात को स्वीकार करने में। अब इसे समग्रता से स्वीकार कर लिया गया है। और तुम जान कर चकित होओगे कि पानी, मिट्टी, सूरज, हवा, ये तो प्रत्यक्ष आवश्यकताएं हैं इसकी, ये आयाम तो प्रत्यक्ष हैं, मगर कुछ अप्रत्यक्ष आयाम भी हैं। अगर माली इसको प्रेम करे तो यह जल्दी बढ़ता है, बड़ा फूल आता है। अगर माली इसे प्रेम न करे, उपेक्षा रखे, छोटा रह जाता है, इसका फूल भी छोटा रह जाता है उसमें गंध भी कम होती है। अब इस पर वैज्ञानिक खोजें हो चुकी हैं और अब यह वैज्ञानिक सत्य है।
कैनेडा के एक विश्वविद्यालय में उन्होंने दो तरह पौधे लगाए बगीचे में। एक सी जमीन, एक सा सूरज, एक सी हवाएं, एक-सा पानी, एक-सा खाद; लेकिन मालियों को कहा कि एक तरफ की क्यारी में जितना प्रेम कर सको, जितना प्रेम बरसा सको बरसाना। फूलों को सहलाना, पत्तों को छूना, जितना प्रेमपूर्ण हो सको... । और दूसरी तरफ बिल्कुल उपेक्षा रखना। पानी देना, खाद देना, कोई भौतिक कमी न हो पाए, बराबर दोनों को मिले, लेकिन उपेक्षा रखना। उतना ही फर्क रखना कि इस तरफ पौधे वैसे जैसे मां का बच्चा, और उस तरफ के पौधे ऐसे जैसे नर्स के लिए बच्चा। ठीक है दूध दे दिया, दवा दे दी और सो जा! इससे ज्यादा कुछ भी नहीं।
और तुम चकित होओगे जान कर, एक तरफ पौधे दुगने बड़े हुए, जिस तरफ प्रेम दिया गया था। और जिस तरफ प्रेम नहीं दिया गया था, पौधे अधूरे ही बढ़े। बाढ़ रुक गई। एक तरफ फूल दुगने बढ़े आए और गंध ऐसी फैली... ! और दूसरी तरफ फूल भी अधूरे आए और गंध भी नाकुछ, रंग भी फीके-फीके। फिर इस पर बहुत प्रयोग किए गए और हर बार यही सिद्ध हुआ कि जिन पौधों को प्रेम दिया गया, उन्होंने जल्दी बाढ़ की। मतलब प्रेम भी एक आयाम है।
एक दूसरे विश्वविद्यालय में एक पौधों की कतार को रविशंकार का सितार सुनवाया गया--टेप पर, रोज, घंटों। और दूसरी तरफ उसी तरह के पौधे, उनको पॉप संगीत, धूम-धड़ाका, हंगामा। और जो परिणाम हुआ वह हैरान करने वाला है। जिस टेपरिकार्डर पर रविशंकर की सितार बजती थी, सारे पौधे उस टेप पर झुक आए। उन्होंने उस टेप को आच्छादित कर लिया। और जहां हंगामा मचा हुआ था, पॉप संगीत, पौधे दूसरी तरफ झुक गए, जैसे अपने कान पर हाथ रख रहे हों कि क्षमा करो भैया, माफ करो! और इस तरफ पौधे यूं झुक आए जैसे आलिंगन करने को आतुर हों। और वही परिणाम हुआ। रविशंकर के संगीत से पौधे बड़े हुए, और पॉप संगीत से ठिगने रह गए। अर्थ हुआ कि प्रेम ही नहीं, संगीत भी समझा जाता है, गीत भी समझे जाते हैं।
पौधे का जीवन एक आयामी नहीं है, तो मनुष्य का जीवन कैसे एक-आयामी होगा? मनुष्य तो और भी विकसित हैं, बहुत विकसित है। इस पृथ्वी पर तो कम से कम सर्वश्रेष्ठ चेतना उसके पास है। बहु-आयामी होगी। जो धर्म, समाज

राजनीति, साहित्य, विज्ञान, संगीत पर कोई दृष्टि नहीं रखता, वह धर्म एकांगी होगा, अपंग होगा, थोथा होगा, मुर्दा होगा।
इसलिए मेलाराम असरानी, मैं तुम्हारी तकलीफ समझ सकता हूं, लेकिन तुम
भी मेरी तकलीफ समझो। मेरी तकलीफ यह है कि मैं धर्म को बहु-आयाम देना चाहता हूं। विरोधाभास कहीं भी नहीं है। मैं जो भी कह रहा हूं उसमें कोई विरोधाभास नहीं है। विरोधाभास तुम्हारी मान्यताओं के कारण पैदा होता है। मेरे जो संन्यासी हैं उनको कोई विरोधाभास मालूम नहीं पड़ता। जो मुझे सुन रहे हैं, समझ रहे हैं, जिन्होंने मुझे पीया है, उनसे पूछो। उन्हें कोई विरोधाभास मालूम नहीं पड़ता। उनको तो एक अनुस्यूत धागा दिखाई पड़ता है, चाहे माला में मैंने कहीं गेंदा पिरोया हो और गुलाब पिरोया हो और चाहे जूही और चाहे चंपा। फूल अलग-अलग होंगे, मगर उनको मेरा भीतर पिरोया हुआ धागा दिखाई पड़ता है। और जब फूल पिरो दिए जाते हैं, माला बन जाती है, धागा दिखाई नहीं पड़ता, फूल ही दिखाई पड़ते हैं। अब तुम इसी झंझट में पड़ जाते हो-- गेंदे का फूल और गुलाब का फूल, दोनों एक ही माला में लगे हैं, इन दोनों के बीच क्या तालमेल है? वह तालमेल भीतर के धागे में है, जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। वह दिखाई श्रद्धा से पड़ेगा। वह मेरे करीब आओगे तो दिखाई पड़ेगा।
संन्यास मेरे करीब होना ही है, और कुछ भी नहीं। संन्यास का इतना ही अर्थ हैः तुम्हारी तरफ से इस बात की सूचना कि मैं राजी हूं साथ होने को। ये गैरिक वस्त्र, इनका कोई मूल्य नहीं है। यह तो मेरा झक्कीपन है और कुछ भी नहीं। मगर इससे कसौटी हो जाती है। मैं कहता हूं कम से कम वस्त्र तो बदलो, इससे मैं जांच कर लेता हूं कि जो आदमी वस्त्र बदलने तक को राजी नहीं वह क्या खाक बदलने को राजी होगा! वह आत्मा वगैरह बदलने की तो बात ही छोड़ दो। वह वस्त्र पर ही अटक जाएगा। वह कहता है वस्त्र क्यों बदलें। तो मैं कहता हूं, तुम अपना रास्ता लो। मुझे अपना काम करने दो। यह वस्त्र बदलने से तो सिर्फ में तुम्हारी अंगुली पकड़ता हूं, उससे मुझे समझ में आ जाता है कि पहुंचा भी पकड़ लूंगा। यह वस्त्र बदलना तो सिर्फ तुम्हारी स्वीकृति का सूचक है। यह तुम्हारी तरफ से यह कहना है कि हम राजी हैं--चलो इस पागलपन के लिए भी राजी हैं।
और यह मामला तो पागलपन का है ही। यह परमात्मा की खोज दीवानों की खोज है। इसमें अगर इतनी होशियारी रखी कि हम तो कपड़े अपने हिसाब से पहनेंगे तो फिर मेरे साथ नहीं चल सकोगे। यह तो बात ही रुक गई। यह कपड़े बदलने से कोई तुम्हें मोक्ष नहीं मिल जाएगा, यह मैं भी जानता हूं। सो तुम मेरे कपड़े देख सकते हो। क्या तुम सोचते हो कि तुम मोक्ष जाओगे और मैं नर्क जाऊंगा?
अगर गैरिक वस्त्रों से मोक्ष मिलता है तो मैं वंचित हुआ। इसलिए मैंने गैरिक वस्त्र पहने नहीं, ताकि तुम्हें यह जाहिर रहे कि गैरिक वस्त्रों से मोक्ष का कोई लेना-देना नहीं है। और सफेद वस्त्र तुम्हें पहनाता नहीं, क्योंकि सफेद वस्त्र पहनने में कोई अड़चन नहीं है। वैसे ही तुम पहनते हो। तुम कहोगे, यह ठीक है, सफेद पहन लेंगे। उसमें कोई अड़चन नहीं है। गैरिक वस्त्र तुम पहन कर जहां भी जाओगे वहीं अड़चन है। मैं तुम्हारे लिए अड़चन खड़ी करना चाहता हूं कि जो देखे वह यही कहे कि यह चला जा रहा है पागल! इतना तो मेरे साथ होने को राजी हो जाओ कि पागल होना भी अगर मेरे साथ है, तो आनंद की बात है।
माला लटका दी है तुम्हारे गले में, इसमें कुछ परंपरा नहीं है। कुछ खाक परंपरा नहीं है। परंपरागत माला का अर्थ होता हैः माला के दाने फेरते रहो, बैठो राम राम जपो। मेरे संन्यासी कोई माला वगैरह नहीं फेरते। बस गले में लटकाए बैठे हुए हैं। यह तो सिर्फ एक प्रतीक है कि ये मेरे लोग हैं, इनसे जरा सावधान रहना! ये खतरनाक लोग हैं। ये परवाने हैं। यह सिर्फ उसकी सूचना है।
न तो कोई माला से संन्यास का संबंध है, न गैरिक वस्त्रों से। लेकिन तुम्हें कैसे राजी किया जाए? तुम बाहर ही जीते हो, बाहर से ही शुरू करना पड़ेगा। तुम वस्त्रों में ही जीते हो। वस्त्रों से ही शुरू करना पड़ेगा।

मिर्जा गालिब के जीवन में यह उल्लेख है। बहादुर शाह जफर, आखिरी भारत
का सम्राट, मुसलमान सम्राट--कवि भी था। "जफर" उसका कवि नाम है। उसका जन्मदिन था। उसने और सारे दरबारियों को बुलाया, राजाओं को बुलाया, कविओं को भी बुलवाया, गालिब को भी। मिर्जा गालिब उस समय के बड़े कवि, आज भी बड़े कवि। शायद दस-पांच नाम ही हैं जो मिर्जा गालिब का मुकाबला करते हों। गालिब की कुछ खूबी और, अंदाजे-बयां और! ऐसे तो बहुत लोगों ने गाया है, लेकिन गालिब की बात और है। नहीं वह अंदाज कोई और पा सका।... तो गालिब को भी निमंत्रण भेजा। लेकिन फक्कड़ कवि! मित्रों ने कहा कि ये कपड़े पहन कर मत जाओ। ये कपड़े पहन कर गए तो दरबान ही धक्के देकर बाहर कर देगा। ये फटियल जूते, यह तुम्हारी न मालूम किस जमाने की टोपी, इसको देख कर भगा दिए जाओगे, दरबार में कहां जगह मिलेगी?
गालिब ने कहा कि कपड़े देखे जाते हैं कि आदमी देखा जाता है? मैं तो इन्हीं कपड़ों में जाऊंगा। निमंत्रण मुझे मिला है कि कपड़ों को? और फिर निमंत्रण पत्र मेरे हाथ में है, यह मैं दिखा दूंगा अगर गड़बड़ की दरबान ने। नहीं माना, गालिब जिद्दी, चला गया और वही हुआ जो होना था। दरबान ने धक्के दिए कि बाहर भाग जा, यहां से बिल्कुल भाग जा, आज इस तरफ आओ ही मत।
भिखमंगो के लिए आज कोई जगह नहीं। आज सम्राट का जन्मदिन मनाया जा रहा है।
अरे--गालिब ने कहा--मेरी सुनो तो!
उसने कहाः बकवास बंद, नहीं तो जेल में डाल दूंगा।
गालिब ने कहाः यह निमंत्रण पत्र।
उसने कहा कि निमंत्रण पत्र तूने किसी का चुराया होगा। तुझे निमंत्रण पत्र कौन देगा?
गालिब तो बहुत हैरान हुए। वापिस लौट आए। मित्र शायद ठीक ही कहते थे।
इस दुनिया में कपड़े पहचाने जाते हैं। एक मित्र से कपड़े उधार लिए, जूते उधार लिए, टोपी उधार ली, जल्दी से अपने को संवारा, मुंह वगैरह धो-धोकर फिर पहुंचे। वही दरबान एकदम झुका और कहा, "हुजूर, भीतर आइए!" गालिब बहुत चकित हुए कि वाह रे कपड़े! मैं वही का वही आदमी!
और जब सम्राट ने देखा उन्हें तो अपने पास बिठाया। सम्राट, और बड़े-बड़े महाराजा उपस्थित थे, उनको नहीं अपने पास बिठाया, गालिब को अपने पास बिठाया। उसके मन में कद्र थी कविता की। लेकिन बहादुर शाह भी बहुत हैरान हुआ, जब उसने इनके रंग-ढंग देखे। सोचा था कि अंदाजे-बयां और यह तो ठीक मगर यह क्या कर रहा है आदमी! क्योंकि वे उठाएं बफ, अपने जूते से लगाएं कि ले बेटा चख! अचकन से लगाएं कि ले-ले चख! अरे ले मजा! कहते भी जाएं। टोपी से लगाएं कि ले, खा ले। लड्डू उठाएं, कोट के इस खीसे में रखें इस खीसे में रखें, कहें कि खा ले बेटा, फिर मिले न मिले!
थोड़ी देर तो जफर ने सुना, क्योंकि शिष्टाचारी आदमी था, कैसे एकदम से कहे कि यह आप क्या कर रहे हैं? लेकिन फिर बरदाश्त के बाहर हो गया, बगल में ही बैठा यह आदमी बस यही काम किए जा रहा है। आखिर जफर ने पूछा कि मैं कुछ समझा नहीं, यह क्या रवैया है, यह क्या ढंग है, यह क्या शैली है आपकी? यह आप क्या कर रहे हो? ज्यादा तो नहीं पी गए हो?
गालिब ने कहा, "नहीं, ज्यादा नहीं पी गया। पी ही नहीं आज। आज तो आपका निमंत्रण था तो क्या अपने गरीब घर की शराब पीऊं, सोचा आप पिलाएंगे, कुछ शानदार चीज पिलाएंगे, कुछ कीमती चीज पिलाएंगे, इसलिए बिना पीए आया हूं। मगर यह जो मैं कर रहा हूं, इसके पीछे कारण है। मैं नहीं आया। मैं तो आया था, वह तो धक्के देकर लौटा दिया गया। अब तो कपड़े आए हैं। अब यह भोजन मैं नहीं लूंगा। यह भोजन मेरे लिए नहीं है। मैं तो दरवाजे से धक्के देकर कभी का लौटा दिया गया। अब तो जूते आए हैं, टोपी आई है, अचकन आई है, कपड़े आए हैं, यह चूड़ीदार पाजामा आया है, ये बेचारे आए हैं। तो इनको भोजन करवा रहा हूं।"
तब जफर को पता चला कि मामला क्या है।
मेलाराम असरानी, तुम अभी कपड़ों में जीते हो। कपड़े से ही शुरुवात करनी पड़ेगी। अभी तुम बाहर जीते हो। तुम जहां हो वहीं से तो यात्रा शुरू करना पड़ेगी, और तो कोई उपाय नहीं। तुम अमृतसर में हो और मैं दिल्ली से यात्रा शुरू करूं तो तुम कैसे सवार हो पाओगे उस गाड़ी में? अमृतसर से ही गाड़ी शुरू

करनी पड़ेगी। वहीं से बोलना पड़ेगा--"बोले सो निहाल, सतसिरी अकाल! वाहे गुरुजी का खालसा वाहे गुरुजी की फतह!" अमृतसर से ही बोलना पड़ेगा, तभी गाड़ी चलेगी। नहीं तो "गड्डी" चलेगी ही नहीं! तो "गड्डी" चल जाए, इसलिए कपड़े से शुरू करता हूं।
तुम कहते होः कभी आप शास्त्रों का समर्थन करते हैं और कभी उनकी होली जलाने की बात करते हैं। निश्चित ही क्योंकि तुम्हारे शास्त्र एक व्यक्ति के द्वारा रचे नहीं गए! तुम्हारे वेदों में हजारों व्यक्तियों के वचन हैं, सैकड़ों ऋषियों की ऋचाएं हैं। उनमें कुछ निपट गधे भी थे। उनमें कुछ प्रबुद्ध पुरुष भी थे। अब मैं क्या करूं? इसमें मेरा क्या कसूर है? मैं पूरे वेद स्वीकार नहीं कर सकता। और जिन्होंने पूरे वेद स्वीकार किए या पूरे वेद इनकार किए, उन्होंने दोनों ने गलती की है। वह गलती मैं नहीं कर सकता। पूरे वेद स्वीकार करने वाले लोग अब तक रहे हैं। वह परंपरागत हिंदु जो है, हिंदु पंडित, हिंदु संन्यासी, वह पूरा वेद स्वीकार करता है। उसको गधों का गधापन दिखाई भी पड़ता है तो नजरदांज करता है, या लीपापोती करता है; अर्थों के कुछ अर्थ बनाता है, नई नई कलमें लगाता है; किसी तरह छिपाने की कोशिश करता है। मगर लाख उपाय करो, वेदों में निन्यानबे प्रतिशत कचरा है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि यही प्रतिशत है समाज में गधों का और समझदारों का। इसमें कोई कर भी क्या सकता है! वेद तो केवल प्रतिफलन हैं, दर्पण हैं। वेद तो उस समय के संग्रह हैं, जैसे कि आज इनसाइकलोपीडिया ब्रिटानिका, उसमें हजारों लेखकों का संग्रह होता है। वेद उस समय के इनसाइकलोपीडिया हैं, विश्वकोष हैं। उस समय जो भी उपलब्ध था, अच्छा बुरा, वह सब संकलित कर लिया गया है। वह उस समय की तस्वीर है।
तो एक तो वह वर्ग है जो कहता है कि पूरा वेद हमें स्वीकार है--पूरा वेद! उसको एक अड़चन आती है, तो उसको झूठे अर्थ करने पड़ते हैं। फिर एक दूसरा वर्ग है--जैनों और बौद्धों का, चार्बाकों का--जो कहते हैं हमें बिल्कुल वेद स्वीकार नहीं हैं। वे निन्यानबे प्रतिशत के कारण उस एक प्रतिशत को भी इनकार करते हैं जो बड़ा बहुमूल्य है, हीरे जवाहरात हैं जहां। ये दोनों बातों को मैं अतिशयोक्तियां मानता हूं। इसलिए तुम मेरी अड़चन समझो। मेरी अड़चन यह है कि एक दिन मैं वेद की प्रशंसा करूंगा और दूसरे दिन निंदा करूंगा। तुम्हारे प्रश्नों पर निर्भर है। अगर तुमने ऐसा सूत्र पूछा, जो गलत है, तो मैं क्या करूं? मेरी कोई वेद के प्रति आस्था नहीं है, न अनास्था है। मैं तो सत्य के प्रति एकमात्र मेरी आस्था है। अगर सत्य होगा उस वचन में तो मैं जरूर समर्थन करूंगा--फिर वह वेद का हो, कुरान का हो, बाइबिल का हो, धम्मपद का हो, कहीं का हो, मुझे कोई अंतर नहीं पड़ता मेरी निष्ठा सत्य में है, सत्य जहां भी झलकेगा। सागर में झलके, नदी में झलके, तालाब में झलके, झील में झलके, रास्ते के किनारे बन गए बरसात के गड्ढे में झलके, जहां भी सत्य झलकेगा मैं समर्थन में हूं। शास्त्रों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है, मेरा लेना देना सत्य से है। मेरा उत्तरदायित्व सत्य के प्रति है, किसी शास्त्र का मैं गुलाम नहीं हूं। इसलिए जब तुम कोई ऐसा सूत्र उठा लाओगे, जैसे अभी-अभी यह सूत्र आनंद मैत्रेय ने पूछ लिया ऐतरेय ब्राह्मण से। अब में कैसे इसको इनकार कर सकता हूं? यह तो मेरे प्राणों की आवाज है। लेकिन तुम ऐसे सूत्र भी पूछ सकते हो, जो निपट मूढ़तापूर्ण हैं। तब मैं संकोच न करूंगा कि ये वेद के हैं। तब मैं निसंकोच उनकी निंदा करूंगा और कहूंगा इनको होली में जला दो।
तुम्हें मेरे वचनों को समझने में अड़चन आएगी, क्योंकि तुमने दो ही तरह
के लोग जाने--या तो वैदिक और या अवैदिक। मैं न तो वैदिक हूं न अवैदिक। मुझे क्या लेना देना वैदिक होने से, अवैदिक होने से? मेरे पास अपना अनुभव है। मेरा अनुभव मेरी कसौटी है। उस कसौटी पर जो सूत्र कस जाता है, उसे कहता हूं सोना। उस कसौटी पर जो सूत्र नहीं कसता, चाहे सदियों से पूजा गया हो, वह मेरे लिए सोना नहीं है। मैं उसे कैसे सोना कहूं? मैं अपने अनुभव के विपरीत नहीं जा सकता हूं। मैं सबके विपरीत जा सकता हूं, लेकिन अपने साक्षात्कार के विपरीत कैसे जा सकता हूं?

मेरे साथ तो तुम्हें यह सावधानी रखनी ही पड़ेगी। इसलिए अड़चन होती है। कुरान में भी यही हालत होती है। कुछ वचन बड़े प्यारे, ऐसे प्यारे कि उनकी पर्त से पर्त उघाड़ते आओ तो रहस्यों के रहस्य उघड़ते आएं। लेकिन अधिकतर बातें बिल्कुल कचरा। अब मैं क्या करूं? मुसलमान नाराज हो तो हो, हिंदु नाराज हो तो हो, जैन नाराज हो तो हो। इनकी नाराजगी देखूं या जो सत्य है उसे वैसा ही कह दूं जैसा है?
निश्चित ही मैं कभी शास्त्रों का समर्थन करता हूं, कभी उनकी होली जलाने की बात करता हूं। सब इस पर निर्भर करता है कि मेरे अनुभव से, जो चीज सत्य है वह बचाने योग्य है।
अंग्रेजी में कहावत है कि जब बच्चे को नहलाओ तो गंदे पानी के साथ बच्चे को मत फेंक देना। दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक वे जो कहते हैं कि जब बच्चे को नहलाया तो गंदे पानी को भी बचाओ। और एक वे कि जो कहते हैं अब पानी को फेंक रहे हो बच्चे को क्यों बचाते हो, इसको भी जाने दो। मैं कहता हूं, भैया बच्चे को बचाओ, गंदे पानी को फेंक दो। तुम्हें मेरी बात में अड़चन दिखाई पड़ती है और इन दो अतिशयोक्तियों में अड़चन दिखाई नहीं पड़ती! अति में अड़चन दिखाई पड़नी चाहिए तुम्हें।
शंकराचार्य अंधा समर्थन करते हैं, लेकिन समर्थन करने के लिए उनको फिर बड़े डंड-बैठक लगाने पड़ते हैं, क्योंकि ऐसे वचन हैं जिनका समर्थन नहीं किया जा सकता। तो फिर उनमें से ऐसे-ऐसे अर्थ निकालने पड़ते हैं जो हैं नहीं या ठूंसने पड़ते हैं, जबरदस्ती करनी पड़ती है, अर्थ का अनर्थ करना पड़ता है, तोड़-मरोड़ करनी पड़ती है।
मैं किसी शास्त्र के साथ अनाचार करने को राजी नहीं हूं। यह व्यभिचार है। शंकराचार्य ने जो किया यह व्यभिचार है। इसको मैं स्वीकार नहीं करता हूं। मैं तो हीरे को हीरा कहूंगा, मिट्टी को मिट्टी कहूंगा।
बुद्ध और महावीर ने बिल्कुल इनकार कर दिया वेदों को, इनसे भी मैं राजी नहीं हूं। क्योंकि वेदों में हीरे हैं और उन हीरों पर मेरी अपूर्व श्रद्धा है। मुझे हीरों से मतलब है; किस खदान से निकलते हैं, क्या करना है? आम चूसना है कि गुठली गिनना है? मुझे तो जहां आम मिल जाए, वह किस वृक्ष पर लगा है क्या लेना-देना है? अगर रस भरा है, जरूर उसकी प्रशंसा में दो शब्द कहूंगा। और अगर जहरीला है तो तुम्हें सावधान करूंगा कि इसे फेंक दो, इसे कचरे में डाल आओ।
इसलिए तुम्हें अड़चन तो आएगी, मगर अड़चन का कारण तुम हो, मैं नहीं तुम
कहते होः "इससे कई तरह के विरोधाभास खड़े हो जाते हैं।" तुम खड़े कर लेते हो,
मेरी बात तो बिल्कुल दो टूक है। तुम्हें विरोधाभास खड़े हो जाते हैं, क्योंकि या तो तुम वेद को पूरा मानने को राजी हो। अगर जैन हो तो पूरा इनकार
करने को राजी हो। मैं न जो हिंदु हूं न जैन हूं। अगर मेरे साथ उठना-बैठना
है और मेरी बात समझनी है, तो तुम्हें जरा अपने पक्षपात ढीले करने होंगे, था.ेड़ा तुम्हें तरल होना पड़ेगा, तुम्हें थोड़ा बहाव सीखना होगा। फिर विरोधाभास खड़े होंगे। तब तुम्हें बात साफ दिखाई पड़ने लगेगी। े बात इतनी साफ है, जैसे
सूरज निकला हो।
इसलिए मैं लाओत्सु के शास्त्रों पर बोला हूं, बुद्धों के शास्त्रों
पर बोला हूं, जैनों के शास्त्रों पर बोला हूं, हिंदुओं के शास्त्रों पर
बोला हूं, मुसलमानों के शास्त्रों पर बोला हूं, यहूदियों के शास्त्रों पर
बोला हूं, ईसाइयों के शास्त्रों पर बोला हूं। मैंने करीब-करीब सारे धर्म... सिक्खों के शास्त्रों पर बोला हूं। सारे धर्मों पर बोला हूं। इसलिए, ताकि तुमसे मैं कह सकूं कि सभी धर्मों में हीरे मौजूद हैं और सभी धर्मों में कचरा भी मौजूद है। कचरे से सावधान। और हीरा जहां भी मिले, अपना है। और कचरा कहीं भी हो, अपने ही शास्त्रों में क्यों न हो, जला देने योग्य है। और जितना जल्दी हो उतना अच्छा है। डर यह है कहीं कचरे में हीरे न खो जाएं। खो गए हैं।
मेलाराम असरानी, तुम कहते होः "इसलिए आपको समझना मुश्किल हो जाता है।" नहीं, इसलिए नहीं। तुम्हारी जड़ धारणाएं हैं--इसलिए, उस कारण।

तुम कहते होः "आप भी क्रांतिकारी भी लगते हैं, पर फिर आपका परंपरागत रूप भी दिखाई पड़ता है।"
निश्चित ही। सत्य न तो नया होता है न पुराना होता है। सत्य पुराने से पुराना है, नये से नया है। अब मैं क्या करूं? सत्य शाश्वत है, तो पुराने से पुराना है। और नये से नया है, ताजा से ताजा है। तो मेरे दोनों रूप हैं। सत्य के साथ हूं मैं। अगर दोष देना हो सत्य को दो, मैं क्या कर सकता हूं? सत्य पुराने से पुराना है, तो मुझे ऋग्वेद में भी सत्य की झलकें मिलती हैं। अब जैसे ऋत के ऊपर जो सूत्र था, कल ही हमने उसकी चर्चा की है, ऋग्वेद का सूत्र है, अब उस सूत्र का कैसे इनकार कर सकता हूं? माना कि पांच हजार साल पुराना या ज्यादा भी पुराना हो सकता है। लोकमान्य तिलक के हिसाब से नब्बे हजार साल पुराना है। हो सकता है। कोई सत्य पर किसी समय की बपौती तो नहीं है। सत्य को जानने वाले सदा हुए हैं, आज भी हैं। लेकिन वहां भी वही झगड़ा है।
कुछ लोग मानते हैं कि सत्य को जानने वाले सतयुग में हो चुके, कलियुग में कहां! वे परंपरावादी हैं। उनको क्रांति से घबडाहट होती है। और कुछ हैं, जो कहते हैं कि अतीत में जो आदमी आदिम था, जंगली था, उसको क्या सत्य का पता; अब आदमी विकसित हुआ है, अब हम जानते हैं कि सत्य क्या है। वे क्रांतिकारी हैं। उनको परंपरा से चिढ़ है। वे परंपरा को बिल्कुल इनकार कर देना चाहते हैं।
मैं किसी घेरे में बंधा हुआ नहीं हूं, मैं मुक्त हूं। न परंपरा का घेरा मुझ पर है। मुक्त किसी का घेरा नहीं होता। मैं तो यूं हूं जैसे मधुमक्खी।
बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा है कि तुम भिक्षा ऐसे मांगना जैसे मधुमक्खी। इसलिए बुद्ध के भिक्षुओं की जो भिक्षा है, उसको "मधुकरी" नाम दिया गया है। थोड़ा यहां से ले लेना, थोड़ा वहां से ले लेना, थोड़ा वहां से ले लेना। मधुमक्खी आती है, गुलाब के ऊपर गीत गाती है, गुनगुनाती है, थोड़ा-सा रस ले लेती है, उड़ जाती है। चंपा का भी रस ले लेती है और चमेली का भी। मुक्त है। और मधुमक्खी की एक खूबी हैः जिस फूल से भी रस लेती है, उसको नष्ट नहीं करती। सच तो यह है कि मधुमक्खी के आने से फूल प्रफुल्लित होता है, क्योंकि मधुमक्खी ने पहचाना, यह कोई कम सौभाग्य की बात नहीं है। मधुमक्खी कागज के फूलों पर नहीं आती, असली फूलों पर आती है। जिस फूल पर नहीं आती वह बेचारा उदास खड़ा रह जाता है।
मैं तो मधुमक्खी हूं। मैं तो ऋग्वेद से भी रस लूंगा। जहां-जहां रस है... रसौ वे सः! परमात्मा का स्वरूप रस है! ... मैं तो वेद से भी रस लूंगा। परंपरा से भी रस लूंगा और क्रांति से भी रस लूंगा। मेरे लिए कोई इनकार नहीं है। मेरे लिए समय में कोई सीमाएं नहीं हैं। न तो अतीत की मेरे मन में कोई प्रशंसा है वर्तमान के विपरीत में और न वर्तमान की कोई प्रशंसा है अतीत के विपरीत में। सत्य जब भी और जहां जैसा प्रगट हुआ है, मैं उसे पहचानता हूं। मैंने अपने सत्य को जाना, उस दिन से मैंने सारे सत्यों को पहचान लिया है--कहीं भी किसी ढंग से कहे गए हों, किसी भाषा में कहे गए हों। एक ईसाई मिशनरी झेन फकीर र्रिझाई के पास गया--इस आशा में कि र्रिझाई
को ईसाई बना ले। क्योंकि र्रिझाई के हजारों शिष्य थे, अगर यह ईसाई हो जाए तो हजारों शिष्य ईसाई हो जाएंगे। तो उसने बाइबिल खोली और र्रिझाई से कहा कि मेरा यह धर्म वचन आप जरा सुनें। और बाइबिल में जो अद्भुत वचन हैं जीसस के, उनमें से एक वचन कहा--"ब्लैसिड आर दमीक, फर देयर्स इज द किंगडम आफ गॉड।" धन्य हैं वे जो विनम्र हैं, धन्य हैं वे जो विनीत हैं, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का है।
र्रिझाई ने कहाः बस, काफी है। जिसने भी यह कहा हो वह बुद्धपुरुष था। र्रिझाई को यह पता नहीं किसने कहा है। र्रिझाई को यह भी नहीं पता कि
यह बाइबिल है। पर र्रिझाई ने कहाः बस इतना काफी है। जिसने भी कहा हो वह बुद्धपुरुष था। मेरे नमन।
ईसाई फकीर ने कहाः आपने नाम भी नहीं पूछा!

र्रिझाई ने कहाः नाम पूछ कर क्या करना है? अरे मधुमक्खी जब गुलाब का
रस पीती है तो नाम पूछती है? रस पहचानती है। चंपा से पूछती कि तेरा नाम क्या है, सर्टिफिकेट कहां है, है भी तू चंपा कि नहीं, सरकारी टेडमार्का कहां है, नकली तो नहीं है, असली है, कोई कैरेक्टर सर्टिफिकेट है? मधुमक्खी को यह नहीं पूछना पड़ता, मधुमक्खी पहचानती है। खुद ही पहचानती है। असल में तो मधुमक्खी जिस फूल पर बैठ जाती है उसी को प्रमाण-पत्र मिल जाता है।
मैं शास्त्रों को अनुगामी नहीं हूं। मैं जिस शास्त्र को समर्थन दे रहा हूं, उसको प्रमाणपत्र दे रहा हूं। और जिस सूत्र को समर्थन दे रहा हूं, उसको फिर पुनरुज्जीवित कर रहा हूं। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता किसने कहा। अब मुझे पता नहीं यह ऐतरेय ब्राह्मण का वचन किसने कहा। क्या लेना-देना है, किसी ने भी कहा हो। किसी ने कहा होगा। जिसने भी कहा होगा वह बुद्धपुरुष था। उसने जानकर कहा है, क्योंकि ऐसा ही मेरा जानना भी है। कोई समय को ठेका तो नहीं है।
ये धारणाएं गलत हैं कि सतयुग हो चुका पहले, अब यह कलियुग है। ये मूढ़तापूर्ण धारणाएं हैं। जो सत्य को जानते हैं, उनके लिए सदा सतयुग है और जो सत्य को नहीं जानते उनके लिए सदा कलियुग है। यह मेरी परिभाषा है। तुमने पूछा कि आपका परंपरागत रूप भी दिखाई पड़ता है, क्योंकि आप गेरुए वस्त्रों और माला का आग्रह करते हैं। इस आग्रह के पीछे कारण हैं। गेरुए वस्त्र बहुत बदनाम हो गए हैं। ये बड़े प्यारे वस्त्र हैं। मैं इनका ठीक-ठीक रूप पुनः स्थापित करना चाहता हूं। ये बड़े बदनाम हो गए। ये मूढ़ों के हाथ पड़ गए। उन्होंने इन वस्त्रों की गरिमा खो दी, अर्थ खो दिया।
गैरिक रंग कई चीजों का प्रतीक है। सूर्योदय का प्रतीक है। ऐसा ही भीतर तुम्हारे सूर्योदय होता है, तब अंतर-आकाश के क्षितिज पर, प्राची पर, पूरब में सुर्खी फैल जाती है, गैरिक रंग फैल जाता है। संन्यास का गैरिक वस्त्र दीक्षा का प्रतीक है कि तुमने सूर्योदय की तलाश शुरू कर दी। अब रात टूटने का वक्त करीब आ गया। अब तुमने रात को तोड़ने की तैयारी कर ली। अब तुम सूरज को निमंत्रण देने चले। गैरिक वस्त्र वसंत के भी प्रतीक हैं इसलिए इनका एक नाम वासंती भी है। वसंत का रंग है यह। फूलों का रंग है यह। और संन्यास वसंत है, मधुमास है। संन्यास है जीवन को समग्रता में जीना, कि सारे फूल खिल जाएं।
गैरिक वस्त्र जीवन के प्रतीक हैं, क्योंकि यह लहू का रंग है। यह तुम्हारी नसों में बहती हुई जीवन-धारा है। लेकिन सदियों से गलत लोगों के हाथ में गैरिक वस्त्र रहे हैं, के हाथों में रहे हैं। े उनसे इस सुंदर प्रतीक को मैं मुक्त कर लेना चाहता हूं। मैं उनसे सुंदर-सुंदर सूत्रों को भी मुक्त करने में लगा हूं, सुंदर प्रतीकों को भी मुक्त कर लेना चाहता हूं। मैं इस पृथ्वी पर इतने गैरिक संन्यासी कर देना चाहता हूं कि वे जो पुराने ढर्रे के संन्यासी हैं, वे इस सागर में कहां खो जाएं पता ही न चले। मैं इतने गैरिक संन्यासी पैदा कर लेना चाहता हूं--अपने ढंग के, नये ढंग के--कि पुराने ढंग का संन्यासी डरने लगे गैरिक वस्त्र पहनने में, कि कहीं कोई भूल-चूक से यह न समझ ले कि मैं भी पागलों की उसी बस्ती का हिस्सा हो गया हूं।
तुम अगर मेरी बात समझो तो जिस दिन लाखों... अभी भी कोई डेढ़-पौने दो लाख व्यक्ति सारी पृथ्वी पर गैरिक वस्त्रों में संन्यासी हैं मेरे। जल्दी ही इनकी संख्या बढ़ती चली जाएगी। अभी इनको अड़चन हो रही है, लेकिन तुम जरा ठहरो। तुम्हारे करपात्री महाराज और तुम्हारे पुरी के शंकराचार्य, इनको अड़चन खड़ी कर दूंगा। लोग इनसे ही पूछने लगेंगे कि अरे, आप गैरिक वस्त्र पहने हुए हैं! थोड़ा समय लगता है।
मैं जब विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था, तो मुझे अक्सर जहां भी मैं बोलने जाता, लोग मुझसे पूछते कि आपने दाढ़ी-मूंछ क्यों बढ़ा ली? यह मैंने कभी सोचा ही न था कि इससे अन्यथा भी कोई पूछ सकेगा। लेकिन अमृतसर में सिक्खों की एक सभा में बोल कर नीचे उतरा मंच से और एक सरदार जी ने पूछा... । क्योंकि मैं नानक पर बोला था और वे गदगद हो गए थे, आंसू बह रहे थे उनकी आंखों से और कहने लगे कि सरदार जी, आपने बाल क्यों कटा लिए? इस प्रश्न का

तो मेरे पास उत्तर था कि मैंने दाढ़ी और मूंछ क्यों बढ़ा ली है। यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था, एक क्षण को तो मैं भी ठिठक गया कि यह बात तो कभी मैंने सोची नहीं कि कोई कभी पूछेगा कि आपने बाल, क्यों कटा लिए। यह समझा कि है तो सरदार ही यह आदमी, नहीं तो नानक पर ऐसी बात कोई कैसे कहेगा?
जल्दी ही तुम देखना, पुरी के शंकराचार्य और करपात्री महाराज से लोग पूछने लगेंगे--"आप गैरिक वस्त्र क्यों पहने हुए हैं? आप भी बिगड़ गए? जरा मेरे संन्यासियों की संख्या बढ़ जाने दो। इसके पीछे क्रांति है। परंपरा को मुक्त करना है और क्रांति से ही परंपरा पुनरुज्जीवित हो सकती है। और परंपरा जब पुनरुज्जीवित हो सकती है। और परंपरा जब पुनरुज्जीवित होती है तो नई होती है, पुरानी नहीं होती।
अब तुम पूछते हो--"क्या व्यक्ति बिना संन्यास के लेबिल के स्वस्थ नहीं
हो सकता?" तुम मुझसे क्यों पूछते हो? क्या बिना मुझसे पूछे स्वस्थ नहीं हो सकते? मेलाराम असरानी, यूं सोचो--मुझसे बिना पूछे स्वस्थ नहीं हो सकते? अगर मुझसे पूछे बिना स्वस्थ नहीं हो सकते, तो संन्यास और क्या है? यह मेरे पास होनी की, मुझसे पूछने की, जिज्ञासा करने की कला है, और तो कुछ भी नहीं। संन्यास को इतना तुम गंभीरता से न लो। मेरे लिए संन्यास बस अभिनय से ज्यादा नहीं है। यह जीवन के रवैए को बदलने की घोषणा है। तुम स्वस्थ हो सकते हो बिना संन्यास के, बिल्कुल ठीक। लेकिन तुम मुझसे पूछने आए हो, इससे ही जाहिर होता है कि तुम अपने आप स्वस्थ न हो सकोगे। अपने आप तो तुम प्रश्नों का भी हल नहीं कर सकते, क्या तुम स्वयं को खोज पाओगे? स्वस्थ होने का अर्थ होता हैः स्वयं में स्थित होने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति के साथ जुड़ना जरूरी है, जो स्वयं में स्थित हो गया हो।
गुरु और शिष्य का इतना ही तो भेद है। गुरु का अर्थ है जो स्वयं में स्थित हो। और शिष्य का अर्थ है जो अभीप्सु है स्वयं में स्थित होने का। एक का दीया जला है, एक का बुझा है। बुझा हुआ दीया, मेलाराम असरानी, पूछ रहा है कि क्या मैं जले हुए दीया के पास आए बिना जल नहीं सकता हूं? जल सकते हो तो जल जाओ, पूछना क्या है? जल ही जाओ। लेकिन बुझा दीया जले दीये के पास आता जाए तो एक घड़ी ऐसी आती है निकटता की, जब छलांग लगती है। जले दीये से ज्योति बुझे दीए पर चली जाती है। जले दीये का कुछ नुकसान नहीं होता और बुझे दीये को सब कुछ मिल जाता है। एक का कुछ खोता नहीं और दूसरे का सर्वस्व मिल जाता है।
संन्यास का कुछ और अर्थ नहीं हैः बुझे दीये का जले दीये के करीब सरकते आना। इससे ज्यादा कोई अर्थ नहीं। यह शिष्यत्व की उद्घोषणा है।
तुम हो सकते हो स्वस्थ तो मुझे कोई एतराज नहीं, जरूर हो जाओ। तुम कहते होः "क्या मनुष्य होना काफी नहीं है - मात्र मनुष्य!"
नहीं, काफी नहीं। क्योंकि मनुष्य से और भी ऊपर बहुत कुछ है। परमात्मा है। मनुष्य होना काफी नहीं है। हां, पशु से बेहतर है। ईसाई होने से, हिंदू होने से, मुसलमान होने से, जैन होने से मात्र मनुष्य होना बेहतर है। लेकिन वह इति नहीं है। मनुष्य होना केवल सीढ़ी है, पहुंचना तो भगवत्ता तक है। जब तक भगवान न हो जाओ, तब तक रुकना मत। उसके पहले कैसे स्वस्थ होओगे? उसके पहले कोई स्वास्थ नहीं है।
और तुमने पूछा हैः "यह जो बाप बड़ा एक विशाल संगठन खड़ा कर रहे हैं, इस सबका उद्देश्य क्या है?"
उपद्रव करना।

आज इतना ही।

ज्यूं मछली बिन नीर
आठवां प्रवचन

प्रतिरोध न करें

पहला प्रश्नः भगवान,
अनुकंपा करें और गहराई से समझाएंः प्रतिरोध न करें।
मैं एक व्यापारी हूं और विश्व का समाजसेवी सदस्य हूं। अगर आप मुझे कोई युक्ति दें तो मैं बहुत अनुगृहीत होऊंगा।
मैंने आपकी "बुक ऑफ दि सीक्रेट्स" के पांचवे भाग को एक शब्द पढ़ा हैः स्वीकार-भाव।

वह दूर नहीं है। वह तो हमारे प्राणों से भी निकट है। वह तो हमारे चैतन्य का केंद्र है। आंसुओं की धुंध में लेकिन न पहचाने गए! पर आंखें हमारी बहुत तरह की धुंधों से घिरी हैं। आंसुओं की धुंध तो है ही, क्योंकि जीवन हमारा विषाद है। और जीवन विषाद ही होगा। उसे जाने बिना कैसा आनंद? उसे पहचाने बिना कैसा प्रकाश? उसके अभाव में अंधकार है।
अंधकार अभाव का ही नाम है। अंधकार की कोई सत्ता नहीं है, कोई अस्तित्व नहीं है। रोशनी का न होना। बस दीये की गैर-मौजूदगी। दीया जला और अंधकार गया। गया कहना भी ठीक नहीं, भाषा की भूल है; क्योंकि था ही नहीं, जाएगा कहां? मिटा कहना भी ठीक नहीं; था ही नहीं तो मिटेगा कैसे? अंधकार केवल अनुपस्थिति थी। प्रकाश उपस्थित हो गया, इसलिए अब अंधकार दिखाई नहीं पड़ता। प्रकाश अनुपस्थित हो जाए, फिर अंधकार दिखाई पड़ने लगेगा।
और जीवन हमारा बहुत दुखों से भरा है। हम दुख में ही जीते हैं; दुख में
ही बड़े होते हैं; दुख में ही गलत हैं और मिट जाते हैं। और इस दुख के पीछे पूरे समाज का शड़यंत्र है। समाज नहीं चाहता कि कोई व्यक्ति आनंद को उपलब्ध हो। समाज के न्यस्त स्वार्थ तुम्हारे दुख पर ही जीते हैं। तुम दुखी हो, पीड़ित हो, परेशान हो, तो तुम पुरोहित के पास जाओगे। मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरूद्वारा, गिरजा--आनंदित व्यक्ति किस लिए जाएंगे? जो आनंदित है, वह जो जहां है वहीं मंदिर है। आनंद से बड़ा और कोई मंदिर है, कोई मस्जिद है? जो आनंदित है उसकी तो श्वास श्वास में तीर्थ है; वह क्यों जाए काशी और क्यों जाए काबा? जो आनंदित है उसके तो प्राणों में गंगा बह रही है; वह बाहर की गंगा में क्यों स्नान करे? जो भीतर की गंगा में डुबकी लेता हो, वह बाहर की गंदी गंगा में किस कारण अपने को गंदा करे? कोई आवश्यकता नहीं है।
इसलिए पुरोहित, पंडित, पादरी नहीं चाहते कि आदमी आनंदित हो। उनका सारा व्यवसाय तुम्हारे दुख पर निर्भर है। तुम दुखी हो तो उनके चरण गहते हो। तुम्हारा दुख मिट जाए, उनकी जरूरत ही समाप्त हो जाती है। बीमार आदमी चिकित्सक के पास जाएगा, जाना पड़ेगा। और जो स्वस्थ है वह किसलिए जाए? चिकित्सक की अंतर्भावना तो यही होगी, अंर्तप्रार्थना तो यही होगी कि सभी लोग स्वस्थ न हो जाएं, बीमारियां फैलती रहें। इसलिए तो जब बीमारियां फैलती हैं तो डाक्टर कहते हैंः सीजन आ गया। "सीजन!" व्यवसाय का मौका आ गया, धंधे का मौका आ गया। कमाने का समय आ गया। इधर लोग मरते हैं, उधर उनकी कमाई होती है।
जो व्यक्ति आनंदित है उसके जीवन में इतना प्रकाश होगा, इतनी ज्योति होगी कि वह दो कौड़ी के राजनेताओं के पीछे नहीं चलेगा। वह क्यों किसी के पीछे चलेगा? अपनी रोशनी में अपना रास्ता खोजेगा।
बुद्ध ने कहा हैः अपने दीये स्वयं बनो। और जिनके पास अपना दीया है वह क्यों किसी और की छाया बने, क्यों किसी और को अपनी बागडोर दे? और उसे साफ हो जाएगा बहुत, स्पष्ट हो जाएगा बहुत कि जिनके हाथों में हमने बागडोर दी है वे हमसे भी ज्यादा अंधे हैं। अंधे ही नहीं हैं, मूढ़ भी हैं। उनकी मूढ़ता और अंधेपन ने ही उनको हमारी छाती पर बैठ जाने का अवसर दे दिया है। अंधे अंधों को मार्गदर्शन दे रहे हैं। कबीर ने कहाः "अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत।" वे अंधे अंधों को मार्गदर्शन देते हैं, फिर दोनों कुएं में गिरते हैं। और यहां कतारबद्ध अंधे चल रहे हैं, क्यू लगे हुए हैं। मुल्ला

नसरुद्दीन ईद की नमाज पढ़ने ईदगाह गया था। वह जब ईद की नमाज पढ़ने को झुका तो उसका कमीज का एक कोना ऊंचा उठा रह गया। पीछे के आदमी ने सोचा भद्दा लगता है पजामे में खुसा रह गया। सो उसने उसे खींच कर ठीक कर दिया। मुल्ला पहली ही दफा ईद की नमाज पढ़ने गया था। सोचा कि शायद यह नियम है कि अपने से आगे वाले की कमीज खींचो, सो उसने भी आगे वाले की कमीज को झटका दे दिया। आगे वाले ने सोचा कि शायद यह नियम है। वह भी पहली ही दफे आया हुआ था, सो उसने अपने से आगे वाले की कमीज को झटका दे दिया। वह बहुत हैरान हुआ। उस आगे वाले ने कहाः क्यों मेरा कमीज खींचते हो?
उसने कहाः मुझसे मत पूछो। मेरे पीछे वाले से पूछो।
उसको पूछाः उसने कहा कि मुझसे क्या पूछते हो, मेरे पीछे यह जो मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है, इसने इतने जोर से झटका दिया मेरे कमीज को... । मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः मैं क्या कर सकता हूं? अरे मैं खुद झटका खाया हुआ हूं। तो मैंने सोचा यह शायद रिवाज है, परंपरा है, व्यवस्था है। मुझे क्या पता? मैं पहली दफा आया हूं।
यहां तुम अनुकरण कर रहे हो। राजनेता चाहता नहीं कि तुम्हारे पास अपनी आंखें हों। और राजनेता और धर्मगुरुओं को तो छोड़ दो; जिन्हें तुम सोचते हो तुम्हारे शुभाकांक्षी हैं, तुम्हारे हितैषी हैं, तुम्हारे मां-बाप, तुम्हारा परिवार, तुम्हारे प्रियजन, वे भी नहीं चाहते कि तुम्हारे पास अपनी आंखें हों। क्योंकि बेटा खुद देखने लगे तो फिर बाप का अनुसरण कैसे करेगा? बाप जैसा जीया वैसा ही चाहता है कि मेरा बेटा भी जीए, मेरी बेटी भी जीए। हालांकि बाप की जिंदगी नरक में गई, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, फिर भी वह चाहता है कि मेरा बेटा वंश-परंपरा को आगे चलाए। रघुकुल रीति सदा चली आई! रीत तो चलानी होगी। कुल की बात है। मां खुद जिंदगी भर दुख में जीई हो, पीड़ा में, लेकिन अपनी बेटी को भी वह चाहेगी कि मेरा अनुसरण करे। अहंकार को उसमें बड़ी तृप्ति मिलती है कि देखो मेरी बेटी, ठीक मेरा अनुसरण कर रही है! मेरा बेटा उसी रास्ते पर चल रहा है जिस पर मैं चला! हालांकि तुम कहीं पहुंचे नहीं, तुम्हारा बेटा कहीं पहुंचेगा नहीं। मगर पहुंचने की किसको पड़ी है! सवाल यह है कि मेरा बेटा मेरे रास्ते पर चले! रास्ता कहीं जाए न जाए, यह सवाल ही नहीं उठता।
लेकिन अहंकार अपनी बंदूक दूसरों के कंधों पर रख कर चलाना चाहता है। बाप जाते-जाते अपनी सारी बीमारियां, अपने सारे रोग, अपनी सारी मूढ़ताएं; अपने सारे अंधविश्वास अपने बेटों को सौंप जाता है। फिर बेटे भी अपने बेटों को सौंप देंगे। यूं जड़ता मिटती नहीं। बाप को भी खतरा है कि अगर बेटे के पास अपना बोध हो तो वह आज्ञाकारी नहीं होगा। आज्ञाकारी होने के लिए अंधा होना जरूरी है। स्वयं का बोध नहीं होना चाहिए, तभी तो कोई आज्ञाकारी होता है।
इसलिए हम सेना में जो शिक्षण देते हैं सैनिकों को। वह उनके बोध को मिटाने का, थोड़ा-बहुत बोध हो भी उनमें, तो उनको बुद्धू बनाने का है। उनको हम इस तरह की प्रक्रिया से गुजारते हैं कि उनमें से "नहीं" कहने की क्षमता ही समाप्त हो जाए। तभी तो कोई सैनिक हो पाता है, जब उसमें "नहीं" कहने की क्षमता समाप्त हो जाती है। तब हम कहते हैंः यह है आज्ञाकारी! तब हम उसको महावीर-चक्र देते हैं, उसको स्वर्ण-तगमे देते हैं, उसकी प्रतिष्ठा। उसकी प्रतिष्ठा क्या है? --कि वह मशीन की भांति हो गया। मशीन "नहीं" नहीं करती। तुम बटन दबाओ तो बिजली का बल्ब यह नहीं कह सकताः "अभी मैं न जलूंगा, कि यह कोई जलाने का समय नहीं है।" बिजली के बल्ब के पास कोई विचार की क्षमता नहीं, बटन दबाओ तो जलता है, बटन दबाओ तो बुझता है। जिस दिन सैनिक भी बटन दबाने से चलता है, बटन दबाने से रुकता है, उस दिन हम उसे कहते हैं कि अब इसमें आज्ञाकारिता पूरी हो गई। इसको करने के लिए पांच-सात साल उससे मूर्खतापूर्ण कवायद करवानी होती है--बाएं घूम, दाएं घूम; आगे आ, पीछे जा! कोई भी समझदार आदमी पूछेगाः "किसलिए? किसलिए बाएं घूम? और किसलिए आगे आऊं और किसलिए पीछे जाऊं?" लेकिन जो यह पूछता है उसको दंड मिलेगा? किसलिए का सवाल ही नहीं है। जो आज्ञा है उसे पूरी करो।

जब धीरे-धीरे यह यंत्रवत हो जाती है बात, इतनी यंत्रवत हो जाती है... कि मैंने सुना, एक महिला ने अपने मनोचिकित्सक को कहा कि मैं बड़ी परेशान हूं, मेरे पति सेना में कर्नल हैं, कभी-कभी घर आते हैं। सौभाग्य यही है कि कभी- कभी घर आते हैं। मगर जब भी आते हैं तो मेरी नींद हराम हो जाती है, इतनी जोर से घुर्राते हैं! मगर एक बात है कि जब बाईं करवट लेटते हैं तब नहीं घुर्राते जब दाईं करवट लेटते हैं तब घुर्राते हैं।
तो मनोचिकित्सक ने कहाः तू एक काम कर, जब वे दाईं करवट लेट कर घुर्राने लगें, उनके कान में कहना--बाएं घूम!
उसने कहाः इससे क्या होगा? वे तो सोए हैं।
उसने कहाः तू फिकर मत कर। अगर कर्नल हैं, तब तो जागे भी सोए हैं। अब सोने जागने में कोई भेद नहीं। कर्नल होते-होते आदमी के सोने-जागने में क्या भेद रह जाता है? तू फिकर मत कर। तू कोशिश तो कर।
विश्वास तो न आया पत्नी को, मगर हर्ज क्या था! रात जैसे ही वे घुर्राना शुरू किए, उसने कान में धीरे से कहा--बायें घूम! और वह चकित हुई कि वे बाएं घूम गए। नींद तक में बात घुस जाती है--बाएं घूम, दाएं घूम! अब सात साल से, आठ साल से, दस साल से घूम ही रहे हैं--बाएं घूम, दाएं घूम--यह बात खून में मिल गई, मांस-मज्जा में समा गई।
यह सारी की सारी समाज-व्यवस्था व्यक्ति के भीतर स्वयं का बोध पैदा न हो, इसके लिए एक साजिश है। यहां हम व्यक्ति को मिटाते हैं, नकारते हैं। छोटे से बच्चे को हम मिटाना शुरू कर देते हैं, विनष्ट करना शुरू कर देते हैं। उम्र पाते-पाते उसके भीतर आत्मा बचती ही नहीं। कुछ रूप-रेखा लेकर भी आया था, वह भी धुंधली हो जाती है।
और तब जीवन में दुख है। तब जीवन में दुख अनिवार्य है। चांद-तारे हैं, सूरज है, सौंदर्य है। मगर क्या करोगे इन सब चांद-तारों का?
तेरे बिना मैं चांद-सितारों को क्या करूं
कुदरत के इन हंसीं नजारों को क्या करूं
तेरे बिना ये चांद
क्यों हर कदम पै लौटकर आती है तेरी याद
तुझको भुला भी दूं तो यादों को क्या करूं
तेरे बिना ये चांद
नजरों पै बोझ बन गई मौसम की हर अदा
तेरे बिना रंगीन बहारों को क्या करूं
तेरे बिना ये चांद!
जब तू नहीं तो जिंदगी जीने में क्या मजा
डूबी है दिल की नाव किनारों को क्या करूं
तेरे बिना ये चांद!
परमात्मा के बिना चांद भी चांद नहीं, पूर्णिमा भी अमावस है; दिन भी अंधेरी रात। धन भी वरदान नहीं, अभिशाप। सफलता भी सफलता नहीं, सिर्फ नई-नई असफलताओं का सिलसिला।
मेरा सारा प्रयास यहां यही है कि तुम्हें समझा सकूं कि आंखों के आंसू कैसे पोंछे जाएं। लेकिन आंसू ही अगर होते तो भी बात आसान हो जाती; थोड़ी और उलझन है। आंसू हैं, वे पोंछे जा सकते हैं। क्योंकि आंसुओं को कोई भी पोंछना चाहता है। आंसू कौन चाहता है आंखों में! आंसुओं को लोग पी जाते हैं; आंसुओं को रोक लेते थाम लेते, क्योंकि अहंकार के विपरीत होते हैं आंसू। कोई नहीं दिखाना चाहता अपनी आंसुओं से भरी आंखें। आंसू लबालब भरे हों तो भी लोग मुस्कराए चले जाते हैं। आंसुओं को तो कोई भी पोंछना चाहता है। मगर मामले कुछ और जटिल हैं।

तुम्हारा ज्ञान सब थोथा है और बासा है, शास्त्रीय है। उस शास्त्रीय ज्ञान की भी बड़ी धुंध है। वह आंसुओं से भी ज्यादा गहरी है। और मजा यह है कि आंसू को तो हम पोंछना चाहते हैं, हम इस बात से उधार ज्ञान को बिल्कुल नहीं पोंछना चाहते। आंसुओं से तो हमारे अहंकार को चोट लगती है और इस तथाकथित ज्ञान से हमारे अहंकार को खूब पोषण मिलता है। और यह ज्ञान बड़ी धुंध पैदा

करता है। किसी की आंखों में वेद की धुंध है और किसी की आंखों में कुरान की और किसी की आंखों में बाइबिल की। बस दोहरा रहे हैं लोग--बिना जाने दोहरा रहे हैं।
जीसस हो जाओ तो सुंदर बात है। ईसाई होना--असुंदर। कृष्ण हो जाओ तो तुम्हारे जीवन में आनंद के झरने फूट पड़ें। लेकिन हिंदु होना--दो कौड़ी का। मोहम्मद हो जाओ तो तुम्हारे प्राणों से भी कुरान की सुगंध उठे, तो तुम्हारे वचनों में भी आयतें उतरें, तो तुम बोलो तो इबादत, न बोलो तो इबादत; तुम चुप बैठो तो इबादत; उठो तो इबादत, चलो तो इबादत। लेकिन मुसलमान होने का कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन सस्ता काम है मुसलमान होना।
जैन होना सस्ता है, जिन होना मंहगा काम है। महावीर जिन थे, जैन नहीं। जिन का अर्थ होता है--जिसने अपने को जीता। और जैन का अर्थ होता है--सुना है किसी ने अपने को जीता, हम उसके पीछे चल रहे हैं। अब पच्चीस सौ साल पहले किसी ने जीता होगा अपने को, इन पच्चीस सौ साल में कितना कचरा मिल गया है, कितना कूड़ा कर्कट इकट्ठा हो गया है! कहां गंगोत्री और कहां काशी की गंदी गंगा! मुर्दे ही मुर्दे तैर रहे हैं। महावीर तो गंगोत्री हैं। तुम भी गंगोत्री हो जाओ। तुम्हारे भीतर से भी गंगा प्रगट हो सकती है। लेकिन जब जैन होने से काम नहीं चलेगा, जिन होना पड़ेगा। और जैन होना बिल्कुल सस्ता है, बिल्कुल मुफ्त, संयोगवशात्। तुम जैन घर में पैदा हो गये, तुम्हारे मां- बाप ने जैन धर्म तुम पर थोप दिया। कोई बौद्ध घर में पैदा हो गया, उस पर बुद्ध धर्म थोप दिया। बुद्ध होने में श्रम करना होता है। इसलिए महावीर और बुद्ध की परंपरा का नाम है--श्रमण संस्कृति, श्रम की संस्कृति। चेष्टा करनी होगी; प्रयास करना होगा।
लेकिन इतना श्रम करने को कोई राजी नहीं मालूम पड़ता। लोग जितना धन कमाने में श्रम करते हैं, काश ध्यान कमाने में इतना श्रम करें तो परमात्मा जरा-भी दूर नहीं है!
यूं तो वो मेरी रगेजां से भी थे नजदीकतर
आंसुओं की धुंध में लेकिन न पहचाने गए।
पद पाने के लिए लोग जितनी दौड़ करते हैं, जितनी आपाधापी करते हैं, उससे बहुत कम दौड़धूप में परमात्मा मिलता है। मगर परमात्मा के संबंध में हमने कागज के फूलों को अंगीकार कर लिया है। शास्त्र यानी कागज के फूल। जो अपना सत्य नहीं है वह कागजी होगा। जो अपना सत्य है वही जीवंत होता है। और अपना सत्य ही मुक्ति लाता है।
लोटू सी. छुगानी, तुमने पूछा हैः इस बात का अर्थ तुम्हें प्रकट करूं-- प्रतिरोध न करें। यह ध्यान का पूरा-पूरा सार-सूत्र हैः प्रतिरोध न करें। यह साक्षी भाव की प्रक्रिया है। मन से मुक्त होने का सिर्फ एक ही उपाय है-- एक ही! दूसरा न कोई कभी उपाय था, न हो सकता है; उस एक उपाय के बहुत रंग-रूप हो सकते हैं, लेकिन वह उपाय एक ही है--वह है साक्षीभाव। और साक्षीभाव का अर्थ होता हैः प्रतिरोध न करें। क्योंकि जैसे ही प्रतिरोध किया, कर्ता- भाव आ जाता है, साक्षीभाव समाप्त हो जाता है। इसको थोड़ा समझें।
तुम्हारे मन में प्रतिपल विचारों का तांता लगा हुआ है, वासनाओं का तांता लगा हुआ है, स्मृतियों की भीड़ जा रही है--कल्पनाएं, योजनाएं, अपेक्षाएं, क्या-क्या नहीं है! तुम्हारे इस छोटे-से मन में कितना भीड़म-भक्का है, कितनी भारी कतार लगी हुई है, कतारों पर कतार चली आती हैं! शरीर थक कर सो जाता है तो भी मन नहीं थकता, वह चलता ही रहता है। दिन भी चलता है रास्ता, रात भी चलता है रास्ता। रात सपने चलते हैं, दिन विचार चलते हैं। और तुम्हारे विचार और तुम्हारे सपनों में कोई भेद नहीं; दोनों ही एक जैसे हैं। सब पानी के बबूले हैं। मगर बबूले ही बबूले हो गए हैं। और इनके साथ तुम अपना तादात्म्य कर लेते हो। इनके साथ तुम एक हो जाते हो। किसी विचार के साथ दोस्ती बांध लेते हो, गठबंधन कर लेते हो, विवाह रचा लेते हो। कहते हो-- मैं हिंदु हूं; यह एक तरह का विवाह हुआ। कहते हो--मैं मुसलमान; यह दूसरी तरह का विवाह हुआ। विवाह की विधि अलग-अलग, मगर किन्हीं विचारों से तुमने भांवर डाल ली, किसी प्रक्रिया से तुमने अपने को तादात्म्य कर लिया। तुम जड़ गए। जिसको तुमने कहा गया वह अच्छा विचार है, उसको तुम पकड़ कर छाती से लगा लेते

हो। और जो तुम्हें समझाया गया बुरा विचार है, उसे तुम धिक्कारते हो, हटाते हो, धक्के मारते हो। अब एक झंझट शुरू होती है। जिसे तुमने कहा गया है कि बुरा विचार है, जितना तुम उसे धकाओगे वह उतने ही बलपूर्वक तुम्हारे पास आएगा। जैसे गेंद को कोई दीवाल से मारे, जोर से मारे तो जोर से वापिस आती है, धीरे मारे तो धीरे वापिस आती है, मारे ही नहीं तो वापिस ही नहीं आती। प्रतिरोध न करने का पहला तो अर्थ यह हुआ--दीवाल पर गेंद न मारो। क्योंकि तुम जितने जोर से मारोगे उतनी ही तुमने ऊर्जा गेंद को दे दी। गेंद के पास अपनी कोई ऊर्जा नहीं है, अपनी कोई शक्ति नहीं है। तुम्हारे ही द्वारा शक्ति मिलती है गेंद को। तुमने जितनी जोर से मारी, उतनी ही शक्ति से गेंद गई और जब दीवाल से टकराएगी, तो अगर शक्ति फिर भी बच रही टकराने के बाद, तो वापिस लौटेगी। दीवाल वापस नहीं लौटाती। दीवाल क्या वापस लौटाएगी! अगर तुम आहिस्ता से फेंको तो दीवाल के पास ही गेंद गिर जाएगी। अगर बहुत आहिस्ता से फेंको तो दीवाल से जरा भी नहीं हटेगी, शायद दीवाल तक भी नहीं पहुंच पाएगी। सब तुम पर निर्भर है।
और तुम प्रतिरोध करते हो, विरोध करते हो। तुम्हें समझाया गया है कि बुरे विचार से लड़ना है। और बुरे विचार से लड़ कर तुम बुरे विचार से ही घिरे रहते हो। वही विचार तुम्हें और और सताता है। दिन में किसी तरह हटा देते हो तो रात में लौट आता है। जागरण में किसी तरह छिपा देते हो नींद में उघड़ आता है।
लोगों के सपने तो देखो, कैसे क्या हैं! क्या से क्या सपने हैं!
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से कह रहा था कि रात मैंने एक बहुत बेहूदा सपना देखा कि तू एक बिल्कुल गंदे डबरे में, जिसमें मल-मूत्र भरा है, उसमें गिर गई। धड़ाम से गिर गई और तेरे सारे शरीर पर मल-मूत्र और कीचड़ और न मालूम क्या-क्या जुड़ गया! जब तू बाहर निकली तो तुझे पहचानना तक मुश्किल था। और मैं, मैं भी गिरा, लेकिन मैं गिरा एक शहद के कुंड में और क्या मीठी शहद थी!
पत्नी ने कहा कि सपना मैंने भी देखा है। मैंने यह देखा है तुम मेरा शरीर चाट रहे हो, मैं तुम्हारा शरीर चाट रही हूं।
पति-पत्नी और करें भी क्या--एक-दूसरे को चाटते हैं! शरीर चाटते, खोपड़ी चाटते, जो मिल जाए चाटने का चाटते हैं। पत्नी ने भी गजब का सपना देखा! पत्नी ने पति को मात दे दी। पत्नी से कौन पति कब जीता है? यह सपना यूं ही नहीं आ गया होगा। ये भी इरादे हैं। ऐसा पति का इरादा होता है कि गिरा ही दूं किसी गड्ढे में इस दुष्ट को, पीछे लगी है। दिन में तो नहीं गिरा सके, दिन में तो वही गिरा देगी, सो रात सपने में गिरा लिया। मगर सोचते थे बड़ी होशियारी की। मगर पत्नी ने और भी होशियारी कर दी।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन देखा कि पत्नी उसका क्रिकेट का बल्ला लिए खड़ी है। थोड़ा डरा। मगर अपने भय को दबाया। हर पति को दबाना पड़ता है। छाती फुला कर जोर से श्वास लेकर भीतर अंदर आया और पूछा, अरे! क्या तूने भी क्रिकेट खेलना शुरू कर दिया है? क्या तुझे छक्का मारना आता है?
पत्नी ने कहाः छक्का मारना नहीं आता, छुड़ाना आता है। और आज छक्के छुड़ा
कर रहूंगी।
पत्नियों से कौन जीता? लेकिन पति-पत्नी बस इसी तरह के सपने देख रहे हैं, सारे लोग इसी तरह के सपने देख रहे हैं। मनोवैज्ञानिक तुम्हारे सपनों को पहले पूछता है कि तुम क्या सपने देखते हो, क्योंकि तुम्हारे जागरण में तो तुम बेईमान हो। तुम्हारे जागरण में तो तुमने इतना पाखंड रचा लिया है कि तुम्हारे जागरण से तुम्हारी असलियत का कोई पता नहीं चलता। इसलिए मनोवैज्ञानिक को मजबूरी में तुम्हारे सपनों में तलाश करनी होती है। क्योंकि सपने में तुम अभी भी बेईमानी नहीं कर पाते, सचाई प्रकट हो जाती है। पड़ोसी की पत्नी ले भागते हो--सपने में। जागरण में तो कहते हो--बहन जी, माताराम! क्या क्या बातें कहते हो! जागरण में तो अच्छी-अच्छी बातें कहनी ही होती हैं--धार्मिक और सांस्कृतिक और सभ्य। लेकिन नींद में असलियत खुल जाती है। नींद में साफ हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक तुम्हारे सपनों से पता लगाता है कि तुम्हारी असलियत क्या है। यह दुर्दशा देखते हो कि आदमी का पता लगाने के लिए सपने खोजने पड़ते हैं! आदमी का सत्य इतना असत्य हो गया है कि अब उसके संबंध में जानकारी भी चाहनी हो तो उसके सपनों से पूछना पड़ती है। आदमी इतना पाखंडी हो गया है। और पाखंड को उसने सुंदर नाम दे दिए हैं। पाखंड पर उसने सोने की पर्तें चढ़ा दी हैं, स्वर्ण और चांदी के वर्क लगा दिए हैं। जंजीरों पर भी उसने रंग-रोगन कर दिया है; आभूषण मालूम होने लगी हैं जंजीरें।
तो पहली तो बात यह है कि तुम जब भी किसी विचार से लड़ोगे, प्रतिरोध करोगे, तो वह विचार लौट-लौट कर आएगा। तुम उसे बल दे रहे हो। तुम उसे शक्ति दे रहे हो, ऊर्जा दे रहे हो। तुम अपने दुश्मन को ही भोजन खिला रहे हो। तुम अपनी आस्तीन में ही सांप पाल रहे हो। इसलिए ध्यान का, साक्षी का पहला सूत्र हैः प्रतिरोध न करें।
जीसस का वचन हैः रेसिस्ट नाट। प्रतिरोध न करें। ईसाई भी इस वचन को समझे नहीं, न इसका उन्होंने प्रयोग किया है। यह कुंजी है, क्योंकि जिस चीज का तुम प्रतिरोध न करोगे, तुम उससे मुक्त हो गए। लड़ो मत। दमन मत करो। दबाओ मत। जिसको दबाओगे उसे बार-बार दबाना पड़ेगा। और कितना ही दबाओ, लाख बार दबाओ, वह बार-बार उभरेगा। और तुम्हारी जिंदगी दबाने और उभारने के बीच एक व्यर्थ की कशमकश हो जाएगी। इसी में टूटोगे और नष्ट हो जाओगे।
लेकिन लोगों को डर यह है कि अगर हम दबाएं न, तो तो फिर हम गलती काम करने लगेंगे, अनाचरण फैल जाएगा, अराजकता फैल जाएगी। यही तो उनका मुझसे विरोध है, क्योंकि मैं भी कहता हूं प्रतिरोध न करो। तो वे कहते हैंः आपकी बात अगर मान कर हम चलें तो स्वच्छंदता हो जाएगी। वह स्वच्छंदता इसीलिए मालूम लगती है कि तुम्हें पता नहीं कि प्रतिरोध न करें, यह तो सिक्के का एक पहलू है; दूसरा पहलू है--साक्षी बनें। प्रतिरोध न करें--यह आधी यात्रा, यह आधी कुंजी, यह प्रारंभ का कदम। दूसरा हिस्सा है--साक्षी बनें। प्रतिरोध जब नहीं करते तो कर्ता नहीं रहे, क्योंकि कुछ कर नहीं रहे हो अब। अब देखने को ही बचा। अब ऐसे देखो जैसे दर्पण में चीजें झलकती हैं। कुछ लेना देना नहीं दर्पण को। बंदर झांके तो बंदर झलकता है। दर्पण यह भी नहीं कहेगा कि ये हनुमान जी हैं! दर्पण को क्या लेना-देना, हनुमान जी हों कि न हों! आदमी झांकेगा तो आदमी दिखाई पड़ेगा। जो झांकेगा वह दिखाई पड़ेगा। दर्पण तो सिर्फ प्रतिबिम्ब बनाता है, बस, कोई व्यक्तित्व नहीं देता, कोई निर्णय नहीं देता। न प्रशंसा न निंदा। न तो स्तुति करता है और न हिकारता है, न धिक्कारता है। कुछ कहता ही नहीं। यह दूसरा हिस्सा है। प्रतिरोध न करो, ताकि कोई चीज दबाई न जाए। सभी चीजों को उभर कर आ जाने दो। और दूसरा हिस्सा हैः अब साक्षी भाव से देखो, दर्पण मात्र हो रहो, बस देखते रहो!
और एक जादू घट जाता है--सिर्फ देखने से! क्योंकि जब तुम मात्र देखते हो, तुम ऊर्जा नहीं देते। प्रतिरोध में ऊर्जा दे देते हो। जब मात्र देखते हो तो ऊर्जा नहीं देते। और देखने में एक अकल्पनीय घटना घटती है कि जब तुम किसी चीज को देखते हो तो एक बात साफ हो जाती है कि देखने वाला दृश्य से अलग है, पृथक है। द्रष्टा और दृश्य एक नहीं हो सकते। तुम जब गुलाब के फूल को देखते हो तो बात जाहिर हो गई कि गुलाब का फूल दृश्य है, तुम द्रष्टा हो। जब तुम सूरज को देखते हो तो कभी इस भूल में नहीं पड़ते कि मैं सूरज हूं। जानते हो कि मैं देखने वाला हूं; सूरज बह रहा दूर। जैसे-जैसे द्रष्टा भाव गहरा होता है वैसे-वैसे तुम्हारे और द्रष्टा के बीच का अंतराल बड़ा होता है। यह अंतराल बढ़ता ही जाता है और एक ऐसी घड़ी आती है, यह दूरी इतनी हो जाती है कि दृश्य कहां खो जाते हैं क्षितिज के पार, पता ही नहीं चलता, सिर्फ द्रष्टा रह जाता है। और जहां द्रष्टा रह जाता है--मात्र द्रष्टा, और कोई दृश्य नहीं बाचते--वहीं समाधि है। समाधि में समाधान है।
लोटू सी. छुगानी, तुमने कहा कि मैंने तो सिर्फ एक ही शब्द पढ़ा आपका-- स्वीकार भाव। पर वह शब्द बड़ा कीमती है। उस शब्द में तो सब आ गया। स्वीकार भाव हो तो ही प्रतिरोध से बच सकोगे। अगर अस्वीकार का भाव है, कहीं भी दबा किसी कोने कातर में, तो तुम किसी न किसी तरह से प्रतिरोध करोगे ही। थोड़ा न

बहुत लड़ाई जारी रहेगी। और जरा सी भी लड़ाई जारी रही तो तुम मन से बंधे रह जाओगे।
बुद्ध के जीवन में बड़ा प्यारा उल्लेख है। वे अपने शिष्य आनंद के साथ
एक जंगल से यात्रा कर रहे हैं। एक नाले को पीछे कोई चार मील छोड़ कर आए हैं। दोपहर धनी है, तेज धूप है, बुद्ध एक छाया के नीचे बैठते हैं। वे बूढ़े हो गये हैं कोई अस्सी वर्ष उनकी उम्र है। आनंद से वे कहते हैंः आनंद, मेरा यह भिक्षापात्र ले और तू पीछे लौट कर जा। अभी-अभी हम जिस नाले को पार कर आए हैं, उसका पानी भर ला। मुझे बहुत प्यास लगी है।
आनंद उस भरी दोपहरी में बुद्ध का भिक्षापात्र लेकर चार मील वापस लौटता है। लेकिन जब वह लौटता है तो बड़ा हैरान होता है। जब वे गये थे, नाले को पार किया था, तो नाला बिल्कुल स्वच्छ था, जैसे स्फटिक मणि जैसा! लेकिन इस बीच उसके आते ही आते उसने अपनी आंखों से देखा कुछ बैलगाड़ियां उस नाले में से निकल गईं। छोटा सा पहाड़ी नाला। बैलगाड़ियां के निकलने से सारी कीचड़ ऊपर उठ आई, जो नीचे जमी थी। वर्षों के पत्ते सड़े गले, जो नीचे बैठ गये थे तलहटी में, वे सब ऊपर तैर आए। कचरा ही कचरा हो गया। यह पानी पीने योग्य न रहा चार मील आना व्यर्थ हुआ। वह वापस लौट आया। उसने बुद्ध से कहाः वह पानी पीने योग्य नहीं, क्योंकि जब मैं गया तो ठीक मेरे सामने ही एक कतार बैल गाड़ियों की उसमें से गुजर गई। बैलों ने भी पानी पीया और गाड़ियां गुजरीं, सब गंदा कर गए हैं। नाला बिल्कुल गंदा हो गया। अब उसका पानी पीने योग्य नहीं है। लेकिन मुझे पता है, आगे कोई तीन चार मील दूरी पर नदी बहती है, मैं वहां से पानी भर लाता हूं।
बुद्ध ने कहा कि नहीं, पानी तो उसी नाले का ला, तू फिर जा। बुद्ध कहें
तो आनंद को फिर जाना पड़ा। मगर बहुत हैरान हुआ कि यह जिद क्या! पानी पीना है, नदी से बेहतर पानी मिल जाता और तीन-चार मील वह भी यात्रा थी, कोई यात्रा में भी फर्क नहीं पड़ता था। फिर उसी नाले पर भेज रहे हैं, जिसका कि पानी बिल्कुल गंदा हो गया है! लेकिन वह जब नाले पर पहुंचा तो चकित हुआ कि बुद्ध का प्रयोजन अब समझ आया। इतनी देर में तो सारे पत्ते फिर वापिस बैठ गये थे, धूल फिर बैठ गई थी या बह गई थी। नाला फिर स्वच्छ हो गया था। वह पानी भर कर लौटा और नाचता हुआ लौटा। और उसने बुद्ध से कहा, आपने अदभुत किया। यही मेरी समस्या थी, कुछ दिन से पूछना चाहता था, संकोचवश पूछ नहीं रहा था कि मेरे मन में इतनी गंदगी चलती है, इसका क्या करूं? आपने तो बिना पूछे उत्तर दे दिया। अब मैं समझ गया। अब मैं राज समझ गया। बस किनारे पर बैठ रहूं, कुछ करूं न।... मैंने तो कुछ किया नहीं। जब मैं पहुंचा तो देखा कि पत्ते बह गये हैं; कुछ थोड़े बहुत रह गये थे, तो जब इतने बह गये हैं तो मैं किनारे बैठ रहा। मैंने कहा ये भी बह जाएंगे। कीचड़ वापस जम गई थी। झरना स्वच्छ होता जा रहा था। रास्ते में तो मैं यह सोचता हुआ गया था कि अब पानी जब लाना ही है तो उतर जाऊंगा नाले में, पत्तों को हटाऊंगा, कपड़े से पानी को छान लूंगा। लेकिन जब नाले के किनारे पहुंचा तब मुझे बोध आया कि अगर मैं उतरूंगा तो फिर गंदा कर दूंगा। बैठ रहा किनारे पर कुछ किया न, सिर्फ देखता रहा, देखता रहा, देखता रहा--और स्वच्छ होता गया जल! और अब मैं समझा राज कि क्यों मुझे आपने वापिस भेजा पीछे। यही मेरी मनोदशा है। अब मैं बैठ रहूंगा किनारे। अब मैं उतरूंगा नहीं मन की इस धारा में कि इसे साफ कर लूं। अब मैं लडूंगा नहीं, छानूंगा नहीं, दबाऊंगा नहीं, बहाऊंगा नहीं। अब तो बैठ रहूंगा किनारे--तटस्थ भाव से।
तटस्थ का अर्थ ही वही होता हैः किनारे बैठ रहना। इसलिए तो तटस्थ भाव कहते हैं। बैठ कर किनारे धारा को देखते रहना। और अगर तुम साक्षी बन कर बैठ रहो, स्वीकार-भाव से कि जो हो रहा है ठीक हो रहा है, जो हो रहा है वही होना चाहिए, अन्यथा की कोई चाह नहीं, अन्यथा हो ऐसी कोई आकांक्षा नहीं--इस स्वीकार-भाव में प्रतिरोध गिर जाएगा। और प्रतिरोध गिर गया तो साक्षी बनने में कोई कठिनाई नहीं है। सिर्फ देखते रहो। मात्र दृष्टा! और एक दिन तुम पाओगे मन अपनी सारी गंदगी के साथ विदा हो गया है। उस नाले में तो सिर्फ पत्ते और कीचड़ ही चले गए थे; यह नाला मन का ऐसा है कि पत्ते कीचड़ गये कि मन ही गया, क्योंकि मन पत्ते और कीचड़ का जोड़ है। और कुछ बचता नहीं पीछे। पत्ते

कीचड़ गये कि मन भी गया। अ-मनी दशा आ जाती है, जिसको नानक ने अ-मनी दशा कहा है। मन ही गया। और जहां मन गया वहां संसार गया। मन संसार है। और तब जो अनुभव होता है, उसे तुम चाहो सत्य का अनुभव कहो, स्वयं का अनुभव कहो, परमात्मा का अनुभव कहो, समाधि कहो, कैवल्य कहो, निर्वाण कहो। ये सब अलग-अलग नाम हैं--एक ही अनुभूति के। वह अनुभूति है परम प्रकाश की, परम ज्योति की। उस ज्योति के साथ अंधकार कट जाता है।
ये काली काली रतियां
हैं वहमों से लंबी
गुनाहों से काली
न सोते कटे हैं
न रोते कटे हैं
ये काली काली रतियां
दिया रंग फूलों को
कलियों को हंसना
और इन दोनों आखों को नित का बरसना भवरों को घातें
हमें गम की रातें
तुम्हें याद करके हम अभी-अभी हटे हैं
न सोते कटे हैं
न रोते कटे हैं
गये हो; ख्यालों से जाओ तो जानूं
आह बन के लब पै न आओ तो जानूं
अरे बेवफा! आंसुओं से तुम्हें याद करके अभी हम हटे हैं
न सोते कटे हैं
न रोते कटे हैं
ये काली-काली रतियां
हमारी जिंदगी अभी तो अमावस है। न रोते कटती है न सोते कटती है। काटे नहीं कटती। लोग कैसे-कैसे जिंदगी को काट रहे हैं! कोई ताश खेल रहा है; उससे पूछो, क्या कर रहे हो? वह कहता है समय काट रहा हूं। समय काट रहा हूं यानी जिंदगी काट रहा हूं। समय यानी जिंदगी। और ऐसा समय काट रहा है, जिसको दुबारा न पा सकेगा। ऐसा अवसर काट रहा है, जो न मालूम कितने जन्मों के पुण्यभाग से मिला है।
न सोते कटे हैं
न रोते कटे हैं
लेकिन जागो तो रात कटती ही नहीं, दिन हो जाता है, सुबह हो जाती है।
दिया रंग फूलों को
कलियों को हंसना
फूलों को ही रंग नहीं दिया, तुमको भी रंग दिया है। और कलियों को ही हंसना नहीं दिया, तुमको भी हंसना दिया है। लेकिन तुम भूल ही गये भाषा हंसने की। तुम्हें सिर्फ रोने की ही भाषा याद रही। तुम गणित ही सीख गये। तुम प्रेम ही भूल गये।
पूछा है तुमने, लोटू सी छुगानी, कि मैं एक व्यापारी हूं। थोड़े व्यापार
से उठना पड़ेगा, थोड़ा गैर व्यापारी होना पड़ेगा। व्यापार तो सब बाहर का होता है--धन का होता है, पद प्रतिष्ठा का होता है। यह भीतर की यात्रा है। यह गणित नहीं है व्यापार नहीं है। तब प्रेम का जगत है--प्रार्थना का, ध्यान का। यहां और ही भाषा चलती है। यहां किसी और ही तर्क की गति है। अगर व्यापारी ही रह कर भीतर जाना चाहा तो न जा सकोगे। थोड़ी गैर व्यवसायिक वृति को सीखना पड़ेगा, क्योंकि व्यापार हमेशा लाभ और हानि की भाषा में सोचता है। और ध्यान में न तो लाभ है, न हानि है। ध्यान में तो उसका अनुभव है जो हमें मिला ही हुआ है; सिर्फ उसकी तरफ हम पीठ किये हुए हैं। मुड़ जाना है और मुंह कर लेना है। अभी विमुख हैं, उन्मुख हो जाना है। और तब रंग ही रंग हैं। सारे इंद्रधनुष के रंग तुम्हारे रंग हैं। और तब खिलते हैं कमल--भीतर के कमल, सहस्रदल कमल!

मनुष्य की बड़ी संभावना है। मनुष्य की परमात्मा होने की संभावना है।
और जब तक मनुष्य परमात्मा न हो जाए तब तक तृप्ति अनुभव नहीं होती। तब तक अतृप्ति बनी ही रहती है। कुछ न कुछ खोया-खोया लगता ही रहता है। बुद्धत्व जब प्रगट होता है, तभी आती है परितृप्ति, परितोष। और तभी पहली बार अनुभव होता है कि जीवन कितना महान अवसर था; काटना नहीं था, जानना था, जागना था, बीज को फूल बनाना था, कली को खिलाना था। और यह सब घटना घट जाती है। एक छोटी सी कुंजी सेः साक्षी।
बस, घड़ी दो घड़ी, सुबह सांझ, जब अवसर मिल जाए, चुप होकर बैठ रहो। शिथिल
हो जाओ, शांत हो जाओ। शरीर को निढ़ाल छोड़ दो। विश्राम की अवस्था को सजा लो। और फिर मन की धारा को देखते रहो। और कुछ भी न करो--न कोई मंत्र, न कोई रामनाम का जप, न कोई हनुमान चालीसा का पाठ, न कोई गायत्री न कोई नमोकार। बस चुपचाप... क्योंकि वे सब तो मन के ही खेल हैं। उनको दोहराओगे तो मन में ही अटके रह जाओगे। फिर साक्षी नहीं हो सकते।
यह जानकर तुम हैरान होओगे कि मंत्र और मन एक ही धातु से बनते हैं-- दोनों शब्द। मंत्र मन का ही हिस्सा है, वह मन का ही तंत्र है। वह मन की ही व्यवस्था है। तो मंत्रों से कोई मन के पार नहीं जाता। हां, यह हो सकता है मंत्रों से मन की बहुत सी सूक्ष्म शक्तियां हैं, उनको जगा ले। मगर वह और नया उलझाव हो जाएगा। बाहर का धन इतना नहीं रोकता जितना फिर मन की शक्तियां रोकने लगती हैं।
रामकृष्ण के पास एक तपस्वी आया। रामकृष्ण बैठे थे गंगा के तट पर दक्षिणेश्वर में। देखते होंगे गंगा की धारा को बैठे-बैठे, और तो कुछ था नहीं करने को। उस तपस्वी ने कहाः मैंने सुना है लोग तुम्हें परमहंस कहते हैं! तुम्हीं हो रामकृष्ण परमहंस? अकड़ कर कहा, क्योंकि तपस्वी की अकड़ तो होगी ही। जहां तपश्चर्या है वहां अकड़ है। बोध नहीं--अकड़, अहंकार। क्योंकि तपश्चर्या में साक्षीभाव नहीं है, क्रिया-भाव है, कर्ता-भाव है। उपवास किया। सिर के बल खड़ा रहा। एक हाथ उठा कर बारह वर्ष कोई खड़ा रहता है, कोई खड़ा है तो बैठता ही नहीं। कोई सिर के बल खड़ा है। इस सबसे तो कर्ता-भाव पैदा होता है। और जहां कर्ता भाव पैदा होता है वहां अस्मिता और अहंकार सघन होता है। और साधारणतःधन से भी इतना अहंकार पैदा नहीं होता जितना तप से पैदा होता है।
इसलिए मैं तपश्चर्या का पक्षपाती नहीं हूं। त्यागी सिर्फ अहंकार पैदा कर लेते हैं और कुछ भी नहीं। और स्वाभावतः सूक्ष्म अहंकार होगा। जिसके पास लाख रुपये थे उसके पास एक अकड़ थी, जेब में एक गर्मी थी कि लाख रुपये मेरे पास हैं! और यह लाख रुपये छोड़ देते हो तो एक नई अकड़ पैदा होती है, जो पुरानी अकड़ से भी बड़ी है। यह कहता है, मैंने लाख को लात मार दी! लाख तो कई पर हैं, लेकिन लात मारने वाले कितने हैं? लाख वाले तो बहुत हैं, अकड़ होती भी तो कोई बहुत ज्यादा नहीं हो सकती थी। कोई लखपतियों की कमी है? दुनिया में बहुत हैं। तुम भी उनमें से एक। मगर लाख को लात मारने वाले तो बहुत कम हैं; अकड़ और सघन हो जाती है, और बड़ी हो जाती है।
तुम्हारे त्यागी तपस्वियों के चेहरों को जरा गौर से देखो। उनकी नाक
पर अहंकार बैठा हुआ दिखाई पड़ेगा। नंगे बैठे हैं, लेकिन नंगे बैठे हैं इसलिए और अहंकार है, और अकड़ है कि देखते हो कि मैं नग्न बैठा हूं! उनकी आखें तुमसे कहती हैं कि तुम पापी हो, नर्कों में सड़ोगे। मैं हूं पुण्यात्मा! स्वर्ग का दावेदार हूं।
रामकृष्ण सीधे सादे आदमी थे--कोई तपस्वी नहीं, कोई त्यागी नहीं, कोई व्रती नहीं--सरलचित्त। और सरलचित्त जो है वही साधु है। साधु शब्द का अर्थ होता है, जो सादा है। और ये तुम्हारे तपस्वी सादे बिल्कुल नहीं हैं, ये तो बड़े तिरछे हैं। इनका तो पूरा काम तिरछा है। अब अपने को भूखा मार कर कोई सीधा हो सकता है? तिरछा हो जाएगा। सिर के बल खड़े होकर कोई सीधा हो सकता है? यह तो और उल्टा हो गया। वैसे ही खोपड़ी गड़बड़ थी, अब और गड़बड़ हो जाएगी।
उस साधु ने बड़ी अकड़ से पूछा रामकृष्ण को कि तुम्हीं हो रामकृष्ण परमहंस? तो आओ मेरे साथ, चल कर गंगा को पार करें। मैं पानी पर चल सकता हूं, तुम चल सकते हो?

रामकृष्ण हंसने लगे। उन्होंने कहा कि नहीं, मैं तो नहीं चल सकता। मगर
एक बात पूछूं, अगर बुरा न मानें, कितना समय लगा पानी पर चलने की यह कला सीखने में?
स्वभावतः उसने अकड़ से कहाः अठारह वर्ष लगे!
रामकृष्ण ने कहा कि मैं बहुत हैरान होता हूं, क्योंकि मुझे तो जब उस पार जाना होता है तो दो पैसे देकर उस पार चला जाता हूं। नाव वाला दो पैसे में पार करा देता है। दो पैसे का काम--अठारह वर्ष तुमने गंवा दिये और फिर भी अकड़ रहे हो! फायदा क्या है? और मुझे कभी साल में एकाध दो दफे जाना होता है उस पार। सो अठारह साल में समझो कि एकाध रुपये का खर्चा होता है उस पार। सो अठारह साल में समझो कि एकाध रुपये का खर्चा होता है सब मिला कर। एक रुपये की चीज तुमने अठारह साल में कमाई! और शर्म भी नहीं आती और संकोच भी नहीं लगता! और यूं अकड़े खड़े हो!
मंत्र से मन की सोई हुई शक्तियां जग सकती हैं, मगर तुम और जाल में पड़ जाओगे। पानी पर चलने लगे तो और जाल में पड़े। कहीं राख निकालना सीख गये हाथ से तो और जाल में पड़े। कहीं किसी को छू कर बीमारी दूर करना आ गया तो और जाल में पड़े।
मन के पार जाना है। मन से मुक्त होना है। मन का अतिक्रमण करना है। यह
मन के अतिक्रमण का सूत्र हैः प्रतिरोध न करें, स्वीकार-भाव रखें और साक्षी बनें। बस देखते रहें।
मैं अपने संन्यासियों को इससे ज्यादा और कुछ भी नहीं सिखाता हूं-- मात्र देखते रहो। जीवन एक लीला है। तुम दर्शक बनो, द्रष्टा बनो। जैसे कोई फिल्म देखता है, नाटक देखता है--बस ऐसे। खुद का जीवन भी यूं देखो, जैसे यह भी एक अभिनय है। यह पत्नी, ये बच्चे, यह परिवार, यह धन दौलत, छोड़ कर भागनी की कोई जरूरत नहीं, सिर्फ इतना जानो--अभिनय है। चलो तुम्हें यह अभिनय करना रहा है। यह बड़ी मंच है पृथ्वी की, इस पर सब अभिनेता हैं। और जिसने अपने को समझा कि मैं कर्ता हूं वही चूक गया। और जिसने अपने को अभिनेता जाना वही पा गया है। पाने की बात दूर नहीं है।
यूं तो वो मेरी रगेजां से भी थे नजदीकतर
आंसुओं की धुंध में लेकिन न पहचाने गये।
दूसरा प्रश्नः भगवान,
हरिद्वार से दो साधु कल आश्रम देखने आये थे। हमने उनसे पूछा कि आपकी साधना क्या है? उनमें से एक स्वामी श्री रामानंद परमहंसपुरी ने बताया कि हम श्वास-श्वास में नाम जपते हैं, अजपा जाप करते हैं।
और आपका दर्शन करना चाहते थे--यह कहते हुएः "संत समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय।"
और कहा कि जैसे भगवान श्री कृष्ण से अर्जुन ने पूछा था, ऐसे मैं भी भगवान श्री से पूछता हूंः "मेरा मन चंचल है, एकाग्र कैसे हो?"
रंजन भारती,
साधुओं का अब साधना से कोई संबंध नहीं रह गया है। इसलिए भूल कर किसी परंपरागत साधु से मत पूछना कि आपकी साधना क्या है। अब तो साधु सिर्फ पाखंड है। साधना कोरा शब्द है। अब साधना कुछ भी नहीं है, क्योंकि साधना की शुरुआत ही साक्षीभाव से होती है और अंत भी साक्षीभाव पर। साक्षीभाव ही साधन, साक्षी भाव ही साध्य।
उस अंतर्जंगत में साधन और साध्य अलग-अलग नहीं है। मार्ग ही मंजिल है। तूने उनसे पूछा कि आपकी साधना क्या है। वहीं तेरी गलती हो गई। साधु से पूछना ही मत कि साधना क्या है। साधना ही करनी होती तो साधु काहे को होता? जंगल भाग गये, भगोड़े हैं, पलायनवादी हैं--इनकी साधना क्या? साधना तो वहां जहां चारों तरफ लपटें हैं। जहां ईर्ष्या, वैमनस्य, अपमान, सम्मान की भीड़ लगी हुई है--वहां साधना है। जंगल भाग गये आदमी की क्या साधना है? एक गुफा में बैठ गये आदमी की क्या साधना है? वहां कोई गाली तो देता नहीं, है ही नहीं कोई गाली देने वाला, तो क्रोध भी नहीं उठता। गाली के अभाव में क्रोध भी नहीं उठता। तो गुफा में बैठे आदमी को यह भ्रांति होने लगती है कि मैंने क्रोध पर विजय पाली।

मैंने सुना है, एक आदमी तीस साल तक हिमालय की गुफाओं में रहा और उसकी खबर नीचे तक पहुंच गई मैदानों तक कि उसने लगता है परमात्मा को पा लिया, परम शांति की मूर्ति है! लोग धीरे-धीरे पहाड़ पर आने लगे उसके दर्शन को। फिर कुंभ का मेला भरने को था तो लोगों ने कहा, अब आप कुंभ को दर्शन दें। करोड़ों लोग यहां तो नहीं आ सकते। उन पर कृपा करें, अनुकंपा करें। और आपने पा लिया है तो आपके दर्शन से उनको लाभ होगा। संत समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय! तो साधु राजी हो गया। कुंभ के मेले में आया। तीस साल जो गुफा में दिखाई न पड़ा था, कुंभ के मेले में आते से ही दिखाई पड़ गया। एक आदमी का भीड़ में उसके पैर पर पैर पड़ गया। बस उसने उसकी गर्दन पकड़ ली। एक क्षण में भूल ही गया, तीस साल एकदम विलीन हो गये जैसे थे ही नहीं। एकदम गर्दन पकड़ ली। वह जो तीस साल पहले का आदमी था, एकदम वापस लौट आया, एक क्षण में वापस आ गया। और कहा, तू जानता है कि मैं कौन हूं? लेकिन यह कहते ही उसे ख्याल आया--अरे! क्या हुआ मेरी तीस साल की साधना का? कहां गई मेरी शांति, कहां गया मेरा मौन? कहां गया मेरा अक्रोध?
फिर भी समझदार आदमी रहा होगा। उसने झुक कर उस आदमी के पैर छुए और माफी मांगी और कहा, कि जो हिमालय मुझे तीस साल में नहीं दिखा सका वह तूने जरा सा पैर रख कर दिखा दिया। मैं तेरा अनुगृहित हूं!" फिर वह हिमालय नहीं गया। फिर उसने कहा कि अब मैं बाजार में रहूंगा, भीड़-भाड़ में रहूंगा क्योंकि यहीं साधना हो सकती है।
साधना का अर्थ ही यह होता है--जहां अवसर है, उत्तेजना है; जहां कोई गाली देगा, कोई अपमान करेगा, कोई सम्मान करेगा, कोई अच्छा कहेगा कोई बुरा कहेगा; जहां हार होगी जीत होगी, धन मिलेगा पद मिलेगा, खो जाएगा, आज मिलेगा कल खो जाएगा--जहां ये सब घटनाएं घटती रहेंगी। उनके बीच जो निष्कंप है, यूं निष्कंप है कि जैसे कुछ भी नहीं हो रहा, जैसे यह सब नाटक में चल रहा है, हमें कुछ लेना-देना नहीं। हारे तो ठीक, जीते तो ठीक। जहां भेद ही नहीं हार-जीत में। जहां सम्मान और अपमान में कुछ अंतर ही नहीं। जहां बदनामी हो कि यश फैले, सब बराबर है। ऐसी ही दशा में साधना है।
साधु तो भगोड़े हैं तुम्हारे। मैं अपने संन्यासी को कह रहा हूं कि रहना जगत में, भागना मत। क्योंकि जो भागे वे कभी नहीं जीत सकते। वे तो संग्राम ही छोड़ गए, जीतेंगे क्या खाक? वे तो गुफाओं में छिप रहे। हम, युद्ध के मैदान से कोई भाग जाए, पीठ दिखा दे, तो उसको कायर कहते हैं। और जीवन के मैदान में जीवन के युद्ध से कोई भाग जाए तो उसको--परमहंस! यह कौन सा गणित है, कैसा गणित है?
जिंदगी एक संग्राम है। यही तो है, कुरुक्षेत्र, यही तो है धर्मक्षेत्र। धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र! यही है वह जगह, जहां कौरव और पांडव इकट्ठे हैं; जहां घमासान प्रतिपल होने की तैयारी में हैं; जहां अब शंख बजा अब शंख बजा, बज ही रहा है; जहां अब धनुष उठे तलवारें खनर्की-- यहीं है मौका। अर्जुन को कृष्ण ने यूं ही नहीं रोक लिया युद्ध में। वह तो प्रतीक कथा है, बड़ी प्यारी कथा है, बड़ी सांकेतिक कथा है। जैन उसको समझ न पाए। इसलिए कृष्ण पर नाराज हो गये। जैन धर्म में गीता का जैसा अनादर है वैसा किसी और ग्रंथ का नहीं, क्योंकि जैनों ने तो समझा कि कृष्ण ने हिंसा के लिए राजी कर लिया अर्जुन को। और जैनियों का तो हिसाब हैः अहिंसा परमोधर्माः। तो इस आदमी ने तो भड़का दिया, भरमा दिया। अर्जुन तो यूं समझो कि जैन मुनि होने जा रहा था और कृष्ण ने उसे खींच कर युद्ध में लगा दिया। और कितने तर्क दिए! अर्जुन ने बहुत बचने की कोशिश की, भागने की बहुत कोशिश की; पूरी गीता उसका सबूत है कि वह प्रश्न पर प्रश्न उठाए, संदेह पर संदेह किये गया। और कृष्ण भी एक थे कि जहां से भागा वहीं से रोका। सब तरफ से दरवाजे बंद कर दिये। अखीर में घबड़ा कर उसने कहा कि अच्छा भैया, तो तुम जो कहो वही ठीक। अब और मेरा सिर न खाओ। मतलब उसका यह है कि अब लड़े लेता हूं। चलो इससे बेहतर लड़ना ही है। निपटे लेता हूं।
तो जैनों को लगता है कि अर्जुन तो जैन हो जाता, जैन मुनि हो जाता। लेकिन कृष्ण ने उसे गड़बड़ कर दिया। कृष्ण ने उसे युद्ध में लगा दिया। लेकिन मेरे देखे, कृष्ण ने जो किया वह बहुत सोचने जैसा है, बहुत विचारणीय है। वही

मैं कर रहा हूं। मैं नहीं चाहता कि तुम भागो। तुम जीओ जिंदगी को इस युद्ध के मैदान में ही--अविचलित भाव से, साक्षीभाव से, जो हो, जो परिणाम आए। इसलिए तो कृष्ण कहते हैंः "तू परिणाम की चिंता न कर। तू फल की आकांक्षा न कर। जो बात आ पड़ी है उसे कर गुजर। फिर जो फल हो--सफलता-असफलता, वह परमात्मा के हाथ है। कर्म हमारे हाथ, फल परमात्मा के हाथ। मतलब यह है कि फल की जिसने विचारण की वह तो फिर चिंता में पड़ेगा। फल अगर पक्ष में आया तो अहंकार भरेगा और फल अगर विपक्ष में गया तो अहंकार टूटेगा; दोनों हालत में नुकसान होने वाला है। अहंकार टूटा तो विषाद पकड़ेगा और अहंकार भरा तो अभिमान जगेगा, घमंड पैदा होगा, अकड़ आएगी। फल छोड़ ही दिया परमात्मा पर तो फिर कोई सवाल ही न रहा। काम अपना पूरा किया, फिर जो हुआ परिणाम उससे हमें क्या लेना-देना? जो हो ठीक। जैसा हो ठीक। इससे एक निरपेक्ष भाव पैदा होता है--अपेक्षा शून्य। इससे साक्षी-भाव जगता है। कृष्ण की पूरी दीक्षा अर्जुन को साक्षी भाव की है, कि तू साक्षी-भाव से लड़।
रंजन, तू पूछती है कि साधु कल आश्रम देखने आए थे। इनको साधु कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि साधु तो सादगी की बात है। सादगी का अर्थ होता हैः जीवन को व्यर्थ की जटिलताओं में न उलझाए, जो साधारण भाव से जीए, जो अपने को साधारण मान कर जीए। साधु तुम्हारे तो साधारण भावे से नहीं जी सकते। वे तो प्रतिपल अस कोशिश में लगे हैं--कैसे असाधारण हो जाएं। उनकी सारी चेष्टा पुण्य-अर्जन की है, स्वर्ग पाने की है, मोक्ष पहुंच जाने की है। ये सब वासनाएं हैं। और जो वासनाओं से बंधा है उसका डेरा नर्क में होगा। वह चाहे वासना मोक्ष की ही क्यों न हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। चाहे तुम दिल्ली जाना चाहो और चाहे तुम स्वर्ग जाना चाहो, कुछ भेद नहीं। एक ही बात है। अपने से बाहर तुम्हारी यात्रा है। तुम अभी बाहर के लिए आकांक्षी हो, अभीप्सु हो। तुम्हें अभी भीतर का रस नहीं आया। भीतर का जिसे रस आया, वह तो अभी और यहीं मुक्त है--इसी क्षण! कहीं जाना नहीं है। कुछ पाना नहीं है। कोई उपलब्धि की बात नहीं उठती। जो है वह है ही मिला ही हुआ है। वह सदा से हमारा है। वह हमारा शाश्वत स्वरूप है। एस धम्मो सनंतनो! वही हमारा धर्म है। साधु तो जटिल हो जाता है। कहलाता तो है साधु, हो जाता है बहुत जटिल। क्योंकि वह हर चीज में फूंक फूंक कर चलने लगता है, उसका गणित बिठालने लगता है। ऐसा करूंगा तो पाप होगा, ऐसा करूंगा तो पुण्य होगा; ऐसा करूंगा तो लाभ, ऐसा करूंगा तो हानि--वह व्यवसाई समझो। मगर व्यवसाय में कुछ भेद नहीं है। वही बात। वही पागलपन। जरा भी अंतर नहीं। साधु तो जटिल हो जाता है। यह बड़ा दुर्भाग्य है।
झेन फकीर र्रिझाई साधु था, उसको मैं साधु कहूंगा। किसी ने उससे पूछा
कि आपकी साधना क्या है? जैसे रंजन, तूने पूछा रामानंद परमहंस पुरी से कि आपकी साधना क्या है, ऐसे ही र्रिझाई से किसी ने पूछा कि आपकी साधना क्या है? उसने कहाः साधना! साधना मेरी कुछ भी नहीं। जब भूख लगती है तब खाना खाता हूं और जब नींद आती है तब सो जाता हूं। जब नींद नहीं आती तो नहीं सोता और जब भूख नहीं लगती तो नहीं खाता। न तो भूख से ज्यादा खाता हूं, न भूख से कम खाता हूं। जितनी देर नींद आती है उतनी देर सोता हूं, न तो ज्यादा न कम। स्वभाव, ऋत, सरलता से जी रहा हूं। मेरी क्या साधना? मुझ गरीब की क्या साधना? सुनने वाला चौंका। उसने कहा कि इसमें कौन सी खूबी है? अरे भूख हमको लगती है, हम भी खाते हैं; नींद हमको लगती है, हम भी सो जाते हैं। इसमें तुम्हारी हमारी क्या खूबी? फिर भेद क्या?
र्रिझाई ने कहाः और तो मुझे कुछ भेद दिखाई नहीं पड़ता। भेद है भी नहीं। मगर इतना मैं तुमसे कहूं कि तुम जब खाना खाते हो तो और भी हजार काम करते हो, मैं वह हजार कान नहीं करता। मैं बिल्कुल सीधा-सादा आदमी हूं। तुम खाना तो खाते हो मगर सोचते दुकान की हो। तुम बैठते तो घर में हो मगर होते बाजार में हो। और जब बाजार में होते हो तब घर की सोचते हो। तुम जहां होते हो वहां नहीं होते। मैं जहां हूं वहीं हूं। ज्यूं का त्यूं ठहराया! मैं जहां हूं वहीं हूं। तुम कहीं कहीं होते हो, न मालूम कहां-कहां होते हो! सारी दुनिया में घूमते फिरते होते हो। सोते अपने कमरे में हो, सपना देखते हो टिम्बकटू पहुंच गए, कि कुस्तुन्तुनिया पहुंच गये। कहां-कहां नहीं चले जाते!

सेठ चंदूलाल मारवाड़ी अपने मनौविज्ञानिक को कह रहा था कि बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं। चंदूलाल बेचारा अपनी पत्नी का गुलाम है--जोरू का गुलाम--जैसा कि स्वभावतः मारवाड़ी होते हैं। या यूं समझो कि जो भी जोरू के गुलाम होते हैं वे सब मारवाड़ी, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ा। ऐसा समझो कि ऐसा समझो, बराबर। जोरू का गुलाम था। यह मनोवैज्ञानिक को पता नहीं था। सोचा--तकलीफ क्या है? उसने कहाः तकलीफ मेरी यह है कि रात जब में सपना देखता हूं, रोज यही होता है, अब मैं घबड़ा गया। मुझे बचाओ! मैं क्या देखता हूं कि बारह पत्नियां हैं मेरी, एक से एक सुंदर!
मनोवैज्ञानिक ने कहा कि इसमें तुम्हें क्या घबड़ाने की जरूरत, इसमें क्या बचना? अरे मौज करो, मौज करो! बारह पत्नियां मिल गईं... ।
चंदूलाल ने कहाः आप समझे नहीं। कभी आपको बारह पत्नियों का भोजन बनाने
का अवसर मिला ही नहीं? मैं मर जाता हूं रात भर भोजन बनाते बनाते बर्तन धोते धोते। एक ही काफी है भैया--उसने कहा कि--बारह में तो बहुत मुश्किल हो जाती है। रात भर भोजन बनाओ, बर्तन धोओ, सफाई करो। और बारह के बच्चे तुम समझते हो, कितने? कोई की नाक बह रही है, वह पोंछो। कोई रो रहा, उसका झूला हिलाओ। रात भर! सोने का तो नाम ही नहीं। विश्राम तो मिलता नहीं। रात जब सोने जाता हूं, जितना थका होता हूं, सुबह उठता हूं, उससे भी ज्यादा थकी हालत होती है। और उठते ही मेरी पत्नी खड़ी है, सो फिर चक्कर शुरू। दिन में एक सता रही है, रात बारह सता रही हैं। रात तो मुझे बचा दो, दिन में तो मैं नहीं बच सकता यह मुझे पता है।
यह जो र्रिझाई ने कहा कि, तुम यह मत कहो कि जब तुम खाना खाते हो, खाना
ही खाते हो और तुम जब सोते हो तो सोते ही हो। यह गलत बात है। तुम सोते हो, तब तुम हजार काम करते हो। कितने सपने देखते हो! क्या-क्या नहीं कर गुजरते हो सपनों में! हत्याएं कर बैठते हो, चोरियां कर लेते हो। खाना खाते खाते तुम क्या क्या नहीं सोचते रहते! कहां-कहां नहीं उड़े फिरते! मैं जब खाना खाता हूं तो बस खाना ही खाता हूं और जब सोता हूं तो बस सोता हूं।
और एक दफा, एक कोई और दूसरा जिज्ञासु आया र्रिझाई को मिलने, कि उसने देखा कि बगीचे में एक आदमी झाड़ काट रहा है। यह तो सोच ही नहीं सका कि यह र्रिझाई होगा। क्योंकि र्रिझाई महागुरु, इतना ख्यातिनाम फकीर था कि वह लकड़ी काटेगा यह तो हो ही नहीं सकता है। तो उसने पूछा कि ऐ भैया, र्रिझाई से मिलना है, कहां मिलना हो पाएगा? आश्रम बड़ा था, कोई पांच सौ फकीर आश्रम में रहते थे। र्रिझाई ने कहाः र्रिझाई से मिलना है? तुम जरा रुको, मैं बुला कर आया।
वह जल्दी से भीतर गया, हाथ-मुंह धोया, कपड़े बदले, आ कर कहा कि मैं रहा र्रिझाई। कहिए क्या काम है?
उस आदमी ने कहा कि आप हैं र्रिझाई? अरे कपड़े बदल कर तुम सोचते हो मुझे धोखा दे सकोगे? अभी दो मिनिट पहले तुम गए, माना कि मुंह धो आए और कपड़े बदल लिए, मगर मैं पहचानता हूं तुम वही के वही आदमी हो जो अभी लकड़ी काट रहे थे। उसने कहाः बिल्कुल ठीक। मैं वही आदमी हूं। मगर तब तुम नहीं पहचान सके
तो मैंने सोचा मुंह धो कर आ जाऊं, और क्या करूं? शायद लकड़ी काट रहा हूं पसीना बह रहा है, तुम पहचान नहीं पा रहे, तो कुल्हाड़ी रख आया कि भई कुल्हाड़ी की वजह से शायद नहीं पहचान पा रहे हो। मगर मैं ही हूं र्रिझाई। उसने कहाः आप लकड़ी काटते हैं!"
उसने कहाः और क्या करूं? ईधन के लिए लकड़ी की जरूरत है तो लकड़ी काटता हूं। और सुबह थोड़ी देर पहले आए होते तो कुंए से पानी भर रहा था, क्योंकि स्नान करना होता है तो कुंए से पानी भरता हूं।
तो उस आदमी ने पूछा कि मैं तुमसे यह पूछता हूं कि जब तुम प्रबुद्ध हुए, उसके पहले क्या करते थे? उसने कहाः यही लकड़ी काटता था, कुंएं से पानी भरता था।
उस आदमी ने पूछाः फिर फर्क क्या पड़ा? पहले भी लकड़ी काटते थे, कुंएं से पानी भरते थे; अब भी लकड़ी काट रहे, कुंएं से पानी भर रहे।
उसने कहाः फर्क इतना पड़ा कि पहले लकड़ी भी काटता था, और दूसरे काम भी करता था। साथ-साथ मन चलता रहता था। पानी भी भरता था, और भी मन दूसरी चीजें

भरता रहता था। अब सिर्फ पानी भरता हूं। अब सिर्फ लकड़ी काटता हूं। जो करता हूं वही करता हूं। अब बस वहीं होता हूं जहां होता हूं।
साधु का अर्थ है--इतना सरल कि जो जहां है वहीं है। असाधु का अर्थ है-- भागा भागा, खंडित, बहुत टुकड़ों में टूटा हुआ। साधु का अर्थ है--समग्र। तुम अपने साधुओं से मत पूछना कि तुम्हारी साधना क्या है। ये तो भगोड़े हैं। साधना था तो संसार ही, जगत ही परमात्मा ने दिया है साधने को। परमात्मा ने महात्मा नहीं बनाए, परमात्मा ने संसारी बनाए। अगर परमात्मा को महात्मा ही बनाने होते तो हर बच्चे को महात्मा बना कर भेजता। चले आते बच्चे--कोई सिर घुटाए चले आ रहे हैं त्रिदंडी साधु, कोई चले आ रहे हैं योगासन करते हुए, कोई चले आ रहे हैं मुंह पर पट्टी बांधे हुए, हाथ में कमंडल लिए हुए, कोई पिच्छी लिए हुए। एक से एक साधु! मगर परमात्मा संसारी आदमी बनाता है। परमात्मा संसारियों में ज्यादा उत्सुक है, साधुओं में इतना उत्सुक नहीं दिखाई पड़ता। एक साधु नहीं बनाता।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा सदगुरु जार्ज गुरजिएफ कहा करता था कि परमात्मा
के खिलाफ हैं तुम्हारे महात्मा। और मैं इस बात से राजी हूं। तुम्हारे महात्मा तुम्हें कुछ गलत बात सिखा रहे हैं। परमात्मा की मर्जी कुछ और है। परमात्मा चाहता है कि जीवन के संघर्ष और चुनौती को तुम जीओ। और तुम्हारे महात्मा सिखाते हैं भाग खड़े होओ। परमात्मा अवसर देता है, महात्मा तुम्हें अवसर से बचा देते हैं। फिर लौट कर आना पड़ेगा, क्योंकि परमात्मा ऐसे तुम्हें छोड़ देने वाला नहीं है। जब तक तुम पक न जाओ, जब तक तुम केंद्रित न हो जाओ, तुम्हें वापिस आना पड़ेगा। तुम तो कक्षा से भाग रहे हो, उत्तीर्ण कैसे होओगे? और जब तक उत्तीर्ण न होओ, तब तक स्कूल में लौटना पड़ेगा। अच्छा है जल्दी उत्तीर्ण हो जाओ। अच्छा है इस बार उत्तीर्ण हो जाओ। इस अवसर को क्यों चूकना?
मेरे लिए संसार में होना ही साधना है, क्योंकि यहां की सारी तकलीफें हैं, चुनौतियां हैं और इन चुनौतियों को ही जो सम्यक भाव से ध्यानपूर्वक जीता है, वह परम धन्यता को उपलब्ध हो जा है।
तूने पूछा है कि उसमें से एक स्वामी श्री रामानंद परमहंस पुरी ने बताया कि हम श्वास-श्वास में नाम जपते हैं। अब तू मजा देखती है! श्वास-श्वास में नाम जपते हैं, अजपा जाप करते हैं! अजपा जाप का मतलब भी उनको पता नहीं। अजपा जाप का मतलब होता है कि जाप नहीं। अजपा का मतलब होता है कि जहां अब कोई शब्द न रहा--न राम, न ओंकार, न अल्लाह, कोई शब्द न रहा। अजपा का अर्थ ही यह होता है कि अब जपने को कुछ न बचा। मंत्रों के पार हो गये। मंत्र के पार हुए कि मन के पार हुए।
यह "अजपा" शब्द नानक का है। बहुत प्यारा है! लेकिन मजा तो देखो, नानक
को मानने वाले जपुजी रटे जा रहे हैं! और नानक कहते हैं अजपा और ये जपुजी रट रहे हैं। जपुजी बिल्कुल उलटी बात हो गई। कहां अजपा और कहां जपुजी! और जप में भी जी लगा दिया... क्या-क्या पंजाबी हैं! जप ही काफी था, कम से कम जी से तो बचाओ। उसमें और जी लगा रहे हो! समादर दे रहे हो! और नानक कहते हैं, अजपा को उपलब्ध हो जाओ।
तुम्हारे भीतर शून्य हो तब अजपा होता है। श्वास चले और तुम साक्षी होओ! श्वास भीतर आई, तुमने देखी; श्वास बाहर गई, तुमने देखी--बस सिर्फ तुम द्रष्टा रह जाओ श्वास के। इसको बुद्ध ने "विपश्यना" कहा है। जिसको नानक ने अजपा कहा है उसको बुद्ध ने विपश्यना कहा है।
"विपश्यना" शब्द भी प्यारा है। इसका अर्थ हैः देखना, पश्यना। पश्यना देखना। साक्षी का ही अर्थ है। बस देखते रहो श्वास का आना और जाना। मगर इस देख में हम ऐसे तोतों की तरह हो गये हैं कि हम क्या करते हैं हमें इसका भी पता नहीं। शब्द रट लिए हैं, दोहराए जा रहे हैं। अब वे एक साथ में ही, एक श्वास में ही दोनों बात कह रहे हैं कि श्वास-श्वास में नाम जपते हैं, अजपा जाप करते हैं। उनको पता नहीं कि क्या कर रहे हैं।
और उन्होंने कहा कि हम भगवान का दर्शन करना चाहते हैं, क्योंकि संत समागम हरिकथा तुलसी दुर्लभ दोय। और कहा कि जैसे श्रीकृष्ण से अर्जुन ने

पूछा था, ऐसे मैं भी भगवान श्री से पूछता हूं, मेरा मन चंचल है, एकाग्र कैसे हो?
तो अजपा जाप कैसे कर रहे हो? मन चंचल है। अभी एकाग्र भी नहीं हुआ। मनातीत होना तो बहुत दूर, अभी पहला कदम भी नहीं उठा और मंजिल का दावा कर रहे हो।
मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जिन्होंने ध्यान पर बड़ी-बड़ी किताबें लिखीं हैं और मुझसे पूछने आ जाते हैं कि ध्यान कैसे करें। मैं उनसे पूछता हूं, जब तुमने ध्यान पर इतनी बड़ी किताब लिख दी तो सोचा भी नहीं कि ध्यान तुम्हें करना आता नहीं, तो कम से कम संकोच तो करो कि किताब मत लिखो! क्योंकि तुम्हारी किताब को मान कर न मालूम कितने मूढ़ ध्यान करने लगेंगे। और तुम्हें ध्यान का कोई पता नहीं है, कोई अनुभव नहीं है।
तो वह कहते हैं, हमने शास्त्रों को पढ़ कर किताब लिख दी।
और मैंने कहाः हो सकता है तुम्हारे शास्त्र भी तुम जैसे लोगों ने लिखे हों। न उन्हें ध्यान का कुछ पता है। क्योंकि ध्यानी तो बहुत कम हुए और शास्त्र बहुत हैं। जाहिर है कि बहुत से शास्त्र तो गैर ध्यानियों ने लिखे।
अच्छी-अच्छी बातें लिखी जा सकती हैं। लिखने में क्या खर्चा है? लिखने में लगता क्या है? अच्छे अच्छे शब्द चुने जा सकते हैं। अब उन्होंने भी तुलसीदास का यह वचन उद्धृत कर दिया--संत समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय। लेकिन तुलसी को भी अनुभव नहीं है, क्योंकि कृष्ण के मंदिर में उन्होंने इनकार कर दिया झुकने से। कहा, "तुलसी माथ तब झुके जब धनुषबाण लेहू हाथ।" कहा कि मेरा माथा तो तब झुकेगा जब तुम धनुर्धारी राम बन जाओगे। मैं कृष्ण के सामने नहीं झुक सकता।
क्या मजा है! और तुलसीदास के वचन पड़े हैं रामचरित मानस में, न मालूम कितने कि परमात्मा तो कण-कण में समाया हुआ है; वही है, उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है। कण-कण में देख सके और कृष्ण की मूर्ति में न देख सके? कृष्ण की मूर्ति क्या अड़चन दे गई? यह किसी अनुभवी व्यक्ति की बात नहीं हो सकती। यह तो आग्रही व्यक्ति की बात है। अरे जिसने परमात्मा को पहचाना, वह तो झुक ही गया--अब क्या है, मस्जिद हो तो भी झुका है और गिरजा हो तो भी झुका है, गुरूद्वारा हो तो भी झुका है। वह तो झुका ही हुआ है। मगर अभी तुलसी को अड़चन है, कृष्ण के सामने भी नहीं झुक सकते। अभी राम के आग्रही हैं। अभी ऐसा लगता है कि धनुषबाण इनका ट्रेडमार्का है। वह जब तक न हो तब तक यह कैसे झुकें? पहले धनुषबाण होना चाहिए। मतलब राम से भी ज्यादा महत्वपूर्ण धनुषबाण है। इनको राम भी मिल जाएं अगर बिना धनुषबाण के, ये झुकने वाले नहीं हैं। ये कहें, "तुलसी माथ तब नवै, धनुषबाण लैहु हाथ। धनुषबाण कहां है महाराज? पहले हाथ में धनुष बाण लो, जब माथा मेरा झुके। यह को साधारण माथा है--तुलसीदास का माथा है! यह माथा झुकवाना हो, हो इरादा तुम्हारा, अगर लेना हो मजा इस माथे के झुकने का, तो लो धनुषबाण हाथ।
यह भी सशर्त है, इसमें भी शर्त आ गई। माथा भी झुक रहा है तो सशर्त। यह क्या खाक माथे का झुकना हुआ? और कहानी क्या गढ़ी है लोगों ने कि कृष्ण जल्दी से बांसुरी पटकी, धनुष बाण लिया, फिर तुलसीदास झुके। क्या मजेदार लोग हैं! इनको जरा भी होश नहीं है ये क्या कर रहे हैं, क्या करवा रहे हैं। खुद भी कर रहे हैं और अपने ईश्वर से भी करवाते हैं। ईश्वर के ऊपर भी अपने को आरोपित कर देते हैं; जैसे कि राम को कुछ चिंता पड़ी हो कि तुलसीदास का माथा नहीं झुकेगा तो राम में कुछ कमी रह जाएगी। और अगर ऐसा कुछ हो कि तुलसीदास का माथा झुकवाने में इतना मजा आ रहा हो तो ये राम दो कौड़ी के राम हो गये। यह तो असंभव बात है कि बांसुरी पटक दें कृष्ण और धनुषबाण हाथ में ले लें। हां, एक चपत जमा देते, यह समझ में आ सकता था--कि निकल बाहर! तेरे माथे को झुकवा कर भी क्या करना है? करेंगे क्या? खाएंगे पीएंगे तेरे माथे के झुकने को? करना क्या है? निकल जा, भाग यहां से! कभी दुबारा इस तरफ आना मत!
मगर नहीं, उन्होंने जल्दी से धनुषबाण हाथ लिया, फिर तुलसीदास का माथा झुका। सो भक्त भी प्रसन्न, भगवान भी प्रसन्न। दोनों खूब आनंदित हुए होंगे,

गदगद हुए होंगे कि वाह, क्या गजब हो गया! तुलसीदास प्रसन्न हुए कि हमारी शर्त मानी गई और वे प्रसन्न हुए होंगे कि देखो कैसा महान माथा झुकवा लिया! अब ये क्या खाक संत समागम करेंगे? जो कृष्ण से भी आग्रह रखते हैं कि धनुषबाण हाथ लो, ये संतों को पहचान सकेंगे? इनको अगर जीसस मिल जाते तो तुलसीदास पहचानते? असंभव, बिल्कुल असंभव! कृष्ण को नहीं पहचान सके तो जीसस को तो कैसे पहचानते? और जीसस तो गधे पर बैठ कर यात्रा करते थे। वहां यहूदी मुल्कों में उन दिनों गधा एकमात्र सवारी थी। अब गधे पर बैठे इनको जीसस मिल जाते तो गधा ही अटका देता कि कैसे माथा झुकाएं, पहले गधे से तो उतरो। नहीं तो गधा यह समझेगा कि हम गधे को माथा झुका रहे हैं। गधों का क्या है! गधे क्या भी समझ सकते हैं! अरे गधे कुछ से कुछ समझ लेते हैं! और तुलसीदास का माथा गधे के लिए झुके, कभी नहीं! पहले नीचे उतरो गधे से और धनुषबाण लो हाथ!
इनको मगर लाओत्सु मिल जाता, बहुत मुश्किल था। लाओत्सु भैंसे पर सवार था। गऊमाता हो तो भी ठीक, भैंसा! यह तो यमदूत का वाहन है। ये तो समझते यमदूत चले आ रहे हैं, एकदम जोर-जोर से राम राम जपने लगते कि मौत आ गई! और लाओत्सु तो गजब का आदमी था; भैंसे पर भी सीधा नहीं बैठता था, उल्टा बैठता था। एक तो भैंसे... चीन में भैंसे पर बैठने का रिवाज रहा... और उलटा!
एक दफा लोगों ने लाओत्सु को पूछा कि आप भैंसे पर उल्टे क्यों बैठते हैं? बीच बाजार में चला जा रहा था अपने शिष्यों के साथ, च्वागंत्सु और दूसरे शिष्य, लीहत्सु पीछे लगे हुए थे। उसने कहाः इसके पीछे राज है। अगर मैं भैंसे पर सीधा बैठूं, आगे की तरफ मुंह करके बैठूं, तो मेरे शिष्यों की तरफ मेरी पीठ हो जाएगी; यह उनका अपमान है। अगर मैं अपने शिष्यों से कहूं कि तुम मेरे आगे चलो, ताकि मेरी पीठ तुम्हारे प्रति न हो तो वे राजी नहीं होते। वे कहते हैं आपकी तरफ हमारी पीठ हो जाएगी, वह अपमान है। सो मैंने यह तरकीब निकाली भैंसे पर उलटा बैठता हूं। मेरा चेहरा शिष्यों की तरफ, उनका चेहरा मेरी तरफ। किसी का अपमान नहीं।
इसलिए वह उलटा बैठता था। मगर उसकी बात में अर्थ है। तुलसीदास तो समझते कि यह तो बड़ा मामला गड़बड़ हुआ जा रहा है। यमदूत चले आ रहे हैं और यमदूत भी कोई साधारण नहीं, बिल्कुल पागल यमदूत आ रहा है! घसीट कर ले जाएगा! उलटा बैठ कर आ रहा है भैंसे पर! एकदम चिल्लाते कि भैंसे से उतरो, तब संत समागम हो।
वचन तो अच्छे-अच्छे कह गये बाबा तुलसीदास, मगर अनुभव के नहीं मालूम होते। संत समागम हरिकथा। बात तो सच है, मगर उधार होगी, सुनी होगी। संत समागम मुश्किल तो जरूर है, क्योंकि एक तो संत को पाना मुश्किल। हजार संतों में कभी एक संत होता है, नौ सौ निन्यानबे तो अंट-शंट होते हैं। और उन नौ सौ निन्यानबे की वजह से उस एक को पहचानना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि भीड़ जिनकी है, वोट उनके हैं। वे नौ सौ निन्यानबे एक तरफ खड़े हो जाते हैं और वह बेचारा अकेला पड़ जाता है। संत तो है वह अकेला पड़ जाता है। अंटशंटों की भीड़ है। और अगर वोट से मामला तय होना है, भीड़ से तय होना है, तो संत तो हारा ही हुआ है। ऐसे तो बुद्ध हारे, ऐसे तो महावीर हारे। ऐसे तो कूड़ा-कर्कट जीत गया।
भीड़ तो गलत लोगों से राजी हो जाती है, क्योंकि गलत लोगों से तुम्हारा तालमेल बैठ जाता है। गलत लोग तुम्हारे अनुसार चलते हैं। अगर तुम कहते हो मुंह पर पट्टी बांधो तब हम तुमको संत मानेंगे... तो तुमने देखा कृष्ण ने बांसुरी उतार कर रख दी... तो अगर तुम मुंह पर पट्टी बांध लो तो तेरापंथी स्थानकवासी जैन तुम्हें संत मानेंगे। बस मुंह पर पट्टी।
मैं हैदराबाद में था। एक जैन मुनि ने मेरी बातों को सुना। युवक था। हिम्मत में आ गया, जोश में आ गया, मुंहपट्टी फेंक दी। दूसरे दिन मैं जब सभा में बोलने गया तो वह भी मेरे साथ गया, तो वह भी मंच पर मेरे साथ बैठ गया। बस जैनियों में एकदम खलबली मच गई, कि मुंहपट्टी कहां है? मुझे चिट्ठियां आने लगीं कि इस आदमी को आप मंच से नीचे उतारें; इसने मुंहपट्टी छोड़ी है, मतलब अब यह जैन मुनि नहीं रहा।

मैंने उनसे कहा, तुम मुंहपट्टी को नमस्कार करते थे कि इस आदमी को? इसके चरण छूते थे। अभी कल तक तुम इसकी सेवा को जाते थे। आज इसने मुंहपट्टी छोड़ दी तो क्या बिगड़ गया? मुंहपट्टी गई न, और तो कुछ नहीं बिगड़ा? मुंहपट्टी का इतना क्या मूल्य है? तो तुम आदमियों को छोड़ो, घर में मुंहपट्टियां लटका लो, उनकी पूजा करो, सेवा करो। मुंहपट्टियां में ही तुम्हें रस है... ।
मगर मैं समझता हूं कि जब बाबा तुलसीदास गलती कर सकते हैं तो ये बेचारे क्या? ये हैदराबादी, इनका क्या, इनकी कितनी समझ? मगर वे तो जिद पकड़ गये। वह तो मामला उपद्रव का हो गया। भीड़ में लोग खड़े हो गए। उन्होंने कहा कि इनको मंच से नीचे उतारा जाए। मैंने कहाः देखो, मैं भी मंच पर बैठा हूं। मैं तो कोई मुंहपट्टी बांधे हुए नहीं हूं। तो यह बेचारा बैठा है, इसमें क्या हर्ज है? यह छिपकली देखो, हमसे भी ऊपर बैठी है, यह भी मुंहपट्टी नहीं बांधे हुए है। अब इसमें झगड़ा क्या करना है? मच्छर उड़ रहे हैं, कोई मुंहपट्टी नहीं बांधे हुए हैं, इनको कोई नहीं रोक रहा। इस गरीब को बैठा रहने दो।
मगर नहीं बैठा रहने दिया। हालत यहां तक पहुंच गई कि वे खींचने को मंच
पर चढ़ आए। तब मैंने ही उनको कहा कि अब आप ही हट जाओ। यह पागलों की जमात है। अगर इनसे आदर पाना हो तो अपनी मुंहपट्टी फिर चढ़ा लो। ये मुंहपट्टी के दीवाने हैं। और मूढ़ ही इस तरह की शर्तें पूरी कर सकते हैं।
लेकिन तुम्हारी कोई भी शर्त हो, तुम्हें मूढ़ मिल जाएंगे शर्तों को पूरी करने वाले। बस तुम्हारी शर्त पूरी कर दें, वे संत हो गए। हजार में एक कोई संत होता है और जो संत है, वह तुम्हारी कोई शर्त पूरी नहीं करेगा। वह अपने ढंग से जीएगा। उसे क्या फिकर पड़ी तुम्हारी कि तुम उसे संत मानते हो कि असंत मानते हो? मानते हो कि नहीं मानते हो क्या लेना-देना है? वह अपनी निजता में जीएगा, वह अपने आनंद में जीएगा। तुम्हारे सम्मान से उसका कुछ बनता नहीं, तुम्हारे अपमान से उसका कुछ बिगड़ता नहीं। तुम्हारी गाली या तुम्हारी स्तुति सब बराबर है।
एक तो संत को पाना मुश्किल, क्योंकि असंतों से तुम्हारे दिमाग भरे हुए हैं। तुम्हारे संतों को भी धारणाएं बना रखी हैं कि उनको ऐसा होना चाहिए। और संत के ऊपर कोई धारणा लागू नहीं हो सकती। सत्य किसी भी शर्त को मानता नहीं। सत्य तो मुक्ति है, मुक्त है। तुम उस पर धारणाएं आरोपित नहीं कर सकते। धारणाएं आरोपित र्की तो सत्य मर जाएगा, मुर्दा शब्द रह जाएंगे। तो एक तो संत का पाना मुश्किल, अगर पा भी लो तो समागम बहुत मुश्किल। मिल कर भी समागम हो जाए यह जरूरी थोड़े ही है, क्योंकि समागम के लिए शिष्यत्व होना जरूरी है। संत हो, यह तो एक आधा हिस्सा पूरा हुआ। रोशनी हो, यह आधी बात। मगर तुम्हारी आंख भी तो खुली हो, नहीं तो रोशनी से कैसे मिलन हो पाए? तुम आंख बंद किए दीए के सामने बैठे रहो, तो भी अंधेरा ही रहेगा। सूरज के सामने बैठे रहो, तो भी अंधेरा रहेगा। आंख खोलो।
शिष्य का अर्थ हैः आंख खोलो।
संत के पास भी पहुंच जाओ अगर भूल-चूक से... भूल चूक से ही पहुंचोगे! असंत तो तुम्हें खोजते फिरते हैं। वे तो तुम्हारे पीछे लगे रहते हैं कि भैया कहां जा रहे हो! हम इधर हैं। इधर आओ! बड़ी खींचतान मची है--इधर आओ, उधर जाओ। सब दुकानदार अपनी-अपनी तरफ खींच रहे हैं, कि असली माल यहीं बिकता है। एक इटेलियन ने दुकान खोली। उसने अपनी दुकान पर तख्ती लगाई--इस दुकान
पर हर चीज सस्ते से सस्ते दामों में मिलती है। एक यूनानी ने दुकान खोली। उसने यह तख्ती लगी देखी तो उसने तख्ती लगाई कि यहां हम रद्दी चीजें नहीं बेचते, इसलिए सस्ते का सवाल नहीं उठता। यहां तो हम असली चीजें बेचते हैं। और जितनी इनकी कीमत हो उतनी ही कीमत ली जाती है। न कम न ज्यादा! कचरा खरीदना हो तो कहीं और।
उन दोनों के बीच में एक यहूदी ने दुकान खोली। उसने तख्ती लगाई कि बगल
की दोनों की दुकानों का दरवाजा यही है। कुछ भी खरीदना हो, सस्ता भी मिलता है यहां, महंगा भी। बगल की दोनों दुकानों का दरवाजा यही है, मुख्यद्वार यही है।
ऐसा झगड़ा मचा हुआ है। संत तुम्हारे पीछे नहीं दौड़ते फिरते। संत तो अपने भीतर थिर हैं। तुम्हें उनकी तलाश करने आना पड़ता है, तुम्हें उनको

खोजना पड़ता है। जो तुम्हारे पीछे दौड़ते फिरते हैं, वे संत नहीं हैं। उनका कुछ रस है। वे तुम्हारे शोषण में उत्सुक हैं। इसलिए तुम्हारी शर्तें भी पूरी करेंगे।
तो पहले तो संत को पाना मुश्किल और अगर कभी भूल-चूक से पा लो, कभी नदी नाव संयोग हो जाए, तो कठिनाई यह आ जाती है यह कि तुम्हारा शिष्य होना जरूरी है, तो ही समागम हो पाए। संत के पास देने को है, मगर तुम्हारी झोली भी तो लेने को राजी हो। संत बांटने को तैयार है, मगर तुम्हारे द्वार-दरवाजे बंद हैं, तुम लेने को राजी हो। तुम डरे हुए खड़े रहते हो। संत तुम्हें डुबाने को तैयार है, मगर तुम डूबने को राजी नहीं। तुम घबड़ाए हुए हो। तुम अपना हिसाब लगाते हो। तुम सब तरफ से सोच-विचार करते हो गणित बिठाते हो कि लाभ कितना हानि कितनी, कितने दूर तक जाऊं, कितने दूर तक न जाऊं! और यह आदमी संत है भी या नहीं।
और कैसे तुम जांचोगे? तुम्हारे पास धारणाएं तो सब बासी हैं, उनसे कुछ निर्णय होने वाला नहीं। जैन के पास धारणाएं हैं जैन शास्त्र से ली गयीं, वह उसी हिसाब से तौलता है। इसलिए उनके शास्त्रों के अनुसार न तो कृष्ण संत हैं, न जीसस संत हैं, न मोहम्मद संत हैं, न जरथुस्त्र संत हैं, न लाओत्सु। उनकी अपनी धारणाएं हैं, उन पर वह कसता है। वे उन धारणाओं पर पूरे नहीं उतर सकते।
एक जैन मुनि ने मुझसे कहा कि आप जीसस को संत न कहें, क्योंकि उनको सूली लगी। अरे तीर्थेंकरों को तो लक्षण यह है कि कांटा भी रास्ते पर अगर सीधा पड़ा तो उनको देख कर उलटा हो जाता है--कांटा भी! क्योंकि जिसके सारे पाप समाप्त हो गए हैं, उसको कष्ट हो ही नहीं सकता। और जीसस को सूली लगी, कांटे की बात छोड़ो, सूली लगी। किसी महापाप का परिणाम ही होगा।
मैंने उनसे कहाः तुम यह भी सोचो कि जीसस को सूली लगी लेकिन जीसस को कष्ट हुआ या नहीं? सवाल यह है। सूली लगने से कुछ तय नहीं होता। कष्ट हुआ कि नहीं, यह और ही बात है। कष्ट हुआ होता तो जीसस कभी यह कह कर विदा न होते दुनिया से कि "हे प्रभु, इन सबको क्षमा कर देना जो मुझे सूली लगा रहे हैं, क्योंकि इन बेचारों को पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।" जीसस को ईसाई इस कारण संत कहते हैं कि सूली पर लटक कर भी वे क्रोधित न हुए। तुम महावीर को इसलिए संत कहते हो कि कांटा सीधा पड़ा था, उल्टा हो गया। इसमें कांटा संत होता है, महावीर कैसे संत होते हैं? कांटा संत है, जाहिर है, बिल्कुल साफ बात है कि कांटा कोई साधारण कांटा नहीं है, कोई तीर्थेंकर है, कोई पहुंचा हुआ सिद्धपुरुष है। देखो, एकदम देख कर उल्टा हो गया कि बेचारे को गड़ न जाए। मगर इससे महावीर की क्या कसौटी हो रही है? कसौटी तो सूली पर हो रही है।
वे कहने लगेः आप कैसी बातें कर रहे हैं! आप सब शास्त्रों का खंडन कर रहे हैं।
मैं कोई खंडन नहीं कर रहा हूं, मैं तो सिर्फ तुम्हें यह स्मरण दिला रहा हूं कि अपनी धारणाओं को दूसरे पर मत थोपो। तुम्हारी धारणाओं का क्या मूल्य? तुम्हारी धारणाएं तुम सब पर नहीं थोप सकते।
और संत तो अनंत-अनंत रूपों में प्रकट हुए हैं, कोई एक रूप नहीं उनका। इसलिए तुम जब बंधी हुई धारणाओं से जाओगे तो निश्चित ही... जैन सिर्फ जैन साधु को ही साधु मान पाएगा; संत मान पाएगा और हिंदु केवल हिंदु को ही संत और साधु मान पाएगा और मुसलमान केवल मुसलमान को ही साधु और संत मान पाएगा। अब मजा यह है कि तुमने कसौटी पहले ही तय कर ली। अनुभव संत का करो, फिर कसौटी तय करना।
और मैं तुमसे कहता हूंः जिन्होंने संतों का समागम किया, उन्होंने फिर कसौटी तय नहीं की। क्योंकि एक संत को पहचाना तो उन्होंने यह बात समझ ली कि संत अनंत रूपों में हो सकते हैं, उनकी अनंत जीवन शैलियां हो सकती है। इसलिए मैं जरथुस्त्र पर, लाओत्सु पर, जीसस पर, बुद्ध पर, महावीर पर, कृष्ण पर, मुहम्मद पर, सब पर बोला हूं, बोल रहा हूं, ताकि तुम्हें यह स्मरण दिलाता हूं--तुम भूल न जाओ--कि संतत्व उतना ही अनंत है जितना परमात्मा, क्योंकि यह परमात्मा का ही रूप है। बंधी हुई धारणाओं वाला व्यक्ति समागम नहीं कर सकता, बीच में धारणाएं आ जाएंगी।

तो वे बेचारे कह रहे थे--"संत समागम हरिकथा"... । लेकिन कर नहीं पाएंगे संत समागम। उनकी बंधी हुई धारणाएं हैं। वे ही धारणाएं बाधा बन जाएंगी। अभी उनका मन चंचल है। मन चंचल है और नाम है--रामानंद परमहंस पुरी! परमहंस उसको कहते हैं, जो मन के पार चला गया। मन है विचार। और हंस है प्रतीक विवेक का। हंस प्रतीक है--नीर क्षीर विवेक कर सके जो। यह काव्य कल्पना है, कवि की कल्पना है कि अगर हंस को हम दूध दे दें और पानी मिला हो, तो वह दूध-दूध पी लेगा, पानी छोड़ देगा। यह बात कोई तथ्य नहीं है। इस भ्रांति में मत पड़ना कि यह कोई वैज्ञानिक तथ्य है। अगर यह वैज्ञानिक तथ्य हो तो मैं कहता हूं वह दूध भी नहीं पी सकता, क्योंकि दूध खुद ही नब्बे प्रतिशत पानी है; बिना ही मिलाये। वह गऊमाता खुद ही मिला देती है। ये गोपाल जी तो बाद में मिलाएंगे। नब्बे प्रतिशत तो पानी ही है। यह तो दूध भी नहीं पी सकेगा।
और अब जमाने बड़े खराब आ गए हैं। अब लोग जल मिलाते हैं, यही नहीं; मैं अहमदाबाद जाता हूं तो कभी वहां दूध नहीं पीता, क्योंकि कोई अहमक अहमदाबादी जीवन-जल मिला दे। ये मोरारजी भाई के शिष्य अहमदाबाद में रहते हैं--अहमक! एक से एक अहमक पड़े हुए हैं। जल मिलाओ, वह भी ठीक, चलो कोई हर्जा नहीं--जल तो है! मगर जीवन-जल मिला दो, करुणावश, कि जो भी पीएगा, उसकी उम्र बढ़ेगी और प्रधानमंत्री बनेगा! करूणावश! क्या जल मिलाना, जब जीवन जल उपलब्ध है तो जीवन जल ही मिला दो! वह तो दूध से भी ऊंची चीज है!
हंस कोई जल और दूध में भेद नहीं कर पाएगा। लेकिन यह काव्य प्रतीक है
कि हंस दूध को अलग कर लेता है, जल को अलग कर देता है। इसका अर्थ हैः वह असार को अलग कर देता, सार को अलग कर देता। और परमहंस का अर्थ है, जो ऐसे नीर-क्षीर विवेक को उपलब्ध हो गया है, जिसने असार को छा.ेड़ दिया और सार को ग्रहण कर लिया; जिसने अपने जीवन में व्यर्थ को छोड़ दिया और सार्थक को पकड़ लिया; परिधि से मुक्त हो गया और केंद्र पर स्थिर हो गया। तब किसी को परमहंस कहा जा सकता है।
और अभी मन चंचल है। अभी मन कौआ है, हंस भी नहीं हुआ। अभी मन चंचल है, कांव कांव कर रहा है। और पूछने आए हैं चित्त एकाग्र कैसे हो! चित्त को एकाग्र भी नहीं करना है। चित्त से मुक्त ही होना है, क्या एकाग्र करना है? बंटा हुआ इतने कष्ट दे रहा है, इकट्ठा हो जाएगा तो छाती पर पत्थर की तरह बैठ जाएगा। फिर तो हटाना मुश्किल हो जाएगा। अभी बंटे हुए से नहीं जीत पा रहे हो, एकाग्र करके क्या और अपनी बची-खुची लुटिया भी डुबानी है? थोड़ी बहुत बची है लाज, वह भी उघड़ जाएगी। यूं तो उघड़ जाएगी। यूं तो उघड़ ही गई, लंगोटी बची है, वह लंगोटी भी निकल जाएगी। एकाग्र करके क्या करना है? एकाग्र नहीं करना है।
ध्यान एकाग्रता नहीं है। एकाग्रता तो मन की ही चेष्टा है। मन को एक केंद्र पर रोक देना एकाग्रता है और मन से मुक्त हो जाना ध्यान है। एकाग्रता का कोई सवाल नहीं। एकाग्रता तो तुच्छ बात है। और एकाग्रता तो बड़ी आसानी से हो जाती है, इसमें कुछ अड़चन नहीं है। एक सुंदर स्त्री को देखो, सारा बाजार खो जाता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। यह कोई बड़ी बात है? फिल्म देखने चले जाते हो, भूल गये दुकान, भूल गये घर, भूल गये सब--चित्त एकदम एकाग्र हो जाता है। फिल्म में एकाग्र हो जाता है।
यह रामानंद परमहंस को कहो कि फिल्में देखो भैया, चित्त एकाग्र हो जाएगा! अरे मदारी डमरू बजा देता है तो अनेकों का चित्त एकाग्र हो जाता है, भूल जाते हैं, साइकिल टेक कर खड़े। जा रहे थे पत्नी के लिये दवा लेने, भूल ही गये। याद ही न रही कि कौन पत्नी! मदारी ने डमरू बजा दिया, बंदर नचाने लगा। अभी कुछ खास भी नहीं हो रहा है काम, मगर आशा बंधी है कि शायद कुछ हो। चित्त बिल्कुल एकाग्र हो जाता है। एकदम ठहरे खड़े हो गये। सब रुक गया। समय भूला, स्थान भूला।
चित्त एकाग्र होना कोई कठिन बात नहीं है। वैज्ञानिक जब अपना अन्वेषण करता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। सर्जन जब अपनी सर्जरी करता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। चित्रकार जब पेंटिग करता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। संगीतज्ञ जब वीणा बजाता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। चित्त एकाग्र होना कोई बहुत बड़ी बात है? यह तो बड़ी सामान्य घटना है, सबको होती है। अड़चन इसलिए

होती है कि जहां चित्त एकाग्र नहीं होना चाहता वहां तुम उसे एकाग्र करना चाहते हो, तब अड़चन होती है। जैसे सामने से तो जा रही है हेमामालिनी और तुम हनुमान जी पर चित्त एकाग्र कर रहे हो, कैसे हो? यह बात बने तो कैसे बने? हनुमान जी भी क्या करें? इसमें कसूर उनका भी नहीं। चित्त तो एकाग्र होने को राजी है, मगर वह हेमामालिनी पर होना चाहता है। और हनुमान जी में उसे कुछ जंचता नहीं कि कैसे, किसलिए एकाग्र होना है? और फिर ऐसी जल्दी क्या है, हनुमान जी पर ही करना तो बाद में कर लेंगे, अरे मरते समय कर लेंगे! अभी तो चार दिन की चांदनी है, थोड़ा इधर देख लें। फिर तो अनंत काल तक पड़े हनुमान जी से निपटाना है, फिर करना क्या है! फिर हम और हनुमान जी! मगर यह थोड़ी देर के लिए जो अवसर मिला है, झरोखा खुला है, इसको तो न चूकें!
चित्त तो एकाग्र बिल्कुल होने को राजी है, मगर तुम उलटी सीधी चीजों पर एकाग्र करना चाहते हो। तो अड़चन आती है। चित्त कहता है कि नहीं होंगे एकाग्र! हमें यहां एकाग्र होना है, तुम वहां करना चाहते हो! तुम हो कौन? तुम्हारी हैसियत क्या? और चित्त वहीं ले जाएगा। और अगर तुमने ज्यादा गड़बड़ की तो परिणाम यह होगा कि तुम्हें हनुमान जी में हेमामालिनी दिखाई पड़ेगी। तुम लाख आंखें झपको, कुछ भी करो, जब भी आंख खोलोगे--हेमामालिनी खड़ी हुई है! हनुमान जी छिप गए, ओट में हो जाते हैं।
चित्त को एकाग्र करना कठिन नहीं है, लेकिन चित्त के साथ जब तुम जबरदस्ती करते हो तब अड़चन आती है। अगर हम प्रत्येक व्यक्ति को उसके स्वभाव में जीने दें तो चित्त की एकाग्रता तो बिल्कुल ही सामान्य घटना है।
मैं स्कूल में विद्यार्थी था। मेरे एक अध्यापक थे, वे इतिहास पढ़ाते थे। अब इतिहास में मुझे कोई रस नहीं कि कोई हैनरी सप्तम हुए। क्या करना है मुझे, हुए तो हुए! न होते तो भी कोई हर्जा नहीं था। न उनको मुझसे कुछ लेना- देना, न मुझे उनसे कुछ लेना देना। न कभी मिलने का सवाल आने वाला है। वे कब के हो चुके। बीति ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेह। तो मैं उनके तख्ते पर लिख देता था--बीति ताहि बिसार दे! वे एकदम आकर नाराज हो जाते कि तुमने फिर लिखा तख्ते पर वही! मैं उनसे कहता कि इसमें क्या सार है?
और बाहर अमराई में, मेरे स्कूल के थोड़े ही दूर पर आमों के घने वृक्ष, वहां कोयल की कुहू-कुहू उठती। वे मुझसे कहते कि तुम देखो, तुम्हारा चित्त एकाग्र करो। मैं कहता, एकाग्र है मेरा चित्त, मगर कोयल की कुहू-कुहू पर, आपकी बकवास पर नहीं।
वे कहते, निकल जा बाहर, कमरे के बाहर!
मैंने कहा, यही मेरी इच्छा है।
तो मैं बाहर ही खड़े होकर... इतिहास मैंने बाहर ही खड़े हो कर पढ़ा, इसलिए इतिहास में मेरी बड़ी गड़बड़ है। मैं इतिहास के संबंध मैं कुछ कहूं, मानना मत। वह बाहर ही खड़े खड़े पढ़ा है। वे मुझे बाहर ही खड़ा रखते। और मेरे प्रिंसीपल थे, वे चक्कर लगाने आते, वे जब देखो तब मैं बाहर ही खड़ा। वे मुझसे कहते, मामला क्या है? तुम जब देखो तब बाहर खड़े... ।
मैंने कहाः मैं इतिहास बाहर ही खड़े होकर पढ़ता हूं।
कहाः मैं मतलब नहीं समझा।
मैंने कहाः मेरा चित्त एकाग्र है, वे मुझे भीतर बैठने देते नहीं।
उन्होंने पूछाः यह तो हद उलटी बात हो गई! तुम्हारा चित्त एकाग्र है? मैंने कहाः मेरा बिल्कुल चित्त एकाग्र है। वे मुझे भीतर नहीं आने देते। आप उनसे पूछिए।
उन्होंने जाकर पूछा कि छोटेलाल जी, इस विद्यार्थी का चित्त एकाग्र है, आप इसको बाहर क्यों खड़ा करते हैं? वे कहने लगे, इसका चित्त एकाग्र है कोयल की कुहू कुहू में। और मैं चाहता हूं इतिहास में हो।
लौट कर वे मुझसे बोले कि तुमने यह पूरी बात मुझे क्यों नहीं बताई? मैंने कहाः पूरी बात बताने का सवाल नहीं। मुझे कोई रस ही नहीं है इस इतिहास में। चंगीज खां हुए, तैमूरलंग हुए, हो गए! अब यह तैमूर, इससे क्या लेना-देना है?

और अभी कोयल जो गा रही है गीत, अभी, उसको न सुनूं और यह लंगड़े तैमूर की कथा ये जो छोटेलाल जी गा रहे हैं, इसको सुनूं? मुझे रस नहीं है।
मैंने अपने जीवन में कभी अनुभव ही नहीं किया कि चित्त की एकाग्रता कोई प्रश्न है। मैंने हमेशा अपने चित्त को एकाग्र पाया। मगर चित्त जहां एकाग्र होता है वहीं होता है। तुम खींचतान करो, लड़ाई-झगड़ा करो, कुछ सार नहीं है। उससे सिर्फ विषाद आएगा।
चित्त से पार चलो। और चित्त से पार चलने के लिए साक्षी उपाय है, एकाग्रता नहीं। ऐसे अगर उलझे रहे तो यह रात कभी कटेगी नहीं।
रात अभी बाकी है
दिल को करार आया नहीं
छेड़ दे साजन वो नगमा तूने जो गाया नहीं
नस-नस में बस गए हो, आंखों में हो समाए
तुम ही कहो कि जालिम क्यों अब हो आए
चारों तरफ खुशी के सामान झूमते हैं
रात अभी बाकी है
दिल को करार आया नहीं
छेड़ दे जालिम वो नगमा तूने जो गाया नहीं शबनमी आंखों में दिल है
डर है तेरी आगोश में जिंदगी एक गीत बन के,
एक गीत बन के आ गई आगोश में
जो मुझे कहनी है तुमसे वो रात अभी बाकी है
रात अभी बाकी है
दिल को करार आया नहीं
छेड़ दे जालिम वो नगमा तूने जो गाया नहीं
जब तक ईश्वर का नगमा तुम सुनो न, तब तक रात भी बाकी रहेगी, बात भी बाकी रहेगी। और यह नगमा अभी छेड़ा जा सकता है। साक्षी उस संगीत को तुम्हारे भीतर जगा देता है।

आज इतना ही।

ज्यूं मछली बिन नीर
नौवां प्रवचन

संन्यासः ध्यान की कसम

पहला प्रश्नः भगवान,
मैं वर्षों से संन्यास लेने के लिए सोच-विचार कर रहा हूं, लेकिन कोई न कोई बाधा आ जाती है और मैं रुक जाता हूं। क्या करूं क्या न करूं, आप ही कहें। और यह भी बताएं कि परमात्मा क्या है, कौन है?

रामाकृष्ण चतुर्वेदी!
सोच-विचार से संन्यास का कोई संबंध नहीं। सोच-विचार की संन्यास में कोई गति भी नहीं। सोच-विचार सेतु नहीं है, बाधा है। जितना सोचोगे उतना उलझोगे। सोच-विचार से मार्ग नहीं मिलता। मिल भी रहा हो तो छिटक जाता है। नदी के तट पर बैठ कर कितना ही सोचो कि नदी की गहराई क्या है, कैसे जानोगे? डुबकी मारनी होगी। और डुबकी मारने के लिए सोच-विचार सहयोगी नहीं है, साहस चाहिए। सोच-विचार जगत के लिए ठीक, बाहर के लिए ठीक, भीतर के लिए अवरोध है। भीतर तो निर्विचार से गति होती है। और संन्यास भीतर की यात्रा है, अंतर्यात्रा है।
हां, विज्ञान सोच-विचार से चलता है। वहां तर्क चाहिए, संदेह चाहिए-- प्रखर संदेह, तलवार की धार जैसा संदेह! और तर्क में जरा सी भूल-चूक नहीं होनी चाहिए। वहां गणित चाहिए। वह वस्तुओं का जगत है। वहां बुद्धि पर्याप्त है। लेकिन अंतर्यात्रा तो प्रेम का जगत है। वह तो परमात्मा का लोक है। वहां बुद्धि बिल्कुल अपर्याप्त है। बुद्धि वहां असंगत है, अप्रसांगिक है। जैसे कोई कान से देखना चाहे तो कैसे देख पाएगा, आंख से सुनना चाहे तो कैसे सुन पाएगा? आंख देखने में समर्थ है, कान सुनने में समर्थ हैं। जिसकी जो क्षमता है उसका वही उपयोग करो।
विचार की क्षमता है--वस्तु को पहचानना, परखना। और निर्विचार की क्षमता है--स्वयं में जागना, स्व बोध, समाधि। संन्यास पहला कदम है समाधि के लिए। और तुम कहते हो रामकृष्ण कि मैं वर्षों से संन्यास लेने के लिए सोच-विचार कर रहा हूं। शायद तुम जन्मों से कर रहे होओगे, भूल गए हो पिछले जन्मों की बात वर्षों से कर रहे हो यह जो तुम्हें पता है। हाथ क्या लगा? वहीं के वहीं खड़े हो। जहां थे वहीं हो। शायद और उलझ गए होओगे। उमंग और धूमिल हो गई होगी। और तुम कहते हो, "कोई न कोई बाधा आ जाती है।" और क्या बाधा आएगी? सोच-विचार तो बड़ी से बड़ी बाधा है। यह तो हिमालय जैसी बाधा है। और सब बाधाएं तो छोटी-छोटी हैं, उनका कोई मूल्य नहीं है। क्या बाधा हो सकती है? और जहां प्रेम है वहां सारी बाधाएं कट जाती हैं। लेकिन तथाकथित प्रेमी भी बस प्रेम की बातें करते हैं, प्रेम नहीं करते।
मैंने सुना है, एक प्रेमी अपनी प्रेयसी से कह रहा था... और जब प्रेमी प्रेयसियों से बातें करते हैं तो काव्य उमड़ आता है, गदगद हो उठते हैं... कह रहा था, तूने यह फूल जो जुल्फों में सजा रखा है--एक दीया है जो अंधेरों में जला रखा है! बड़ी प्रशंसा कर रहा था और कह रहा था कि तुझसे बिना मिले मैं जी न सकूंगा पल भर। तू मिली तो जीवन सार्थक है। तू न मिली तो जीवन व्यर्थ है। तू न मिली तो आत्मघात के सिवाय कुछ और नहीं। सात समुंदर भी लांघना पड़े तो लांघूंगा। चांद-तारों पर भी तुझे खोजना हो तो खोजूंगा। अग्नि भी बरसती हो तो भी तुझे तलाशूंगा।"और जब आदमी बातों में आ जाता है तो हर बात और बड़ी बात पर ले जाता है। बात में से बात निकल आती है। फिर भूल ही जाता है कि क्या कह रहा है। और जब विदा होने लगा तो उसकी प्रेयसी ने पूछा कि कल मिलने आओगे न? उसने कहाः अगर वर्षा न हुई तो जरूर, क्योंकि छाता सुधरने गया है।
सात समुंदर लांघने को तैयार था! आग बरसती हो तो आने को तैयार था! उसके बिना एक पल जी न सकेगा। और "तूने यह फूल जो जुल्फों में सजा रखा है--एक दीया है जो अंधेरों में जला रखा है!" यह भूल गई कविता, सब चौपट हो गया। "छाता, जो सुधरने गया है... ! कल अगर वर्षा न हुई तो जरूर आऊंगा!"

कल बाधाएं आती होंगी? और मौत आएगी रामकृष्ण, तो तुमसे पूछेगी कि "कुछ बाधा है? तो रुकूं थोड़ा? कल आ जाऊंगी, परसों आ जाऊंगी। सुलझा लो अपनी बाधाएं, निपटा लो अपनी समस्याएं।" मौत आएगी तो एक क्षण का भी तो समय न देगी। दुकान चलती हो कि न चलती हो; बेटी का विवाह हुआ हो कि न हुआ हो; पत्नी बीमार हो, मरणशैया पर पड़ी हो; कुछ भी हो, कैसी भी हालत हो--मौत आएगी तो न पूछती है, न समय देती है, न पूर्वसूचना देती है। फिर क्या करोगे? मरोगे कि नहीं? मरना ही होगा। सब बाधाएं यहीं पड़ी रह जाएंगी। सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब बांध चलेगा बंजारा।

संन्यास को तो यू स्वीकार करना चाहिए जैसे कोई मृत्यु को स्वीकार करता है। संन्यास है भी एक प्रकार की मृत्यु--मृत्यु से भी बड़ी मृत्यु, क्योंकि मृत्यु में तो केवल देह बदलती है और संन्यास में जीवन बदलता है, प्राण बदलते हैं, चैतन्य बदलता है। वह ज्यादा गहरी बात है। इसको तुम सोच-विचार में गंवा रहे हो। फिर पीछे बहुत पछताओगे।
बिछड़ गया न वो आखिर अधूरी बात लिए
मैं उससे कहता रहा रोज-रोज बात न टाल
वर्षों से टाल रहे हो। किसी दिन मौत आ जाएगी, फिर क्या करोगे? फिर यह
भी तो न कह सकोगे कि जरा ठहर जा, संन्यास ले लूं; जरा ठहर जा कि गैरिक हो लूं। हम मुर्दों को गैरिक वस्त्रों में लपेटते हैं। जिंदगी भर सोचते रहे; लाश को नहला देते हैं धुला देते हैं। जिंदगी भर गंदगी रही; मुर्दे को साफ कर लेते हैं, ताजे कपड़े पहना देते हैं। अरथी को लाल कपड़े में बांध देते हैं, फूलों से लाद देते हैं। मगर अब क्या सार? अब क्या प्रयोजन? काश यहीं जिंदगी में कर लिया होता--यही सफाई! काश जिंदगी में ही समझ लिया होता कि मौत आनी है, इसलिए मौत के पहले तैयारी कर लूं, उसे पहचान लूं जो नहीं मरता है--मौत के आने के पहले। वही तैयारी है। उसे जान लूं, जो अमृत है। वह जो उपनिषद का ऋषि गाता है--असतो मा सदगमय! ले चल मुझे प्रभु, असत्य से सत्य की ओर। तमसो मा ज्योतिर्गमय! ले चल मुझे प्रभु, अंधकार से आलोक की ओर। मृत्योर्मा अमृतंगमय! ले चल प्रभु मुझे, मृत्यु से अमृत की ओर! ... मगर प्रार्थनाओं से यह बात पूरी न होगी। तुम्हें कुछ करना होगा।
यह जीवन अवसर है कि तुम अमृत को तलाश लो। नहीं तलाशो तो मौत हाथ लगती है। जिसने तलाश लिया, अमृत हाथ लगता है। और एक बूंद भी अमृत की मिल गई तो फिर दुबारा न कोई आना है न कोई जाना है, न कोई जन्म है न कोई मृत्यु है। फिर तुम शाश्वत के अंग हो।
संन्यास तो खोज है--अंतर-खोज!
लेकिन तुम कहते हो, बाधाएं आ जाती हैं।" बाधाएं तो आती रहेंगी। क्या तुम सोचते हो ऐसा कोई दिन होगा जिस दिन बाधा न होगी? बाधाएं तो आती ही रहेंगी। संसार समस्याओं का नाम है; एक सुलझी नहीं, दस खड़ी हो जाती हैं। एक के सुलझने में ही दस खड़ी हो जाती हैं। इसलिए इस आशा में न बैठो कि एक दिन जब कोई समस्या न होगी, कोई बाधा न होगी, तब लूंगा संन्यास। फिर संन्यास कभी नहीं घटेगा।
मेघा बरसे आधी रात
भीगा मन है, सोंधी बात
फिर फिर सोऊं जागूं, हार
कैसी बदली आधी रात
सपने में सागर भरपूर
नौका मेरी तट से दूर
पल पल डूबूं, उछलूं बार
बहकी पगली आधी रात
जीवन का कैसा है खेल
बिछुड़े हैं हम, फिर भी मेल रोती कोई यह जलधार
चुप है रजनी, आधी रात
प्राणों में सोया संगीत

गाता कोई मन के गीत
मुझे पहुंचना सीमा पार
रोक रही है यह बरसात
बरसात रोकेगी, जिसे सीमा पार जाना है? कुछ भी नहीं रोकता है। तुम रुकना चाहते हो, इसलिए रुकावटें बहाना मिल जाती हैं। बहाने हैं, और कुछ भी नहीं तुम सोचते हो बुद्ध को रुकावटें न थीं? महावीर को रुकावटें न थीं, कि जीसस को रुकावटें न थीं? सबको रुकावटें थीं। जिसने भी जाना है उसने रुकावटों को सीढ़ियां बना लिया है। रास्ते के पत्थरों को बाधा नहीं माना, उनको सीढ़ी बना लिया, उन पर चढ़ गया है। और उन पर चढ़ कर उसने और भी दूर का आकाश देख लिया है।
ऐसे मत टालो और तुम मुझसे पूछते हो, "मैं रुक जाता हूं बाधाओं के कारण। क्या करूं क्या न करूं, आप ही कहें।" मेरे कहने से क्या होगा? तुम फिर सोचोगे। मेरे कहने को तुम मानोगे? मान सके होते तो वर्षों टालते? मैं तो रोज ही वही कह रहा हूं। प्रतिदिन सतत एक ही तो तुमसे बात कह रहा हूं कि जागो। मगर तुम कहते हो, "अभी सुंदर सपना चल रहा है, अभी कैसे जागूं? थोड़ी देर ठहर जाएं। यह सपना तो पूरा हो ले।" तुम कहते हो, "अभी नहीं। अभी तो बड़ी प्यारी नींद लगी है। अभी तो बड़ा मधुर संगीत बज रहा है निद्रा का, तंद्रा का। अभी मत उठाएं।" तुम और एक करवट ले लेते हो, कंबल ओढ़ लेते हो और सो जाते हो।
और तुम पछताओगे, बहुत पछताओगे, क्योंकि जितना समय हाथ से गया, गया; वह लौटाया नहीं जा सकता। अब और देर न करो, इतना ही कह सकता हूं। यूं ही बहुत देर कर दी है, अब और देर न करो। अगर संन्यास की अभीप्सा जगती है तो इस बीज को बीज ही न रहने दो, इसे अंकुरित होने दो, इसे यथार्थ बनने दो।
और पूछते हो तुम, "और यह भी बताएं कि परमात्मा क्या है, कौन है?" संन्यास तक की तुम्हारी हिम्मत नहीं, परमात्मा को कैसे जानोगे? लेकिन लोग सदियों से ऐसा सोचते रहे हैं कि परमात्मा को तो हम जान सकते हैं बिना कुछ किए; कोई जानने वाला बता दे कि परमात्मा ऐसा है और हम मान लेंगे। हम विश्वास से जी रहे हैं। विश्वास जहर है। इसी जहर ने सारी मनुष्यता को विषाक्त किया है।
मैं चाहता हूं कि तुम विश्वास से मत जीना। विश्वास से जीने वाला आदमी झूठ जी रहा है, प्रवंचना में जी रहा है। जानो, इसके सिवाय कोई मार्ग नहीं है। पहचानो, इसके सिवाय कोई मार्ग नहीं है। अनुभव करो। अनुभव के अतिरिक्त और न कोई मुक्ति है, न कोई निर्वाण है, न कोई परमात्मा है, न कोई सत्य है। मानो मत। मानकर ही रुके हो, क्योंकि मानना बिल्कुल सस्ता है। जानने में श्रम करना होता है। जानने में अपने प्राणों को बदलना होता है, तंद्रा को तोड़ना होता है। मूर्च्छा उखाड़नी पड़ती है--जड़ से, जड़मूल से। आमूल रूपांतरण से गुजरना होता है। अग्नि-परीक्षा है। कचरा सब जल जाता है। तभी तुम्हारे भीतर जो बचता है खालिस सोना, वही परमात्मा है।
मेरे कहने से क्या होगा? मेरे कहने से नुकसान होगा। मैं कह भी दूं कि परमात्मा ऐसा है, तो क्या होगा? यही होगा कि तुम वैसा परमात्मा को मान कर बैठ जाओगे। तुम्हें पूजा के लिए एक मूर्ति मिल गई। तुम्हें एक आराध्य की धारणा मिल गई। तुम्हें एक विश्वास मिल गया, जो तुमने कमाया नहीं। परमात्मा कमाना पड़ता है। तुम्हें यूं मिल गया मुफ्त। और मुफ्त परमात्मा नहीं मिलता है; जीवन से मूल्य चुकाना होता है।
मैं कुछ भी न कहूंगा। इतना ही कहूंगा कि जलो ध्यान में, गलो ध्यान में। जिस दिन तुम्हारा सब कूड़ा करकट जल कर राख हो जाएगा, उस दिन तुम्हारे भीतर फिर भी जो बच रहेगा, सारी अग्नि को पार करने के बाद भी जो बच रहेगा, वही है परमात्मा। उसको जानोगे, उसको अनुभव करोगे तो रहस्य के द्वार खुल जाएंगे। इसके सिवाय कोई सस्ता मार्ग नहीं है।
लेकिन लोग हमेशा सस्ती चीजों के पीछे ही दौड़ते हैं, चाहे वे कागजी ही क्यों न हों। और अगर मुफ्त मिलती हो तो फिर कहना ही क्या!
कल चौदहवीं की रात थी
शब भर रहा चर्चा तेरा

कुछ ने कहा ये चांद है
कुछ ने कहा ये चेहरा तेरा कल चौदहवीं की रात थी
हम भी वहीं मौजूद थे
हम से भी सब पूछा किए
हम हंस दिए
हम चुप रहे
मंजूर था पर्दा तेरा
कल चौदहवीं की रात थी
इस शहर में किससे मिलें
हम से तो छूटी महफिलें
हर शक्स तेरा नाम ले
हर शक्स दीवाना तेरा
कल चौदहवीं की रात थी
कूचे को तेरे छोड़कर
जोगी ही बन जाएं मगर
जंगल तेरे
पर्वत तेरे
बस्ती तेरी
सहरा तेरा
कुछ ने कहा ये चांद है
कुछ ने कहा ये चेहरा तेरा कल चौदहवीं की रात थी
हम भी वहीं मौजूद थे
हम से भी सब पूछा किए
हम हंस दिए
हम चुप रहे
मंजूर था पर्दा तेरा
कल चौदहवीं की रात थी
परमात्मा को कोई दूसरा तुम्हारे लिए नहीं उघाड़ सकता है। बुद्ध को मंजूर था पर्दा, नहीं कभी कहा कि परमात्मा क्या है, बात ही नहीं उठाई परमात्मा की। पूछा लोगों ने तो टाल गए। और बुद्ध की बड़ी अनुकंपा है कि टाल गए। जिन्होंने बताया उन्होंने नुकसान कर दिया। उन्होंने बताया, लोगों ने मान लिया। लोग तो मानने को तैयार बैठे हैं। मानने में न तो कुछ खर्च होता, न जीवन ऊर्जा लगती, न कुछ समर्पण करना है, न कोई साधना, न कहीं जाना, उठना न बैठना। जैसे हो वैसे ही रहते हो, उसी में और एक सूचना जुड़ जाती है। और थोड़ा श्रृंगार हो गया। और थोड़ी संपदा हो गई। और थोड़े ज्ञानी बन बैठे। मगर उधार ज्ञान से कोई ज्ञानी बनता है?
मुझे भी पर्दे में रस है। मैं भी पर्दा उठाना नहीं चाहता। कहूंगा, तुम्हीं उठाओ। तुम्हीं उठाओ पर्दा और देखो। हां, पर्दा उठाने की विधि तुम्हें देता हूं। संन्यास वही है।
संन्यास सिर्फ ध्यान की कसम है। संन्यास इस बात की घोषणा है कि अब ध्यान ही मेरा जीवन होगा। और सब करूंगा, लेकिन वह अभिनय होगा, यथार्थ तो अब ध्यान होगा। अब सब कुछ मेरा समर्पित होगा ध्यान के लिए। अब भीतर का धन खोजूंगा। ठीक है बाहर के धन की भी जरूरत है, उसे पूरी करता रहूंगा; लेकिन वह अभीप्सा नहीं होगी, तृष्णा नहीं होगी, दौड़ नहीं होगी। काम चल जाए, ठीक। रोटी रोजी मिल जाए, ठीक। तन ढक जाए, ठीक। छप्पर हो जाए, ठीक। दौडूंगा नहीं, पागल नहीं होऊंगा। अब सारी जीवन-ऊर्जा भीतर की तरफ प्रवाहित होगी। संन्यास इस बात की घोषणा है--अपने समक्ष और संसार के समक्ष।
और तुम्हारा अहंकार ही तो पर्दा है; उसे तुमने उठाया कि परमात्मा मिला। लेकिन अहंकार उठाने में प्राण कंपते हैं।
संन्यास में बाधा क्या है? तुम कहते हो बाधा। बस एक बाधा में जानता हूं, वह अहंकार है। अहंकार झुकने नहीं देता और संन्यास झुकना है। अहंकार

शिष्य नहीं बनने देता और संन्यास शिष्यत्व है। अहंकार सीखने नहीं देता, क्योंकि सीखने का मतलब है अपने अज्ञान की स्वीकृति। अहंकार दावेदार है ज्ञान का।
लेकिन धन्यभागी वे थोड़े से लोग हैं जो अपने अज्ञान को स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि वह ही किसी दिन ज्ञान के आनंद से आपूरित होंगे। वे ही किसी दिन ज्ञान से गीले होंगे। बाकी तथाकथित उधार ज्ञान को संजो लेने वाले लोग सिर्फ धोखा खाएंगे, धोखा देंगे। उनका जीवन सिर्फ व्यथा की एक कथा होगी।
संन्यास आनंद की तरफ पहला कदम है। उठ आने की भावना उठी है तो चूको मत।
एक पुरानी कहावत हैः बुरा करना हो तो ठहरो, जल्दी न करो और अच्छा करना
हो तो जल्दी करो, ठहरो मत। प्रीतिकर है, महत्वपूर्ण है--अरबी कहावत है। क्योंकि जिस चीज के लिए भी ठहर जाओगे वह चीज ठहर ही गई, फिर होगी नहीं। बुरे के लिए अगर थोड़ी देर रुक गए तो फिर तुमसे बुरा नहीं होगा। और भले के लिए भी थोड़ी देर रुक गए तो फिर भला नहीं होगा। थोड़ी देर रुके नहीं कि मन हजार बहाने खोज लगेगा। रुके नहीं कि मन तुम्हारा जल्दी से गर्दन पकड़ लेगा। वह कहेगा, अब इतनी देर रुके, थोड़ी देर, और थोड़ी देर। फिर रुकना ही आदत बन जाती है।
तो बुरे के लिए रुको। लेकिन बुरे के लिए कोई रुकता नहीं, यह बड़ी अजीब दुनिया है। आदमी क्या है, एक अचंभा है! कबीर कहते हैंः "एक अचंभा मैंने देखा!" एक क्या, यहां अनेक अचंभे मौजूद हैं। चार अरब अचंभे मौजूद हैं, क्या एक देखा! जिस आदमी को देखो वही एक अचंभा है। अचंभा यही है कि बुरे के लिए तुम रुकते नहीं। अगर कोई तुम्हें गाली दे, तुम उससे यह नहीं कहते कि भैया, चौबीस घंटे बाद गाली दूंगा; कल आऊंगा, आज तो दूसरे काम हैं, अभी तो बहुत बाधाएं हैं, अभी क्या गाली दूं! आज तो क्षमा करो, जब सुविधा होगी तब आऊंगा। गाली ही तो देनी है न, सुविधा में आकर दे जाऊंगा, फुर्सत से। अभी तो पत्नी के लिए दवा लेने जा रहा हूं या बेटों को स्कूल में भरती कराने जा रहा हूं। आज तो क्षमा करो।
ऐसा कभी तुमने कहा है, जब किसी ने गाली दी हो? नहीं, फिर जाए भाड़ में उसकी पत्नी और दवा, बाल बच्चे सब भूल जाते हैं। फिर इस संसार में क्या रखा है! फिर तो तुम वहीं ताल ठोंक कर निपटने को खड़े हो जाते हो। कल पर नहीं टालते, फिर तो अभी और यहीं! और अगर अच्छा कुछ करने का भाव उठता है तो तुम कल पर टालते हो। और जिस तुमने कल पर टाला वह सदा के लिए टल जाता है, क्योंकि कल कभी आता ही नहीं है।

दूसरा प्रश्नः महोदय,
आप यौन-स्वतंत्रता के समर्थक हैं, परंतु अमेरिका जैसे पश्चिमी देशों में यौन स्वतंत्रता होते हुए भी वहां यौन-विकार पाए जाते हैं। यौन-अपराध वहां भी होते हैं। अतः आपका यौन-स्वतंत्रता का सिद्धांत गलत सिद्ध होता है।

विन्धयवासिनी पांडेय!
महोदय, किसने आपसे कहा कि मैं यौन-स्वतंत्रता का समर्थक हूं? मैं कहता हूं "प्रेम की स्वतंत्रता" और भारतीय मन समझता है "यौन की स्वतंत्रता"। यह भारतीय मन का रोग है। तुम्हारा दमित चित्त प्रेम का अर्थ तत्क्षण यौन करता है। तुम्हारे लिए प्रेम की कोई और अवधारणा नहीं रही। तुम्हारे लिए प्रेम हमेशा कामवासना बन जाता है। यह तुम्हारे रुग्न चित्त का सबूत है।
मैंने कभी यौन स्वतंत्रता की बात नहीं कही। लेकिन सारे भारतीय अखबार मेरे ऊपर यौन-स्वतंत्रता का सिद्धांत थोपते हैं। वे अपना प्रक्षेप मेरे ऊपर करते हैं। मैं कहता हूंः प्रेम की स्वतंत्रता चाहिए। मैं कहता हूंः वह विवाह अनैतिक है जो प्रेम के आधार पर नहीं हुआ है। उस स्त्री से बच्चे पैदा करना अनाचार है, उस पुरुष से संबंध रखना अनाचार है, जिससे प्रेम नहीं। लेकिन हमारे सारे विवाह प्रेमशून्य हैं। कोई पोंगा पंडित, कोई

ज्योतिषी जन्म-कुंडलियां मिला देता है। तारों में कसूर मत खोजो। तारों पर उत्तरदायित्व मत छोड़ो। बेचारे निरीह तारे कुछ बोल भी नहीं सकते। ग्रह-नक्षत्र कहें भी तो क्या कहें? तुम्हारा जो दिल हो वैसा बना लो। और परिणाम देखते हो? तुम्हारी जन्म-कुंडलियां मिला-मिला कर भी क्या परिणाम हुआ है विवाह का? इससे ज्यादा सड़ी कोई संस्था नहीं है। लोग सड़ रहे हैं मगर अपने मुखौटे लगाए हुए हैं, छिपाए हुए हैं अपने को।
जहां प्रेम नहीं है वहां नरक है और जहां प्रेम है वहां स्वर्ग है।
मैं प्रेम की स्वतंत्रता का पक्षपाती हूं। लेकिन जब भी भारतीय सुनता है, वह तत्क्षण समझ लेता है कि यौन की स्वतंत्रता है। क्योंकि उसके लिए प्रेम का कोई अर्थ और है ही नहीं। उसके भीतर तो यौन उबल रहा है। उसके भीतर तो वासना ही वासना भरी हुई है।
तुम वही सुनते हो जो सुन सकते हो। विन्ध्यवासिनी पांडेय, यह तुम अपने संबंध में कुछ कह रहे हो, यह मेरा सिद्धांत नहीं है। यह सिद्धांत तुमने ही गढ़ लिया।
मैंने सुना, एक जगतगुरु शंकराचार्य अपने दो शिष्यों के साथ दिल्ली से फिरोजपुर जा रहे थे। एक शिष्य गया टिकट खरीदने, लेकिन टिकट बेचने वाली खिड़की पर एक अति सुंदर युवती बैठी थी। ब्रह्मचारी शिष्य के चित्त की जो गति हुई वह तुम समझ सकते हो। लार टपकने लगी, घिग्घी बंध गई। इधर-उधर आंखें करे। मगर लाख इधर-उधर आंखें करो, आंखें वहीं जाएंगी जहां भीतर वासना धक्के मार रही है। बचना चाहता है। मगर जिससे तुम बचना चाहते हो उसी पर अटक जाते हो। भला-चंगा आदमी, लेकिन गड़बड़ा गया। गया था फिरोजपुर का टिकट लेने, लेकिन स्त्री के सुंदर उरोज देख कर बोलाः उरोजपुर के टिकट के कितने दाम? जब मुंह से यह "उरोजपुर" निकल गया तो पसीना-पसीना हो गया। लौट कर आ गया, जवाब के लिए भी नहीं रुका। अपने गुरु को आकर कहा कि मुझसे बड़ी भूल हो गई, मुझे क्षमा करें। मैं नहीं जा सकता टिकट लेने। दूसरे शिष्य को भेज दें। वह उम्र में भी बड़ा है। मैं नया-नया भी हूं। मुझसे एक बड़ी भूल हो गई, मैंने फिरोजपुर की जगह उरोजपुर कह दिया।
दूसरे शिष्य ने कहाः तू रुक, मैं जाता हूं। दूसरा शिष्य वहां गया। मगर जैसे ही उसने सुंदर युवती को देखा... और पंजाबी महिला, चुस्त कपड़े। पंजाब में जा कर यह अचंभा समझ में आता है कि ये स्त्रियां इन कपड़ों में घुसती कैसे हैं। यह सवाल उठता है, निश्चित उठता है। ये जो इतने चुस्त कपड़े हैं, इनमें प्रवेश कैसे कर जाती हैं? कैसे निकलती होंगी, कैसे जाती होंगी? उसके चुस्त कपड़े! बस इसके भी प्राण मुश्किल में पड़ गए, जपने लगा राम-राम, जय बजरंग बली! याद किए बड़े-बड़े सिद्धांत कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है। मगर जब सब गड़बड़ पड़ गया तो मन में तो जो वासना उठ रही थी वह एक ही थी कि जब यह कपड़े के ऊपर से इतनी सुंदर लग रही है तो भीतर कितनी सुंदर न होगी! मगर इसको वह टाल रहा था। जाकर पूछा कि देवी जी... पूछना तो था गाड़ी कितने देर में आएगी, पूछा उघाड़ी कितने देर में आएगी। "उघाड़ी!" जबान यूं फिसल गई।
सिग्मंड फ्रायड ने बहुत खोज-बीन की है कि जबान कैसे फिसलती है और क्यों फिसलती है। उसके फिसलने के पीछे कारण भीतर होते हैं। वह भी घबड़ा कर लौट आया, पसीना पसीना चू रहा है। उसने गुरुदेव से कहा कि नहीं, यह मेरे वश के बाहर है। वह स्त्री बिल्कुल नरक का द्वार है! उसको देखते से ही आदमी नरक में पड़ जाए। बड़ी खतरनाक स्त्री है।
जगतगुरु ने कहाः तुम रुको, मैं उसे ठीक करता हूं। जैसे-जैसे पास पहुंचे, ये दो शिष्यों का जो अनुभव हुआ था इससे मन में एक जिज्ञासा भी जगी थी कि मामला क्या है! जरूर कोई स्त्री बिल्कुल अप्सरा होनी चाहिए, कोई मेनका, कोई उर्वशी, कि मेरे शिष्य, लंगोट के पक्के, इनको क्या हो गया! एकदम मात खाकर लौट कर आ गए। तो बिल्कुल अकड़ कर गए, बड़ी खटाऊं फटकाते गए, क्योंकि कहा जाता है कि खड़ाऊ जितनी फटकाओ उतना ब्रह्मचर्य सधता है। वह जो खड़ाऊं में जो अंगूठा दबा रहता है, वह ब्रह्मचर्य को साधता है--ऐसा हिंदु धर्म की वैज्ञानिकता को खोजने वालों का कहना है कि पैर का अंगूठा जो पकड़ता है खूंटी को खड़ाऊं की, बस उसको पकड़े रहे खड़ाऊं को कि ब्रह्मचर्य सधा रहता है। खूंटी छूटी कि सब गड़बड़ हुआ। सो जोर से खड़ाऊं बजाते हुए, खूंटी को बिल्कुल

सम्हाले हुए... ! मगर जितना सम्हालो उतनी गड़बड़ हो जाती है। और क्रुद्ध भी थे कि मेरे दो शिष्यों को डांवाडोल कर दिया। तो जाकर ही टूट पड़े उस स्त्री पर, कि तू नरक में सड़ेगी! और शैतान तेरे स्तनों को इस तरह मलेगा... उसके स्तन मल कर बता दिए। तब होश आया कि यह मैं क्या कर रहा हूं। मगर वहां भीड़ लग गई कि जगतगुरु आप यह क्या कर रहे हैं! जब कर ही चूके तब पता चला।
विन्ध्यवासिनी पांडेय, यौन स्वतंत्रता का मैं समर्थक हूं, यह तुमसे कहा किसने? यह तुम को उघाड़ी आ रही है। तुम फिरोजपुर की तरफ न जा कर उरोजपुर चले। तुम शैतान का काम खुद ही करने लगे।
मैं जरूर प्रेम की स्वतंत्रता का पक्षपाती हूं, क्योंकि जिस व्यक्ति
के जीवन में प्रेम भी स्वतंत्र नहीं है उसके जीवन में क्या खाक और कोई स्वतंत्रता होगी! प्रेम तो जीवन का फूल है--इस जीवन की सर्वाधिक बहुमूल्य संपदा है। वह तो स्वतंत्र होना ही चाहिए। उसकी स्वतंत्रता से ही तो किसी दिन प्रार्थना का जन्म होगा। और प्रार्थना से किसी दिन परमात्मा का अनुभव होगा। प्रेम ही अवरुद्ध हो गया तो प्रार्थना अवरुद्ध हो गई। गंगोत्री पर ही मार डालो गंगा को... आसान है वहां मारना, क्योंकि गंगोत्री छोटी-छोटी बूंद बूंद टपकता है पानी वहां। गौमुख से निकलती है। अब गौमुख से कोई बहुत ज्यादा बड़ी धारा तो निकल नहीं सकती। गौमुख को रोका जा सकता है, बड़ी आसानी से रोका जा सकता है, काशी में आ कर गंगा को रोकना मुश्किल हो जाएगा। और गंगा सागर में जब पहुंचती है उसके पहले तो रोकना बिल्कुल असंभव हो जाएगा। लेकिन गंगोत्री में रोकना बहुत आसान है।
प्रेम गंगोत्री है--और परमात्मा गंगा सागर। और प्रार्थना यूं समझो कि बीच का तीर्थ--प्रयाग समझो। लेकिन जब मैं प्रेम की स्वतंत्रता की बात करता हूं तो अनिवार्यरूपेण लोग समझते हैं मैं यौन की स्वतंत्रता की बात कर रहा हूं। और कारण यह है कि उनके भीतर दमित वासना "प्रेम" शब्द सुनते ही उभरने लगती है। प्रेम शब्द ही काफी है--शब्द ही काफी है। जैसे अग्नि में घी पड़ जाता है, एकदम धुआं उठने लगता है, वैसा ही विन्ध्यवासिनी पांडेय को धुआं उठ आया।
महोदय, आप यहां कैसे आ गए? यह र्रिदों की महफिल है। यह दीवानों का जगत है। यह परवानों की दुनिया है। यहां पोंगा-पंथियों की कोई जरूरत नहीं है। गलत जगह आ गए। ऐसी जगह नहीं आना चाहिए। ऐसी जगह आ जाओ, बिगाड़ हो जाए।
अब इनको अड़चन हो रही होगी यहां देख कर। सुंदर स्त्रियों को देख कर इनको अड़चन हो रही होगी और जितनी सुंदर स्त्रियां यहां इनको देखने मिल सकती हैं, शायद एक जगह इतनी सुंदर स्त्रियां कहीं भी इनको भारत में देखने नहीं मिलेंगी। भारत में क्या दुनिया में देखने नहीं मिलेंगी एक जगह इकट्ठी। तो इनको बैचेनी हो रही होगी। ये कुलबुला रहे होंगे। इनका कठिनाई आ रही होगी।
मगर यह समझ तुम्हारे संबंध में सूचना देती है। कहते हो, "आप यौन-स्वतंत्रता के समर्थक हैं।" मैं समर्थक नहीं हूं यौन-स्वतंत्रता का। मैं समर्थक हूं--प्रेम की स्वतंत्रता का। और प्रेम जब होता है तो यौन भी पवित्र हो जाता है। और जहां प्रेम नहीं है वहां यौन एकदम पाशविक है। इसलिए इस देश में जो विवाह चल रहे हैं वे बिल्कुल पशु के जैसे हैं। उससे पशु बेहतर। इस देश में चलने वाला विवाह पाशविक है। इसलिए तो हम उसको गठबंधन कहते हैं। पशु का भी मतलब गठबंधन ही होता है। पशु का मतलब--पाश का मतलब-- पाश में बंधा। बांध दो दो व्यक्तियों को और लगा दो गांठों पर गांठें, सात गांठें बांध दो, और सात चक्कर लगवा दो--जिसको सात चक्कर लग गए वह घनचक्कर हो गया! अब जिंदगी भर चक्कर ही लगाए--एक कौल्हू का बैल हो गया। यह पत्नी को सताएगा, पत्नी इसको सताएगी, क्योंकि एक-दूसरे से बदला लेंगे। दोनों का जीवन नष्ट हो रहा है--किससे बदला लें? दोनों को मिल कर पंडित की गर्दन पकड़नी चाहिए--जिसने मंत्र पढ़ा--कि पढ़ उलटा मंत्र और लगवा उलटे फेरे, खुलवा दे! अरे गांठें बांधी हैं, खोल दे! और न खुलती हों तो कैंची से काट डाल, अगर बहुत कस कर लगी हों।
मगर पंडित तो अब दूसरों की गांठें बंधवा रहा होगा, कहीं और फेरे डलवा रहा होगा। और तुम खुद ही उसके पास गए थे, कोई तुम्हारे पास वह आया नहीं था।

तो पति पत्नियों पर टूट रहे हैं, पत्नियां पतियों पर टूट रही हैं। चौबीस घंटे कलह मची हुई है। और कलह का कारण क्या है? कलह का कारण यह है कि दोनों का जीवन प्रेम को उपलब्ध नहीं हो पा रहा। और कैसे उपलब्ध हो? प्रेम कोई जबरदस्ती तो नहीं है। प्रेम कुछ ऐसा तो नहीं है कि करना चाहिए तो तुम कर सकोगे। प्रेम तो यूं आता है जैसे हवा का झोंका। तुम्हारे वश के बाहर है। यह कोई बिजली का पंखा नहीं है कि बटन दबाई और चल पड़ा। यह तो हवा का झोंका है, आता है तो आता है। प्रेम तुम्हारी वश की बात नहीं है।
और जब तक प्रेममय जीवन न हो तब तक तुम जो भी कर रहे हो वह अत्यंत निम्न है। वह सिर्फ यौन है, और कुछ भी नहीं। जिसको हम विवाह कहते हैं, वह केवल स्थाई वेश्यावृति है, और कुछ भी नहीं। कोई एक रात के लिए वेश्या को खरीद लेता है, किसी ने एक पत्नी को जिंदगी भर के लिए खरीद लिया है। यह खरीद-फरोख्त है। इस खरीद फरोख्त की दुनिया में जो जी रहा है, वह क्या खाक प्रेम ही स्वतंत्रता को समझेगा! उसको तत्क्षण यौन की स्वतंत्रता समझ में आएगी, क्योंकि वही उसका जीवन है।
हम वही समझ सकते हैं जो हम समझने से वंचित किए गए हैं--जो हमारे भीतर अधूरा रह गया है।
सेठ चंदूलाल ने एक नया नौकर रखा। बड़ा पंडित था नौकर। मगर जैसे पंडित होते हैं--पोथी-पंडित! शास्त्र उसे कंठस्थ थे। सोच कर कि अच्छा है, पंडित भी है, पूजा-पाठ भी कर देगा... चंदूलाल तो ठहरे मारवाड़ी, सोचा कि एक पत्थर से दो चिड़िएं मारी जाएं तो और अच्छा। भोजन भी पका देगा, रसोइए का काम भी कर देगा, मंदिर की पूजा पाठ भी कर देगा और कभी जरूरत पड़ी तो सत्यनारायण की कथा भी पढ़ देगा। यह अच्छा रहा, सस्ता रहा, कई काम में आ जाएगा।
लेकिन पहले ही दिन एक झंझट हो गई। चंदूलाल अपनी पत्नी के साथ बच्चों समेत किसी रिश्तेदार के घर गए और जब लौट कर आए तब यह मुसीबत हुई। वे करीब तीस-पैंतीस मिनट तक घंटी बजाते रहे, तब कहीं उस पंडित ने दरवाजा खोला। चंदूलाल की आंखें तो गुस्से के मारे लाल हो गईर्ं--क्यों बे बदतमीज, दरवाजा क्यों नहीं खोला? हम लोग आधा घंटा से ऊपर हो गया, घंटी बजा-बजाकर परेशान हुए जा रहे हैं।
उस पंडित ने आंखें नीची करके जवाब दिया, मुझे क्या पता सेठ जी कि आप दरवाजा खुलवाना चाहते हैं? आपने द्वार क्यों नहीं खटखटाया? मालिक, मैंने सोचा कि घंटी आपकी है, आप चाहे जितनी देर बजाएं, आधा घंटे क्या आप पूरे दिन बजाएं, रात बजाएं, अरे घंटी आपकी है, मैं क्या कर सकता हूं?
अब यह पंडित सत्यनारायण की कथा पड़ सकता है, रामायण की चौपाइयों के अर्थ बता सकता है, हनुमान-चालीसा दोहरा सकता है; लेकिन इतनी भी अकल नहीं इसे! अकल का और पांडित्य से कोई संबंध नहीं है। अब ए विन्धयवासिनी पांडेय पंडित ही होंगे--अक्ल से नाममात्र का संबंध नहीं मालूम होता। थोड़ा सोचो महोदय, क्या कह रहे हो? कह रहे हो कि अमरीका जैसे पश्चिमी देशों में यौन स्वतंत्रता होते हुए भी वहां यौन विकार पाए जाते हैं। वे यौन विकार स्वतंत्रता के कारण नहीं पाए जाते, वे यौन विकार पाए जाते हैं--दो हजार साल की ईसाइयत के कारण। ईसाइयत ने जिस बुरी तरह से दमन करवाया है यौन का, इतना किसी धर्म ने नहीं करवाया। कम से कम हिंदुओं ने तो वात्स्यायन का कामसूत्र लिखा आज से तीन हजार साल पहले। विन्ध्यवासिनी पांडेय के कोई पूर्वज रहे होंगे--महर्षि वात्स्यायन। पंडित थे। महर्षि हैं, उन्होंने कामसूत्र लिखा। और पंडित कोक ने कोकशास्त्र लिखा। पंद्रह सौ साल पहले। ईसाइयत के पास ऐसी एक भी किताब नहीं है--कामसूत्र या कोकशास्त्र जैसी। ईसाइयत ने बहुत दमन किया है। इस दुनिया में सबसे ज्यादा दमन करने वाला धर्म ईसाइयत है--खास कर कैथेलिक ईसाई संप्रदाय। और वही प्रभावी संप्रदाय है। उसने इतना दमन किया है कि लोग उबल गए हैं लोग ज्वालामुखी पर बैठे हैं। तुमने कभी सुना कि ईसाइयों के किसी मंदिर में खुजराहो जैसी मूर्तियां हों, उनके किसी चर्च की दीवाल पर मैथुन के चित्र हों कि मैथुन की प्रतिमाएं हों?
विन्ध्यवासिनी पांडेय, यह तुम्हारे पूर्वज कर गए। इसमें मेरा कुछ हाथ नहीं। और जिन तुम्हारे पूर्वजों ने खुजराहो के मंदिर खोदे, पुरी और

कोणार्क के मंदिरों पर नग्न और अश्लील यौन प्रतिमाएं बनाईं, ये किस बात की खबर दे रही हैं? ये इस बात की खबर दे रही हैं कि इस बुरी तरह दबाया गया होगा कि उसके प्रकट होने का एक ही रास्ता बचा था और वह रास्ता था--धर्म की आड़ में प्रकट होना। नहीं तो मंदिरों की दीवालों पर खोदने की कोई जरूरत न थी। मगर और कहीं तो खोद ही नहीं सकते थे, तो तरकीब निकालनी पड़ी--मंदिर। मंदिर में तो कुछ भी करो तो पवित्र हो जाता है। तो मंदिर की दीवालों पर ये सारे नग्न चित्र खुदे हैं। और नग्न भी साधारण नहीं--बेहूदे, अभद्र, अप्राकृतिक भी। एक स्त्री पुरुष की मिथुन-प्रतिमा हो, समझ में आ सकती है। लेकिन एक स्त्री के साथ तीन-तीन चार-चार पुरुष संभोग कर रहे हैं। स्त्री को शीर्षासन में खड़ा करवाया हुआ है और उसके साथ संभोग चल रहा है। पुरुष शीर्षासन में खड़ा है और स्त्री के साथ संभोग कर रहा है। गजब के योगी हो चुके! क्या-क्या योग की साधना! वात्स्यायन और पंतजलि दोनों का तालमेल करवा दिया--क्या संश्लेषण करवाया! यह तुम्हारे पूर्वजों की कृपा है।
ईसाइयत ने तो और भी ज्यादा दमन किया। इतनी भी अभिव्यक्ति का मौका नहीं दिया। यहां तो कम से कम इतनी अभिव्यक्ति हो गई; कहीं छिपे कोनों में, कुछ मंदिरों पर उभर कर आ गई हमारी भीतर की दशा। लेकिन ईसाइयत ने तो गर्दनें काट दी लोगों की, जिंदा जला दिया लोगों को--जिन्होंने जला दिया लोगों को--जिन्होंने इस तरह से करने की कोशिश की। वेटिकन के पुस्तकालय में, पोप के पुस्तकालय में--जमीन के भीतर है, अंतर्गर्भ में पुस्तकालय है-- पिछले दो हजार साल की वे सारी किताबें इकट्ठी हैं जो ईसाइयत ने वर्जित कर दीं। कैथेलिक संप्रदाय का प्रधान पोप हर वर्ष फेहरिश्त निकालता है किताबों की कि कौन-कौन सी किताबें काली लिस्ट पर आ गईर्ं। जो किताब काली लिस्ट पर आ जाती है, उसको फिर किसी ईसाई को पढ़ना पाप है। उस किताब की सारी प्रतियां इन दो हजार सालों में जलाई जाती रहीं; सिर्फ एक प्रति वेटिकन की लायब्रेरी में बचा ली जाती है। तो मैं तो कहूंगा यू. एन. ओ. वेटिकन की लाइब्रेरी पर कब्जा करना चाहिए, क्योंकि उससे दो हजार साल की असलियत प्रकट होगी। क्योंकि दो हजार साल में ईसाइयत ने कौन-कौन सी किताबें जलाईर्ं, उसमें जरूर वात्स्यायन जैसे कामसूत्र होंगे, पंडित कोक के कोकशास्त्र होंगे। वे जला दिए गए, उनको होली कर दी गई। लेकिन उनकी एक एक प्रतियां बचा रखी हैं उन्होंने। लेकिन बेटिकन की उस लायब्रेरी में किसी को प्रवेश का अधिकार नहीं है। उस संपदा को छीनना चाहिए वेटिकन से, ताकि यह जाहिर हो सके कि दो हजार साल में ईसाइयत ने कितना दमन किया है। और जिन लोगों ने कभी भी कोई ऐसी बात कही जो ईसाइयत के विपरीत जाती हो--छोटी छोटी बातें--उनको आग में भूल दिया।
अगर आज पश्चिम में यौन विकार पाए जाते हैं तो उसका कारण दो हजार साल
की ईसाइयत है; उसका कारण यौन-स्वतंत्रता नहीं है। अगर यौन-स्वतंत्रता कारण हो तो आदिवासियों में सर्वाधिक यौन-विकार पाए जाने चाहिए। उनमें बिल्कुल नहीं पाए जाते। जो जंगल में रहने वाले आदिम लोग हैं, जैसे बस्तर के आदिवासी, इनमें कोई यौन-विकार बताए? हां, जहां तक ईसाई मिशनरी पहुंच गए हैं वहां तक यौन विकार भी पहुंच गए हैं। ईसाई मिशनरी पहुंच रहे हैं, हर आदिवासी इलाके में पहुंच रहे हैं, क्योंकि आदिवासियों को ईसाई बना लेना बहुत आसान है। सीधे सादे लोग, उनको रोटी और नमक भी मिल जाए, लालटेन जलाने के लिए घासलेट का तेल मिल जाए--पर्याप्त है। इतने में वे ईसाई होने को राजी हैं। और उनको समझाने में भी कोई कठिनाई नहीं है, सीधे सादे लोग हैं। इनको कोई अड़चन भी नहीं है। भोले-भाले हैं। तो जहां-जहां ईसाई मिशनरी पहुंच गए हैं वहां-वहां यौन विकार भी पहुंच गए हैं। लेकिन जहां ईसाई मिशनरी नहीं पहुंच पाए हैं, विन्ध्यवासिनी पांडेय, वहां जा कर देखो। तुम चकित हो जाओगे, वहां कोई यौन विकार नहीं है। वहां यौन स्वतंत्रता है। यौन स्वतंत्रता इतनी है कि तुम चकित होओगे यह बात जान कर कि बस्तर में अभी भी जहां सभ्यता का प्रभाव नहीं पहुंचा है, छोटी-छोटी बस्तियां हैं आदिवासियों की वहां गांव के मध्य में एक बड़ा छप्पर होता है--छप्पर, क्योंकि गरीब हैं और तो कुछ उनके पास हो नहीं सकता, एक बड़ा छप्पर होता है। छोटा झोंपड़ा नहीं, एक बड़ा झोंपड़ा। और गांव में जब भी कोई लड़की और लड़का चौदह

साल तेरह वर्ष की उम्र पा लेते हैं तो उनको फिर घर में नहीं सोने दिया जाता, उनको उस गांव के मध्य में जो कक्ष है उसमें ही सोने के लिए भेज दिया जाता है, ताकि गांव का हर लड़का और हर लड़की एक-दूसरे से संबंध बना कर अनुभव कर ले और गांव का हर लड़का हर लड़की के संपर्क में आ जाए और हर लड़की हर लड़के के संपर्क में आ जाए, ताकि जब वे चुनाव करें पत्नी के लिए तो उनके पास चुनाव का कोई आधार हो।
तुम चुनाव भी कैसे करोगे? यहां तो लड़की को देखने भी जाते हो तो लड़की आकर पान की तस्तरी घुमा कर चली जाती है। अब तुम पान देखो कि लड़की देखो! जब तो तुमने पान उठाया, लड़की गई। लड़की देखो तो पान से चूके। और लड़की देखो तो अभद्र मालूम होता है। लड़की की तरफ घूर कर देखो तो लुच्चे मालूम होते हो। लुच्चे का मतलब होता हैः घूर कर देखने वाला। "लुच्चा" शब्द को समझ लेना-- लोचन से बना है, आंख से। लुच्चा का वही मतलब होता है जो आलोचक का। आलोचक घूर-घूर कर देखता है किसी चीज को। ऐसा ही लुच्चा घूर घूर कर देखता है। तो अगर लड़की की तरफ देखो, तो घूर घूर कर देखना हो जाए और अगर पान की तरफ देखो, तब तक लड़की गई। और इतनी जल्दी कैसे पहचान लोगे, क्या खाक पहचान लोगे? ... या आकर थाली में सब्जी परोस जाती है। बस निर्णय कर लोगे तुम कि यह लड़की तुम्हारी जिंदगी की साथिन होने वाली है? इसके साथ तुम जीवन सुख से रह सकोगे? यह थाली में इसकी सब्जी परोसना या पान की तस्तरी घुमा देना या चाय की प्याली पकड़ा देना क्या निर्णायक हो सकता है जीवन भर के साथ के लिए? इससे ज्यादा अवैज्ञानिक और क्या बात होगी?
आदिवासी ज्यादा सम्यक हैं। वे हर लड़की को मौका देते हैं, हर लड़के को मौका देते हैं कि तुम एक दूसरे को खूब पहचान लो। और एक दूसरी अद्भुत बात है, जो समझने जैसी है वह यह कि कोई लड़का किसी लड़की के साथ तीन दिन से ज्यादा न रहे ताकि हर एक लड़के को मौका मिल जाए। कोई लड़का एक लड़की से बंध जाए, कोई लड़की एक लड़के से बंध जाए तो अनुभव में कमी आएगी। इसलिए तीन दिन से ज्यादा की आज्ञा नहीं। तीन दिन एक लड़की का एक लड़के का साथ रहे फिर साथ बदलो। फिर दुबारा साथ हो जाए कभी, बात अलग। मगर तीन दिन से ज्यादा एक बार में साथ नहीं हो सकता। इसलिए ईर्ष्या का कोई कारण नहीं है। इसलिए आदिवासियों में ईर्ष्या नहीं पाई जाती। और एक मजे की बात है कि जब गांव की सारी लड़कियों को लड़कों ने देख लिया, लड़कियों ने लड़कों को देख लिया तो स्वभावतः इस अनुभव से उनको साफ हो जाता है कि किसके साथ उनका जीवन सुखद होगा, पहचान हो जाती है। यह ज्यादा वैज्ञानिक बात हुई, बजाय पंडित से जन्मकुंडली मिलवाने के, या हाथ की रेखाएं दिखवाने के।
हाथ में सिर्फ रेखाएं हैं, और कुछ भी नहीं; कोई भाग्य नहीं है वहां। और जन्मकुंडली सब बकवास है। इससे कुछ होने वाला नहीं है। चांद-तारों को क्या लेना-देना है कि तुम किससे विवाह करते हो और किससे नहीं करते हो? यह ज्यादा वैज्ञानिक बात है। लेकिन ईसाई मिशनरी जहां पहुंच गए, उन्होंने इस संस्था को बंद करवा दिया, क्योंकि वे कहते हैं यह अनैतिक है। और विन्ध्यवासिनी पांडेय वहां जाएंगे तो ये भी कहेंगे कि यह अनैतिक बात है; जिनका विवाह नहीं हुआ, वे लड़के लड़कियां साथ रहें, प्रेम करें एक दूसरे को, एक दूसरे के शरीर से परिचित हों, यह तो बात बिल्कुल ही पाप की हो गई! लेकिन दो वर्ष के इस संग साथ में प्रत्येक लड़का अपनी पत्नी चुन लेता है और प्रत्येक लड़की अपना पति चुन लेती है। और जब लड़के लड़कियां जाहिर कर देते हैं कि हमने अपना चुनाव कर लिया, तब उनका विवाह हो जाता है।
और इसके साथ भी जुड़ी हुई यह बात भी तुम्हें याद दिला दूं कि इन आदिवासी इलाकों में कोई तलाक नहीं होता। तलाक का सवाल ही नहीं उठता। तलाक का विचार ही नहीं उठता, क्योंकि जिसको इतने पहचान से चुना है, इतने अनुभव से चुना है, इतने परख से चुना है, उससे अलग होने की कोई बात ही नहीं उठती। उसको सब रूपों में देख लिया है, फिर चुना है। चुना है तो जान कर चुना है। इसलिए इन आदिवासी इलाकों में न तो तलाक होता है और न कभी यह घटना सुनी जाती है कि कोई किसी दूसरे की स्त्री के साथ प्रेम में पड़ गया है या किसी दूसरे की स्त्री को ले भागा है। ये घटनाएं होती ही नहीं।

लेकिन जहां-जहां ईसाई मिशनरी पहुंच गए हैं उन्होंने यह घोटूल की संस्था बंद करवा दी। वह जो गांव का कक्ष है, जहां लड़के और लड़कियां साथ रहते हैं, उसका नाम घोटूल है। यह घोटूल की संस्था उन्होंने बंद करवा दी, क्योंकि यह अनैतिक है। और जहां-जहां उन्होंने यह संस्था बंद करवा दी, वहां स्वभावतः विवाह आ गया। और विवाह आया कि सब अनिति आ गई। तब तलाक का सवाल उठता है। तब पत्नी से मन नहीं भरता या पति से मन नहीं भरता, तो वेश्याएं पैदा होती हैं। और तब चोरी छिपे दूसरी स्त्रियों से, दूसरे पुरुषों से संबंध पैदा होते हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसकी सारी जिम्मेदारी तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोगों पर है।
तो मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि पश्चिमी देशों में यौन-स्वतंत्रता के होते हुए भी वहां यौन-विकार पाए जाते हैं; उनका जुम्मा यौन स्वतंत्रता पर नहीं है, उनका जुम्मा दो हजार साल पुरानी ईसाइयत पर है। और पश्चिम में ईसाइयत अभी भी हावी है, छाती पर बैठी है।
और इस बात को ख्याल में रखो, क्योंकि यह तर्क अक्सर उठता है। तुमने देखा, जब जैनों के पयुर्षण होते हैं--अभी अभी खत्म हुए हैं--तो सब्जी के दाम गिर जाते हैं। बाजार में सब्जियां सस्ती बिकने लगती हैं, क्योंकि जैन सब्जी नहीं खरीदते, हरी चीज नहीं खाते, उपवास करते हैं या एक बार भोजन लेते हैं। मगर जैसे ही उनका पयुर्षण खत्म होता है, सब्जियों के दाम पहले से भी ज्यादा बढ़ जाते हैं, क्योंकि सारे जैन एकदम से टूट पड़ते हैं। दस दिन सम्हाला अपने को किसी तरह--इसी आशा में तो सम्हाला कि आखिर ग्यारहवां दिन आएगा ही। लगता तो बहुत दूर है, जैसे कयामत का दिन, मगर आएगा। आशा बांध कर गुजार दिए दस दिन। जप जप कर नमोकार मंत्र दस दिन काट दिए, माला फेर-फेर कर दिन भर मंदिर में बैठे रहते हैं जैन। उपवास क्या कर लेते हैं कि घर में बैठें तो खतरा। खतरा यह कि बेटा तो लड्डू खा रहा है और बाप बैठा देख रहा है। अब यह बाप, कितनी ही इनकी उम्र हो गई हो, भीतर तो, इनके भीतर भी लड्डू खाने वाला बैठा हुआ है, उसका जी ललचा रहा है। अब बच्चों के लिए पत्नी भोजन बना रही है। और जब तुम उपवास करो तो तुम चकित हो जाओगे कि तुम्हारी नाक की क्षमता एकदम बढ़ जाती है। ऐसी गंधे आनी शुरू होती हैं, जो तुम्हें कभी नहीं आई थीं पहले। पकौड़े दूसरे के घर पकते हैं और बास तुम्हें आती है। भूख में आदमी की नाक बिल्कुल स्वच्छ हो जाती है। उपवास में और कुछ स्वच्छ होता हो या न होता हो, नासारंध्र बिल्कुल स्वच्छ हो जाते हैं। गंध की क्षमता एकदम तीव्र हो जाती है। दूर दूर से बासें आने लगती हैं। तो फिर जरा संयम रखना मुश्किल हो जाता है। तो उपवास के दिन लोग मंदिर में ही गुजारते हैं, क्योंकि मंदिर में न तो भोजन पकता, न लड्डू आते, न बरफी आती। जैन मंदिरों में प्रसाद वगैरह भी नहीं। और जैन मंदिरों में बैठे हैं मुर्दा मुनि, उनको देख कर भूख भी लगी हो तो मिट जाए। उनको देख लो तो समझो दिन भर खराब हुआ, अपशगुन हो जाता है सुबह ही से। भोजन भी कोई सामने रख दे और और उनको देखते रहो, भोजन न कर सकोगे। उनकी नजर निंदा कर रही हैः पापी, नरक में सड़ोगे! अब जरा से भोजन के लिए कौन नर्क में सड़ना चाहता है! और नरक में सड़ने का वे ऐसा वर्णन करते हैं--पयुर्षण के दिनों में यही चर्चा चलती है-- कि नरक में कैसे कैसे सड़ाया जाता है और जैनियों का चित्त एक नरक से नहीं भरा तो उन्होंने सात नरक की कल्पना की हुई है। नरक के ऊपर नरक! भेजेंगे तुमको सातवें में। और वहां लोग, यहां तो पका.ैडे नहीं खाने दे रहे और वहां लोग कड़ाहों में पकौड़े की तरह तले जा रहे हैं! अब दस दिन के लिए पकौड़े छोड़ देने की बेहतर हैं बजाए इसके कि फिर अनंत काल तक पकौड़े की तरह तले जाओ।
और मरोगे भी नहीं, ख्याल रखना। मरने भी नहीं देते। यही तो मजा है नर्क का। मारेंगे और मरने देंगे नहीं। प्यास लगेगी और मुंह सीया रहेगा। जलधार सामने बह रही है, अमृत बह रहा है और मुंह सीया हुआ है, पी नहीं सकते। ऐसा घबड़ाएंगे कि तुम सोचोगे कि भैया दस दिन गुजार ही दो। अरे दस ही दिन की बात है। एक दिन निकल गया, दो दिन निकल गए और माला पर यही तो गिनते हैं कि कितने दिन निकल गए! एक निकल गया, दो निकल गए, तीन निकल गए। अब बस थोड़े ही और बचे। अरे हाथी तो निकल ही गया, पूंछ ही बची है। अब एक ही दिन बचा है, गुजार दो!

बैठे हैं मंदिर में और गुजार रहे हैं। और बड़े रस से सुनते हैं नरक की बातें, क्योंकि उस वक्त बड़ी प्रभावित करती हैं।
और उसमें एक मजा और भी है कि वहां बैठे-बैठे सोचते हैं कि जो भोजन कर रहे हैं, सड़ेंगे। वह भी एक मजा आता है, कि देखो कौन-कौन सड़ेंगे। नाम उनके याद कर रहे हैं कि कौन-कौन सड़ने वाले हैं। भोगेंगे फिर। अरे अभी दस दिन की तकलीफ हम भोग रहे हैं, फिर तुमको पता चलेगा! फिर हम स्वर्ग में मजा करेंगे, अप्सराएं नाचेंगी, कल्पवृक्षों के नीचे बैठेंगे। बैठते ही जो इच्छा हो, तत्क्षण पूरी हो जाती है।
दस दिन के बाद एकदम टूट पड़ते हैं। मिठाइयां सब तरह के व्यंजन, सब्जियां! ऐसे टूटते हैं पागल की तरह! उसका जुम्मा किसका है? वह दस दिन का जो उसका उपवास है, वह जिम्मेवार है। साधारण स्वस्थ आदमी, जो रोज ठीक से भोजन कर रहा है सम्यक रूप से; इस तरह नहीं टूटता। यह दो हजार साल की ईसाइयत जिम्मेवार है। आज पश्चिम में अगर यौन-स्वतंत्रता थोड़ी सी आई है तो उसके साथ यौन-विकार आए हैं, उसका कारण यह ईसाइयत है। यह स्वाभाविक है। जब बहुत दिन तक लोगों को रोक कर रखा जाएगा, जैसे जेल में बंद कर दो लोगों को, फिर एकदम दरवाजा खोल दो एक दिन, तो कोई तुम सोचते हो ये लोग चहल कदमी करते हुए निकलेंगे, कि अपनी छड़ी हाथ में लिए हुए जैसे लोग चहलकदमी के लिए निकलते हैं, शाम को घूमने निकलते हैं, लखनवी ढंग--ऐसे निकलेंगे? अरे लोग यूं निकलेंगे तीर की तरह कि दरवाजे से निकलना मुश्किल हो जाएगा, भीड़ हो जाएगी। दरवाजा खोलो, पागल की तरह भागेंगे, लौट कर पीछे नहीं देखेंगे।
यह जो पश्चिम में दो हजार साल कारागृह रहा, आज थोड़े थो.ेडे द्वार खुल
गए हैं कहीं-कहीं से, तो लोग निकल भागे हैं और दूसरी अति पर चले गए हैं। यह सीधा मनोविज्ञान है। यह समाप्त हो जाएगा। मगर अगर ईसाइयत जिंदा रही तो यह समाप्त नहीं होगा।
तुम यह कहते हो कि यौन-अपराध वहां भी होते हैं। इसका सिर्फ इतना ही अर्थ है कि अभी पूर्ण स्वतंत्रता वहां नहीं हुई। इसलिए यौन-अपराध वहां भी होते हैं। इससे तुम इस बात को मत मान लेना कि तुम्हारी दमन की प्रक्रिया ठीक है, तो हम क्या करें, यौन अपराध वहां भी होते हैं, यहां भी होते हैं, तो हमारी दमन की प्रक्रिया में कोई गलती नहीं है। वहां भी यौन-अपराध इसी दमन के कारण हो रहे हैं, उसी दमन के कारण यहां भी यौन-अपराध हो रहे हैं।
ये जो इतने बालात्कार हो रहे हैं, जगह-जगह, कौन इसके लिए जिम्मेवार है? विन्ध्यवासिनी पांडेय, तुम और तुम जैसे लोग इस सबके लिए जिम्मेवार हैं। ये तुम्हारे धर्मशास्त्र जिम्मेवार हैं। यह तुम्हारी हजारों साल की अवैज्ञानिक परंपरा जिम्मेवार है।
तुमने देखा कि किसी गांव पर झगड़ा हो जाए तो झगड़े में सबसे पहले स्त्री शिकार होती है! और स्त्रियों का कोई झगड़े से संबंध नहीं होता। झगड़ा पुरुषों में होता है, शिकार स्त्री होती है। यह बड़ी हैरानी की बात है। पुरुषों में झगड़ा हो, पुरुष एक-दूसरे को काट डालें, ठीक है। स्त्रियां तो कोई झगड़े में भाग लेने आती नहीं। मगर स्त्रियों पर बलात्कार क्यों हो जाते हैं?
और तुम यह सामान्य रूप से भी देखो, दो आदमी लड़ते हैं, लेकिन गालियां स्त्रियों को देते हैं--तेरी मां को, तेरी बहन को, तेरी बेटी को... ! यह बड़े मजे की बात है। इसका तुम रहस्य समझो। इसका राज समझो। इसका क्या अर्थ हुआ? झगड़ तुम रहे हो, एक दूसरे की खोपड़ी खोल दो, ठीक है; मगर इसकी मां ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? इसकी बहन ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? इसकी बेटी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? उनका तो कोई भी संबंध नहीं है। और इसके बाप को गाली क्यों नहीं देते, इसकी मां को क्यों देते हो? इसके भाई को गाली क्यों नहीं देते, इसकी बहन को क्यों देते हो? इसके बेटे को गाली नहीं देते, इसकी बेटी को क्यों देते हो? और यह ख्याल रखो कि अगर झगड़े में कोई कूदेगा इसके पक्ष से, तो इसका बाप कूदेगा, इसका बेटा कूदेगा, इसका भाई कूदेगा--न इसकी मां कूदेगी, न इसकी बहन, न इसकी बेटी। मगर सूचक है इस बात का कि तुम भरे बैठे हो, तैयार बैठे हो। मौका कोई मिल जाए कि तुम स्त्रियों पर टूट पड़ो। गाली स्त्री को पड़ने वाली है क्योंकि स्त्री ने अपने को रोक कर रखा है। जरा

अवसर मिल जाए कि बांध टूट जाता है। दो कौमों में झगड़ा हो जाता है, स्त्रियों पर बलात्कार हो जाते हैं एकदम। पहला काम स्त्री। और दोनों धार्मिक कौमें हैं। कोई हिंदु, कोई मुसलमान, कोई जैन, कोई हिंदू--सब धार्मिक लोग। और जैसे ही धार्मिक लोगों में झगड़ा होता है, दोनों की नजर स्त्री पर लगी हुई है कि झगड़ा हो जाए तो बस स्त्री पर टूट पड़ो। एकदम बलात्कार हो जाते हैं। झगड़ा होता है सवर्णों में और शूद्रों में और परिणाम भुगतना पड़ता है शूद्रों की स्त्रियों को, तत्क्षण उनके साथ बलात्कार हो जाते हैं।
और बड़ा मजा यह है, जिनको छूने से तुम्हें पाप लगता है उनके साथ बलात्कार करने से तुम्हें पाप नहीं लगता! जिनकी छाया से तुम्हें पाप लगता है उनकी स्त्रियों के साथ बलात्कार करने से तुम्हें पाप नहीं लगता। दक्षिण भारत में सदियों से यह परंपरा रही कि शूद्र जब निकले तो चिल्लाता हुआ निकले कि मैं शूद्र हूं, रास्ते से हट जाएं। क्योंकि किसी के ऊपर उसकी छाया पड़ जाए तो उसी हत्या हो जाए। छाया! शूद्र ही नहीं है अछूत, उसकी छाया भी अछूत है! और यह ज्ञानियों का देश है, धार्मिकों का देश है! ऋषि मुनियों की संतान! छाया! और ये कहते हैं जगत माया। और छाया भी माया नहीं! जगत माया है, मगर छाया सत्य है! जगत माया है, जगत झूठ है, मृग-मरीचिका है। और राम को ये पूजते हैं--पुरुषोत्तम, मर्यादा पुरुषोत्तम! और राम के जीवन में यह कहानी कि वे स्वर्ण मृग को मारने चले! स्वर्ण मृग होते हैं? किसी बुद्धू को भी समझ में आता है कि स्वर्ण मृग होते ही नहीं। सोने का कहीं हिरण होता है? किसी ने सुना किसी ने देखा? और राम स्वर्ण मृग को मारने चले। और जगत माया! यहां मिट्टी है, सोना भी मिट्टी है। यहां सब झूठ, सब भ्रम। मगर सोने के मृग को मारने चले।
सब माया है, मगर अछूत की छाया माया नहीं है! छाया पड़ गई तो अछूत को दंड दिया जाएगा, भयंकर दंड दिया जा सकता है, मृत्यु दंड भी दिया जा सकता है। मगर अछूत की पत्नियों को, उनकी मां को, उनकी बहनों को बलात्कार करो--इसमें कोई अड़चन नहीं है! यूं समझो कि बेचारे ब्राह्मण बलात्कार करके उनको शुद्ध कर रहे हैं, कि उनको मुक्त कर रहे हैं, कि कम से कम थोड़ा ब्राह्मत्व तो उनमें आ ही गया! यह इनकी अनुकंपा है, इनकी कृपा है! लेकिन ये दमित समाज के लक्षण हैं। ये अति कुत्सित समाज के लक्षण हैं। जरा अपनी समझ को सीधा खड़ा करो, शीर्षासन मत करवाओ।
चंदूलाल अपनी पत्नी के साथ बड़ी भागम-भाग करके रेलवे स्टेशन पर पहुंचे। वे हांफते-हांफते प्लेटफार्म पर पहुंचे ही थे कि गाड़ी का आखिरी डब्बा निकट से गुजर गया और दोनों दिल मसोस कर रह गए। चंदूलाल ने ताव खा कर कहा कि यदि तू जरा सी जल्दी तैयार हो जाती तो हम गाड़ी पकड़ लेते। पत्नी भी जल हुई थी, तिलमिला कर बोलीः और अगर तुम इतनी जल्दी न करते तो हमें दूसरी गाड़ी के लिए इतनी देर प्रतीक्षा न करनी पड़ती।
अपनी-अपनी पकड़, अपनी-अपनी समझ।
विन्ध्यवासिनी पांडेय, तुम मुझे समझे नहीं हो। तुम अपनी ही समझ के अनुसार आरोपण कर रहे हो। तुम अपने से ही बातें कर रहे हो, मुझसे नहीं। और मैं जो कह रहा हूं, यह भी तुम्हारे भीतर घुसेगा इसमें संदेह है।
एक पोंगा पंडित को खुद अपने से ही बातें करने की आदत थी। एक रोज उनके
एक सहयोगी ने मजाक में पूछाः पंडित जी, आप अपने से बातें किया करते हैं--यह आप आदतन करते हैं या इसका कोई कारण है?
इसके दो कारण हैं--पोंगा पंडित ने कहा--एक तो यह कि मैं हमेशा बुद्धिमान आदमी की ही बातें सुनना पसंद करता हूं और दूसरा यह कि मैं केवल बुद्धिमानों से ही बातें करना पसंद करता हूं।
विन्ध्यवासिनी पांडेय, तुम अपने से ही बातें कर रहे हो। यह प्रश्न तुमने मुझसे नहीं पूछा। मुझे तुम समझे भी नहीं। प्रश्न पूछने से पहले थोड़ा समझ लेना चाहिए।
तुम कहते होः "अतः आपका यौन-स्वतंत्रता का सिद्धांत गलत सिद्ध होता है।"

मेरा कोई सिद्धांत नहीं यौन-स्वतंत्रता का। जरूर मैं प्रेम की स्वतंत्रता को मानता हूं। प्रेम की स्वतंत्रता का एक छोटा सा हिस्सा है यौन स्वतंत्रता। लेकिन जहां प्रेम है वहां यौन भी पवित्र है। और जहां प्रेम नहीं है वहां विवाह भी अपवित्र है। और अमरीका में क्या हो रहा है, इससे मेरा कोई सिद्धांत गलत नहीं हो सकता। मेरा सिद्धांत तो गलत तब होगा जब मेरे आश्रम में यौन-विकार पाए जाएं, तब मेरा सिद्धांत गलत होगा, उसके बिना मेरा सिद्धांत गलत सिद्ध नहीं होता। मेरा कम्यून बनता है, इस कम्यून में तुम बताना कि कौन से यौन विकार हैं? तब मैं समझूंगा कि मेरा सिद्धांत गलत सिद्ध हुआ। मेरे सिद्धांत का प्रयोग करने का मौका तो मुझे दो।
इस मौके की यह अनिवार्य शर्त है कि मैं पहले तुम्हें हिंदु होने से मुक्त करूं, ईसाई होने से मुक्त करूं, जैन होने से मुक्त करूं। जब यह सब कचरा धुल जाए, तब तुम मेरे सिद्धांतों का उपयोग कर सकोगे और फिर यौन-विकार पैदा हो तो मेरा सिद्धांत गलत होगा। लेकिन मैं प्रयोग न कर पाऊं, इसकी हजार चेष्टाएं की जा रही हैं। मैं एक बड़ा कम्यून न बना पाऊं, इसकी हजार चेष्टाएं की जा रही हैं। क्या घबड़ाहट है इन चेष्टा करने वालों को? यही घबराहट है, क्योंकि ये जानते हैं मेरा सिद्धांत सही सिद्ध हो सकता है। यह इनकी भीतरी आवाज है कि मेरा सिद्धांत सही सिद्ध हो सकता है। उसी डर के कारण हर तरह का विरोध है। नहीं तो क्या विरोध है? मुझे प्रयोग करने दो। मैं किसी और पर प्रयोग नहीं कर रहा हूं, जबरदस्ती प्रयोग नहीं कर रहा हूं।। जो मुझसे राजी हैं, मैं उन पर प्रयोग करूंगा। और जो मुझसे राजी हैं, उनको प्रयोग करने का हक है और मुझे हक है। मेरा प्रयोग होने दो। तुम्हें क्या घबड़ाहट है? अगर मेरा प्रयोग गलत सिद्ध होगा तो तुम्हारे सिद्धांत और परिपुष्ट हो जाएंगे। और अगर मेरा सिद्धांत सही सिद्ध होगा तो सत्य के साथ तुम्हें भी खड़े होने का एक अवसर मिल जाएगा। इतनी घबड़ाहट क्या है?
अब यह घबड़ाहट तुम देखो।

तीसरा प्रश्न हैः भगवान,
कच्छ से संबंधित कुछ लोग बंबई स्टेशन पर एक-एक रुपये की टिकट बेच रहे हैं। उनका नारा है--रजनीश हटाओ, कच्छ बचाओ।"
भगवान, आपके कच्छ प्रवेश से उनके कच्छे को क्यों तकलीफ हो रही है? क्या वे लोग भी सरदार बलदेवसिंह की तरह अपने कच्छे को बदलना नहीं चाहते? कृपया कुछ कहें।

चैतन्य सागर!
बंबई जो कच्छी आ गए, वे तो बेचारे कच्छा अपना कच्छ ही छोड़ आए। ये तो नंग-धड़ंग बंबई में खड़े हैं। ये क्या कोई कच्छी हैं? ये नकली कच्छी! नहीं तो भागते ही क्यों? ये भगोड़े हैं। इनको कच्छ से इतना प्रेम था तो कच्छ में होना था। ये बंबई में क्या कर रहे हैं? इनको बंबई में होने की क्या जरूरत है? कच्छ जाओ, कच्छ में रहो। ये तो सब कच्छ से भाग आए। ये कोई कच्छी नहीं हैं। इन भगोड़ों को मैं कच्छी नहीं कहता। जो कच्छ में हैं। वे कच्छी हैं; उनके पास कच्छा है और वे कच्छा बदलने को तैयार हैं।
ये बंबई के कच्छियों ने बड़ी दौड़-धूप करके, बड़ी मेहनत करके, बहुत श्रम करके गुजरात सरकार के पास केवल पैंसठ विरोध में पत्र पहुंचा पाए। मैं तो कच्छ गया नहीं। मेरे संन्यासियों ने जाकर कोई कच्छ में कोशिश नहीं की। लेकिन मेरे पक्ष में तीन सौ पचास संस्थाओं ने गुजरात सरकार को लिखा है कि मेरा स्वागत करने को तैयार हैं। जिन पैंसठ व्यक्तियों से... इनमें केवल बीस संस्थाएं हैं, बाकी पैंतालीस तो वे व्यक्ति हैं... एक-एक व्यक्ति ने एक-एक कार्ड लिख दिया है। उनसे भी पत्रकारों ने जाकर पूछा तो उनमें से कई ने कहाः हमें पता ही नहीं कि ये कार्ड हमारे नाम से किसने लिख दिया है! हमें तो मालूम ही नहीं। मतलब यह कि कार्ड भी झूठे लिखे गए हैं। एक-एक संस्था के नाम से दो-दो पत्र डलवा दिए हैं। वह मैंने संस्थाओं की लिस्ट देखी, तो एक संस्था के नाम से दो पत्र हैं, दो दफे नाम आया संस्था का।

और संस्थाएं क्या हैं--बनाई हुई संस्थाएं हैं! चार आदमियों ने मिल कर
एक संस्था बना ली और पत्र लिखवा दिया। और पत्र लिखने के लिए कितनी कोशिश करनी पड़ी! छः आदमी बंबई से जाकर पूरे कच्छ का दौरा किए, कच्छियों को समझाते रहे कि रोको। और ये टिकट मेरे देखने में आया है। चैतन्य सागर ने जो पूछा-- चैतन्य सागर उर्फ लहरू ने पूछा, यह टिकट कोई मेरे पास ले आया था दिखाने। मैं तो टिकट देख कर बहुत खुश हुआ, क्योंकि जिनने लिखा है ये परम बुद्धू मालूम होते हैं। टिकट पर ही यह लिखा हुआ हैः "रजनीश हटाओ, कच्छ बचाओ"!
अभी में कच्छ तो गया नहीं, तो मुझे हटाओगे कैसे? मतलब मुझे पूना से हटाओ और कच्छ भेजो, तो कच्छ बचे! तो बात साफ ही है। अभी में कच्छ गया नहीं, तो कच्छ से हटने का तो कोई सवाल उठता नहीं। अभी तो पूना से हटने का सवाल है। और बेचारे बड़ी ठीक बात कह रहे हैं कि पूना से हटाओ तो कच्छ बचे। रजनीश हटाओ, कच्छ बचाओ! मैंने कहा कि बिल्कुल मेरे पक्ष में काम चल रहा है। बुद्धू करेंगे भी क्या और! इनको इतनी भी अकल नहीं कि क्या कह रहे हैं। अभी मुझे कच्छ तो पहुंचने दो, फिर मुझे हटाना। अभी मैं पहुंचा ही नहीं, मैंने कदम नहीं रखा। अभी नहीं, मैंने कभी कदम नहीं रखा, कच्छ मैं कभी गया ही नहीं अपनी जिंदगी में। कच्छ में कोई घटना ही नहीं घटी है; सिर्फ लगता है कच्छप अवतार एक हुआ था, वह अगर कच्छ में हुआ हो तो हुआ हो, उसके बाद तो कच्छ में कोई घटना घटी नहीं।
और ये जो भाग आए हैं कच्छ का रण छोड़ कर, रणछोड़दास! भगोड़ों के लिए अच्छा नाम दे देते हैं--रणछोड़दास! और कच्छ का रण, उससे भाग आए, ये रणछोड़दास जो बंबई में बैठ गए हैं, ये जो पीठ दिखा कर भाग आए हैं, इनको कच्छ बचाने की क्या चिंता पड़ी है? मगर टिकट मुझे पसंद आया। असल में लहरू, इनसे कहो कि इस टिकट से जितना पैसा आए वह मुझे मिलना चाहिए। कच्छ को बचाओगे कैसे? और अभी तो पूना से हटाने में भी पैसा लगेगा और कच्छ बचाने में भी पैसा लगेगा। सा बंबई के संन्यासियों को इकट्ठा करके इनके दफ्तर पर कब्जा कर लो और इनसे कहनाः जितना पैसा इकट्ठा हुआ वह दो, क्योंकि तुमने वायदा किया है कि रजनीश हटाओ--हटाएंगे! उन्हीं से हटा सकते हो, और तो कहां से हटाएंगे! और कच्छ का बचाएंगे! अब पूना को बचा लिया, अब कच्छ को बचाएंगे! सभी को बचाना है। एक-एक को ही बचाया जा सकता है। अब पूना बच गया, बंबई बच गया, अब कच्छ को बचाएंगे। ऐसे बढ़ते चलेंगे। भारत को बचाना है सारी दुनिया को बचाना है।
इस टिकट को देख कर मुझे लगा कि सरदार सिर्फ पंजाब में ही नहीं होते, गुजरात में भी होते हैं। एक हो गए प्रसिद्ध--सरदार बल्लभभाई पटेल। मगर और छोटे-मोटे सरदार भी मालूम होते हैं वहां।
यदि रात को अचानक घड़ी बंद हो जाए तो समय का ज्ञान कैसे किया जा सकता है? सरदार विचित्तरसिंह ने अपने मित्र से पूछा।
मित्र ने कहाः यात्रा प्रारंभ कर दीजिए।
विचित्तरसिंह ने कहाः इससे क्या होगा?
मित्र ने कहाः पड़ोसी कहेंगे, यह कौन गधा है जो रात ढाई बजे गर्दभ रागिनी गा रहा है? टाइम का पता चल जाएगा।
सरदार विचित्तरसिंह बाजार में स्वेटर खरीदने गए। दुकानदार ने पूछाः खरीदनी है? सच में खरीदनी है? सरदार जी, पैसे हैं?
सो उन्होंने निकाल कर नोट दिखा दिया। दुकानदार आश्वस्त हुआ। तब विचित्तरसिंह ने कहा दुकानदार से, क्या मैं इसे पहन कर देख लूं?
उनका भारी-भरकम शरीर, स्वेटर खराब कर दें! पहन जाएं तो ढीली हो जाए वह। फिर किसी और के काम की रहे न रहे।
सो दुकानदार ने कहा कि जरूर, सरदार जी लेकिन पहनने के पांच रुपये लगेंगे। विचित्तरसिंह ने स्वेटर पहन लिया और जेब से पांच का नोट निकाल कर दुकानदार को दे दिया। उसने नोट हाथ में लेकर कहा, अब स्वेटर उतार दो। विचित्तरसिंह ने कहाः उतारने के दस रुपये लगेंगे। अरे जब पहनने के लगते हैं तो उतारने के भी लगेंगे!
यह गणित है जो कुछ लोगों के दिमाग में चलता है।
एक सरदार ने सरदार विचित्तरसिंह ने पूछाः सरदार जी, क्या बजा है आपकी घड़ी में?

विचित्तरसिंह ने कहाः दस-दस।
पहला सरदार बोलाः सरदार जी, एक ही बार बोलो न, मैं कोई थोड़ा ऊंचा सुनता हूं।
विचित्तरसिंह के पिताजी ने पूछा कि बेटा, क्या घड़ी ठीक करवा ली? विचित्तरसिंह ने कहाः हां पिताजी।
बाप ने कहाः तो अब घड़ी समय बताती होगी।
विचित्तरसिंह ने कहाः नहीं पिता जी, समय तो नहीं बताती। हां, देखना पड़ता है।
ये बंबई के कच्छी तो मात किए दे रहे हैं। और कच्छप अवतार अगर कच्छ में हुआ था तो उसके कुछ तो परिणाम रह ही गए होंगे। कछुए की खाल भारी मोटी होती है--ऐसी के गोली भी नहीं लगती। इसलिए कछुए से ढाल बनाई जाती है, तलवार भी नहीं छेद सकती उसको।
ये बंबई के कछुए, इनकी बुद्धि में कुछ प्रवेश होता नहीं दिखता। ये कहते हैं कि मेरे कच्छ जाने से कच्छ की संस्कृति नष्ट हो जाएगी। क्या ऐसी नपुंसक संस्कृति को बचाना जो किसी के आने से नष्ट हो जाती हो? अगर तुम्हारी संस्कृति में कुछ बल है तो मुझे बदल लेना, मैं तुम्हें कैसे बदलूंगा? और अगर निर्बल है तो मैं बदलूंगा, तो मुझे बदलने दो। यह निर्बल की घबड़ाहट है, नपुंसक की घबड़ाहट है। क्या डरना? इनको भय है कि कच्छ का धर्म नष्ट हो जाएगा। कहीं अंधेरे से रोशनी नष्ट हुई है? हां; रोशनी से अंधेरा नष्ट होता है। अगर मैं अंधेरा हूं तो नष्ट हो जाऊंगा, तुम्हारे पास अगर रोशनी है। और अगर मैं रोशनी हूं तो तुम अंधेरे को बचा कर भी क्या करोगे? नष्ट हो जाने दो। जहां भी रोशनी और अंधेरे का मिलन होता है। रोशनी तो नष्ट नहीं होती। तो अगर कच्छ के पास रोशनी है तो क्या इतने भयभीत हो रहे हो? गुजरात के चौदह संतों-महंतों ने, महात्माओं ने अपील की है कि मुझे कच्छ में प्रवेश न करने दिया जाए, इससे धर्म नष्ट हो जाएगा। अरे तुम चौदह, मैं अकेला आदमी अपने कमरे से बाहर निकलता नहीं किसका धर्म मुझे नष्ट करने जाना है? और धर्म हो तो नष्ट भी करो, है कुछ हाथ में खाक नहीं मगर मुसीबत यह है, कहते हैं न मुट्ठी बंधी हो तो लाख की, खुल जाए तो खाक की! अभी मुट्ठी बंधी है, मैं खुलवा दूंगा--इतना ही भर सकता हूं। सो इनको दिखाई पड़ जाएगा कुछ नहीं मुट्ठी में। मुट्ठी बंधी रहे तो आदमी भरोसा किए रखता है कि न मालूम क्या-क्या मुट्ठी में है! खुद भी धोखा खाता है, औरों को भी धोखा देता रहता है। मुझसे इतनी घबड़ाहट क्या पैदा हो रही है? अगर में गलत हूं और तुम सही हो तो धबड़ाहट मुझे होनी चाहिए। मैं तो किसी से घबड़ाया हुआ नहीं हूं। मैंने तो जिंदगी में कभी एक क्षण को ऐसा अनुभव नहीं किया कि मेरी बात को कोई नष्ट कर देगा। और मैं तो कहता हूं कि कोई नष्ट कर दे तो अच्छा है, उसने मुझ पर बड़ी कृपा कीः क्योंकि मैं गलत बात को पकड़े बैठा था, उसने नष्ट कर दी तो मुझे अवसर दिया कि मैं सत्य को खोज लूं। उसने कोई दुश्मनी तो नहीं की। उसने तो मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया। मैं तो तलाश में हूं उस आदमी की जो मेरी बातों को गलत सिद्ध कर दे। उससे मेरा छुटकारा हो जाए मेरी बातों का, मेरा जाल कट जाए। मैं ठीक बात समझ लूं।
मगर मुझे कभी कोई घबड़ाहट नहीं रही। घबड़ाहट औरों को है। इससे एक बात जाहिर होती हैः घबड़ाहट हमेशा कमजोर को होती है। घबड़ाहट हमेशा उसे होती है जिसे पता है कि भीतर खोखलापन है। नहीं तो ये चौदह संत-महंत, इनको मैं निमंत्रण देता हूं, मैं आता हूं कच्छ, आना मेरे कम्यून में समझने की कोशिश करना, मुझे समझाने की कोशिश करना। तुम चौदह, मैं अकेला। निपटारा कर लेंगे। ऐसा क्या घबड़ाने की जरूरत है? इतने क्या परेशान हो रहे हो? और कभी हो तो बाहर से बुला लेना--पुरी के शंकराचार्य को बुला लेना, करपात्री महाराज को बुला लेना। और बहुत शंकराचार्य हैं, बहुत जगतगुरू हैं, यह देश तो भरा ही हुआ है जगह जगह, सबको बुला लेना। मैं सब के साथ चुनौती स्वीकार करने को राजी हूं। लेकिन मेरी बात को गलत सिद्ध करो। लेकिन बात को तो गलत सिद्ध कर नहीं सकते; इस भय से अब एक ही उपाय है कि मुझे रोको, मेरी बात को पहुंचने मत दो, मेरी बात को लोगों तक जाने मत दो।

ये कोई धार्मिक लोगों के लक्षण हैं? ये कोई सुसंकृत लोगों के लक्षण हैं? यह कोई सभ्यता की पहचान है? सुसंकृति, सभ्यता का तो एक ही अर्थ होता है कि मैं अपनी बात कहने के लिए स्वतंत्र हूं, तुम अपनी बात कहने को स्वतंत्र हो। फिर जो भी सच होगा वह जीत जाएगा। तुम जिंदगी भर से दोहराते रहे, सदियों से--सत्यमेव जयते। तुम्हें घबड़ाहट क्या है? अरे सत्य है, वह जीतेगा। सत्य न मेरा न तुम्हारा, सत्य जीतता है। लेकिन मैं जानता हूं कि मैं जो कह रहा हूं वह सत्य है। तुम्हारी घबड़ाहट बता रही है कि वह सत्य है।

आखिरी प्रश्नः भगवान,
गणेश व्युत्पत्ति उपनिषद, गाणपत्य-तंत्र और गणेश सिद्धि में उल्लेख
है कि श्वेत कल्प में उनका जन्म हुआ। पार्वती के स्नान करने और मैल का पुतला बना कर शक्ति का संचार करने की कथा तो जगत-प्रसिद्ध है। भगवान शिव ने गणेश के रोकने पर संदेह से ग्रस्त हो कर गणेश की गर्दन काट दी। पार्वती के विलाप करने पर शिव ने अपने गणों से कह कर दूसरी गर्दन मंगवाई। वे एक नवजात हाथी को मार कर उसकी गर्दन ले आए। यह कथा कहती है, शिवजी ने उन्हें पुनः प्राणदान दिया, वे पुनरुज्जीवित हो गए।
भगवान, शिवजी ने दूसरे की हत्या करवाना क्यों पसंद किया? क्यों नहीं उसी कटी हुई गर्दन को गणेश के धड़ से जोड़ दिया? किसी दूसरे जीव की हिंसा तो न होती और गणेश का असली रूप भी देखने को मिलता।

दिनेश भारती!
इस बात में बहुत सी बातें समझने जैसी हैं। भारत के धर्मग्रंथ इसी तरह
की बकवास से भरे हुए हैं। यह शुद्ध बकवास है। पार्वती के स्नान करने और मैल से पुतला बना कर... तो पहली तो बात, पार्वती ने जैसे जन्म भर से स्नान न किया होगा। इतना मैल कि उससे एक पुतला बन जाए! जरा पार्वती की हालत तो देखो, जैसे जन्मों से न नहाईं हों, जैसे धूल और मिट्टी में ही लोटती-पलोटती रहीं हों! इतना मैल! नहाने की दुश्मन थीं क्या? इतनी क्या दुश्मनी नहाने से? और कहीं मैल के पुतलों से जीवन पैदा होता है? क्या बचकानी बातें हैं! मगर अदभुत है हमारा देश। इस तरह की व्यर्थ की बातों को पूजे चला जाता
है। इस तरह की व्यर्थ की बातों को सम्मान दिए चला जाता है। इन्हीं ने हमें जड़ किया है। इन्हीं अंधविश्वासों ने हमारी बुद्धिमत्ता को कुंठित कर दिया है; हमारी प्रतिभा की तलवार पर धार मार दी, बोथली कर दी हमारी प्रतिभा। जो लोग इस तरह की बातों को मान कर चलेंगे, इनसे क्या तो विज्ञान का जन्म होगा और क्या धर्म का जन्म होगा? ये तो दयनीय रहेंगे, दरिद्र ही रहेंगे। ये तो गुलाम ही रहेंगे। इनके जीवन में कभी भी कोई क्रांति नहीं हो सकती। और ये अभी भी यही कर रहे हैं--गणपति बप्पा मोरया! अभी भी मिट्टी से बना रहे हैं गणपति को। और क्या शोरगुल मचाते हैं, क्या उपद्रव मचाते हैं-- और सोचते हैं बड़ा धार्मिक कार्य कर रहे हैं!
ये हमारी मूढ़ताओं के प्रदर्शन हैं। ये कथाएं इस बात की सूचक हैं कि हम सदियों से मूढ़ हैं। कोई आज की मूढ़ता नहीं है--बड़ी पुरानी, बड़ी प्राचीन है। इसकी जड़ें बड़ी गहरी हैं। और इसे काटना हो तो पीड़ा तो होगी। इसलिए मेरे संबंध में इतना विरोध है क्योंकि मैं किसी भी मूढ़ता को स्वीकार करने को राजी नहीं हूं, चाहे वह कितने ही महत्वपूर्ण शास्त्र में लिखी हो, चाहे वह गणेश व्युत्पत्ति उपनिषद हो और चाहे गाणपत्य तंत्र हो और चाहे गणेश सिद्धि हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता।
और फिर भगवान शिव। एक तरफ तो कहते हो कि वे त्रिकालज्ञ हैं, सर्वोतर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं। और उनको भी गणेश के रोकने पर संदेह हो गया! तो फिर दो में से कुछ एक हर बात कहो। संदेह तो बड़ी ही क्षुद्र मनोदशा है। संदेहग्रस्त व्यक्ति को तो हम धार्मिक भी नहीं मानते, भगवान मानना तो बहुत दूर। धार्मिक से तो अपेक्षा है श्रद्धा की और तुम्हारा भगवान तक संदेह करता है। और भगवान को तुम कहते हो वह सर्वव्यापी है, सब कालों को जानने वाला, सबका ज्ञाता। उसको कैसे संदेह होगा? और अगर उसको संदेह होता है तो फिर वह सर्वज्ञ नहीं है। क्या संदेह की बात थी? उनको पता ही होना था

कि पार्वती ने अपने शरीर से मैल निकाल कर पुतला बना लिया और उसी में प्राण फूंक दिए। इसमें गणेश को मारने की क्या जरूरत थी? संदेह ही बता रहा है कि तुम्हारे देवी-देवता भी तुम्हारे आदमियों से बहुत भिन्न नहीं हैं--वही ईर्ष्या, वही संदेह; वही पति-पत्नी की कलह।
सब पतियों को अपनी पत्नियों पर संदेह है। होगा ही, क्योंकि प्रेम तो
है नहीं, इसलिए संदेह है। और सब पत्नियों को अपने पतियों पर संदेह है, क्योंकि प्रेम तो है नहीं, इसलिए डर है, इसलिए भय है। जरा सी देर हो जाए पति को दफ्तर से लौटने में कि बस पत्नी को संदेह शुरू हो जाता है--पता नहीं किस स्त्री के साथ चला गया, पता नहीं क्या कर रहा है, पता नहीं कहां है! फौरन फोन करने लगती है, इंतजाम करने लगती है, पता लगाने लगती है। पति भी जरा ही देर से घर लौटे तो उसको रास्ते में ही इंतजाम कर लेना पड़ता है कि क्या उत्तर दूंगा, क्योंकि प्रश्न तो तैयार होंगे ही, दरवाजा खोलते ही से पत्नी टूट पड़ने वाली है कि इतनी देर कहां रहे।
सेठ चंदूलाल, एक दिन देर हो गई और कल ही पत्नी ने वायदा किया था, कसम खाई थी कि अब कभी देर न करूंगा। मगर मित्रों के साथ गपशप में बैठ गए, ताश की बाजी लग गई, भूल ही गए। आधी रात हो गई। जब घर के पास आए तब होश आया। घर के पास आ कर शराब पीया हुआ पति भी आता है तो होश आ जाता है। शराब भी एकदम नदारद हो जाती है। नींबू वगैरह पिलाने की जरूरत नहीं, दही वगैरह पिलाने की जरूरत नहीं है, सिर्फ पत्नी को सामने खड़ा कर दो या पत्नी की तसवीर, बस सब नशा रफूचक्कर हो जाएगा। जैसे ही घर के पास आए, ख्याल आया कि अरे अब फिर भूल हो गई, अब क्या करना, अब फिर झंझट खड़ी होगी, आधी रात हो गई। सो जूते हाथ में लिए खिड़की ले कूदे, चुपचाप घर के भीतर प्रवेश किए, जैसे चोर प्रवेश करता है। पति सभी चोरों की तरह प्रवेश करते हैं। बिल्कुल पूंछ दबा कर, भीगी बिल्ली की भांति! बाहर देखो तो सीना फुला कर चलते हैं, घर देखो उनकी असली हालत। पत्नी सो रही थी, घुर्राटे ले रही थी। सो उन्होंने कहा, कोई तरकीब निकाल लेनी चाहिए। तरकीब निकाल ली। गुए, मुन्ना का झूला था, उसको झुलाने लगे। थोड़ी देर झूला झुलाया, झले की, आवाज, चर्र-चूं की आवाज हुई, तो पत्नी ने आंख खोली, और कहा, क्या कर रहे हो? तो नाराज हुए की पप्पू की मां, घंटए भर से पप्पू रो रहा है और तू घुर्राटे ले रही है। और मुझे उठ कर उसका झूला झुलाना पड़ रहा है।
चंदूलाल की पत्नी बोलीः पप्पू के पापा, पप्पू मेरे पास सो रहा है, झूला खाली है। आधी रात कहां रहे?
यूं बहानों से न चलेगा।
फंस गए। पति-पत्नी तो एक दूसरे पर नजर रखे हुए हैं, एक दूसरे के दुश्मन समझो--जो एक दूसरे के पीछे लगे हैं, एक दूसरे की रक्षा कर रहे हैं कि कहीं भटक न जाओ। न पति पत्नी के भटकने देता है, न पत्नी पति को भटकने देती है। दोनों का एक दूसरे को सुधारने का एक महान आयोजन चल रहा है। कुछ भेद नहीं फिर।
और यह बात सच है कि अगर तुम अपने शास्त्रों को देखो, तो तुम्हारे देवी- देवता और आदमियों में कोई भेद नहीं--वहीं ईर्ष्या, वही वैमनस्य, वही जलन, वही क्रोध, वही हिंसा। तुम्हारे ऋषि-मुनियों में और तुमसे भी कुछ खास फर्क नहीं मालूम पड़ता। नहीं तो तुम दुर्वासा को ऋषि नहीं कह सकते थे। वही क्रोध, वही आग जलती है, जो तुममें जलती है। जरा सी बात में अभिषाप दे देते हैं। अब ये क्या देवता हुए? और शिव को तुम कहते हो--महादेव! देवों के देव! ये कोई छोटे-मोटे देवता भी नहीं, देवताओं के देवता! और उनको भी संदेह हो गया।
और संदेह क्या हुआ, फिर जरा भी उन्होंने पूछताछ भी नहीं की। गर्दन ही काट दी। जरा पूछताछ तो कर लेते। जरा पता तो लगा लेते। मगर गर्दन ही काट दी ऐसी हिंसक वृति।
मगर आश्चर्य तो यह है कि इन देवताओं को तुम अब भी पूज रहे हो, बीसवीं सदी में भी पूज रहे हो। अब भी तुम्हारे माथे गलत जगह झुक रहे हैं।
फिर पार्वती ने विलाप किया। क्या देवी-देवता हैं? इधर समझाते हैं कि आत्मा अमर, कोई मरता ही नहीं और पार्वती विलाप कर रही है अब! --और महादेव जी

के साथ रहते-रहते जिंदगी गुजर गई, इनको अक्ल न आई, तो तुम महादेव की मूर्ति के सामने सिर पटक-पटक कर सोचते हो अकल आ जाएगी? अब विलाप कर रही हैं। और विलाप क्या करना है? जब मिट्टी के ही पुतले में सांस फूंकी थी, अरे तो फिर दो-चार महीने बाद नहा लेना था। ऐसी क्या बात आ गई? हाथ का ही मैल था, इसमें रोना-धोना क्या है? या शिव जी के शरीर से मैल निकाल कर उसका पुतला बना लेना था। जब पार्वती को मैल के पुतले में प्राण फूंकना आता है तो पार्वती को गणेश की गर्दन जोड़ना नहीं आया?
इसमें तुम विरोधाभास देखो और तब तुम पाओगे तुम कैसी बचकानी कहानियों में उलझे रहे हो! और फिर पार्वती के विलाप ने रास्ते पर ला दिया उन्हें, जैसे सभी पत्नियों का विलाप पतियों को रास्ते पर ला देता है। पत्नियों के पास एक ही तरकीब बची है कि बस रोओ, जोर जोर से रोओ, कि मोहल्ले वाले सुन लें। पति कहने लगता है कि शांत हो बाई, साड़ी ला दूंगा, रेडियो खरीद दूंगा, फ्रिज ला दूंगा, क्या चाहिए बोल? मगर जोर से नहीं। मोहल्ले वाले क्या कहेंगे! इज्जत बचा। इज्जत पर पानी न फेर।
सो इज्जत का सवाल उठा होगा। सो उन्होंने नवजात हाथी को मार की उसकी गर्दन ले आए, शिष्यों को भेज दिया। शिष्य भी उन्हीं जैसे भंगेड़ी। शिवजी तो "दम मारो दम!" शिवजी तो भंगेड़ियों के देवता हैं, गंजेड़ियों के देवता हैं। अब शिष्य भी क्या, गांजा भांग पीए बैठे होंगे। आखिर जैसे गुरू होंगे वैसे ही शिष्य होंगे न! शिव जी तो महाहिप्पी समझो। ये हिप्पी तो अभी नये नये आए, इनका कुछ खास नहीं है। असली हिप्पी तो शिव जी थे। यह तो उन्हीं की परंपरा समझो। इन्होंने फिर पुनरुज्जीवित कर दिया शिव का धर्म।
और तुमने उनकी बारात की कहानी तो सुनी होगी कि क्या एक से एक लोग पहुंचे बारात में कि पार्वती के पिता तो डर ही गए। अगवानी करने आए थे; जब बराती देखे गंजेड़ी, भंगेड़ी, कोई दम मार रहा है, कोई शराब की बोतल लिए होगा हाथ में, इरछे-तिरछे लोग, तरह-तरह के अष्टावक्र! उनको देख कर ही वे घबड़ा गए कि यह मैं किसके चक्कर में पड़ गया, यह मेरी लड़की किसके हाथ पड़ी जा रही है! यह कहां का हजम आ गया है! छांट छांट कर लोग आए थे। उन्हीं में से किसी शिष्य को कहा होगा कि भई जा, गर्दन ले आ।
अब यह भी बड़े मजे की बात है कि गर्दन काटी थी तो गर्दन वहीं पड़ी होगी, क्या एकदम स्वर्ग चली गई थी? भेजने की जरूरत क्या थी? मगर वे खुद की पीए होंगे, सामने पड़ी गर्दन दिखाई कहां पड़े! शिष्यों को भेज दिया गर्दन लेने। वे एक नवजात हाथी को मार कर उसकी गर्दन ले आए। ये सब बातें साफ हैं कि भंगेड़ी ही कर सकते हैं। हाथी की गर्दन और आदमी की गर्दन में कुछ फर्क है। लेकिन अब जो नशे में हो उसको क्या फर्क! नशे में कुछ फर्क नहीं होता। नशे में तो कुछ का कुछ दिखाई पड़ता है। और शिव जी ने उसी गर्दन को जोड़ दिया। उनको भी न दिखाई पड़ा कि यह गर्दन किसकी है। जैसे अंधों का खेल चल रहा है! और वे पुनरुज्जीवित हो गए।
ये सारी चीजें उस समय के लिए शायद ठीक रही होंगी, जब आदमी का बिल्कुल बचपना था, जब आदमी को कुछ होश न था। आज इस बीसवीं सदी में गणेश की पूजा देख कर हैरानी होती है, शिव के मंदिर बनते देख कर हैरानी होती है। शिव के और गणेश के भक्तों को देख कर अचंभा होता है। क्या पागलपन है! कैसी विक्षिप्तता है!
और यह कथा कहती है, वह श्वेत कल्प था और यह अंधकार युग। वह था आलोक का युग--सतयुग, स्वर्ण-युग! और अब है यह कलियुग! अंधकार का युग। तमस का युग। लोग तामसी हो गए हैं।
बात उलटी है। वह युग अंधकार का युग रहा होगा, जब इस तरह की मूढ़ताएं धर्म के ना पर चलती रहीं। और लोग इनको मानते रहे। आज पहली दफा मनुष्य जाति थोड़ी प्रौढ़ होनी शुरू हुई है। थोड़ी। इस प्रौढ़ता से बड़ी संभावनाएं हैं। इससे पुराना धर्म तो जाएगा। यह जो प्रौढ़ता की बाढ़ आएगी, यह जो आलोक की बाढ़ आएगी, इसमें सारा कचरा बह जाएगा। मनुष्य के एक नये जीवन की शुरुवात हो सकती है।
मैं अपने संन्यासियों के द्वारा उसी शुरूवात का पहला-पहला कदम उठा रहा हूं। यह पहली किरण है उसी सूरज की। मनुष्य को नई जीवन-दृष्टि चाहिए,

नया धर्म का बोध चाहिए, नई चेतना चाहिए, नई कथाएं चाहिए, नये अर्थ चाहिए, नये शास्त्र चाहिए, नया उदबोध चाहिए। और जब तक यह न होगा तब तक कोई आशा नहीं है। एक ही आशा है कि यह हो सकता है। यह आशा तुम पर निर्भर है।

आज इतना ही।

ज्यूं मछली बिन नीर
दसवां प्रवचन

ध्यान विधि है मूर्च्छा को तोड़ने की

पहला प्रश्नः भगवान,
क्या आप इस सूत्र पर कुछ कहना पसंद करेंगे? --
नास्ति कामसमो व्याधि नास्ति मोह समो रिपुः।
नास्ति क्रोध समो वहिनास्ति ज्ञानात परं सुखम्।।
काम के समान कोई व्याधि नहीं है, मोह के समान कोई शत्रु नहीं है, क्रोध
के तुल्य कोई अग्नि नहीं है और ज्ञान के उत्कृष्ट कोई सुख नहीं है।

चैतन्य कीर्ति!
यह उन थोड़े से सूत्रों में से एक है जिनकी सदा ही गलत व्याख्या होती रही है। अमृत भी जहर हो जाता है गलत हाथों में। सही हाथों में जहर भी औषधि हो जाता है। सवाल गलत और सही का कम, सवाल उन हाथों का होता है जिनमें सूत्र पड़ जाते हैं। सही हाथों में तलवार जीवन का रक्षण है और गलत हाथों में निश्चित ही हिंसा बनेगी।
सूत्र तो संकेत है। उन में विस्तार नहीं है, इसलिए उन्हीं सूत्र कहते हैं। निचोड़ हैं। बहुत थोड़े में कहा है। और जब कोई चीज बहुत-थोड़े में कही जाती है तो एक खतरा है। समझने के लिए काफी अवकाश होता है। और तुम समझोगे अपनी समझ से।
इस सूत्र पर अज्ञानियों ने जो व्याख्या की है उससे भयंकर अहित हुआ है। तो पहले तो उनकी व्याख्या ख्याल में ले लें, ताकि इसकी सम्यक व्याख्या की तरफ तुम्हारी आंखें उठ सकें। जिन्होंने स्वयं नहीं जाना है, जिनका ज्ञान उधार है, बासा है, जिनके भीतर स्वयं के ध्यान का दीया नहीं जला है-- उनसे इससे ज्यादा अपेक्षा भी नहीं हो सकती। वे भूल करने को आबद्ध हैं। उन्होंने इस सूत्र की यूं व्याख्या की हैः "नास्ति कामसमो व्याधि"... । काम का अर्थ उनके लिए रह गयाः यौन। क्योंकि उनके जीवन में यौन से ज्यादा और कोई सूझ-बूझ नहीं है।
"काम" बहुत बड़ा शब्द है। व्यापक उसके अर्थ हैं। उसे यौन पर ही आबद्ध
कर देना भ्रांत है। फिर उसके दुष्परिणाम होंगे। दुष्परिणाम यह होंगे कि जब काम सिर्फ यौन बन जाए, आकाश को जैसे कोई आंगन बना दे। और काम है व्याधि, तो उपाय हो जाता है दमन, दबाओ, मिटाओ, नष्ट करो। दुश्मन को तो मिटाना ही होगा। व्याधि को तो जड़मूल से उखाड़ फेंकना होगा। और इसका परिणाम यह हुआ कि करीब-करीब सारी मनुष्यता उसी व्याधि में और भी गहरी डूब गई। दमन से कोई मुक्ति तो होती नहीं। दमन मुक्ति का उपाय नहीं है। रूपांतरण से मुक्ति होती है। जैसे कोई बीमारी को दबा ले, तो बीमारी और भीतर चली जाएगी, और अचेतन में उतर जाएगी। पहले परिधि पर थी, अब केंद्र पर पहुंच जाएगी। पहले देह में थी, अब मन में पहुंच जाएगी। मन से आत्मा तक उसकी मवाद उतर जाएगी। इसलिए तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों का जीवन मवाद से भरा हुआ जीवन है।
वे घाव हैं--सड़ते हुए घाव! हां, ऊपर से उन्होंने राम नाम की चदरिया ओढ़ रखी है, भीतर सिवाय बदबू के और कुछ भी नहीं है। पाखंड, गहन पाखंड! कहेंगे कुछ, करेंगे कुछ। करेंगे कुछ, बताएंगे कुछ। उन्होंने मुखौटे पर मुखौटे लगा रखे हैं।
इस सूत्र की गलत व्याख्या बहुत बड़ा कारण है पाखंड का।
काम का अर्थ होता हैः और और की मांग। काम का अर्थ सिर्फ यौन नहीं होता। वह केवल एक शाखा है काम के बड़े वटवृक्ष की। धन भी काम है। और इसलिए तुम जरा गौर से देखना। कृपण आदमी धन को ऐस देखता है जैसे कामी स्त्री को देखता हो, सुंदर देह को देखता हो। धन का दीवाना नोटों को ऐसे छूता है, जैसे उसने अपनी प्रेयसी के तन को छुआ हो। पद भी काम है। पदाकांक्षी उतना ही कामग्रस्त है जितना कि कोई और कामी। और तब एक बात और तुम्हें समझ में आ जाएगीः जो पद के लिए दीवाना है वह चाहे तो कामवासना से, जिसको तुम साधारणतः कामवासना समझते हो, यौन, उससे मुक्त हो सकता है, बड़ी आसानी से।

क्योंकि उसकी सारी ऊर्जा पद की दा.ैड में लग जाती है। जो धन के पीछे दौड़ रहा है वह भी अपनी सारी ऊर्जा को धन के लिए नियोजित कर सकता है। उसकी सारी ऊर्जा लोभ बन जाती है, लिप्सा बन जाती है। ऐसा व्यक्ति बड़ी आसानी से काम को दबा ले सकता है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। क्योंकि उसने काम को एक नया ढंग दे दिया, एक नई यात्रा पकड़ा दी, एक नया मुखौटा उढ़ा दिया।
राजनीतिज्ञ बहुत चिंतित नहीं होते यौन से। कोई जरूरत नहीं है। उलटे राजनीतिज्ञ ब्रह्मचर्य की बातें करना शुरू कर सकते हैं। और तुम्हें उनकी बातें जंचेंगी भी, क्योंकि उनके जीवन में ब्रह्मचर्य से मिलती-जुलती चीज तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगी। जैसे मोरारजी देसाई। पद के पीछे दीवाने हैं, पागल हैं। पचासी वर्ष की उम्र में भी पागल हैं। सारी कामवासना ने एक दिशा ले ली है। अब इसमें और शाखाएं पैदा होने का उपाय ही न रहा। यह कोई ब्रह्मचर्य नहीं है।
सैनिकों को हम उनके सामान्य स्वाभाविक यौन से अवरुद्ध करवा देते हैं--सिर्फ इसीलिए, क्योंकि अगर सैनिक सामान्य यौन का जीवन जीए तो उसकी लड़ने में कोई उत्सुकता नहीं होती। उसकी ऊर्जा तो यौन में ही प्रवाहित हो जाती है। तो सैनिकों को हम उनकी पत्नियों से दूर रखते हैं। सैनिकों को हम सब तरह से रुकावट डालते हैं कि उनकी कामऊर्जा किसी तरह से प्रवाहित न हो, कोई और आयाम न ले, ताकि वे उबलने लगें। और उस उबलने में ही हम उनको लड़ा सकते हैं। तब वे दीवाने की तरह एक-दूसरे की हत्या करते हैं4 कामवासना हिंसा बन जाती है।
जो स्वर्ग के लिए लालायित हैं वे भी ब्रह्मचर्य साध सकते हैं--बड़ी आसानी से, क्योंकि उनकी सारी आकांक्षा एक ही दिशा में प्रवाहमान हो गई है-- स्वर्ग, मोक्ष। अब कहीं और दूसरी शाखाओं के निकलने के लिए उपाय न रहा। तुम अगर बगीचे से प्रेम करते हो तो तुम्हें एक बात पता होगी। अगर तुमने फूलों की प्रतियोगिता में भाग लिया है तो तुम्हें यह बात पता होगी कि माली को अगर फूलों की प्रतियोगिता में भाग लेना होता है तो गुलाब के पौधे पर वह बहुत सारे फूल नहीं खिलने देता। वह कलियों को काट देता है। एक ही फूल को खिलने देता है। स्वभावतः जब सारी कलियां तोड़ दी जाती हैं तो जितनी भी उस गुलाब की क्षमता है फूलों को पैदा करने की, वह एक ही फूल में प्रवाहित होती है। वह फूल बहुत बड़ा हो जाता है। प्रतियोगिता में यह माली जीत जाएगा। हालांकि गुलाब को इसने बड़ा दीन हीन कर दिया; जिस पर बहुत फूल खिलते उन सबकी ऊर्जा को इसने एक ही बहाव दे दिया। फूल तो बड़ा हो गया, मगर बहुत फूलों की जगह बस एक ही फूल रह गया। यही आदमी के साथ किया जाता रहा है। किसी भी तरह की वासना काम है। यह इसकी सम्यक व्याख्या होगी। काम का अर्थ है कामना। यौन भी एक कामना है, धन भी, पद भी, प्रतिष्ठा भी, स्वर्ग भी, मोक्ष भी, परमात्मा भी। तुम जब भी कुछ पाना चाहते हो तब यह सब काम है। यह इसकी सम्यक व्याख्या होगी। और यह तुम्हें समझ में आ जाए तो जीवन में क्रांति हो जाए। "नास्ति कामसमो व्याधि।" तब तुम इस सूत्र का सम्यक अर्थ खोल पाओगे। तब इसमें छिपा राज तुम्हारे हाथ लग जाएगा। जिसके जीवन में कामना है, वह व्याधिग्रस्त है। जो और कुछ की आकांक्षा कर रहा है, जो उससे तृप्त नहीं है जहां है और जैसा है, वैसा व्यक्ति रुग्ण है, व्याधिग्रस्त है।
स्वस्थ कौन है? स्वस्थ वह है जो अभी और यहीं है, जैसा है वैसा ही, आह्लादित है। अगर इस क्षण मौत आ जाए तो वह यह भी न कहेगा कि घड़ी भर ठहर जा; मेरा कोई काम अधूरा रह गया है।
उसका कोई काम कभी अधूरा नहीं है। वह जो कर रहा है इतनी समग्रता और परिपूर्णता से कर रहा है, इतने आह्लाद से, उत्सव से, उसके लिए साधन और साध्य का भेद नहीं है। स्वस्थ व्यक्ति वह है जिसके लिए साधन ही साध्य है; जिसके लिए साधन और साध्य में कोई भेद नहीं है; जिसके लिए कोई और साध्य नहीं है, बस साधन ही साध्य है; जिसके लिए मंजिल और मार्ग में कोई अंतर नहीं है। मंजिल मार्ग है। मार्ग का प्रत्येक कदम मंजिल है। वह हर कदम पर मंजिल पर है। रास्ता अभी टूटता हो, अभी टूट जाए। कल की उसे कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि आज काफी है।

जीसस अपने शिष्यों के साथ एक खेत से गुजर रहें हैं। खेत के किनारे पर लिली के फूल खिलें हैं--सफेद फूल। जेरुसलम के आसपास लिली के फूल बहुत खिलते हैं। मौसम अनुकूल है। भूमि अनुकूल है लिली के फूलों के लिए। और इतने खिलते हैं कि उनकी कोई फिक्र भी नहीं करता। कीमत तो उसकी होती है, जो न्यून हो। जब चारों तरफ लिली के फूल खिलते हैं तो कौन फिक्र करता है! लिली के फूल गरीब फूल हैं। सर्वहारा। जब चाहो तब, जहां चाहो वहां उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन जीसस ठिठक गए और उन्होंने अपने शिष्यों से कहाः "देखते हो लिली के फूलों को! देखते हो इन गरीब फूलों को! मैं तुमसे कहता हूं कि सम्राट सोलोमन भी।"
यहूदियों में सम्राट सोलोमन सबसे बड़ा सम्राट है। उसकी यश गाथा का अंत नहीं है। उसके धन उसके साम्राज्य की कोई सीमा नहीं है। अकूत उसके पास धन था। और सुंदरतम वह व्यक्ति था। दुनिया की श्रेष्ठतम स्त्रियों ने उससे निवेदन किया था विवाह का। दूर-दूर से राजकुमारियां उसके चरणों में आ गिर पड़ती थीं। तो यहूदियों में सोलोमन की बड़ी कहानियां हैं। सुंदर था, धनी था और बड़ा बुद्धिमान भी--जो कि बड़ी ही मुश्किल घटना है एक साथ सब होना--ऐसा धन ऐसा सौंदर्य, ऐसी प्रतिभा। जो यहूदी नहीं हैं वे भी, जिन्हें सोलोमन के संबंध में कुछ पता नहीं हैं वे भी इस कहावत से परिचित हैं। इस देश में भी यह कहावत है कि बड़े सुलेमान बने बैठे हो! सुलेमान सोलोमन का हिंदी रूप है, कि क्या समझा है तुमने अपने को, सुलेमान समझा है? शायद उसको पता भी नहीं जो आदमी यह कह रहा है कि वह क्या कह रहा है? सुलेमान यानि कौन? मगर सुलेमान बुद्धिमत्ता का, सौंदर्य का, समृद्धि का प्रतीक हो गया है। वह सोलोमन का ही रूप है... तो जीसस ने अपने शिष्यों को कहा कि मैं तुमसे कहता हूं कि सोलोमन भी अपनी सारी-सज्जा के साथ, अपने परम सौंदर्य में इतना सुंदर नहीं था--जितने ये लिली के दरिद्र फूल। और तुम जानते हो कि इनके सौंदर्य का राज क्या है? इनके सौंदर्य का राज है कि ये अभी और यहीं जीते हैं। इनको कल की कोई चिंता नहीं। इन्हें कल का कोई पता नहीं।
और जीसस ने कहाः यही मैं तुमसे कहता हूं। अभी जीयो और यहीं! तुम भी ऐसे
ही सुंदर हो जाओगे। तुम्हारे जीवन में भी ऐसी सुगंध होगी। तुम भी इन्हीं फूलों जैसे खिल जाओगे। तुम्हारा जीवन भी एक उत्सव बन जाएगा, एक नृत्य, एक गीत।"
काम का अर्थ हैः और की दौड़। निष्काम का अर्थ हैः अदौड़। ज्यूं का त्यूं ठहराया! जन रज्जब ऐसी विधि जाने ज्यूं का त्यूं ठहराया। रज्जब ठीक कह रहे हैं कि मुझे उस विधि का पता है, जिससे चीजें ठहर जाती हैं, जैसी हैं वैसी ठहर जाती हैं। दौड़ बंद हो जाती है। दौड़ है काम। दौड़ है व्याधि।
और तुम सब दौड़े हुए हो, भागे हुए हो। तुम जहां हो वहां कभी नहीं हो, हमेशा कहीं और। जितना है उतना पर्याप्त नहीं, कुछ और चाहिए, और चाहिए! और यह "चाहिए" का अंत नहीं आता, आ नहीं सकता। यह दौड़ ऐसी है जैसे कोई क्षितिज को छूने के लिए दौड़े। ऐसे तो दिखाई पड़ता है पास ही, कि यही कोई दस-पांच मील की दूरी आकाश जमीन को छू रहा है; दौडूंगा तो बहुत से बहुत घंटा दो घंटा पहुंच जाऊंगा। लेकिन तुम कितना ही दौड़ो, लाख दौड़ो, सारी जमीन का चक्कर लगा आओ तो भी तुम क्षितिज तक नहीं पहुंच पाओगे। क्षितिज और तुम्हारे बीच की दूरी हमेशा उतनी ही रहेगी जितनी जब तुमने दौड़ शुरू की थी तब थी। दौड़ अंत होगी तब भी दूरी उतनी ही रहेगी। क्षितिज और तुम्हारे बीच की दूरी मिटती ही नहीं, क्योंकि क्षितिज है ही नहीं, दूरी मिटे तो कैसे मिटे?
काम का अर्थ हैः तुम्हारे सामने हमेशा एक भ्रामक क्षितिज है, जिसको पाने के लिए तुम दौड़ रहे हो। मगर तुम आगे बढ़ते हो, क्षितिज भी आगे बढ़ जाता है। तुम्हारे पास इतना है अभी, दुगना हो जाए, अगर यह तुम्हारा क्षितिज है कि दुगना हो जाए, तो जब दुगना होगा तब भी यही क्षितिज तुम्हारे भीतर रहेगा कि अब फिर दुगना हो जाए। वह भी संभव है हो जाए, मगर बात वही की वही रहेगी, परेशानी वही की वही रहेगी--फिर दुगना हो जाए। यह दुगना होता चला जाए, यह तुम्हारा गणित कभी छूटेगा नहीं। और जितने तुम सफल होते जाओगे उतना ही यह गणित तुम्हें जोर से पकड़ेगा, क्योंकि लगेगा दुगना हो सकता है; हो गया है,, तो और कर लो।

अगर हारे तो दुखी, अगर जीते तो दुखी। इस संसार की बड़ी अजीब कथा है, बड़ी अजीब व्यथा है। यहां हारने वाले तो हारते हैं, यहां जीतने वाले भी हार जाते हैं। यहां असफल तो असफल होते ही हैं; सफल जो हैं वे भी असफल हो जाते हैं। यहां हर हालत में दुख हाथ लगता है। हारे तो दुख हाथ, विषाद कि हार गया, टूट गया, खंडहर हो गया। जीतो तो विषाद। महल मिल जाता है तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि दुगने बड़े महल की योजना बन जाती है। तुम हमेशा ही दीन रहोगे।
व्याधि का अर्थ हैः तुम हमेशा ही दीन और रुग्न रहोगे। तो इसका संबंध सिर्फ यौन से नहीं हो सकता। यौन इसका एक अंग मात्र है, एक पहलू। और इसके अनंत पहलू हैं। यौन का मतलब होगाः इस स्त्री से तृप्ति नहीं मिलती, उस स्त्री से मिलेगी। उससे भी नहीं मिलेगी तो और किसी से मिलेगी। दौड़े जाओ, दौड़े जाओ। भागे जाओ। तृप्ति कभी नहीं मिलेगी, न किसी स्त्री से मिलेगी, न किसी पुरुष से मिली है। ऐसे तृप्ति मिलती ही नहीं। यह तो अतृप्ति की आग है, जिसमें तुम ईंधन डाल रहे हो। फिर इससे क्या फर्क पड़ता है कि इस मकान में तृप्ति मिलेगी या उस मकान में तृप्ति मिलेगी, इतने धन से मिलेगी या उतने धन से मिलेगी, इस पद से मिलेगी या उस पद से मिलेगी। ये सब उसी वृक्ष की शाखाएं हैं।
काम को यौन ही मत समझो। नहीं तो लोग बस यौन से ही लड़ते रह जाते हैं। और जीवन, अगर यौन से तुम लड़े, तो उसका परिणाम यह होने वाला है कि यौन का द्वार तो बंद हो जाएगा। लड़ोगे तो द्वार बंद कर सकते हो, मगर यौन की ऊर्जा नये द्वार खोज लेगी। जैसे कोई झरने को पत्थर से अटका दे तो झरना पास से बह कर निकलेगा। वहां से रोक दे तो कहीं और से निकलेगा। लेकिन झरना है तो झरना बहेगा। खंड-खंड हो जाएगा, लेकिन कहीं न कहीं से बहेगा, रिसेगा।
काम व्याधि है, क्योंकि और की दौड़ कभी स्वस्थ नहीं होने देती, अपने में नहीं ठहरने देती, अपने में नहीं रुकने देती। और वहां है आनंद। रुकने में है आनंद, दौड़ने में है दुख। फिर तुम किसलिए दौड़ते हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। काम है मूर्च्छा, क्योंकि जो मूर्च्छित है वही दौड़ सकता है। जो होश में आ गया वह दौड़ने वालों पर हंसेगा क्योंकि जो मूर्च्छित है वही दौड़ सकता है। जो होश में आ गया वह दौड़ने वालों पर हंसेगा क्योंकि वे सब स्वर्णमृग की तलाश में चले हैं। और मजा यह है कि जाते हो स्वर्णमृग की तलाश में और अपनी सीता को गंवा बैठते हो। जो अपनी थी वह खो जाती है--उसको पाने के लिए जो कि जरा भी बुद्धि होती, जरा भी विचार होता, जरा भी होश होता, तो तुम पहले से ही समझ लेते कि स्वर्ण-मृग कहीं होते हैं!
सभी का जीवन बस रामायण की कथा है। राम चले स्वर्ण-मृग की तलाश में और सीता को गंवा बैठे। जो अपनी थी उसे खो बैठे और जो अपना कभी हो नहीं सकता, उसकी तलाश में निकल गए। यह मूर्च्छा का सबूत है। यह बेहोशी का सबूत है। काम का अर्थ हैः मूर्च्छा। और जब तक मूर्च्छित है, मनुष्य नहीं है। तब
तक पशु है। और पशु को तो माफ किया जा सकता है, क्योंकि उसकी बेचारे की क्षमता नहीं है जागरण की। लेकिन मनुष्य को कभी माफ नहीं किया जा सकता; उसकी क्षमता है जागरण की। और क्षमता हो और उपयोग न करो तो तुम्हारे अतिरिक्त और कौन जिम्मेवार होगा? इसलिए कोई पशु पापी नहीं होता। तुम किसी पशु को पानी नहीं कह सकते। मनुष्य ही को पापी कह सकते हो।
और पाप क्या है? तुम्हें जो अवसर मिला है उसका उपयोग न करना पाप है। और पुण्य क्या है? तुम्हें जो अवसर मिला है उसका समुचित उपयोग कर लेना पुण्य है। जीवन की क्षमता हैः मनुष्य के भीतर आ कर जागरण का दिया जल सकता है। काम है मूर्च्छा। इस मूर्च्छा को तोड़ना है। यह मूर्च्छा ध्यान के बिना नहीं टूटती। ध्यान विधि है मूर्च्छा को तोड़ने की। काम है पशुत्व, वासना, और-और की दौड़। और ध्यान है ठहरना, रुकना, और से मुक्त हो जाना। जैसे हैं, जहां हैं, परितुष्ट। जो है उससे आनंदित, अनुग्रहित। जो है वही बहुत है। जो है उसकी भी हमारी पात्रता नहीं है। जो मिला है उसके लिए भी धन्यवाद हमारे भीतर नहीं उठता।
और मजा यह है कि जो है, अगर तुम्हारे लिए अनुग्रह का कारण बन जाए तो और-
और वर्षा होगी तुम्हारे ऊपर, अमृत और झरेगा। वह सिर्फ अनुगृहित लोगों पर

ही झरता है। लेकिन तुम्हारे हृदय में तो शिकायतें हैं, शिकवे हैं, गिला है। न मालूम कितने-कितने कांटे तुम अपने हाथ से बोए चले जाते हो! शिकायतों के कांटे। तुम्हारी प्रार्थनाएं भी तुम्हारी शिकायतें हैं। तुम परमात्मा से यही कहने जाते हो हमेशा कि ऐसा क्यों नहीं हुआ, ऐसा होना चाहिए था। तुम कभी यह भी कहने गए हो कि धन्यवाद तेरा, जैसा होना चाहिए था वैसा ही हो रहा है? जिस दिन तुम दुख के क्षण में भी कह सकोगे कि जैसा होना चाहिए वैसा ही हो रहा है, दुर्घटना में भी कह सकोगे कि जैसा हो रहा है वैसा ही होना चाहिए था, जिस दिन तुम्हारा अनुगृह का भाव बेशर्त होगा--उस दिन तुम जानोगे प्रार्थना क्या है।
मगर यह बिना जागरण के तो नहीं हो सकता। जहां और-और की दौड़ लगी है वहां
तो शिकायत होगी ही। वहां यह भी शिकायत नहीं होती कि मुझे क्यों कम मिला है?
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम ईमानदार हैं, नैतिक हैं, सदाचरण
से रहते हैं, और फिर भी बेईमान और बदमाश और लुच्चे और लफंगे धन कमा रहे हैं, पद पर पहुंच रहे हैं, प्रतिष्ठित हो रहे हैं और हमें कुछ भी नहीं मिल रहा है। न तो ये नैतिक हैं, न ये ईमानदार हैं, न ये सदाचरण को उपलब्ध हैं। क्योंकि जो नैतिक है उसको तो नैतिक होने में ही ऐसा परम सौभाग्य मिल गया कि क्या वह कोई पद चाहेगा? और जो ईमानदार है, उसको तो ईमानदार होने में ही रस स्रोत उपलब्ध हो गए कि क्या अब धन के पीछे दौड़ेगा? और जो सच में ही धार्मिक है, क्या अधार्मिकों से उसकी प्रतिस्पर्धा हो सकती है? वह दया करेगा कि ये बेचारे धन में ही मरे जा रहे हैं, ये पद में ही सड़े जा रहे हैं। उसे दया आएगी, करुणा आएगी। मगर इन्हें ईर्ष्या आ रही है। ईर्ष्या सिर्फ एक बात की सूचना है कि ये भी उसी तरह के लोग हैं। शायद बेईमानी करने की हिम्मत नहीं है, इसलिए ईमानदार हैं। मगर बेईमान को जो मिल रहा है वही ये भी चाहते हैं। ये दोहरे बेईमान हैं। ये ईमानदारी से भी जो लाभ मिलना चाहिए परलोक में, वह भी लेना चाहते हैं और बेईमानी से जो लाभ यहां मिलता है, वह भी ईमानदारी से ले लेना चाहते हैं। ये दोनों दुनिया संभाल लेना चाहते हैं। ये दोनों लोक सम्हाल लेना चाहते हैं--यहां भी जीत गए, वहां भी जीत जाएं। ये बहुत चालबाज लोग हैं। न इन्हें नीति का पता है, न इन्हें धर्म का पता है। जाग्रत हुए बिना पता चल भी नहीं सकता।
"नास्ति कामसमो व्याधि"--मैं स्वीकार करता हूं, यह सूत्र बहुमूल्य है। मगर इसका अर्थ मेरे ढंग से समझना होगा। निश्चित ही और की दौड़ से बड़ी इस दुनिया में कोई बीमारी नहीं है। क्योंकि सब बीमारियों का दूसरे इलाज कर सकते हैं, इस बीमारी का इलाज सिर्फ तुम्हीं कर सकते हो, कोई दूसरा नहीं कर सकता। यहां बीमार और वैद्य एक ही व्यक्ति को होना है। यहां बीमार को ही अपनी चिकित्सा करनी है, इसमें कोई सहयोगी नहीं हो सकता। इसलिए यह बड़ी से बड़ी व्याधि है, महाव्याधि।
"नास्ति मोह समोरिपुः।" और मोह के समान कोई शत्रु नहीं। मोह को भी समझने की कोशिश करना। उसको भी गलत समझा गया है। मोह से लोग मतलब लेते हैं-- पत्नी, बच्चे, घर द्वार, इनको छोड़ कर भाग जाओ। इनको छोड़ दिया तो मोह से मुक्त हो गए। यह बड़ी जड़बुद्धि की व्याख्या हुई। क्योंकि जिसने घर छोड़ा, पत्नी छोड़ दी, बच्चे छोड़ दिए--यह कोई कठिन नहीं है। यह मामला बहुत कठिन नहीं है। सच तो यह है कि पति पत्नियों से परेशान हैं, पत्नियां पतियों से परेशान हैं। इससे ज्यादा आसान और क्या होगा कि वे भाग खड़े हों? आश्चर्य तो यह है कि अनंत-अनंत लोग भागते क्यों नहीं? इनको कभी का शंकराचार्य के शिष्य हो जाना चाहिए कि जगत माया है और जंगलों में बैठ जाना चाहिए। पता नहीं क्यों रुके हैं, किस कारण रुके हैं!
चंदूलाल का बेटा पूछ रहा था चंदूलाल से, पापा, आपने मम्मी से शादी क्यों की?
चंदूलाल ने गौर से अपने बेटे को देखा और कहाः तो तुझे भी आश्चर्य होने लगा?
चंदूलाल की पत्नी चंदूलाल से कह रही थी, मान लो हमारे घर में कोई चोर घुस आए तो आप क्या करेंगे?

चंदूलाल ने कहाः जो आप कहेंगी।
पत्नी ने कहाः मैं क्यों?
चंदूलाल ने कहाः क्योंकि अब तक इस घर में मुझे अपनी इच्छा से कुछ करना नसीब नहीं हुआ। तो जब चोर आएंगे, आपसे पूछ लूंगा। जो आप कहेंगी वही करूंगा।
कौन पति नहीं भागना चाहेगा! ये तो बड़े हिम्मतवर बहादुर लोग हैं कि जमे हुए हैं। ये तो कहते हैंः सौ-सौ जूते खाएं तमाशा घुस कर देखें! कोई फिकर नहीं, तमाशा देखेंगे।
मैं कहां हूं? चंदूलाल ने अस्पताल में एक नर्स को देख कर पूछा। लगता
है मैं स्वर्ग में आ गया हूं। नर्स बड़ी सुंदर थी और चंदूलाल अभी-अभी क्लोरोफार्म से बाहर आ रहे थे। सो कुछ थोड़ा-थोड़ा होश था, कुछ थोड़ी-थोड़ी बेहोशी थी, कुछ सपना-सपना सा था। उस तैरती सी सपने की अवस्था में यह सुंदरी एकदम प्रकट हुई, सोचा उर्वशी है कि मेनका है! पूछने लगेः मैं कहां हूं? लगता है मैं स्वर्ग में आ गया हूं।
पास खड़ी उनकी पत्नी बोलीः नहीं पप्पू के पापा, अभी तो मैं तुम्हारे साथ हूं। कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हो?
कहां का स्वर्ग, जब पत्नी मौजूद है? तत्क्षण होश आ गया चंदूलाल को। सब क्लोरोफार्म नदारद हो गया, जैसे ही पत्नी की आवाज सुनी। पत्नी की आवाज अगर लोग स्वर्ग में भी सुन लेंगे, एकदम संसार में आ जाएंगे। सब चौकड़ी भूल जाएंगे।
चंदूलाल हाल में भोगी हुई मुसीबतों की कथा अपने मित्र को बड़े विस्तार
से सुना रहे थे। मित्र ने कहाः अरे यह तो कुछ भी नहीं है। कल मुझ पर जो गुजरी वह सुनो। कल रात मुझे सपना आया कि मुझे ले कर मेरी बीबी और हेमामालिनी में हाथापाई हो गई और मेरी बीबी जीत गई।
पत्नियों से कौन भागना न चाहेगा और पतियों से कौन बचना न चाहेगा! लाख ऊपर-ऊपर लोग कुछ कहते हों, भीतर तो बात कुछ और ही है। इसलिए यह बात लोगों को जमी, यह अर्थ समझ में आ गया लोगों को कि पत्नी छोड़ दो, बच्चे छोड़ दो--यही मोह है।
मोह का इतना छोटा अर्थ मत करो। घर में है भी क्या तुम्हारे, जो तुम छोड़
कर जा रहे हो? दुख ही दुख है, पीड़ा ही पीड़ा है। सुबह से सांझ तक कोल्हू के बैल की तरह जुते हुए हो। और कोई धन्यवाद देने को भी राजी नहीं है। बच्चे भी धन्यवाद देने को राजी नहीं हैं, पत्नी भी राजी नहीं है, पति भी राजी नहीं है, पिता भी राजी नहीं है, मां भी राजी नहीं है, कोई राजी नहीं है किसी से। इससे भाग जाना तो सीधा गणित है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है।
तुम्हारा जो पुराना संन्यास था, दो कौड़ी का था। वह इसी उपद्रव पर निर्भर था। मोह कुछ और बड़ी बात है। उसे समझने की कोशिश करो। मोह का अर्थ हैः मेरे का भाव। मोह से मुक्ति का अर्थ होगाः मेरे से मुक्ति। तुमने घर छोड़ दिया; "मेरा" यह भाव छूटा? यह नहीं छूटता। फिर मेरा मंदिर, मेरी मस्जिद, मेरा धर्म, मेरा शास्त्र! एक व्यक्ति घर छोड़ कर मुनि हो जाता है, समाज छोड़ देता है; लेकिन जिस समाज को छोड़ आया है उसी समाज का सिखाया हुआ धर्म नहीं छोड़ता। यह कैसा छोड़ना हुआ? अभी भी कहता है--मैं जैन हूं, मैं हिंदु हूं, मैं मुसलमान हूं। उसी समाज ने तो यह सब बकवास सिखाई है--उन्हीं मां बाप ने, जिनको तुम छोड़ आए हो; उनको तो छोड़ आए लेकिन उन्होंने जो कचरा तुम्हारे दिमाग में भर दिया था वह तो साथ ही ले आए। मेरा देश, मेरी जाति, मेरा कुल! यह अकड़ जाती नहीं। यह अहंकार हटता ही नहीं, और जोर से पकड़ लेता है। क्योंकि वहां तो बंटा हुआ था--मेरी पत्नी थी, मेरा बेटा था, बेटी थी, और रिश्तेदार थे, मां थी, बहन थी, सारा विस्तार था, धन था, मकान था, अब सब छूट गया तो इस मेरे को अब पकड़ने को जो बचा थोड़ा बहुत--मेरी गीता, मेरा कुरान, मेरा मंदिर, मेरा धर्म--अब यह मेरे ने इस कर शिकवा कसा। और यह ज्यादा गहरा शिकंजा है, क्योंकि धन तो दिखाई पड़ता है, छोड़ सकते हो। जो दिखाई पड़ता है उसे छोड़ने में कठिनाई नहीं है। अब यह "मेरे" जो है, बड़ा सूक्ष्म हो गया, अब इसे छोड़ना मुश्किल हो जाएगा। अब यह "मेरे" ने तो तुम्हें भीतर से पकड़ा। यह बड़ा नाजुक और बारीक हो गया। इसको देखने और पहचानने के लिए आंखें चाहिए।

जो मुनि अपने को जैन कहता है वह मुनि है ही नहीं। यह कैसा मौन? अभी पुरानी बकवास तो जारी है। जो संन्यासी अपने को अभी भी हिंदु कहता है, वह तो संन्यासी नहीं है। जब हिंदु जाति को ही छोड़ दिया... । अभी भी संन्यासी हो कर जो शूद्र को शूद्र मानता है, ब्राह्मण को ब्राह्मण मानता है--वह खाक संन्यासी है। समाज को छोड़ आया है, लेकिन समाज की व्यवस्था तो इसकी खोपड़ी में समाई हुई है। यह शूद्र के साथ भोजन करने को तैयार है?
दिगंबर जैन मुनि यात्रा करते हैं तो वे सिर्फ जैन के घर से ही भोजन ले सकते हैं। क्या गजब का त्याग किया है! छोड़ दिया समाज, मगर भोजन अभी जैन घर से ही लेंगे। तो अब जैन सारे गांव में तो होते भी नहीं। और तीर्थयात्रा पर जात है मुनि तीर्थयात्रा पर जाने की जैन मुनि को क्या जरूरत है? मेरा तीर्थ है! तो पैदा होता है केरल में और जाता है शिखरजी। लंबी यात्रा केरल से कलकत्ता तक, अब इसमें बहुत से ऐसे गांव पड़ेंगे जहां कोई जैन घर नहीं होता। तो एक उपद्रव चलता है, दिगंबर जैन मुनि के साथ एक उपद्रव चलता है। दस-पंद्रह चौके उसके साथ चलते हैं। तुम पूछोगे, दस पंद्रह क्यों? उसका भी राज है। एक चौका छोड़ा। एक चौका होता है एक घर में, अब दस पंद्रह पीछे चलते हैं। क्योंकि महावीर ने यह सूत्र दिया है कि तुम सुबह से एक प्रतिज्ञा लेना और वह प्रतिज्ञा जिस मकान के सामने पूरी हो, वहीं से भोजन ग्रहण करना। अब अगर एक ही चौका हो तो मुश्किल हो जाए, पता नहीं प्रतिज्ञा क्या ले जैन मुनि। हालांकि जब जैन मुनि प्रतिज्ञाएं ऐसी लेते हैं जो सबको मालूम हैं। जैसे जिस घर के सामने दो केले लटके हों, इस तरह की दस पंद्रह बंधी हुई प्रतिज्ञाएं हैं उनकी। सो पंद्रह चौके साथ चलते हैं, वे पंद्रह प्रतीक अपने अपने चौके के सामने लटका लेते हैं। उनमें से कोई न कोई एक प्रतीक तो होने ही वाला है।
महावीर तो कुछ और ढंग के प्रतीक लेते थे। एक प्रतीक दुबारा नहीं लेते थे। और जो प्रतीक लेते थे, वे भी बड़े बेबूझ थे। ऐसे कभी-कभी महावीर को छह महीने भोजन न मिला। और यह जैन मुनि को रोज भोजन मिलता है। महावीर ने एक बार सुबह से व्रत ले लिया--अपने ध्यान में वे व्रत लेते थे--कि आज जिस घर के सामने कोई राजकुमारी, पैरों में बेड़ियां पड़ी हों, एक पैर भीतर हो एक पैर बाहर हो दहलीज के, हाथों में हथकड़ियां पड़ी हों, हो राजकुमारी, भोजन का आग्रह करेगी, तो भोजन लूंगा। अब एक तो राजकुमारी, फिर उस पर ये शर्तें तुम देखो पैरों में बेड़ियां पड़ी हों, राजकुमारी है। तो किसलिए पैरों में बेड़ियां पड़ी हों? हाथों में जंजीरें पड़ी हों। और फिर यह शर्त कि एक पैर भीतर हो देहली के, एक पैर बाहर हो। और जिसकी यह दशा होगी, जो इस तरह से बंधी होगी, वह क्या भोजन की प्रार्थना करेगी? वह कहां से भोजन लाएगी? वह तो खुद ही भोजन के लिए औरों पर निर्भर होगी। वह भोजन की प्रार्थना करे तो मैं भोजन स्वीकार करूंगा! छः महीने तक यह प्रतिज्ञा पूरी नहीं हो सकी। वह रोज गांव में जाते, घूम कर वापिस आ जाते।
इसमें बड़ा अद्भुत राज था महावीर की इस व्यवस्था में। महावीर कहते थेः अगर अस्तित्व को मुझे जिलाना है तो वह शर्त पूरी करेगा। अगर नहीं जिलाना है तो मुझे कुछ जीना नहीं है, मेरी कुछ जीने की इच्छा नहीं है, मेरा काम पूरा हो गया। अगर अस्तित्व को कुछ काम लेना हो मुझसे, तो जिलाओ। मगर उस जीने में मेरी कुछ आकांक्षा नहीं है, मेरी कोई जीवेषणा नहीं है। यह अदभुत सूत्र था कि मेरी कोई जीवेषणा नहीं है, मेरा काम तो पूरा हो चुका। मुझे तो जो पाना था पा लिया, जो होना था हो गया। अब मैं तो तैयार हूं जाने को। मैं तो इस देह से किसी भी क्षण मुक्त होने को तैयार हूं। अब अगर अस्तित्व की कोई इच्छा हो कि मेरे द्वारा कुछ काम हो ले तो, ठीक है। अब यह अस्तित्व की अगर आकांक्षा हो तो अस्तित्व ही इसकी जिम्मेवारी ले, मैं क्यों जिम्मेवारी लूं? जिलाना हो जिलाओ, मिटाना हो मिटाओ। मेरी तरफ से सब बराबर है। जीवन और मृत्यु समान हैं।
इसलिए सुबह से शर्त ले लेते। शर्त पूरी हो जाती तो ठीक, नहीं पूरी होती तो बात खत्म। शिकायत नहीं थी। छह महीने तक शर्त पूरी नहीं हुई, शर्त ही ऐसी थी। छः महीने में भी पूरी हो गई, यह आश्चर्य है। छः साल भी पूरी न होती, कभी पूरी न होती, यह भी हो सकता था। मगर रोज उसी प्रसन्नता से वापिस

लौट आते, वही आनंद, वही अहोभाव। जो प्रकृति की इच्छा है, जो इस परम जगत का आग्रह है, वह पूरा होना चाहिए। जिलाना होगा जिलाएगा, मारना होगा मारेगा।
अपने से सारी जीवेषणा छोड़ दी--यह मोह मुक्ति है। अब मैं बचूं, यह भी इच्छा नहीं है।
महावीर जैन नहीं थे, यह मैं दोहरा देना चाहता हूं। न कृष्ण हिंदू थे।
न मुहम्मद मुसलमान थे। न जीसस ईसाई थे। न बुद्ध बौद्ध थे। हो ही नहीं सकते। जहां मैं ही नहीं बचा वहां "मेरा" कैसे बचेगा? मैं की मृत्यु से ही मोह समाप्त होता है। अभी मेरा तो भीतर घना बैठा है, खूब घना बैठा है और तुम मुक्त होना चाहो मोह से, तो थोथा होगा, पाखंड होगा। हां, धन छोड़ कर भाग सकते हो। मगर जो मैं धन को पकड़े था वही मैं त्याग को पकड़ लेगा। कल तक कहते थे मेरे पास लाखों हैं; अब कहोगे उसी अकड़ से, शायद ज्यादा अकड़ से कि मैंने लाखों को लात मार दी। मगर वही मैं, जो लाखों को पकड़ कर अकड़ कर चलता था, अब लातें मार दीं लाखों को, अब और भी अकड़ कर चलता है। पत्नी छोड़ दी, बच्चे छोड़ दिए, अब इसकी तुम डुंडी पीटोगे कि मैंने क्या-क्या त्याग कर दिया।
जैन मुनि हिसाब रखते हैं, डायरी रखते हैं कि इस साल में उन्होंने कितने उपवास किए। पूरे अपने मुनि-जीवन में उन्होंने कितने उपवास किए, इसकी डायरी रखते हैं। कहीं मिल जाए ईश्वर तो खोल कर रख देंगे डायरी कि देख ले, यह रहा खाता वही! खाते बही करते रहे दुकान पर बैठे-बैठे, अभी भी खाता बही गया नहीं। अभी भी खाता बही है। हर साल घोषणा-पत्र निकलता है कि किस मुनि ने कितने व्रत किए, कितने उपवास किए। जिसने ज्यादा किए वह महात्यागी। जो उतने नहीं कर पाया बेचारा दीन-हीन रह जाता है, मन मसोस कर रह जाता है कि मेरी क्या हैसियत मैं कुछ भी नहीं! अगले साल देखूंगा। अगले साल सब लगा दूंगा दांव पर। आगे निकलना है। वहां भी प्रतिस्पर्धा चल रही है। तो महावीर चूंकि कई घरों के सामने खड़े होते थे, अगर शर्त पूरी होती तो ठीक, शर्त पूरी नहीं होती तो आगे बढ़ जाते। अब यह जैन मुनि क्या करे? यह भी अनुकरण कर रहा है। यह केवल नकलची है। इसकी बंधी हुई धारणाएं हैं, जो वे पंद्रह चौके वालों को पता हैं। बस इसके पंद्रह बंधे हुए मामले हैं कि जो श्राविका द्वार पर हाथ में गुलाब का फूल लेकर भोजन का निमंत्रण दे, उसका स्वीकार कर लेंगे। जिस दरवाजे पर केले लटकें हों, आप के पत्ते लटके हों... । और आम के पत्ते, केले, ये सब बंधी हुई बातें हैं अब। यह हर मुनि वहीं कर रहा है। और वे पंद्रह चौके वाले जानते हैं कि अपना मुनि कौन से नियम लेता है। क्योंकि रोज भोजन मिल जाता है और पंद्रह ही चौके से काम चल जाता है। तो एक चौका छूटा, यह भारी उपद्रव हो गया, अब पंद्रह परिवार इसके पीछे चलते हैं।
जगह-जगह तंबू लगा कर बस्ती बसाते हैं, क्योंकि वहां जैन नहीं हैं, उस बस्ती में, तो उन्हें बस्ती बसानी पड़ती है तंबू लगा कर। क्या धोखा चल रहा है, क्या नाटक चल रहा है! और आ कर मुनि महाराज एक-एक द्वार पर खड़े होते हैं। उनका प्रतीक मिल जाता है।
मैं तो यह भी सोचता हूं, नहीं भी मिलता होगा तो किसी को पता नहीं, वे मिला ही लेते होंगे। क्योंकि बताना तो होता नहीं किसी को सुबह-सुबह, जब रोज ही मिल जाता है। महावीर से भी ज्यादा ये होशियार हैं। अस्तित्व इनको महावीर से भी ज्यादा कीमत दे रहा है, साफ है। क्योंकि महावीर को कभी छः महीने भोजन नहीं मिला, कभी तीन महीने भोजन नहीं मिला, कभी दो महीने भोजन नहीं मिला। बारह साल के तपश्चर्या-काल में उन्हें केवल एक साल भोजन मिला। मतलब हर बारहवें दिन पर एक दिन भोजन मिला। यह औसत अनुपात रहा उनका। और इनको तो रोज मिल जाता है। तो या तो ये कोई धोखा दे रहे हैं। महावीर से ज्यादा मूल्यवान तो ये नहीं हैं कि अस्तित्व इनको ज्यादा बचाने के लिए उत्सुक है। या तो ये व्रत बंधे हुए लेते हैं, जो पता है लोगों को। और या फिर न भी मिलते हों तो मिला लेते होंगे, क्योंकि सुबह बताना तो होता नहीं किसी को। यह तो बाद में पता चलता है। जब वे भोजन ले लेते हैं तब पता चलता है कि दो केले लटकाने का व्रत लिया था आज।
और इन सबको ख्याल है कि इन्होंने मोह छोड़ दिया है। इनको ख्याल है इन्होंने जीवेषणा छोड़ दी है।

महावीर नग्न सोते थे। जैन मुनि भी नग्न सोता है--दिगंबर जैन मुनि। मगर सर्दी के दिनों में सोता तो नग्न है, शिष्यगण पुआल बिछा देते हैं। पुआल काफी गर्म होती है। और अच्छी काफी मोटी गद्दी पुआल की बना देते हैं। उस पर वह लेट जाता है। और ऊपर से फिर पुआल उस पर ढांक देते हैं मोटी दुलाई की तरह, सो वह पुआल के भीतर बिल्कुल दब जाता है। पुआल काफी गर्म होती है।
मैंने एक जैन मुनि को पूछा कि मैंने कहीं किसी शास्त्र में कि महावीर पुआल बिछा कर सोते थे और ऊपर से पुआल डाली जाती थी। वे बोलेः मैं क्या करूं? मैं तो जमीन पर सोता हूं लोग पुआल बिछा दें तो मैं क्या करूं? और मैं सो जाता हूं, लोग मेरे ऊपर पुआल डाल देते हैं तो मैं क्या करूं? मैं तो किसी से कहता नहीं।
मैंने उनसे कहाः और शिष्य अगर कांटे बिछा दें, फिर आप कहेंगे कि नहीं? मैं बिछवा देता हूं आज।
वे कहने लगेः आप कैसी बातें करते हैं?
मैंने कहाः मैं कैसी बातें नहीं करता। आप कैसी बातें करवा रहे हैं! शिष्य कांटे बिछा दें, फिर लेटेंगे आप? और ले आएं एक बर्फ की चट्टान और रख दें छाती पर, फिर आप मना करेंगे? एक दम उचक कर खड़े हो जाएंगे।"
मैंने कहाः ये शिष्य भी तुम्हारे मूढ़ हैं जो पुआल बिछाते हैं।
मगर यह सब चलता है। छोड़ तो देते हैं, मगर समझ नहीं है, तो कहीं से लौट आएगा, किसी तरह से लौट आएगा।
तुमने देखे, हिंदु साधु नग्न बैठे रहते हैं, मगर भभूत लगा लेते हैं। तुम जानते हो भभूत क्यों लगा लेते हैं? तुम सोचते हो शायद कोई तपश्चर्या कर रहे हैं। यह तपश्चर्या नहीं है। शरीर का रंध्र-रंध्र श्वास लेता है तो ठंड के दिनों में तुम ऊनी वस्त्र भी पहनते हो; उससे भी ज्यादा गर्मी देने वाली चीज है कि सारे शरीर पर राख मल कर बैठ जाओ, क्योंकि सारे शरीर के रंध्रों में राख समा जाती है। और जब रोज रोज राख ही मलते रहते हैं तो रंध्र बंद हो जाते हैं। और जब रंध्र बंद हो जाते हैं तो उन से हवा अंदर जानी समाप्त हो गई। मोटी से मोटी ऊन की चादर भी तुम, कीमती से कीमती पश्मीना भी ओढ़ कर बैठो, उसमें से भी थोड़ी हवा भीतर आती है। लेकिन अगर तुम राख पूरे शरीर पर लपेट कर बैठ जाओ तो उससे कोई हवा आने की संभावना नहीं रह जाती। तुम सोचते होओगे ये कोई त्याग कर रहे हैं। ये त्याग नहीं कर रहे हैं। इन्होंने तरकीब निकाल ली है। तरकीबें निकलेंगी ही, क्योंकि मौलिक रूप से व्याधि दूर नहीं हो रही है, सिर्फ ऊपरी-ऊपरी व्याख्याओं से काम चल रहा है। मोह से मेरा अर्थ होता हैः मैं का विस्तार। मैं-भाव का विस्तार। फिर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम्हारे पास साम्राज्य है या नहीं। समझ हो तो साम्राज्य के भीतर भी कोई मैं से मुक्त हो कर जी सकता है और नासमझी हो तो नग्न खड़ा होकर जंगल में वृक्ष के नीचे भी मैं भाव से भर सकता है।
मैं हिमालय की यात्रा पर था। मनाली में एक वृक्ष के नीचे, पता चला मुझे कि एक साधु कोई बीस वर्षों से बैठता है। वहीं रहता है। वही वृक्ष उसका आवास है। घना वृक्ष था, सुंदर वृक्ष था। अभी साधु भिक्षा मांगने गया था। तो मैं उस वृक्ष के नीचे बैठ रहा। जब वह लौट कर आया तो मैंने आंख बंद कर ली। उसने मुझे देखा और कहा कि उठिए यह वृक्ष मेरा है। यहां मैं बीस साल से बैठता हूं।
मैंने कहा, वृक्ष किसी का भी नहीं होता। और बीस साल से नहीं, तुम बीस हजार साल से बैठते होओ, इससे क्या फर्क पड़ता है? अभी तो मैं बैठा हूं। जब मैं हटूंगा तब तुम बैठ जाना। अब मैं हटने वाला नहीं हूं।
वे तो एकदम आगबबूला हो गए कि यह मेरी जगह है! हरेक को पता है। यहां और
भी बहुत साधु-संन्यासी आते हैं, सबको मालूम है कि यह वृक्ष मेरा है। मैंने उनको और भड़काया। तो उनको क्रोध बढ़ता चला गया। फिर मैंने उनसे कहा कि मैं सिर्फ यह जानने के लिए आपको भड़का रहा था, मुझे कुछ लेना-देना नहीं वृक्ष से, मुझे यहां रहना भी नहीं, मैं सिर्फ यह देख रहा था कि आप बीस साल पहले घर छोड़ दिए, पत्नी बच्चे छोड़ दिए, आपकी कथाएं मैंने सुनी हैं कि आप बड़े त्यागी हैं, मगर अब यह वृक्ष को पकड़ कर बैठे हैं! यह आपका हो गया! यह जमीन आपकी हो गई! इस पर अब कोई दूसरा बैठ नहीं सकता। तो यह नया घर बसा लिया।

यह स्वाभाविक है। अगर समझ न हो तो तुम जो भूल करते थे, फिर-फिर करोगे। नये-नये ढंग से करोगे। नई-नई दिशाओं में करोगे। मगर भूल से बचोगे कैसे? निश्चित ही मोह के समान और कोई शत्रु नहीं है, क्योंकि अहंकार ही शत्रु है। और अहंकार का जो फैलाव है, जहां-जहां अहंकार जुड़ जाता है, वहां वहां मोह है। जहां तुमने कहा मेरा, वहां मोह है। इसलिए मैं कहता हूं, मत कहना--मेरा धर्म; मत कहना--मेरा शास्त्र, मेरी कुरान, मेरी बाइबिल, मेरी गीता! मत कहना--मेरा देश, मेरी जाति, मेरा वर्ण, मेरा कुल! ये सब मोह ही हैं और बहुत सूक्ष्म मोह है।
काम हैः और की आकांक्षा। वह भी अहंकार का विस्तार है। और मोह हैः जो-
जो काम के द्वारा मिल गया है, उसको अपना बनाए रखने की आकांक्षा। वह मेरा ही रहे। वह मेरे हाथ से छिटक न जाए। जो पाने की दौड़ है वह काम; और जो पकड़ लेने की आकांक्षा है, वह मोह। वह काम की ही शाखा है।
"काम के समान कोई व्याधि नहीं, मोह के समान कोई शत्रु नहीं, क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं।"
यूं समझो कि काम है और की दौड़, मोह है जो मिल गया उसको अपना बनाए रखने
की आकांक्षा और क्रोध है, जब तुम्हारी इस आकांक्षा में कोई बाधा डाले, कोई उपद्रव खड़ा करे। जैसे वह साधु क्रोधित हो गया, क्योंकि मैं उस के झाड़ के नीचे बैठ गया--उसका झाड़! उसके मैं पर हमला हो गया। उसकी लक्ष्मण-रेखा थी वहां खिंची हुई, उसके भीतर मैं प्रवेश कर गया, तो क्रोध आ गया।
जहां तुम्हारे अहंकार को चोट पड़ती है वहां क्रोध आता है। और जहां तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है वहां मोह आता है। ये क्रोध और मोह अलग-अलग नहीं, एक ही सिक्के दो पहलू हैं। लेकिन दोनों के मूल में काम है। जो तुम्हारी कामवासना में सहयोगी होता है उसको तुम मित्र कहते हो। और जो तुम्हारी कामवासना में विरोधी हो जाता है, अड़चनें डालता है, उसको तुम शत्रु कहते हो। कौन है तुम्हारा मित्र? लोग कहते हैंः मित्र वही जो वक्त पर काम आए। क्यों? वक्त पर काम आए, यह कसौटी है मित्र की! यह मित्रता हुई? वक्त पर काम आने का मतलब हुआ कि जो मेरे काम के आरोहण में सहयोगी हो; जो मेरी आकांक्षाओं अभी प्साओं में सीढ़ी बने; जो मेरे हाथ में शक्ति दे; जो मेरे साथ अभियान पर निकले, मेरा सहयोगी हो। और शत्रु कौन है? जो बाधा डाले। तुम चुनाव लड़ रहे हो, वह तुम्हारे खिलाफ खड़ा हो जाए, तो शत्रु। और तुम्हारा जा कर प्रचार करे तो मित्र। तुम्हें वोट न दे तो शत्रु।
क्रोध पैदा होता है, जब भी तुम्हारी किसी वासना में कोई अड़चन आ जाती है, कोई भी अड़चन खड़ी कर देता है तभी क्रोध पैदा हो जाता है। मुझ पर इस देश के सारे साधु-संत, महंत-महात्मा क्रोधित हैं। क्यों? पूछना चाहिए, क्यों? जो किसी और बात में राजी नहीं होते, जो एक दूसरे से हर हालत में दुश्मन होते हैं, वे सब भी एक साथ मेरे विपरीत खड़े हो जाते हैं। क्या कारण होगा? जरूर बड़े जादू की घटना घट रही है। सभी संप्रदायों के साधु, महंत, संत महात्मा मेरे विपरीत इकट्ठे हो जाते हैं। क्योंकि उन सबको लग रहा है कि मैं उनके सारे व्यवसाय को चोट पहुंचा रहा हूं, मैं शत्रु हूं। अगर मेरी बात लोगों की समझ में आ गई तो मंदिर खाली पड़े होंगे, मस्जिदें खाली पड़ी होंगी। अगर मेरी बात लोगों की समझ में आ गई तो कौन जाएगा काशी और कौन जाएगा काबा! इसलिए सारे पंडित पुरोहितों को घबड़ाहट और बेचैनी है। इस बैचेनी के पीछे भारी क्रोध है, क्योंकि उनकी आकांक्षाओं में लग रहा है कि मैं सहयोगी नहीं हूं। मैं सहयोगी हो जाऊं इसकी बहुत कोशिश थी।
जैन मुनियों ने मुझसे कहा था कि हम सब तरफ से आपका साथ देंगे अगर आप हमेशा जैन धर्म का समर्थन करें। मैंने कहा, "मैं समर्थन सत्य का करूंगा। जैन धर्म उसके अनुकूल पड़ेगा तो जरूर समर्थन करूंगा और प्रतिकूल पड़ेगा तो मेरी मजबूरी है। मैं सिर्फ सत्य का समर्थन कर सकता हूं।"
मुझे हिंदु महात्माओं ने कहा था कि अगर आप विश्व में हिंदु धर्म का प्रचार करें तो हम आप के साथ हैं। मैंने उनसे कहा कि मैं सिर्फ सत्य का प्रचार कर सकता हूं। और अगर हिंदु धर्म में कोई भी सत्य होगा तो जरूर मैं उसके साथ हूं। लेकिन असत्य चाहे हिंदू हो चाहे जैन, मैं साथ नहीं दे सकता हूं।

तो धीरे-धीरे मैंने न मालूम कितने दुश्मन खड़े कर लिए! सत्य से दोस्ती जोड़ी तो असत्य से जो जी रहे हैं वे दुश्मन हो गए। परमात्मा से नाता जोड़ा तो परमात्मा के नाम से जो धंधे चला रहे हैं वे दुश्मन हो गए। निश्चित ही क्रोध के समान कोई अग्नि नहीं है क्यों? क्योंकि और अग्नियां तो सिर्फ वस्तुओं को नष्ट करती हैं, क्रोध आत्मा को नष्ट करता है। और अग्नियां तो स्थूल को जलाती हैं, क्रोध तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म को जला देता है। और अग्नियां तो पदार्थ पर शक्तिशाली होती हैं, लेकिन क्रोध की अग्नि तो चेतना पर भी आच्छादित हो जाती है।
मगर तुम्हारे शास्त्र दुर्वासा जैसे लोगों को भी ऋषि कहते हैं--जिनके मुंह पर ही क्रोध है, जिनकी जबान पर क्रोध है, जो अभिशाप देने को आतुर बैठे हैं, जो जरा से भूल चूक से जनम-जनम बिगाड़ दें। ऋषि और अभिशाप दे! ऋषि तो वरदान ही दे सकता है। उससे तो आशीष की ही वर्षा हो सकती है।
मैं तो राबिया को ऋषि कहूंगा, दुर्वासा को नहीं। राबिया सूफी स्त्री थी। कुरान में एक जगह यह वचन आता है कि शैतान से घृणा करो। उसने काट दिया। और कुरान में कोई तरमीम नहीं कर सकता, कोई सुधार नहीं कर सकता। कुरान में सुधार करना! इसका मतलब हुआ कि पैगंबर गलत है, कि कुरान जो उतारी परमात्मा ने वह गलत है! ये ईश्वरीय वचन हैं। इनको कोई सुधार सकता है? यह कोई बच्चों की लिखी हुई किताब तो नहीं है कि तुम इस में सुधार कर दो।
लेकिन राबिया ने काट ही दिया वह वचन। हसन नाम का फकीर उसके घर मेहमान था। उसने राबिया की किताब देखी, कुरान देखी। उलट-पलट रहा था, देखा कि एक जगह वाक्य कटा हुआ है। वह तो बहुत हैरान हुआ। उसने राबिया से कहा, "किसी ने तेरी कुरान को अपवित्र कर दिया।"
राबिया ने कहा, "किसी ने नहीं। और अपवित्र नहीं किया है, पवित्र किया है। मैंने ही किया है। क्योंकि जब से मैंने परमात्मा को जाना तब से मुझे शैतान दिखाई नहीं पड़ रहा। मैं घृणा कैसे करूं? शैतान नहीं दिखाई पड़ता। शैतान भी मेरे सामने आ कर खड़ा हो जाए तो परमात्मा ही दिखाई पड़ता है। और घृणा कैसे करूं? जब से परमात्मा को जाना, सारा जीवन प्रेम में रूपांतरित हो गया है। घृणा मेरे भीतर नहीं बची। अब शैतान का मैं क्या करूं? घृणा पहले भीतर होनी चाहिए न, तभी तो मैं कर सकूंगी! अब भीतर ही जो चीज न बची। शैतान हो या परमात्मा हो, कोई भी हो, मेरे भीतर तो बस प्रेम ही बचा है। मेरे भीतर से तो प्रार्थना ही उठेगी। मेरे भीतर दुर्गंध नहीं है, सुगंध ही उठेगी।"
मैं राबिया को ऋषि कहूंगा। और मैं कहूंगा उसने ठीक किया जो कुरान में सुधार कर दिया। दुर्वासा को ऋषि नहीं कह सकता। जरा-सी बात में क्रुद्ध हो जाए। ऋषि तो वह परम अवस्था है दृष्टि की, द्रष्टा भाव की, जहां न कोई काम बचता, न कोई मोह बचता न कोई क्रोध बचता। और जहां ये तीनों समाप्त हो जाते हैं, वहीं ज्ञान का जन्म होता है।
इसलिए ठीक कहता है यह सूत्रः "ज्ञान से उत्कृष्ट कोई सुख नहीं।" ज्ञान महासुख है। मगर ये तीन जाएं, तो ज्ञान। यह जो त्रिमूर्ति है--काम, क्रोध, मोह की--यही बाधा है। इस देश में परमात्मा को त्रिमूर्ति कहा है; लेकिन जो हमने त्रिमूर्ति बनाई है वह परमात्मा के संबंध में पर्याप्त नहीं है। उससे कहीं ज्यादा गहरी दृष्टि तो पतंजलि की है, जो कहता है कि असली अवस्था तुरीय है, चौथी है। तीन के पार जाओ तो तुरीय। तुरीय का अर्थ होता हैः चौथी। गुरजिएफ के शिष्य आस्पेंस्की ने अदभुत किताब लिखी हैः दि फोर्थ वे, चौथा रास्ता। क्या है वह चौथा रास्ता? तुरीय क्या है? काम, मोह, क्रोध--इन तीनों के पार जो चला जाए, वही चौथे को उपलब्ध होता है।
यूं समझो कि काम है ब्रह्मा, क्योंकि ब्रह्मा से ही जगत की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा का अगर तुम उल्लेख पढ़ो शास्त्रों में तो यह बात तुम्हें साफ हो जाएगी; हालांकि किसी ने कभी तुमसे यह बात कही नहीं। यह मैं तुमसे पहली बार कह रहा हूं; क्योंकि कौन झंझट में पड़े! इस देश में झंझट में पड़ने वाले लोग ही नहीं रहे। नेता बचे हैं, ऋषि नहीं बचे। धार्मिक नेता हैं जिनको तुम धर्मगुरु कहते हो, वे भी ऋषि नहीं हैं। गुरु होने के लिए हिम्मत चाहिए, छाती चाहिए।

ब्रह्मा को मैं काम का प्रतीक मानता हूं और तुम अपने पुराण उठा कर देख लो, तुम्हें मेरी बात के लिए गवाहियां मिल जाएगी। कहानी कहती है कि ब्रह्मा ने पृथ्वी पैदा की। जिसने पैदा की, वह पिता हो गया। लेकिन पृथ्वी को पैदा करके वे उस पर आसक्त हो गए। पिता पुत्री पर आसक्त हो गया। दौड़ने लगे वे पुत्री के पीछे, उसको पकड़ने के लिए दौड़ने लगे। उसको भोगने की आकांक्षा पैदा हो गई ब्रह्मा में। स्वभावतः, स्त्री का स्वभाव है बचना, छिपना, लज्जा, घूंघट, तो स्त्री बचने लगी। ऐसे सारी सृष्टि पैदा हुई। क्योंकि स्त्री बच कर गाय हो गई, वह छिप गई और गाय बन गई, ताकि किसी तरह ब्रह्मा के इस कामवासना के उपद्रव से छूट पाए। मगर ब्रह्मा कुछ ऐसे तो छोड़ने वाले नहीं थे, वे तत्क्षण सांड हो गए। ब्रह्मा ही थे, वे कोई ऐसे छोड़ देने वाले थे! ऐसे सारी प्रकृति बनी। वह हरिणी हो गई तो वे हरिण हो गए। वह हथिनी हो गई तो वे हाथी हो गए। वह स्त्री हो गई तो वह पुरुष हो गए। यूं भाग चलती रही, चलती रही, चलती रही। ऐसी ये चौरासी करोड़ योनियां जो पैदा हुईं, यह ब्रह्मा की कामवासना का विस्तार है।
ब्रह्मा काम के प्रतीक हैं। होना भी चाहिए, क्योंकि काम से ही उत्पत्ति है। और ब्रह्मा उत्पत्ति हैं। वे जगत के स्रोत हैं, जहां से सारा जगत पैदा हुआ। और काम से ही जगत की उत्पत्ति होती है। निश्चित ही ब्रह्मा काम के प्रतीक हैं।
विष्णु मोह के प्रतीक हैं। विष्णु के लिए जो व्याख्या की गई है शास्त्रों में, वह है जगत को सम्हालने वाले, बचाने वाले, व्यवस्था रखने वाले। यह मोही का लक्षण है। मोह का अर्थ ही होता हैः व्यवस्था, सम्हालना, बचाना। जो है उस को जोर से पकड़ना, कहीं खो न जाए, कहीं छिटक न जाए हाथ से। काम का अर्थ होता हैः बनाना, और, और, और! और मोह का अर्थ होता हैः बचाना। विष्णु बचाने वाले हैं।
तुमने एक मजा देखा! इस भारत में ब्रह्मा का सिर्फ एक मंदिर है, सिर्फ
एक मंदिर समर्पित है ब्रह्मा को। क्योंकि लोगों को अब ब्रह्मा से क्या लेना-देना! दुनिया तो बन ही चुकी। जब बन ही चुकी तो अब ब्रह्मा से क्या लेना-देना! बात ही खत्म हो गई। लेकिन विष्णु के बहुत मंदिर हैं, अनंत मंदिर हैं। सब अवतार विष्णु के हैं। राम और कृष्ण सब अवतार विष्णु के हैं। इसलिए जितने मंदिर हैं, चाहे राम के हों, चाहे कृष्ण के हों, ये सब विष्णु के मंदिर हैं। निश्चित ही विष्णु से अभी लेना देना है। अभी मामला विष्णु के हाथ में है। ब्रह्मा का तो काम खत्म हो गया। वे तो लिख गए कहानी और कहां गए पता नहीं। यहीं खो गए सांडों में, हाथियों में, कितने बंट गए। एक थे, चौरासी करोड़ हो गए। वे तो यहीं कंट छंट कर समाप्त हो गए। अब उनका कहां पता लगाते फिरोगे? अब तो खोजोगे भी तो मिलना मुश्किल हो जाएगा। थोड़ा-थोड़ा अंश मिलेगा, थोड़ा सांड में मिलेगा, थोड़ा मुहम्मद अली में मिलेगा, थोड़ा दारासिंह में मिलेगा, थोड़ा-थोड़ा, अंश-अंश... । उनको तुम कहां खोजोगे? इसलिए एक मंदिर ठीक है प्रतीक के लिए कि भई चलो तुमने काम किया, ऐसा जगत बना दिया, बड़ी कृपा! एक मंदिर तुम्हें समर्पित कर देते हैं। मगर अब तुमसे लेना-देना क्या है!
इसलिए ब्रह्मा की कोई चिंता नहीं करता। न कोई स्तुति गाता, न कोई प्रार्थना करता, न किसी मंदिर में घंटियां बजतीं ब्रह्मा के लिए। लेकिन विष्णु के लिए सारी स्तुतियां हैं, क्योंकि विष्णु के हाथ में ताकत है। जिसके हाथ में ताकत है, जिसके हाथ में लाठी है उसकी भैंस है। सब भैसें एकदम डोलने लगती हैं लाठी देख कर। लाठी अभी विष्णु के हाथ में है। इसलिए सब अवतार उनके। और सारी प्रार्थनाएं उनके लिए हैं। विष्णु-सहस्त्रना। विष्णु के हजार नाम बताने वाला शास्त्र है। एक नाम से काम नहीं चलता विष्णु का। हजार नाम, ताकि तरह-तरह से स्तुतियां करो। और सारे मंदिर विष्णु को समर्पित हैं। विष्णु मोह के प्रतीक हैं--मेरा! हजार ढंग से स्तुतियां करो। मेरा है तो बचाओ।
और महेश अंत करेंगे अस्तित्व का। जैसे विष्णु बचाते हैं, और ब्रह्मा शुरू करते हैं, वैसे महेश अंत करेंगे। वे क्रोध के प्रतीक हैं। और तुम पुराणों में देख लो। कथाएं फैली पड़ी हैं। मैं कभी-कभी चौंकता हूं कि क्यों

यह बात साफ नहीं हुई, क्यों किसी ने यह बात ठीक-ठीक न कही कि इन तीनों के ये तीन प्रतीक हैं?
अभी कल ही तुम से मैं शिवजी की कथा कह रहा था कि उन्होंने गर्दन ही काट
दी गणेश की। अरे जरा पूछताछ करते, इतनी जल्दी क्या पड़ी थी? गर्दन ही काटनी थी, थोड़ी देर से काटी जा सकती थी। मगर आव देखा न ताव, गर्दन काट दी। क्रुद्ध हो गए। तुमने उनके क्रोध की कथा सुनी ही है कि कामदेवता उनके सामने प्रगट हुआ तो उन्होंने अपनी तीसरी आंख खोल कर उसको भस्म कर दिया। महाक्रोधी! तांडव नृत्य करने वाले! निश्चित ही अंत वही कर सकता है इस जगत का जो क्रोध हो, हिंसा हो, विनाश हो।
ये तीन परमात्मा के रूप नहीं हैं4 ये तीन परमात्मा की विकृतियां हैं, अगर ठीक से समझो। इन तीनों के जो पार जाता है वह परमात्मा को उपलब्ध होता
है। तुरीय, चतुर्थ। और वही ज्ञान है। वही बोध है, समाधि है, संबोधि है, बुद्धत्व है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं है कि बौद्धों ने यह कथा लिखी कि जब सिद्धार्थ गौतम बुद्धत्व को उपलब्ध हुए तो सारे देवता, ब्रह्मा भी उसमें सम्मिलित हैं,, उनके चरणों में नमस्कार करने आए। आना ही चाहिए। आए हों या न
आए हों, मगर जरूर आना चाहिए, केवल बुद्धत्व देवत्व से बहुत ऊंची बात है। ब्रह्मा विष्णु महेश में तो तुम अपने ही जैसी सारी बीमारियां पाओगे। ब्रह्मा में तुम अपनी ही कामवासना पाओगे। विष्णु में तुम अपने ही मोह का विस्तार पाओगे।
में तुम अपने ही क्रोध काे रूप पाओगे। लेकिन जो तीनों के पार है, जहां न
काम बचा, न क्रोध बचा, वहां ज्ञान। वहां तुम्हारा निर्मल स्वभाव प्रगट
होता है; तुम्हारा स्वरूप पहली दफा सहस्र-दल कमल की भांति खुलता है; पहली
बार तुम्हारे जीवन में संगीत होता है, काव्य होता है।
निश्चित ही महासुख है ज्ञान। लेकिन इस ज्ञान से तुम शास्त्रीय ज्ञान
मत समझना। यह सिर्फ ध्यान से ही उपलब्ध होता है, क्योंकि ध्यान तीनों को मिटा देता है। वह त्रिमूर्ति को नष्ट कर देता है। जहां यह त्रिमूर्ति नष्ट हुई, फिर जो शेष रह जाता है, जिसको नष्ट किया ही नहीं जा सकता, ध्यान अग्नि है जिसमें ये तीनों जल कर राख हो जाते हैं--और उसके बाद जो शेष रह जाता है, खालिस सोना, सब कचरा जल गया, सोना कुंदन बनता है अग्नि से गुजर कर। ध्यान की अग्नि से गुजरकर तुम्हारे भीतर सिर्फ शुद्ध सोना बचता है। वही ज्ञान है। उसे जिसने पा लिया उसने सब पा लिया। उसे जिसने खोया उसने सब गंवाया। और हम सब उसे गंवाए बैठे हैं।
और कैसा पागलपन है कि तुम ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा कर रहे हो और तुम्हारे भीतर स्वयं परमात्मा विराजमान है, चतुर्थ विराजमान है! तुम्हारे भीतर स्वयं ब्रह्म विराजमान है और तुम दो कौड़ी के देवी देवताओं की पूजा में लगे हुए हो। अचंभा होता है देख कर कि भीतर ब्रह्म बैठा है, तुम हनुमान-चालीसा पढ़ रहे हो! कुछ तो शर्म करो! कुछ तो शर्म खाओ! कुछ तो संकोच लाओ! अरे डूब मरो चुल्लू भर पानी में! हनुमान चालीसा पढ़ रहे हो! न लाज, न संकोच! "जय गणेश जय गणेश" का शोरगुल मचा रहे हो! ब्रह्म हो कर क्या खिलौनों से खेल रहे हो! लेकिन मूर्च्छा में यही संभव है। कीमती है--
नास्ति कामसमो व्याधि नास्ति मोह समो रिपुः।
नास्ति क्रोध समो वहिनास्ति ज्ञानत परं सुखम्।।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
आप इतना समझाते हैं, फिर भी मेरी पत्नी की समझ में क्यों कुछ नहीं आता है? वह अभी भी दकियानूसी साधु-संतों के सत्संग में समय बर्बाद कर रही है। मैं क्या करूं?

राजाराम!
राजा भैया, सौभाग्य है कि वह साधु-संतों का सत्संग कर रही है, नहीं तो तुम यहां न आ सको। उसे करने दो। इतना तुम्हें अवसर मिल जाता है यहां आने का। बाधा न डालो। और न चेष्टा करो उसे समझाने की। नहीं तो इतनी सुविधा भी न बचेगी, अगर वह तुम्हारा ही सत्संग करने लगी। जाने दो जहां जाना हो। जहां तुमको पता चल जाए कि साधु-संत आए हैं, फौरन उसको बता दिए कि बाई जा।

चंदूलाल अपने दोस्त ढब्बू जी को बता रहे थे कि आजकल शहर में स्वामी मुक्तानंद का सत्संग चल रहा है, बड़ा ही शानदार है अदभुत है, गजब का है। तबियत बाग-बाग, अर्थात गार्डन-गार्डन हो जाती है! कल रात मुझे इतना आनंद आया कि जिंदगी में कभी नहीं आया।
ढब्बू जी ने कहाः मुझे आश्चर्य होता है मैंने तो सोचा भी न था कि तुम संत-महात्माओं और अध्यात्म के ऐसे रसिक हो! माफ करना यार, सच बात तो यह है कि मैं अब तक तुम्हें बस एक मारवाड़ी व्यापारी ही समझता रहा और तुम्हारे आध्यात्मिक हृदय की पहचान न कर पाया। लेकिन एक बात समझ में नहीं आती, कल रात सत्संग में मैंने तुम्हारी श्रीमती जी और बच्चों को देखा था, परंतु तुम नहीं दिखे। तुम कहां बैठे थे, यह तो बताओ।
चंदूलाल ने कहाः मैं! अरे मैं अपने घर में बैठा आराम फरमा रहा था। कई सालों बाद ऐसा मौका आया कि पत्नी बच्चों का उपद्रव नहीं, घर में शांति का साम्राज्य छाया, उसी के सुख का तो वर्णन कर रहा हूं कि हे भगवान, यह सत्संग अनंतकाल तक चलता रहे!
तुम क्यों, राजाराम, परेशानी में पड़े हो? बता दिया, जैसे ही साधु- संतों का पता लगाए रखे, कि कोई मुक्तानंद आए कि कोई अखंडानंद आए। पत्नी को बता दिया कि जा बाई, बड़ा गजब का सत्संग हो रहा है! इतनी देर को तुम्हें कम से कम शांति मिलेगी। ध्यान कर लिया। तुम और अड़चन में पड़ना चाहते हो?
और कौन पति अपनी पत्नी को कभी समझा पाया है? तुमने कभी इतिहास में सुना? तुम असंभव को संभव करने चले हो? इस झंझट में पड़ो ही मत। खतरा यही है कि कहीं वहीं तुमको न समझा दे। स्त्रियों के समझने के ढंग अलग हैं। उनके सोचने की प्रक्रिया अलग है। और पति को तो हर पत्नी दो कौड़ी का समझती है, उससे समझेगी? और दो कौड़ी का समझने का उसके पास कारण है, क्योंकि वह अपने को ऊपर दिखाती है हमेशा तुमसे। वह धार्मिक व्रत-उपवास करे।
अब इसमें कई बातें हैं। स्त्रियां आसानी से उपवास कर सकती हैं। इसका वैज्ञानिक आधार है। पुरुष नहीं कर सकते इतनी आसानी से, क्योंकि स्त्रियों के शरीर में चर्बी ज्यादा इकट्ठी होती है पुरुषों के बजाए। उसका कारण है, क्योंकि स्त्री के पेट में जब बच्चा आएगा तो बच्चा इतना स्थान घर लेता है कि स्त्री ठीक से भोजन भी नहीं कर पाती। करती है तो वमन हो जाता है। तो उन नौ महीने के लिए प्रकृति ने इंतजाम किया हुआ है कि उसके शरीर में चर्बी इकट्ठी कर देता है, ताकि वह अपनी चर्बी को ही पचाती रहती है। वह नौ महीने के लिए संकटकाल के लिए व्यवस्था है। पुरुष में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। पुरुष के शरीर में चर्बी इस तरह से इकट्ठी नहीं होती जिस तरह से स्त्री के शरीर में होती है! तो स्त्री अगर उपवास करना चाहे तो बड़ी आसानी से कर सकती है, उसको अड़चन नहीं है। पुरुष को उपवास से प्राण निकलते हैं। सो स्त्रियां उपवास कर लेती हैं। और जब स्त्रियां उपवास कर लेती हैं तो वे कहती हैं, तुम देखो पापी जमाने भर के! उनको आसान है मामला।
फिर स्त्री स्वभावतः कामवासना में कभी अपनी तरफ से उत्सुकता नहीं दिखाती। यह उसका स्वभाव नहीं है। इसमें कुछ खूबी नहीं है। यह बस स्वभाव की बात है। स्त्री प्रतीक्षा करती है, पुरुष निवेदन करता है। और जो निवेदन करता है वही फंसेगा, क्योंकि वह तुमसे हमेशा कहेगी कि हमेशा तुम बस... तुमको सिवाय कामवासना के कुछ सूझता ही नहीं! अरे कुछ साध लो धर्म, कुछ कर लो, चार दिन की जिंदगी है, फिर पीछे पछताओगे! और पुरुष की भी मजबूरी है, उसको निवेदन करना पड़ेगा। वह उसकी प्रकृति है। जैसे स्त्री की प्रकृति है कि वह सिर्फ प्रतीक्षा करती है, पुरुष निवेदन करता है। वह पुरुष ही पीछे- पीछे घूमता है। तो स्त्री स्वभावतः अपने को मान कर चलती है वह धार्मिक है। कौन पुरुष अपनी पत्नी को समझा सकता है कि तेरा धर्म गलत है, कि तू गलत है? वह कहेगी कि पहले अपना मुंह आईने में देखो! और उनके सोचने कि प्रक्रिया बिल्कुल अलग है।
स्त्रियां आमतौर से परंपरावादी होती हैं। उसके पीछे भी प्रकृति कारण है। स्त्री को सम्हल-सम्हल कर चलना होता है। हमने सदियों से उससे उपेक्षा की है कि वह सम्हल-सम्हल कर चले। जो सम्हल-सम्हल कर चलेगा वह अतीत को

पकड़ेगा, क्योंकि अतीत जाना-माना है। वह खतरा मोल नहीं ले सकता। नये को पकड़ना तो खतरनाक है, पता नहीं क्या परिणाम हो!
और स्त्रियों को हमने इतनी सदियों तक डराया है, घबड़ाया है। शास्त्र कहते हैं कि जब स्त्री बच्ची हो तो बाप उसकी रक्षा करे; जब जवान हो तो पति उसकी रक्षा करे और जब बूढ़ी हो जाए तो बेटा उसकी रक्षा करे। मतलब उसको कभी तुम अपने पैर पर खड़ा होने ही नहीं दोगे, रक्षा ही रक्षा करते रहो! कभी उसको अपनी तरफ से चलने मत देना। तो उसको तुमने घबड़ा रखा है, डरा रखा है, भयभीत कर रखा है। उस भय का यह परिणाम हुआ है कि वह हमेशा अतीत को पकड़ती है, जाने-माने को।
मेरी बातें तो नई हैं। नई इस अर्थों में हैं कि कोई परंपरागत साधु- महंत पंडित पुरोहित उनका समर्थन नहीं कर सकेगा। यूं तो वे पुरानी से पुरानी हैं और नई से नई हैं, क्योंकि जो मैं कह रहा हूं वह शाश्वत है और सनातन है। मगर पंडित-पुरोहित अतीत को पकड़कर चलता है और उससे स्त्री राजी हो जाती है। स्त्री पंडित-पुरोहितों से बड़े जल्दी राजी हो जाती है। उसको बात जंचती है, क्योंकि वही उसने सुनी है, वही उसे सुनाई गई है।
तुमने सदियों तक स्त्रियों को वेद पढ़ने का हक नहीं दिया, उपनिषद पढ़ने
का हक नहीं दिया। तुमने तो स्त्रियों को कहानियों में भटकाए रखा। पुराण पढ़ सकती है स्त्री, वेद नहीं पढ़ सकती। तुलसीदास रामचरितमानस पढ़ ले, बस इतना काफी है। इतना ज्ञान उसके लिए बहुत है। इससे ज्यादा ज्ञान की उसको जरूरत नहीं। तुमने स्त्रियों को सदियों तक ज्ञान से रोका है। और मैं ज्ञान की ही अग्नि जला रहा हूं, तो तुम्हारी स्त्री कैसे राजी हो?
और तुमने अगर उसे खींचने की कोशिश की तो वह कभी नहीं आएगी, क्योंकि यह उसके अहंकार का सवाल हो जाएगा! यह मेरा अनुभव है कि अगर पुरुष अपनी पत्नियों को यहां लाना चाहें, वे कभी नहीं आएंगी। अगर पत्नियां अपने पतियों को लाना चाहें, वे कभी नहीं आएंगी। अगर पत्नियां अपने पतियों को लाना चाहें, वे कभी नहीं आएंगे। अहंकार का सवाल है--कौन किसकी मानता है! फिर भी मेरा मानना है कि अगर स्त्री जिद करे तो पति को आना पड़ेगा क्योंकि वह उपद्रव करना जानती है। रोएगी-धोएगी, सिर पीटेगी, खाना न बनाएगी, सामान तोड़ देगी, रेडियो गिरा देगी, घड़ी फोड़ देगी। तो पति वैसे ही तो पिटा हुआ आता है दिन भर दुनिया से और फिर घर पिटने की उसकी हैसियत नहीं रह जाती घर चाहता है थोड़ी देर शांति मिले। शांति के लिए वह समझौता कर लेता है और स्त्री किसलिए समझौता करे? दिन भर तो वह तैयार होती है कि अब आते ही होंगे पप्पू के पिता। और तो कोई है ही नहीं उसके लिए। तुमनें छोड़ा भी नहीं उसको संसार कुछ; एक पति पर ही उसको सब कुछ अटका दिया है। स्वभावतः जो करना है, इसी पति के साथ करना है। और तो तुमने बंद ही कर दिए सब द्वार दरवाजे। तो उबलती रहती है दिन भर और तुम आए कि वह टूटी।
फिर, स्त्री-पुरुष के सोचने की प्रक्रियाएं भिन्न होती हैं। तुम्हारा तर्क उसके काम का नहीं है। स्त्री तर्क से नहीं जीती। स्त्री प्रेम से जीती है। इसलिए मेरे पास जो स्त्रियां हैं वे इसलिए मेरे पास नहीं हैं कि मेरी बात उन्हें ठीक लगी। वे इसलिए मेरे पास हैं कि उन्हें मुझसे प्रेम हो आया। और जो पुरुष मेरे पास हैं, वे इसलिए हैं कि उन्हें मेरी बात ठीक लगी। दोनों के कारण अलग-अलग हैं। पुरुष मेरे पास इसलिए हैं कि उनको मेरी बात में राज समझ आया, दृष्टि दिखाई पड़ी। स्त्रियां इसलिए मेरे पास हैं कि उन्हें मुझमें रस आया। उनका मामला निजी है।
इसलिए हमेशा मैंने अनुभव किया कि अगर मैं पुरुषों की धारणाओं के खिलाफ कुछ बोल दूं तो वे भाग खड़े होते हैं। क्यों? क्योंकि वे धारणाओं के कारण ही राजी थे। उनके तर्क को बात लगती थी तो राजी थे। अगर मैंने उनके तर्क के विपरीत कोई बात कह दी कि वे भाग गए। लेकिन कोई स्त्री संन्यास नहीं छोड़ती। क्योंकि मेरी बात से उसे उतना प्रयोजन नहीं है, मुझसे प्रयोजन है। मैं क्या कहता हूं वह उसे अच्छा लगता है, क्योंकि मैं कह रहा हूं। पुरुष को मैं अच्छा लगता हूं, क्योंकि मेरी बात अच्छी लगती है। अगर बात ही अच्छी नहीं लगती तो मैं गलत हो गया। दोनों के सोचने की प्रक्रियाएं अलग हैं।

एक महिला अपनी कार मरम्मत कराने के लिए लाई और गैरेज के मालिक से बोलीः इसका हार्न ठीक कर दीजिए, इसके ब्रेक खराब हैं।
एक होटल से रोज दो चम्मच गायब हो जाते थे। सभी परेशान थे। आखिर एक दिन बैरे ने एक महिला को पकड़ लिया और पूछा कि देवीजी, आप रोज दो चम्मच क्यों चुरा ले जाती हैं?
महिला बोलीः मैं क्या करूं? मुझे डाक्टर ने कहा है कि खाने के बाद दो चम्मच लूं।
एक बहुत मोटी स्त्री डाक्टर के पास गई और डाक्टर से अपने मोटापे की शिकायत की। डाक्टर ने कहाः बहन जी दवाई से तो काम नहीं चलेगा। पर आप उबली हुई सब्जियां, गाजर मूली आदि और ढेर सारे फलों और दूध और दही का उपयोग करें।
मोटी स्त्री ने पूछाः यह सब खाने के पहले खाऊं या बाद?
देखा, स्त्री की पकड़ अलग! उसका हिसाब अलग।
बहन जी, जनकपुरी की बस कब जाएगी? एक व्यक्ति ने पास ही बैंच पर बैठी महिला से पूछा।
एक घंटे बाद।
"हे राम"--उन सज्जन ने कहा--तब तो इस ठंड में कुल्फी जम जाएगी।
एक घंटे के बाद भी जब बस नहीं आती तो महिला बोलीः भाई, अगर कुल्फी जम
गई हो तो थोड़ी मुझे भी दे दें।
एक पति ने अपनी पत्नी से कहा कि कोई भी काम करने से पहले कम से कम मुझसे पूछ लिया करो। थोड़ी देर बाद ही पत्नी आई और बोलीः नन्हे के पापा, मैंने खिड़की में से देखा कि रसोई में बिल्ली दूध पी रही है, अगर आप कहें तो मैं उसे भगा दूं।
राजाराम, तुम पूछ रहे होः "आप इतना समझते हैं, फिर भी मेरी पत्नी की समझ में क्यों कुछ नहीं आता?"
यह बात समझ की नहीं है पत्नियों के लिए। यह बात प्रेम की है। तुम चिंता न करो। अगर तुम्हारी पत्नी यहां आ जाए तो काफी। तुम समझो। समझने की बात तुम्हारे लिए है। पत्नी तो यहां आए, इतना काफी है। बस यहां उठे बैठे, इतना काफी है वह डूब जाएगी, मगर तुम आग्रह न रखो कि उसकी समझ में आना चाहिए। तुम्हारे आग्रह के कारण बाधा पड़ जाएगी। मेरे और उसके बीच तुम खड़े मत होओ। बस वह आती हो तो अच्छा, सुनती हो तो अच्छा। न आती हो तो तुम फिक्र मत करो। चिंता मत करो, उसे खींच कर लाना मत। तुम्हारी जिंदगी की बदलाहट अगर किसी दिन उसे ले आएगी तो ठीक, अन्यथा कोई और लाने का उपाय नहीं है। जरूरत भी नहीं है।
आखिरी प्रश्नः मेरे जीवन में इतना विषाद क्यों है?
अनिल भारती,
किसके जीवन में विषाद नहीं है? जब तक स्वयं का साक्षात न हो, विषाद होगा ही। जब तक परमात्मा न मिले, विषाद होगा ही। यह स्वाभाविक है।
इसलिए विषाद के विश्लेषण में न पड़ो। उतनी शक्ति ध्यान में लगाओ। यही भेद है मनोविज्ञान में और धर्म में। मनोविज्ञान विश्लेषण करता है कि विषाद क्यों है? इसका कारण क्या है? और धर्म इसकी चिंता ही नहीं करता कि विषाद क्यों है, इसका कारण क्या है? धर्म तो सीधा ध्यान का सुझाव देता है। यूं समझो कि तुम्हारे घर में अंधेरा है। अब पहले यह समझो कि अंधेरा क्यों है, क्या कारण है, या दीया जलाओ? मैं तो यह कहूंगा कि अगर अंधेरे को समझना भी हो तो बिना दीया जलाए कैसे समझोगे? पहले दीया जलाओ, फिर खोजो अंधेरे को कहां है। मिलेगा भी नहीं।
विषाद का विश्लेषण न पूछो। दीया जला लो। विषाद अंधकार की भांति है।
जब तेरी फुरकत में घबराते हैं हम
सर को दीवारों से टकराते हैं हम
ऐ अजल आ चुक खुदा के वास्ते
जिंदगी से अब तो घबराते हैं हम
कहके आये थे न आवेंगे कभी
बे बुलाये आज फिर जाते हैं हम

किसने वादा घर में आने का किया
आपसे बाहर हुए जाते हैं हम
जब तेरी फुरकत में घबड़ाते हैं हम
सर को दीवारों से टकराते हैं हम
अभी तो करोगे भी क्या--सर को दीवारों से ही टकराओगे! जब तक परमात्मा न मिल जाए, तब तक जीवन एक पीड़ा ही है, एक घाव है। परमात्मा के मिलते ही स्वास्थ्य है। और कठिन नहीं है उसका मिल जाना। मिल जाना सरल है।
जागो। मन से अपनी ऊर्जा को खींचो और ध्यान में उस ऊर्जा को सन्निहित
कर दो। ध्यान का दीया जले कि मीन फिर सागर में आ जाए। और फिर आनंद ही आनंद है।

आज इतना ही।